पारमेश्वरागमः

संपादकः

पं० व्रजवल्लभद्विवेदः

प्रकाशकः

शैवभारती शोध प्रतिष्ठानम्

जंगमवाडीमठ - वाराणसी २२१ ००१

शोधप्रकाशन-ग्रन्थमाला—६

पारमेश्वरागमः

भाषानुवाद-टिप्पणीसहितः

सम्पादकः
पण्डित व्रजवल्लभद्विवेदः
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-निदेशकः

प्रकाशकः
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी-२२१००१

प्रकाशक:
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी. ३५/७७ जंगमवाड़ी मठ
वाराणसी-२२१००१

प्रथम संस्करण, सन् १९९५

मूल्यम् : सजिल्द रु. ३५०
अजिल्द रु. २००

अक्षर संयोजन
काशी ग्राफिक्स
सी. २/४१, हंकार टोला
वाराणसी- २२१ ०१०
फोन : ३५५३७२

मुद्रक
जौहरी प्रिंटर्स
४१, शिवाजी नगर
महमूरगंज, वाराणसी

Research Publications Series—6

PĀRAMEŚVARĀGAMAḤ

Translation with Notes

Edited by
Pt. Vrajavallabha Dwivedi
Director, Shaiva Bharti Shodha Pratishthanam

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath, Varanasi-221 001

समर्पण

शैवभारती शोधप्रतिष्ठान की स्थापना जिनकी संकल्पना रही,
उस महान् विभूति काशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासन के
८४ वें पीठाधिपति लिंगैक्य श्री १००८ जगद्गुरु
वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामी जी को
यह आगम-सुमन समर्पित

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के संस्थापक

श्री काशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर
श्री १००८ जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी का

शुभाशीर्वचन

भारतीय प्राचीन वाङ्मय में वेद और आगम प्रमुख माने जाते हैं। भारतीय आस्तिक धर्म-दर्शन इन्हीं पर आधारित हैं। वेदों की संख्या चार निश्चित होने पर भी आगमों की संख्या शैव तथा शाक्तादि भेद से अनन्त है। इनमें कामिक आगम से वातुल आगम पर्यन्त शैवागम अठाइस माने जाते हैं। आज लोकार्पित हो रहा 'पारमेश्वरागम' उन्हीं में से एक है। साक्षात् परमेश्वर के द्वारा परमेश्वर-संबन्धी विषय-वस्तु पार्वती को निमित्त बनाकर समस्त मानव-समाज के कल्याण के लिये उपदिष्ट होने के कारण इसका नाम पारमेश्वरागम है।

वर्तमान समय में शैवागम-साहित्य संपूर्ण रूपेण उपलब्ध नहीं हो रहा है। जहाँ पर भी जितना भी अंश उपलब्ध हो रहा है, उतने को विभिन्न संस्था के लोग संपादित कर प्रकाशित कर रहे हैं। शैवागमों का और समस्त शिव-साहित्य का संशोधन करके प्रकाशित करने के उद्देश्य से ही काशी के सुप्रसिद्ध श्रीजगद्गुरु विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासन जंगमवाडी महामठ में "शैवभारती शोधप्रतिष्ठान" नामक शोध संस्थान की स्थापना कुछ ही दिनों पहले की गई है। इस शोध संस्थान के द्वारा १९९४ की महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर १. चन्द्रज्ञानागम, २. सूक्ष्मागम, ३. कारणागम तथा ४. मकुटागम नामक चार आगमों का प्रकाशन हो चुका है। आज हम फिर १९९५ की महाशिवरात्रि के शुभ संदर्भ में पारमेश्वरागम का प्रकाशन करते हुए अपार आनंद का अनुभव कर रहे हैं।

हमारे शोध संस्थान के निदेशक, आगम और तन्त्रशास्त्र के अद्वितीय विद्वान् राष्ट्रिय पंडित प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी ने इस पारमेश्वरागम का हिन्दी अनुवाद

तथा टिप्पणियों के साथ संपादन किया है। आपने इसका संपादन करते समय काशी जंगमवाडी मठ के ज्ञानमन्दिर ग्रन्थालय की दो हस्तलिखित प्रतियों की, काशी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन ग्रन्थालय में उपलब्ध एक हस्तलिखित प्रति की, सोलापुर के पुण्यश्लोक अप्पासाहेब वारद के द्वारा १९०५ में प्रकाशित मराठी अनुवाद से युक्त मुद्रित ग्रन्थ की एवं १९१४ में हुबली से कन्नड लिपि में तन्त्रसंग्रह के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रन्थ की— इस प्रकार पांच प्रतियों की सहायता ली है। आपकी संपादनशैली अपूर्व है, अनुवाद कार्य अत्यन्त सरल और सुस्पष्ट है।

सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम्।।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि के इस वचन के अनुसार अठाईस शैवागमों के उत्तर भाग में वीरशैव सिद्धान्त प्रतिपादित है।

प्रकृत पारमेश्वर आगम में शैवों के भेद, वीरशैवों के प्रमुख तीन भेद और उनके दीक्षा-विधान, आचार-विचार और पूजा-पद्धति के बारे में बहुत ही विस्तृत विवेचन किया गया है। वीरशैव धर्म के प्रमुख उपास्य इष्टलिंग, उसकी आराधना, उसकी सज्जिका, सज्जिका के आकार, उसके धातु, शिवसूत्र, शिवसूत्र के विविध रंगों का विविध फल, करपीठ पर इष्टलिंग की अर्चना आदि महत्त्वपूर्ण विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है। वीरशैव धर्म-दर्शन के अभ्यासक-संशोधन यदि शैवागमों का अध्ययन नहीं करते हैं, तो उनका अभ्यास अपूर्ण ही माना जायगा।

हमारे शोध प्रतिष्ठान के द्वारा प्रकाशित होने वाले सभी आगमों को पहले राष्ट्रभाषा में और इसके साथ अंग्रेजी में तथा प्रान्तीय भाषाओं में भी अनूदित कराया जायगा। इस कार्य के लिये उन-उन भाषाओं में प्रभुत्व प्राप्त विद्वानों का सहयोग भी हमें प्राप्त हो रहा है। जिज्ञासु अध्येतागण इसका समुचित लाभ उठाकर हमारे शोधप्रतिष्ठान के निदेशक के परिश्रम को सार्थक बनावेंगे।

प्रकृत ग्रन्थ के संपादक प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी के स्वास्थ और दीर्घायुष्य की हम कामना करते हैं। डॉ. जीं. सी. केण्डदमठ, केन्द्रीय ग्रन्थालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने इस ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण के लिये पूरी जिम्मेदारी निभाई है। हमारे गुरुकुल के छात्र श्री विश्वनाथ देव हिरेमठ मलखेड तथा जंगमवाडी मठ के पूर्व प्रबन्धक लिं. गंगाधर शास्त्री जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री शिवयोगी शर्मा हिरेमठ ने इस ग्रन्थ की शुद्ध एवं स्वच्छ प्रेसकापी तैयार की है। हम इन सबके उज्ज्वल भविष्य की कामना करतें हुए आशीर्वचन पूर्ण करते हैं।

महाशिवरात्रि

इत्याशिषः

२७.२.९५

❖❖❖❖

प्रकाशकीय वक्तव्य

वीरशैव धर्म-दर्शन की इस भूलोक में प्रतिष्ठा भगवान् शिव के आदेश के अनुसार श्री रेणुक, श्री दारुक, श्री घण्टाकर्ण, श्री धेनुकर्ण और श्री विश्वकर्ण नामक पांच महान् आचार्यों ने की है। इस ज्ञान का प्रवाह निरन्तर चलता रहे, इसके लिये इन आचार्यों ने भारत के विभिन्न स्थानों में पाँच पीठों (सिंहासनों) की स्थापना की। आधुनिक ऐतिहासिक दृष्टि से यह शैव धर्म मोहनजोदड़ो के काल में भी विद्यमान था। वहाँ के उत्खनन में मिट्टी की बनी ऐसी प्रतिकृतियाँ उपलब्ध हुई हैं, जो कि वीरशैवों के अहर्निश आराधनीय इष्टलिंग की आकृति से मिलती-जुलती मूर्ति गले में धारण किये हुए हैं।

श्री जगद्गुरु पंचाचार्यों के द्वारा स्थापित सिंहासनों में काशी के ज्ञानसिंहासन के प्रतिष्ठापक प्रथम आचार्य श्री १००८ जगद्गुरु विश्वाराध्य थे। "ज्ञानं महेश्वरादिच्छेत्" यह शास्त्रवचन है। ज्ञानगुरु भगवान् विश्वेश्वर की नगरी में ज्ञानसिंहासन की स्थापना हो, यह उचित ही है। इस ज्ञानसिंहासन को अब तक ८५ जगद्गुरु शिवाचार्य सुशोभित कर चुके हैं। इस ज्ञानसिंहासन के वर्तमान आचार्य स्वनामधन्य श्री १००८ जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी हैं। हम इन सभी जगद्गुरुओं को शत-शत नमन करते हैं।

नाम के अनुरूप वर्तमान समय में जंगमवाड़ी मठ के नाम से प्रसिद्ध इस ज्ञानसिंहासन से ज्ञान की ज्योति निरन्तर अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिये प्रज्ज्वलित रही है। देश के विभिन्न भागों से यहाँ आकर भोजन, वस्त्र, निवास आदि की चिन्ता से मुक्त हो इन पांच शाखाओं के शिवाचार्यगण और मठाधिपति दत्तचित्त हो विद्याध्ययन करते रहे हैं और अपने द्वारा अर्जित ज्ञान से शिवभक्त गृहस्थों को लाभान्वित करते रहे हैं। यही वह कारण है कि आजकल की विषम परिस्थिति में आबालवृद्ध अधिसंख्य भारतीय प्रजा भारतीय धर्म और संस्कृति से विमुख नहीं हुई है। ग्रन्थों के प्रकाशन के रूप में भी यह ज्ञानयज्ञ चलता रहा है। आज से सौ वर्ष पहले काशी के मूर्धन्य विद्वान् पं. शिवकुमार शास्त्री जी के द्वारा रचित 'शरत्' टीका के साथ नन्दिकेश्वर शिवाचार्य के ग्रन्थ लिंगधारणचन्द्रिका का प्रकाशन हुआ था। आगे चलकर श्री १००८ जगद्गुरु वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामी जी ने यहाँ 'ज्ञानमंदिर' के नाम से एक समृद्ध ग्रन्थालय और 'शैवभारतीभवनम्' की स्थापना की। इसकी ओर से अब तक ३७ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इस ग्रन्थमाला में आजकल 'जन्म हा अखेरचा' नामक मराठी ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है। इसके अब तक सात खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं।

इस ज्ञानयज्ञ को त्वरित गति देने के लिये वर्तमान जगद्गुरु श्री १००८ डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी ने जगद्गुरु विश्वाराध्य जनकल्याण प्रतिष्ठान की और उसमें तत्त्वावधान में संचालित शैवभारती शोधप्रतिष्ठान की स्थापना की है। वीरशैव सिद्धान्त की अभिवृद्धि में सहायक शैवागम की पाशुपत, सिद्धान्तशैव और प्रत्यभिज्ञा शाखाओं के साथ प्रधानतः वीरशैव सिद्धान्त के मूल आगमों का और उनके आधार पर रचित शास्त्रीय ग्रन्थों का भाषानुवाद और अंग्रेजी अनुवाद के साथ

परिष्कृत संस्करण तैयार करना एवं उन पर शोधसामग्री प्रस्तुत करना शैवभारती शोधप्रतिष्ठान का प्रधान लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

तदनुसार सन् १९९४ की महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर यहाँ से चन्द्रज्ञानागम, सूक्ष्मागम, मकुटागम और कारणागम का हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशन हुआ और अब सन् १९९५ की शिवरात्रि के पावन पर्व पर हिन्दी अनुवाद के साथ पारमेश्वरागम का, अंग्रेजी अनुवाद के साथ चन्द्रज्ञानागम का और इस शोध प्रतिष्ठान के निदेशक राष्ट्रिय पंडित श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी के संस्कृत ग्रन्थ "निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्" का प्रकाशन हो रहा है। यह सूचना देते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है।

हम इस प्रसंग में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति एवं शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के संरक्षक प्रो. वी. वेंकटाचलम् महोदय के प्रति एवं इसी विश्वविद्यालय के वेदान्त विभाग के अध्यक्ष एवं आचार्य प्रो. देवस्वरूप मिश्र के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं। इन्हीं के प्रयत्न से इस विश्वविद्यालय में शक्तिविशिष्टाद्वैत वेदान्त की अध्ययन-अध्यापन परम्परा प्रारंभ हुई है। शैवभारती शोधप्रतिष्ठान की परामर्शदात्री समिति के सभी सदस्यों के प्रति, विशेष कर काशी में विद्यमान प्रो. बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते एवं प्रो. एस.एस. बहुलकर के प्रति समय-समय पर दिये गये महनीय सहयोग के लिये एवं ग्रन्थ को परिशुद्ध रूप से प्रस्तुत करने में परम सहायक पण्डित जनार्दन शास्त्री पाण्डेय के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

पारमेश्वरागम का भाषानुवाद श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी जी ने और चन्द्रज्ञानागम का अंग्रेजी अनुवाद स्थानीय आर्य महिला महाविद्यालय की दर्शन विभाग की अध्यक्षा डॉ. रमा घोष ने किया है। पारमेश्वरागम की शुद्ध एवं स्वच्छ प्रेस कापी तैयार करने में आचार्य श्री ने इस गुरुकुल के छात्र श्री विश्वनाथ हिरेमठ मलखेड़ तथा जंगमवाडी मठ के पूर्व प्रबन्धक लि. गंगाधर शास्त्री जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री शिवयोगी शर्मा हिरेमठ को लगाया था तथा डॉ. जी. सी. केण्डदमठ, केन्द्रीय ग्रन्थालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, को इस ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण के लिये पूरी जिम्मेदारी सौंपी थी। प्रेस कापी तैयार हो जाने के बाद बाकी चार ग्रन्थों से पाठ-संकलन, टिप्पणी-लेखन, श्लोकार्धसूची निर्माण आदि सभी कार्यों में हिरेहाल सिरिगेरी के श्री मरुलसिद्ध शिवाचार्य स्वामीजी का, श्लोकार्धसूची को अकारादि क्रम में संयोजित करने में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के आगम प्राध्यापक डॉ. शीतलाप्रसाद उपाध्याय और सिद्धरामदेव हिप्परगि का विशेष सहयोग रहा है। इन कार्यों के सम्पादन में श्री सिद्धरामदेव सुरकोड़, श्री सिद्धराम शिवाचार्य स्वामी सुल्ला और श्री तोण्टदार्य देव मरेगुद्दि ने भी यथासमय अपने को प्रस्तुत किया है। काशी ग्राफिक्स के संचालक श्री विश्वम्भर देव उपाध्याय ने इस ग्रन्थ के सुन्दर, स्वच्छ और शुद्ध मुद्रण में पूरी रुचि दिखाई है। हम इन सबके प्रति मठ की ओर से आभार प्रदर्शित करते हैं।

महाशिवरात्रि, संवत् २०५१
शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी

विनीत
रामचन्द्र गणपति-अप्पा रामापुरे
प्रबन्धक

प्रस्तावना

शिवरात्रि के पावन पर्व पर गत वर्ष शैवभारती शोधप्रतिष्ठान की शोध प्रकाशन ग्रन्थमाला के प्रथम चार पुष्पों के रूप में चन्द्रज्ञानागम, सूक्ष्मागम, मकुटागम और कारणागम के उत्तर भागों का भाषानुवाद के साथ प्रकाशन हुआ था। सिद्धान्त शैवागमों के उत्तर भाग में वीरशैव मत का प्रतिपादन हुआ है। इन सभी २८ शैवागमों की नामावली और उसमें किस आगम का कहां स्थान है, इसकी सूचना उन आगमों की प्रस्तावना में दे दी गई है। उसी सातत्य में आज पुनः शिवरात्रि के पावन पर्व पर पारमेश्वरागम का प्रकाशन भाषानुवाद के साथ किया जा रहा है। इसका रुद्रागमों के अन्तर्गत १६वां स्थान है। पारमेश्वरागम के उपागम का नाम भी यही है। दोनों में भेद बताने के लिये उसे 'मतंग पारमेश्वर' के नाम से जाना जाता है। पांडिचेरी के फ्रेंच शोध संस्थान से भट्ट रामकण्ठ की वृत्ति के साथ इसके चारों पाद प्रकाशित हो चुके हैं। मतंगसूत्र के नाम से उद्धृत प्रायः सभी वचन इसमें मिल जाते हैं, किन्तु मृगेन्द्रागम के क्रियापाद की नारायण कण्ठ की वृत्ति में पारमेश्वरागम का ४८ संस्कारों[१] का परिचय देने वाला एक लम्बा उद्धरण न तो मतंग पारमेश्वर में मिलता है और न प्रस्तुत पारमेश्वरागम में ही। विभिन्न ग्रन्थों में मतंग, मतंगसूत्र, मतंग पारमेश्वर, पारमेश्वर के नाम से अनेक उद्धरण मिलते हैं और इन नामों के अनेक हस्तलेख भी उपलब्ध हैं[२]। इन सबकी परीक्षा के बाद ही प्रस्तुत पारमेश्वरागम के विषय में हमें सही जानकारी मिल सकती है। यहां वीरशैव मत के विभिन्न सिद्धान्तों का बहुत विस्तार से वर्णन मिलता है। हम मान सकते हैं कि प्रस्तुत आगम भी मूल आगम का उत्तर भाग है।

प्रस्तुत आगम का संपादन दो मुद्रित ग्रन्थों और तीन हस्तलेखों के आधार पर किया गया है। पाठों का निर्धारण किसी एक ग्रन्थ के अथवा बहुत से ग्रन्थों के आधार पर न कर उपयुक्ततम पाठ को मूल में रखने का प्रयत्न किया गया है और शेष पाठों को नीचे टिप्पणियों में दिया गया है। इससे विद्वानों को यह जानने में सुविधा होगी कि हमारा पाठ-निर्धारण का प्रयत्न कहां तक सफल हुआ है। दोनों मुद्रित पुस्तकों में विशेष कर कन्नड़ लिपि में मुद्रित पुस्तक में अनेक स्थलों पर महत्त्वपूर्ण टिप्पणियां दी गई हैं। उनको हमने आनुपूर्वी से यहाँ टिप्पणी में संकलित कर दिया है। कुछ टिप्पणियों को इन दोनों पुस्तकों में मूल में रख दिया गया है अथवा मूल को टिप्पणी में दे दिया गया है। उनको हमने यथायोग्य स्थानों पर रखकर उसको सूचित कर दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ का परिचय देने से पहले हम पांचों आधार-प्रतियों का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

क. पारमेश्वरागम (मराठी अनुवाद के साथ) दो भाग। मल्लिकार्जुन शास्त्री द्वारा

---

१. पृ. १७८-१७९ देखिये। इन ४८ संस्कारों का विस्तृत विवरण अभिनवगुप्त के तन्त्रसार की पृ. १४८-१५४ की टिप्पणी में देखिये। वहाँ पारमेश्वर, स्वच्छन्द, यज्ञसूत्र इत्यादि ग्रन्थों के प्रमाणों से इनका परिचय दिया गया है। गौतम स्मृति का आठवां अध्याय भी देखिये।

२. लुप्तागमसंग्रह द्वितीय भाग के उपोद्घात (पृ. ४८, ५३-५४) में इनका विशेष विवरण देखा जा सकता है।

अनूदित एवं सम्पादित, सोलापूर, सन् १९०४ एवं १९०५। यहाँ टिप्पणियों में पाठभेद दिये गये हैं, उनका निर्देश **कटि.** संकेत से किया गया है।

ख. पारमेश्वरागम (कन्नड लिपि)। तन्त्रसंग्रह, शंकरप्पा अच्चप्पा टोपिगि, मैसूर सन् १९१४। यहां अनेक महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ दी गई हैं। इन सबका समावेश यथास्थान टिप्पणियों में कर दिया गया है।

ग. जंगमवाड़ी मठ के ज्ञानमन्दिर का हस्तलेख।

पत्रसंख्या ११४ (गणनया), आकार १२.२ x ५.२, पंक्तिसंख्या प्रति पृष्ठ ९, अक्षरसंख्या प्रति पंक्ति ४०, लिपि देवनागरी, आधार कागज, सम्पूर्ण। प्रारंभ में भगवान् शंकर के परिवार का सुन्दर चित्र है।

घ. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय का ८६११३ संख्या का हस्तलेख, पत्रसंख्या १२१ (गणनया), आकार १४ x ४.५, पंक्तिसंख्या, प्रतिपृष्ठ ९, अक्षरसंख्या प्रति पंक्ति ३६, लिपि देवनागरी, आधार कागज, खंडित।

ङ. जंगमवाड़ी मठ के ज्ञानमन्दिर का हस्तलेख।

पत्रसंख्या २-१३६, आकार १२ x ४, पंक्तिसंख्या प्रतिपृष्ठ ८, अक्षरसंख्या प्रति पंक्ति ३७, लिपि देवनागरी, आधार कागज, खंडित। इसकी सहायता से अनेक स्थलों पर ग्रन्थ शुद्ध हुआ है।

प्रस्तुत आगम की दोनों मुद्रित प्रतियों में २२ ही पटल हैं, किन्तु जंगमवाड़ी मठ के दोनों तथा सरस्वती भवन पुस्तकालय के हस्तलेख में २३वां पटल भी उपलब्ध है। यहां पहले के प्रत्येक पटल में लगभग १०० श्लोक हैं, किन्तु इस २३वें पटल में केवल २३ श्लोक ही हैं। इसका विषय भी अधूरा लगता है। अभी इस विषय में अधिक कुछ कहा नहीं जा सकता।

प्रत्येक पटल के आरम्भ और अन्त में विषय की सूचना दी गई, किन्तु इसके अतिरिक्त भी विषय इनमें मिलते हैं। अतः पाठकों की सुविधा के लिये यहां पूरे ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। उचित स्थलों पर जिज्ञासु पाठकों की और विशेष कर अनुसन्धाताओं की सहायता के लिये आवश्यक टिप्पणियां भी दी जा रही हैं। देवी और ईश्वर के संवाद के रूप में यह आगम प्रस्तुत हुआ है। आठ भैरवों के नामों में 'रुरु' के स्थान पर 'गुरु' (१०.४८), सभ्य और आवसथ्य अग्नियों के नामों के स्थान पर सव्यावसव्य (१३.२१)— इस तरह की त्रुटियां प्रस्तुत आगम की मुद्रित और हस्तलिखित सभी प्रतियों में समान रूप से मिलती हैं। उनका यहाँ टिप्पणी या मूल में परिमार्जन कर दिया गया है।

प्रथम पटल में प्रधानतः विभिन्न मतवादों का निरूपण किया गया है। यहाँ सौगत, वैदिक, सौर और वैष्णव नामक चार मुख्य मतवादों के पांच-पांच भेद वर्णित हैं। सौगत मत के पांच भेदों में बौद्ध, सौगत, चार्वाक, जैन और आर्हत मतों का समावेश है। वैदिक मत का कोई भेद प्रदर्शित नहीं है। सौर मत के वैकर्तन, आदित्य, पौष्ण, मार्तण्ड और सौर नामक पाँच भेद तथा वैष्णव मत के गोपाल, नारसिंह, राम, कृष्ण और नारायण नामक पाँच भेद प्रदर्शित हैं। इन मतों के मुख्य ग्रन्थों का भी यहाँ निर्देश किया गया

है। आगे सप्तविध शैवमत[३], सप्तविध गाणपत्य मत[४] और षड्विध[५] दर्शनों के भी नाम दिये गये हैं। तब शैव, पाशुपत, सोम और लाकुल नामक [६]चतुर्विध शैवों का नामोल्लेख कर ऊपर प्रदर्शित शैवों के सात भेदों का पुनः परिगणन किया गया है। वैष्णव, शाक्त आदि भेदों का भी उल्लेख कर यहाँ बताया गया है कि अपने इष्टदेव की उपासना अपने मत में प्रदर्शित पद्धति से ही करनी चाहिये। परस्पर एक दूसरे की विधि को मिलाना नहीं चाहिये। आगमिक पद्धति से यहाँ पंचाक्षर मन्त्र का [७]उद्धार भी किया गया है।

आगे देवी इन मतों की विशिष्टता के विषय में प्रश्न करती है और भगवान् शिव वीरशैव मत की अपनी [८]विशिष्टता का और साथ ही भस्म, रुद्राक्ष और इष्टलिंग के धारण की महिमा का वर्णन करते हैं। देवी के प्रश्न करने पर वे वीरपद की निरुक्ति बताते हैं और कहते हैं कि बिना दीक्षा के लिंगधारण नहीं करना चाहिये। वीरशैव मत के उत्कर्ष के साथ पंचाक्षर मन्त्र और इष्टलिंग की महिमा का वे पुनः वर्णन करते हैं। देवी के पूछने पर शिवलिंग की पूजा का विधान बताते हुए वे शिवयोगी और शिवालय के शिखर (१.१०५) के दर्शन की महिमा का और चतुर्विध कैवल्य (१.१०८) का निरूपण करते हैं। आगे के पटलों में इन्हीं विषयों का विस्तार किया गया है।

द्वितीय पटल में प्रधानतः इष्टलिंग, सज्जिका, शिवदोरक आदि के निर्माण की विधि बताई गई है। सर्वप्रथम शिव लिंगतत्त्व का निरूपण करते हैं और पाषाण आदि से निर्मित लिंगों के भेदों को बताते हुए स्थिर और चर लिंगों का लक्षण बताते हैं। वे कहते हैं कि इष्टलिंग की पूजा करने वाले सर्वश्रेष्ठ हैं। पूर्व प्रदर्शित (१.१०८) चतुर्विध कैवल्य के समान यहाँ (२.३१-३२) चतुर्विध मुक्ति निरूपित है। आगे चरलिंग की रक्षा

---

३. चन्द्रज्ञानागम (१.१०.४-३४) में अष्टविध शैवों का निरूपण है। सूक्ष्मागम (७.४-२८) में पहले सप्तविध शैवों का परिचय देकर आठवें भेद वीरशैव का और उसके भेदोपभेदों का विवरण अलग से दिया है। प्रस्तुत आगम में सात ही भेद वर्णित हैं। विषय एक होते हुए भी इनकी प्रतिपादन शैली भिन्न है। इन सब पर स्वतन्त्र निबन्ध में विचार किया जा सकता है।

४. मृगेन्द्रागम चर्यापाद (१.३६-४१) में शैव, मान्त्रेश्वर, गाणपत्य, दिव्य, आर्ष, गौह्यक, योगिनीकौल और सिद्धकौल नामक आठ अनुस्रोतों का विवरण मिलता है।

५. षड्विध दर्शनों के नाम वायुपुराण (१०४.१६) में भी देखे जा सकते हैं। शक्तिसंगम तन्त्र के प्रथम खण्ड (२.८५-८८) में तारा, त्रिपुरा और छिन्ना महाविद्याओं में से प्रत्येक के छः-छः दर्शनों के नाम मिलते हैं।

६. वामनपुराण (६.८६-९१) में शैव, पाशुपत, कालामुख और कापालिक नामक चार प्रकार के शैवों और उनके प्रवर्तक आचार्यों की नामावली दी गई है। शिवपुराण, ब्रह्मसूत्रभाष्यटीका आदि में भी पाठभेदों के साथ इनका वर्णन मिलता है। अनेक आधुनिक लेखकों ने इनका परिचय दिया है। आगम और तन्त्रशास्त्र के इतिहास में प्रकाशित होने वाले पाशुपत मत संबन्धी लेख में हमने इन पर विशेष विचार किया है। तदनुसार लाकुल का कालामुख और सोम का कापालिक मत में समावेश किया जा सकता है।

७. मन्त्रोद्धार की यह सूक्ष्म पद्धति है। आगे (११.३०-३१) इसकी स्थूल विधि भी बताई गई है। इसकी अनेक विधियां शास्त्रों में प्रचलित हैं। सभी तन्त्रागम सम्प्रदायों में ये विधियां मान्य हैं। "तन्त्राभिधान" नामक ग्रन्थ में इन विधियों के संग्रह का प्रयत्न किया गया है।

८. वीरशैव मत के प्रायः सभी आगमों और ग्रन्थों में यह विषय संक्षेप अथवा विस्तार से मिलता है। प्रस्तुत आगम में भी इस विशिष्टता पर विभिन्न स्थलों में प्रकाश डाला गया है।

के प्रकार, सज्जिका और शिवदोरक का लक्षण एवं सज्जिका-शिवसूत्र संयोजन का प्रकार बताकर कहा गया है कि दीक्षा के लिये गुरु की सहायता लेना आवश्यक है। यहाँ गुरु के और शिष्य के लक्षणों को बताकर दीक्षाक्रम के प्रदर्शन के साथ शिष्य के कर्तव्यों को भी बताया गया है। इष्टलिंग के [९]नष्ट हो जाने पर क्या करना चाहिये, यह बताते हुए यहाँ कहा गया है कि गुरुप्रदत्त इष्टलिंग को यावज्जीवन धारण करना चाहिये। दीक्षागुरु का परित्याग यहाँ निन्दनीय माना गया है।

तृतीय पटल में दीक्षाविधि का विस्तार से निरूपण किया गया है। मण्डप-निर्माण की विधि को बताकर यहाँ यजमान के कर्तव्यों का और पंच कलशार्चन आदि की पद्धति का निरूपण कर दीक्षाक्रम, लिंगार्चन, पूजोपयोगी पुष्प, पूजाविधि, सज्जिका-गुण संस्कार का विवरण देते हुए दीक्षित के लिये पालनीय नियमों का निरूपण किया गया है। प्रसंगवश यहाँ (३.७३-७५) घंटानाद की महिमा वर्णित है। अभिषेक विधि को बताते हुए यहाँ यजमान के लिये करणीय चतुर्थ दिन के कृत्यों का निरूपण है। अन्त में शिवयोगी के लिये पालनीय नियमों का वर्णन कर लिंग, विभूति और रुद्राक्ष की महिमा[१०] बताई गई है।

चतुर्थ पटल में दीक्षांग होम का विस्तार से वर्णन है। प्रारंभ में यहाँ त्रिविध स्थण्डिलों और पंचविध कुण्डों का स्वरूप बताया गया है। होम की पद्धति को बताते हुए यहाँ अग्नि के वीक्षण आदि आठ संस्कारों का, [११]अग्निस्थापन की विधि का, अग्नि के स्वरूप और ध्यान का, रुद्रस्वरूप अग्नि के ध्यान का और अग्नि के जातकर्म आदि संस्कारों का निरूपण कर, [१२]अग्नि की सात जिह्वाओं का और उनमें दी जाने वाली आहुतियों का प्रयोजन बताकर कुण्ड की मेखलाओं में पूजनीय ५३ देवताओं का क्रम प्रदर्शित है। यहाँ (४.५४) तिरपन देवताओं की पूजा स्पष्ट वर्णित है, अतः इन्द्र आदि आठ दिग्पालों की पूजा का विधान अनावश्यक है और यह पंक्ति सर्वत्र मिलती भी नहीं है। आगे अग्नि की प्रार्थना, परिधि-परिस्तरण, यज्ञपात्रस्थापन, होमविधान आदि की पूरी प्रक्रिया वैदिक पद्धति का अनुसरण करती है।

पंचम पटल में लिंगधारण दीक्षा का विस्तार से वर्णन है। पहले सज्जिका, शिवदोरक और इष्टलिंग के संयोजन का क्रम बताया गया है। इष्टलिंग की स्तुति और लिंग के अभिषेक की विधि को बताकर यहाँ विभूतिधारण, रुद्राक्षधारण, गुरुपूजन, मन्त्रोपदेश आदि का निरूपण किया गया है। कामना के भेद से इष्टलिंग के धारण के विभिन्न स्थानों का निर्देश करते हुए यहाँ बताया गया है कि दीक्षा प्राप्त कर लेने के बाद शिष्य इष्टलिंग का नित्य नियमपूर्वक पूजन करे। यहाँ बताया गया है कि वीरशैव दीक्षा के बाद स्त्री-पुरुष, जाति-धर्म, वर्णाश्रम-धर्म आदि के भेद सर्वथा वर्जनीय हो जाते हैं। इष्टलिंग की पूजा का वर्णन कर कहा गया है कि इष्टलिंगधारियों में किसी भी

---

९. इस विषय में प्रस्तुत आगम में अधिकारी के भेद से विभिन्न व्यवस्थाएं दी गई हैं। निराभारी वीरशैव के लिये इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर प्राणत्याग ही उचित है।

१०. इन विषयों पर भी सभी आगमों और शैव पुराणों में पर्याप्त विवरण मिलता है। यहाँ भी अनेक स्थलों पर यह विषय वर्णित है।

११. अग्निकार्य-विधान का विवरण चन्द्रज्ञानागम (१.११.४७-५७) में भी देखिये।

१२. शिवाग्नि की सात जिह्वाओं का वर्णन मकुटागम (१.२.२४-३३) में भी है।

प्रकार की भेददृष्टि वर्जित है। नित्य, नैमित्तिक और काम्य पूजा भी यहाँ वर्णित है। दीक्षा के उपरान्त व्यक्ति शिवभक्त जंगमों की पूजा करे और उसके लिये बताये गये नियमों का भी पालन करे। उसके लिये काम्यार्चन की विधि बताने के साथ अतिथि-सत्कार, जंगम-पूजन, अनाथों की सहायता आदि की आवश्यकता बताते हुए शिवयोगियों के लिये पालनीय नियमों का और वीरशैव मत की श्रेष्ठता का प्रतिपादन पुनः किया गया है।

छठे पटल में षट्स्थलों का स्वरूप प्रदर्शित है। एक ही परमानन्दस्वरूप परमात्मा कैसे षट्स्थलों का स्वरूप धारण कर लेता है ? इसका निरूपण करते हुए यहाँ क्रमशः भक्त, माहेश्वर, प्रसादी, प्राणलिंगी, शरण और ऐक्य नामक छः स्थलों का स्वरूप विस्तार से बताकर इनके ज्ञान की महिमा निरूपित की गई है। आगे महेश्वर के सर्वज्ञता आदि छः अंगों की षड्विध स्थलों में योजना का प्रकार बताकर भक्ति, कर्मक्षय, बुद्धि, विचार, दर्पक्षय और सम्यग्ज्ञान नामक षड्विध उपांगों के भी लक्षण बताये गये हैं। तब समस्त अंगों और उपांगों के परस्पर संबन्ध को बताकर प्रसंगवश षड्विध ऊर्मियों और अरिषड्वर्ग का भी विवरण देकर कहा गया है कि ऊपर वर्णित सभी विषयों का जिसको सम्यग् ज्ञान है, मुक्ति उसके हाथ में आ जाती है। आगे अनेक श्लोकों में शिव की स्तुति की गई है, जिसमें शिव के ऊपर वर्णित सभी स्थलों, अंगों और उपांगों को शिवस्वरूप ही माना गया है। अन्त में इस स्तुति को स्तवराज की संज्ञा देकर उसकी फलश्रुति वर्णित है।

सातवें पटल में प्रधानतः पूर्व निर्दिष्ट सात प्रकार के शैव मतों का स्वरूप विस्तार से बताया गया है। यहाँ अनादिशैव, आदिशैव, अनुशैव, महाशैव, योगशैव और ज्ञानशैव नामक छः मतों का लक्षण और स्वरूप बताकर कहा गया है कि सोपान के क्रम से एक के बाद दूसरे मत को ग्रहण करना चाहिये। ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद की भी यहाँ संक्षेप में चर्चा है। साथ ही उक्त सभी मतों की समानता और असमानता को भी दिखाया गया है। इतना बता देने के बाद वीरशैव मत का स्वरूप निदर्शित कर अपेय-पान, अभक्ष्य-भक्षण आदि को इनके लिये निषिद्ध माना गया है। अतिथि-सत्कार पर यहाँ विशेष जोर दिया गया है। बाद में अष्टावरणों का निर्देश कर इष्टलिंगधारी के लिये पालनीय नियमों की चर्चा कर पुष्प-संग्रह का और पूजा का प्रकार बताया है और कहा है कि वीरशैव को इष्टलिंग की सेवा में ही अपना समय बिताना चाहिये। वीरशैव मत की श्रेष्ठता को बताकर कहा गया है कि शिव की पूजा पूरी सावधानी से करनी चाहिये। अन्त में वीरशैव के [१३]लक्षणों का निरूपण किया गया है।

आठवें पटल में वीरशैव मत के आचारों का विशेष रूप से वर्णन है। देवी वीर पद की व्युत्पत्ति और उसके अर्थ को जानना चाहती है, तब शिव विस्तार से इस प्रश्न का समाधान करते हैं। ब्रह्मचर्य के स्मृति-संमत अर्थ का निरूपण कर यहाँ बताया गया है कि इस ब्रह्मचर्य का पालन शिवयोगी के लिये आवश्यक है। आगे वीरशैव व्रत का निरूपण करते समय भस्मधारण की विधि विस्तार से बताई गई है। यहाँ कहा गया है कि भस्मधारण करने के बाद हाथ नहीं धोना चाहिये। वीरशैव के लिये पंचाक्षर मन्त्र

१३. इसके लिये मूल ग्रन्थ (७.९८-१०३) तथा (८.७-२१) देखिये।

का जप भी आवश्यक है। शिव की, इष्टलिंग की, आत्मा की और गुरु की एकता की भावना की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए यहाँ बारह श्लोकों की स्तुति दी गई है और कहा गया है कि शिव का ध्यान करते हुए उषःकाल में इष्टलिंग का पूजन करना चाहिये। प्रसंगवश यहाँ प्राणियों की श्रेष्ठता का क्रम बताया गया है। आगे वीरशैव की चर्या के प्रसंग में कहा गया है कि कल्याण-मार्ग में प्रवृत्त व्यक्ति का कभी भी अधःपतन नहीं होता। इसी भाव के वचन [१४]गीता में भी उपलब्ध हैं। पूजा के काल का निरूपण करते हुए यहाँ जंगम की भिक्षा के नियमों का उल्लेख कर कहा गया है कि गृहस्थ को जंगम का सत्कार पूरे मनोयोग से करना चाहिये।

नवें पटल में वीरशैव मत की महिमा बताई गई है। कहा गया है कि काशी में मरणमात्र से जैसे मुक्ति मिल जाती है, उसी तरह से वीरशैव मत में प्रवेशमात्र से मुक्तिलाभ हो जाता है। अन्य मतों में स्खलित व्यक्ति वीरशैव मत में आकर शुद्ध हो जाता है, क्योंकि यहाँ प्राणिहिंसा आदि पूरी तरह से वर्जित हैं। वीरशैव को विषयों के प्रति कभी आकृष्ट नहीं होना चाहिये और अपने मत के प्रति पूरी आस्था एवं भक्ति रखनी चाहिये। बिना योग्यता अर्जित किये एकाएक किसी का वीरशैव मत में प्रवेश वर्जित है। इतना सब बता देने के बाद यहाँ चतुर्थाश्रम में प्रविष्ट संन्यासी और वीरशैव जंगम की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है कि वीरशैव मत में प्रविष्ट व्यक्ति कैसे अनायास मुक्तिलाभ कर लेता है। वीरशैव मत में स्थित जंगमों के विशेष लक्षणों को बताते हुए कहा गया है कि अपने मत के प्रति दृढ निष्ठा वाला व्यक्ति ही शिवपद को प्राप्त कर सकता है। आगे वीरशैव मत की महिमा का गान करते हुए कहा गया है कि वीरशैव व्रत का पालन करने वाले को पूरी सावधानी बरतनी चाहिये। विभिन्न शैव मतों का आश्रय लेते समय सोपान-क्रम की पहले चर्चा हुई है। यहाँ पुनः बताया गया है कि यह सोपान-क्रम क्या है ? पटल के अन्त में अवधूत वीरशैव की चर्या का सहज योग की पद्धति से वर्णन किया गया है।

दसवें पटल में योग का विधान निरूपित है। प्रथमतः देवी अनादिशैव आदि चार मतों की विधियों को निरूपित कर बाद में योगशैव मत के विषय में प्रश्न करती है और भगवान् शिव द्विविध योगशैवों का स्वरूप बताते हैं। इसी प्रसंग में आसन और ध्यानपद्धति का वर्णन करते हुए यहाँ दिव्य सिंहासन की, उस पर विराजमान उमा सहित (सोम) शिव के ध्येय स्वरूप की और आवरण देवताओं की ध्यानपद्धति बताई गई है। आठ भैरवों की नामावली में सर्वत्र 'रुरु' के स्थान पर 'गुरु' नाम मिलता है। इससे सूचित होता है कि लिपिकार आठ भैरवों की नामावली से अपरिचित थे, जो कि वीरशैवों के लिये स्वाभाविक है। ध्यानपद्धति के बाद यहाँ योग के आठ अंगों का निरूपण किया गया है। ये योगांग अन्यत्र वर्णित योगांगों से पूरी तरह से भिन्न हैं। योगशैवों की योगपद्धति को बताने के बाद ध्यानशैवों और वीरशैवों की योगपद्धति वर्णित है। वीरशैव योगियों के [१५]पर्यायवाची शब्दों को बताकर इन योगियों के लिये विशेष नियम यहाँ बताये गये

---

१४. शिवागम सौरभ (कन्नड़ ग्रन्थ) के अनुवन्ध (पृ. ५७-६७) में तथा लिंगधारणचन्द्रिका के अतिविस्तृत अंग्रेजी उपोद्घात (पृ. २४६-२५५) में पारमेश्वरागम और भगवद्गीता के श्लोकों की तुलनात्मक तालिका दी गई है।

१५. "अवधूतश्च संन्यासी... वीरशैवश्च योगिनः" (१०.६७-६८)।

हैं और उनके लिये षडंगों (१०.७२) का विधान किया गया है। दया की महिमा बताते हुए अन्त में यहाँ पंचाक्षर मन्त्र का माहात्म्य वर्णित है।

पूर्व पटल के अन्त में पंचाक्षरी मन्त्र के जप की महिमा गाई गई थी। अब इस **ग्यारहवें पटल में** पंचाक्षरी मन्त्र के जप की पूरी विधि विस्तार से बताई गई है। पंचाक्षर और षडक्षर मन्त्र का स्वरूप तथा प्रणव की महिमा बताते हुए षडक्षर मन्त्र का माहात्म्य भी यहाँ वर्णित है। इसके बाद पंचाक्षर मन्त्र के उद्धार की [१६]स्थूल विधि बताई गई है। इसके प्रत्येक अक्षर के उद्धार की सूक्ष्म विधि पहले (१.३४-३५) बता दी गई है। इसी प्रसंग में यहाँ पंचाक्षरी विद्या का ध्यान (स्वरूप) वर्णित है और इस विद्या के वर्णों एवं बीजों को; ऋषि, देवता और छन्द को; वर्णों के अधिपतियों और स्थानों को तथा पंचाक्षरी मनु (मन्त्र) के पर्यायवाची शब्दों को बताया गया है। पंचाक्षरी विद्या के षडंगों का भी यहाँ निरूपण है। आगे मन्त्र के प्रत्येक वर्ण के न्यास का प्रकार और शिव का ध्यान वर्णित है। यह विषय अन्य आगमों में भी संक्षेप अथवा विस्तार से प्रायः सर्वत्र मिलता है। पूजा, जप, होम आदि में सर्वत्र इसी मन्त्र का उपयोग किया जाता है। आगे यहाँ तन्त्र का संग्रह, अर्थात् पूजाविधि के विस्तार के लिये तन्त्रान्तरों में बताई गई सारी पद्धति को संक्षेप में बताने के लिये मन्त्रग्रहण से पहले गुरु की सेवा करना, गुरु द्वारा शिष्य की षडध्वशुद्धि, मन्त्रोपदेश, मन्त्रपुरश्चर्या आदि का विधान बताया गया है। जप की विधि को और [१७]भूतशुद्धि आदि की प्रक्रिया को समझाते हुए यहाँ जप के त्रिविध और पंचविध भेदों का स्वरूप समझा कर कहा गया है कि इनमें से जप के किसी एक प्रकार को ग्रहण करना चाहिये। इसी प्रसंग में जपमाला, अंगुलिमाला और जपस्थान का विवेचन कर पंचाक्षरी मन्त्र के जप की महिमा बताई गई है। जपसंख्या के भेद से फल की विशेषता को बताकर अन्त में कहा गया है कि मन्त्रजप से शिवपुर की प्राप्ति होती है।

दसवें पटल में योग का सामान्य विधान वर्णित हुआ है। अब इस **बारहवें पटल** में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का स्वरूप बताया जा रहा है। प्रथमतः ज्ञान और योग (कर्म) की परस्पर सापेक्षता वर्णित है। इससे ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद की पुष्टि होती है। कर्म बाह्य और आन्तर के भेद से दो प्रकार का है। [१८]त्रिविध और पंचविध बाह्य कर्म का निरूपण कर बाद में आन्तर कर्म के विषय में बताया गया है कि यह बाह्य कर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ है। शिवधर्म का पालन करने वालों के [१९]आठ लक्षणों को बताकर

---

१६. ऊपर की सातवीं टिप्पणी देखिये।

१७. भूतशुद्धि और प्राणप्रतिष्ठा का विशेष विवरण हमारे "देवो भूत्वा यजेद् देवान्" शीर्षक निबन्ध में देखिये। इसका प्रकाशन "निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्" (पृ. १५१-१६४) में हुआ है। इसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद डॉ. आन्द्रे पादु के अभिनन्दन ग्रन्थ (रिचुअल एण्ड स्पेक्युलेशन इन अर्ली तान्त्रिज्म, पृ. १२०-१३८) में हुआ है (स्टेट युनिवर्सिटी आफ न्यूयार्क, सन् १९९२)।

१८. वाङ्मनःकायेभेदेन त्रिधा, तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं चेति पञ्चधा (१२.१३-१९)। शिवपुराण वायवीय संहिता (२.१०.४७-४८) से तुलना कीजियें।

१९. "शिवभक्तेषु वात्सल्यं......एतदष्टगुणं चिह्नं" (१२.२६-२८) तथा (१७.८३-८५)। शिवपुराण वायवीय संहिता (२.१०.६८-७१) से तुलना कीजिये।

कहा गया है कि ये लक्षण यदि म्लेच्छ में भी मिलते हैं, तो वह भी शिवस्वरूप ही माना जाता है। यहाँ भक्ति की प्रधानता मानी गई है। भक्ति के लक्षणों और भेदों को बताकर उसकी महिमा बताई गई है। शिवयोगियों की चर्या और उनकी महिमा भी वर्णित है। शिवधर्म के ज्ञान, क्रिया, चर्या और योग नामक चार मार्गों का स्वरूप बताते हुए कहा गया है कि इस शिवमार्ग का अनुसरण शिवज्ञान की प्राप्ति के लिये आवश्यक है। पंचाक्षर मन्त्र की इसमें सर्वोपरि उपयोगिता है। चन्द्रज्ञानागम (१.१.१०-१३) और कूर्मपुराण (२.१-११) में स्थित ईश्वरगीता के ६-७ अध्यायों की पद्धति से यहाँ पति, पशु और पाश का स्वरूप वर्णित है और बताया गया है कि त्रिविध पाशों के छेदन के लिये वीरशैव-दीक्षा आवश्यक है। जीवों की श्रेष्ठता का क्रम बताते हुए कहा गया है कि शिवनाम का स्मरण पाशों को काटने का सर्वोत्तम उपाय है। इसके लिये श्रद्धा अपेक्षित है। श्रद्धा के रहने पर ही भक्ति का उदय होता है और भक्तिसम्पन्न व्यक्ति ही वीरशैव-दीक्षा का अधिकारी बन पाता है। इस प्रकार यहाँ कर्म, ज्ञान और भक्ति का निरूपण कर अन्त में सभी प्रकार के शैवों के लिये पालनीय सामान्य सदाचार तथा वीरशैवों के लिये विशेष सदाचारों का निरूपण किया गया है।

तेरहवें पटल में प्रधानतः करपंकज पर इष्टलिंग की पूजा का विधान वर्णित है। प्रथमतः यहाँ अन्य पीठों की अपेक्षा पाणिपीठ की विशेषता बताई गई है। पाणिपीठ का स्वरूप बताते हुए यहाँ कहा गया है कि हाथ की पांच अंगुलियों में पंचब्रह्म और पंचाग्नि की भावना करनी चाहिये। पाणिपीठ की कमल के रूप में भावना कर उसमें समस्त देवताओं और शास्त्रों की भावना का विधान बताकर इस करपंकज में इष्टलिंग की पूजा का क्रम, पालनीय नियम और उनकी महिमा बताई गई है। इष्टलिंग के अभिषेक का, उसके लिये आवश्यक पात्रों का और अभिषेकार्ह जल का विधान बताकर अभिषेक के बाद की पूजा के क्रम को बताते हुए कहा गया है कि इष्टलिंग की पूजा करते समय शिवभक्त को बीच में उठना नहीं चाहिये। करपीठ पर इष्टलिंग की पूजा का अनन्तगुणित फल मिलता है, इतना बताकर यहाँ कहा गया है कि पूजा का क्रम गुरुमुख से ही जानना चाहिये। इस करपीठ में सभी देवता और तीर्थ निवास करते हैं (१३.७३), यह बताकर यहाँ पटल समाप्ति पर्यन्त विस्तार से पाणिपंकज पर पूजा की महिमा गाई गई है।

चौदहवें पटल में दो विषय मुख्यतः वर्णित हैं— एक तो अष्टबन्ध (स्थावर) लिंग का लक्षण और दूसरे गुरु की उपासना का क्रम। पंचसूत्र-प्रमाण लिंग का विधान पहले भी बताया जा चुका है। उसी का यहाँ पुनः निरूपण हुआ है। साथ ही यहाँ लिंग के सखंड, अखंड आदि भेदों का स्वरूप बताकर कहा गया है कि अपनी योग्यता के अनुसार इनकी उपासना करनी चाहिये। भक्ति का इसमें विशेष स्थान है। इष्टलिंग के प्रमाण को और उसके धारण करने की विधि को बताकर यहाँ कहा गया है कि धारित लिंग के नष्ट हो जाने पर उसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। पूजोपयोगी पात्रों का तथा शिवपात्र का लक्षण बताकर कहा गया है कि इन पात्रों में तीर्थों का आवाहन करना चाहिये। बिना आधार के पात्रों का पूजा में उपयोग वर्जित है, अतः यहाँ इन आधारों की भी चर्चा की गई है। इतना बता देने के बाद यहाँ पाणिलिंग की पूजा के नियम

वर्णित हैं। कामना के अनुसार पूजा की दिशा का भी यहाँ निर्देश है। इष्टलिंग के निर्माण और पूजा का सारा विधान बताने के बाद यहाँ कहा गया है कि गुरु और देवता की अभिन्न रूप में भावना करनी चाहिये। इसके बाद सद्गुरु के स्मरण, पूजन, ध्यान आदि का विधान बताकर श्रीगुरु की महिमा का विस्तार से वर्णन किया गया है। सद्गुरु की उपासना से संबद्ध यहाँ के कुछ श्लोक गुरुगीता में भी उपलब्ध हैं।

पन्द्रहवें पटल में वीरशैवों के त्रिविध भेदों का निरूपण है। यहाँ देवी भगवान् से अन्य मतों की अपेक्षा वीरशैव मत की अपनी विशेषताओं के विषय में प्रश्न करती है। भगवान् देवी के इस प्रश्न की प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि वीरशैव मत के रहस्य को न जानने वाले मनुष्य इस संसार में ही डूबते-उतराते रहते हैं। वीरशैव मत की विशेषताओं को बताते हुए वे पहले वीरशैवों के अधिकार-भेद से होने वाले जिन तीन भेदों का उल्लेख करते हैं, वे हैं— सामान्य वीरशैव, विशेष वीरशैव और निराभारी वीरशैव[२०]। बाद में यहाँ क्रमशः इन तीनों के लक्षणों का विस्तार से निरूपण हुआ है। इसके बाद कहा गया है कि इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर निराभारी वीरशैव को प्राणत्याग कर देना चाहिये। निराभारी व्रत को स्वीकार कर उसको छोड़ देने वाला पाप का भागी होता है और इसका पालन करने वाला शिवस्वरूप को प्राप्त कर सदा आनन्दसागर में लीन रहता है। इसीलिये निराभारी के लिये पालनीय नियमों का इस पटल के अन्तिम भाग में विस्तार से वर्णन है।

सोलहवें पटल के प्रारंभ में षड्विध लिंगों का वर्णन है। भगवती पारद आदि से निर्मित लिंगों के विषय में प्रश्न करती है और भगवान् प्रश्न का उत्तर देते हुए स्थिर, चर, स्थिरचर, चरस्थिर, स्थिरस्थिर और चरचर नामक छः प्रकार के लिंगों का निर्देश करते हैं। यहाँ पंचविध लिंगों का तो नामोल्लेखपूर्वक वर्णन मिलता है, किन्तु स्थिरस्थिर नामक लिंग का विवरण उपलब्ध नहीं होता। ऐसा लगता है कि "चराचरात्मकं विश्वम्" (१६.२१-२२) इत्यादि श्लोकों में लिंगतत्त्व के रूप में उसीका वर्णन हुआ है। इस प्रकार षड्विध लिंगों का निरूपण कर यहाँ बताया गया है कि प्रपंच (जगत्), लिंग और देह में साधक को कोई भेद नहीं करना चाहिये। आगे संक्षेप में निराभारी की चर्या को बताकर पुनः पंचसूत्र-प्रमाण लिंग की संक्षिप्त चर्चा है। अलग-अलग रंग के शिवसूत्र (दोरक) का अलग-अलग फल होता है, यह बताकर आगे कहा गया है कि समर्थ व्यक्ति ही निराभारी वीरशैव व्रत में प्रवेश करे। निराभारी के द्वारा पालनीय नियमों का विस्तार से वर्णन करने के बाद यहाँ कहा गया है कि इसके लिये सबसे कठिन व्रत यह है कि इसको इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर देह-त्याग करना पड़ता है। यह किसी की अगवानी नहीं करता, किसी को प्रणाम नहीं करता। ऐसे निराभारी शिवयोगी की सेवा-शुश्रूषा अनन्त फलदायक मानी गई है। इस निराभारी शिवयोगी की पर्यन्तावस्था में प्रकट होने वाले लक्षणों का भी यहाँ वर्णन किया गया है और कहा गया है कि इनका पूजन करने वाले को अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। पटल के अन्त में तुर्यवीर व्रत की प्रशंसा की गई है।

---

२०. इन त्रिविध वीरशैवों का निरूपण सूक्ष्मागम (७.३०-७९) तथा चन्द्रज्ञानागम (१.१०.३५-४८) में भी मिलता है। चन्द्रज्ञानागम (१.१०.४२-४४) में स्वतन्त्र और वैदिक के रूप में निराभारी के भी दो भेद किये हैं।

सत्रहवें पटल में वीरशैव ब्राह्मण की दिनचर्या निरूपित है। अनादि और आदि मत को छोड़कर यहाँ शेष शुद्धशैव आदि पांच मतों का स्वरूप बताकर तुर्य वीरशैव की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए शैवागम-संमत ३६ तत्त्वों का[२१] निरूपण किया गया है। विरक्त शैवों के दस गुणों का परिगणन भी यहाँ (१७.३३-३४) किया गया है। देवी के प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव शैवों के द्वारा प्रति दिन संपादनीय कार्यों (आह्निकों)[२२] का निरूपण करते हुए स्नानविधि, भस्मनिर्माणविधि, भस्मधारणविधि, भस्ममहिमा, रुद्राक्षमालाधारण, पाणिपीठ पर इष्टलिंग पूजन, विरक्त शिवयोगी के लिये भिक्षाटन के नियम आदि का स्वरूप बताते हैं और कहते हैं कि देहपात पर्यन्त शिवयोगी वीरव्रत का पालन करता रहे। वीर माहेश्वरों के पांच यज्ञों[२३] का भी यहाँ निरूपण किया गया है और अन्त में इनके आठ विशेष लक्षणों को बताते हुए कहा गया है कि इन लक्षणों से सम्पन्न [२४]म्लेच्छ भी भगवान् शिव को अतिप्रिय है।

अठारहवें पटल में निर्याण याग का विधान है, जो कि वैदिक वाङ्मय में पितृमेध के नाम से वर्णित है। जब शिवभक्त यह समझे कि मेरा अन्तकाल निकट है, तो उस समय उसे क्या करना चाहिये, इस विषय को बताकर कहा गया है कि देह से प्राण का उत्क्रमण हो जाने पर शिष्य अथवा पुत्र उसका और्ध्वदैहिक कृत्य करे, विमान द्वारा मृतदेह को समाधि स्थल पर ले जाय। यहाँ मृत देह के संस्कार के लिये बनाये जाने वाले गर्त (समाधि) की निर्माण-विधि का और उसमें शव के निक्षेप का पूरा विधान विस्तार से बताया गया है। पत्नी के सहगमन की विधि का भी यहाँ वर्णन है। संस्कार-स्थल पर समाधि बनाने, वहाँ प्रारंभ में मृत्तिका-लिंग की तथा बाद में उस स्थल पर शिवालय के निर्माण की और पूजनक्रम की विधि को बताने के साथ समाधिस्थल की पूजा का स्थायी प्रबन्ध करने का भी निर्देश मिलता है। लिंग-मुद्रा से अंकित वृषभ के उत्सर्ग की विधि का तथा निर्याण याग में दीक्षित व्यक्ति के कर्तव्यों का भी निरूपण कर यहाँ बताया गया है कि अपनी शक्ति के अनुसार समाधि-स्थल पर बगीचा लगाना चाहिये। निर्याण याग के अनुष्ठान के फल का वर्णन करने के साथ यहाँ कार्तिक मास में करणीय विशेष कृत्यों का भी निरूपण किया गया है। वापी, कूप, तटाक आदि के निर्माण का तथा दीप-प्रज्वालन का भी विधान यहाँ प्रदर्शित है।

---

२१. यहाँ (१७.२९-३३) परिगणित तत्त्वों की नामावली कुछ भिन्न प्रकार की है।

२२. इस विषय का विस्तार चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद एकादश पटल, मकुटागम क्रियापाद द्वितीय पटल तथा कारणागम तृतीय पटल में देखिये।

२३. मनुस्मृति (३.७०-७२) के अनुसार ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय), पितृयज्ञ (तर्पण-श्राद्ध), देवयज्ञ (होम), भूतयज्ञ (बलि-वैश्वदेव) और नृयज्ञ (अतिथिपूजन)— ये पंचयज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हैं। सिद्धान्तशिखामणि (९.२१-२५) आदि वीरशैव मत के ग्रन्थों में तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान की पंचविध शिवयज्ञ के रूप में मान्यता है। मकुटागम में (१.२.३९) मनुस्मृति-संमत तथा प्रस्तुत आगम में (१२.१३-१९; १७.८०-८२) वीरशैव मत-संमत पंचयज्ञों का विधान है। सूक्ष्मागम (६.२६-३५) में भी इन्हीं का प्रतिपादन हुआ है। शिवपुराण वायवीय संहिता के उत्तर भाग (१०.४८-५४) में ये पाशुपत व्रत के रूप में चर्चित हैं। पाशुपत मत के ग्रन्थों में इनका क्रियालक्षण योग में अन्तर्भाव है।

२४. ऊपर की १९ संख्या की टिप्पणी देखिये।

उन्नीसवें पटल में विशेषत: सिद्धिदिवस (मृत्युतिथि) पर किये जाने वाले कर्तव्यों का निरूपण है। गुरु-शिष्य परम्परा की व्याख्या करते हुए यहाँ बताया गया है कि यह परम्परा निरन्तर चलती रहती है, अत: आज का शिष्य ही कल गुरु कहलाने लगता है। विभिन्न गतियों का निरूपण करते हुए यहाँ कहा गया है कि गुरु के ऋण से मुक्ति पाने के लिये उसे अपने पूर्वजों की समाधि-स्थली पर मण्डप आदि का निर्माण कराना चाहिये, जिससे कि सामान्य जन को भी उचित सुविधा मिले। विना जातिभेद के सबको समान समझ कर उनकी सहायता करनी चाहिये। समर्थ व्यक्ति ही यह सब कर सकता है। असमर्थ व्यक्ति के लिये भी उसके शारीरिक श्रम से सम्पन्न होने वाले परोपकार के कार्यों का वर्णन किया गया है। नारी के लिये बताया गया है कि वह अपने पति की समाधि की यावज्जीवन पूजा करे। पिता, गुरु आदि की मृत्युतिथि पर किये जाने वाले धार्मिक कृत्यों को बताकर यहाँ कहा गया है कि ये सब कार्य पूरी भक्ति और श्रद्धा के साथ करने चाहिये। व्यक्ति यहाँ जो कुछ भी अच्छा या बुरा करता है, उसमें करने वाला, कराने वाला, प्रेरणा देने वाला और उसका अनुमोदन करने वाला— इन चारों की समान भागीदारी रहती है। अत: व्यक्ति को भले काम में स्वयं भी लगना चाहिये और दूसरों को भी प्रेरित करना चाहिये। समाधि-स्थल पर दान की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि यहाँ विद्वानों को वसाना चाहिये। विधवा स्त्री के कर्तव्यों के निरूपण के साथ यह पटल समाप्त होता है।

बीसवें पटल में दीक्षाभेदों का विधान निरूपित है। देवी प्रश्न करती है कि अनुशैव आदि छ: प्रकार के शैवों की दीक्षा एक सरीखी है या इनमें परस्पर अन्तर है ? प्रश्न का समाधान करते हुए शिव कहते हैं कि अनधिकारी व्यक्ति को दीक्षा नहीं देनी चाहिये। दीक्षा के अधिकारी का लक्षण वताते हुए वे कहते हैं कि अनुशैव आदि छ: प्रकार के शैवों को एककलशा दीक्षा दी जाती है। इसके साथ वीरशैव मत में प्रवेश के अधिकारी का लक्षण विस्तार से बताकर कहा गया है कि सामान्य वीरशैव और विशेष वीरशैव को त्रिकलशा दीक्षा और तुर्य (निराभारी) वीरशैव को पंचकलशा दीक्षा दी जाती है। इनके स्वरूप का संक्षेप में उल्लेख करने के साथ यहाँ कहा गया है कि तुर्य वीरशैव विधि और निषेध से ऊपर उठ जाता है। तुर्य वीरशैव की चर्या की और इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर उसके देहत्याग की पुन: यहाँ चर्चा की गई है। अष्टांग मैथुन के त्याग और दीक्षांग होम की विधि के प्रदर्शन के बाद तुर्य वीरशैव के स्वच्छन्द विचरण का यहाँ उल्लेख है। आगे देवी के प्रश्न के उत्तर में शिव कहते हैं कि योग्यतासम्पन्न व्यक्ति को व्युत्क्रम से भी दीक्षा दी जा सकती है, किन्तु सामान्यत: इन दीक्षाओं को क्रम से ही देना चाहिये। अन्त में यहाँ इन सभी दीक्षाओं की अपनी-अपनी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

इक्कीसवें पटल में ज्ञानयोग का निरूपण है। देवी ज्ञानयोग के विषय में प्रश्न करती है और उसके उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि इसी तरह का प्रश्न पहले वटपत्रशायी भगवान् कृष्ण ने मुझसे किया था। उस समय मैंने उनको जो उत्तर दिया,

उसे तुम्हें सुनाता हूँ। २८ तत्त्वों[२५] की गणना के साथ यहाँ ज्ञान का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि शिव के स्वरूप का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। बुभुक्षा, पिपासा आदि षड्विध ऊर्मियों की तथा काम, क्रोध आदि षड्विध विकारों की यहाँ पुनः चर्चा की गई है और कहा गया है कि इनसे मुक्त व्यक्ति "शिव ही सब कुछ है" इस ज्ञान के साथ योग का अभ्यास करे। यही मुक्ति का प्रमुख साधन है। यहाँ देवी प्रश्न करती है कि शिव ही जीव का स्वरूप कैसे धारण कर लेता है। उत्तर में शिव कहते हैं कि यह सारा जगत् शिव-शक्त्यात्मक है। जीवात्मा के स्वरूप का निरूपण करते हुए शिव कहते हैं कि माया से मोहित जीव अपने स्वरूप को भूल बैठता है। वास्तव में शिव और जीव में अणुमात्र भी अन्तर नहीं है। यह अखंड आत्मा एक लोक से लोकान्तर में कैसे जाता है? इसके उत्तर में शिव कहते हैं कि अविद्या शक्ति के प्रभाव से ऐसा प्रतीत होता है। अध्यास की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि यह अध्यास बिम्ब-प्रतिबिम्ब न्याय से प्रवृत्त होता है और इसी के कारण जीव अपने में सुख-दुःख का अनुभव करने लगता है। वास्तव में यह सब एक प्रकार का नाटक है, बुद्धि का विलास है। एकमात्र शक्तितत्त्व ही नामरूपात्मना नाना रूपों में भासित होने लगता है।

ऊपर के पटल में ज्ञान और योग का निरूपण किया गया है। अब **बाइसवें पटल** में बताया जा रहा है कि उनकी भी अपेक्षा भक्ति अधिक श्रेष्ठ है। निरपेक्ष भक्त की सर्वोत्तमता को बताते हुए यहाँ भक्ति की महिमा गाई गई है। भगवान् शिव कहते हैं कि कर्मयोगी और ज्ञानयोगी की अपेक्षा भक्त मुझे अधिक प्रिय है। भक्तिपूर्वक समर्पित वस्तु का अक्षय फल मिलता है। भक्तिदशा की प्राप्ति ईश्वर का वरदान है। शिव कहते हैं कि मैं स्वयं भी भक्त के वश में हो जाता हूँ। अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, यह शिवभक्ति ही मुक्ति मानी जाती है। देवी पार्वती के प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव भक्ति के लक्षणों का विस्तार से वर्णन करते हैं। भक्ति के लक्षणों में [२६]अष्टांग प्रणाम का भी उल्लेख है। वे यह भी कहते हैं कि इस भक्ति के वेग में भक्त मुक्ति को भी कुछ नहीं समझता, अणिमा आदि सिद्धियों की तो कथा ही क्या है? इस पर देवी पुनः प्रश्न करती हैं कि यह भक्ति किस प्रकार से उत्पन्न होती है? उत्तर में शिव कहते हैं कि इसके लिये गुरु की सेवा सर्वश्रेष्ठ उपाय है। गुरु को ईश्वर मान कर उनकी मन, वचन और शरीर से सेवा करनी चाहिये। इस भक्ति के अभ्यास से ज्ञान और योग में भी मनुष्य को दृढता प्राप्त होती है। भक्ति के अभाव में मनुष्य कैसे दुःख भोगता है, इसको भी यहाँ स्पष्ट किया गया है। इस पर देवी पुनः प्रश्न करती है कि जब भक्ति ही ईश्वर की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है, तो इतने सारे मतभेद क्यों प्रवृत्त हो गये हैं? और भक्तिहीन पुरुष के द्वारा धारित इष्टलिंग से मुक्ति मिलेगी या नहीं? इस पर शिव

२५. इस विषय को विस्तार से समझने के लिये "आगम और तन्त्रशास्त्र" में प्रकाशित "भागवत की तत्त्वसमन्वय प्रक्रिया" शीर्षक निबन्ध देखिये (पृ. १३१-१४१)।

२६. यहाँ टिप्पणी में (पृ. ३७७) अष्टांग और पंचांग प्रणाम के लक्षण दिये गये हैं। निगमागम शास्त्र के महान् विद्वान् श्रीमान् अप्पय दीक्षित ने शिवार्चनचन्द्रिका के प्रणामविधि प्रकरण (पृ. १००-१०१) में चतुर्विध (अष्टांग, पंचांग, त्र्यंग और एकांग) प्रणाम का निरूपण किया है।

उत्तर देते हैं कि इष्टलिंग के धारणमात्र से मनुष्य अवश्य मुक्ति की ओर बढ़ता है। इससे मनुष्य के हृदय में ईश्वर के प्रति भक्तिभाव का उदय होता है। मतभेदों का निरूपण सीढ़ियों पर चढ़ने के समान है और एक के बाद दूसरी सीढ़ी का अपनी योग्यता के अनुसार सहारा लेता हुआ वह अन्ततः परम गुह्य शिवज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। शिवज्ञान के अंगों का यहाँ विशद विवेचन किया गया है और कहा गया है कि इनके सहारे मनुष्य का मन स्थिर हो जाता है। यह चित्त की स्थिरता ही सर्वश्रेष्ठ योग है। अन्ततः वह शिवभक्त मेरा आश्रय ग्रहण कर मुक्त हो जाता है। यहाँ जगत् को मिथ्या इस अभिप्राय से बताया गया है कि वास्तव में उसकी कोई सत्ता नहीं है। यह तो मात्र शिव का नाटक है।

अन्तिम **तेईसवें पटल** के प्रारंभ में देवी भगवान् से प्रश्न करती है कि आप तो निर्लेप हैं, निसंग हैं। तब आप इस जगत् के आधार कैसे हो सकते हैं? इस पर भगवान् शिव आकाश, वायु, पर्वत आदि का दृष्टान्त देकर इस बात को सिद्ध करते हैं कि कैसे भगवान् शिव इस जगत् के अधिष्ठाता, कर्ता और उपादान भी बनते हैं। इस पर देवी पुनः प्रश्न करती है कि जगत् की स्थिति के रहते आपकी अद्वयता कैसे बनी रह सकती है? इस पर "मृत्तिकेत्येव सत्यम्" इत्यादि उपनिषद् वचन को उद्धृत करते हुए वे बताते हैं कि वास्तव में नामरूपात्मक यह जगत् कल्पनामात्र है। समुद्र में उठे बुदबुदों के समान यह सारा जगत् उस सुखसागर शिव से ही निकलता है और उसी में लीन हो जाता है। इस पर देवी यह कहती हुई विराम लेती है कि परतन्त्र प्रकृति का यह कार्य नहीं हो सकता। उसके प्रेरक के रूप में तो आपकी सत्ता सर्वोपरि है।

इस प्रकार संक्षेप में सारे ग्रन्थ का सार यहाँ प्रस्तुत कर दिया गया है। यदि हम इस पर विहंगम दृष्टि डालें, तो देखेंगे कि यहाँ सभी तान्त्रिक मतवादों का संक्षेप में उल्लेख हुआ है और उनमें से [२७]सात शैव मतों की पूरे ग्रन्थ में अनेक बार चर्चा इस अभिप्राय से हुई है कि वीरशैव मत में और उसमें भी निराभारी वीरशैव की तुर्यावस्था तक पहुँचने में ये सोपान का कार्य करते हैं। वीरशैव और निराभारी वीरशैव के लक्षण, चर्या, महिमा और वैशिष्ट्य की यहाँ अनेक स्थलों पर चर्चा की गई है। यहाँ (१.१०३) स्पष्ट घोषणा की गई है कि शैव और पाशुपत मत में कोई भेद नहीं है। षट्स्थल सिद्धान्त के प्रसंग में षड्विध अंगों और उपांगों का वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता। यहाँ षडूर्मियों और [२८]अरिषड्वर्ग का भी उल्लेख है, जिस पर विजय पाना आध्यात्मिक मार्ग की प्रथम वरीयता है। लिंग, सज्जिका, शिवदोरक आदि से संबद्ध सामग्री भी यहाँ पर्याप्त मिलती है। अलग-अलग पटलों में इनका निरूपण हुआ है। इष्टलिंग, शिवमन्त्र, दीक्षा आदि का ग्रहण गुरु से ही किया जाता है, अतः योग्य गुरु और शिष्य दोनों के लक्षण भी यहाँ बताये गये हैं। गुरु की महिमा का यहाँ अनेक स्थलों पर निरूपण किया गया है। आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर हुए व्यक्ति के लिये अनेक स्थलों पर (पृ. २६२, ३३९, ३४१, ३४४, ३५६, ३८७) "गुरुतः शास्त्रतः स्वतः" इस किरणागम के वचन की गूंज सुनाई

---

२७. ऊपर की तीसरी टिप्पणी देखिये।

२८. न्यायदर्शन (४.१.३-६) में दोषों के अन्तर्गत इनका विवरण मिलता हैं इनमें से मोह को वहाँ पापीयान् बताया गया है।

उसे तुम्हें सुनाता हूँ। २८ तत्त्वों[२५] की गणना के साथ यहाँ ज्ञान का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि शिव के स्वरूप का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। बुभुक्षा, पिपासा आदि षड्विध ऊर्मियों की तथा काम, क्रोध आदि षड्विध विकारों की यहाँ पुनः चर्चा की गई है और कहा गया है कि इनसे मुक्त व्यक्ति "शिव ही सब कुछ है" इस ज्ञान के साथ योग का अभ्यास करे। यही मुक्ति का प्रमुख साधन है। यहाँ देवी प्रश्न करती है कि शिव ही जीव का स्वरूप कैसे धारण कर लेता है। उत्तर में शिव कहते हैं कि यह सारा जगत् शिव-शक्त्यात्मक है। जीवात्मा के स्वरूप का निरूपण करते हुए शिव कहते हैं कि माया से मोहित जीव अपने स्वरूप को भूल बैठता है। वास्तव में शिव और जीव में अणुमात्र भी अन्तर नहीं है। यह अखंड आत्मा एक लोक से लोकान्तर में कैसे जाता है? इसके उत्तर में शिव कहते हैं कि अविद्या शक्ति के प्रभाव से ऐसा प्रतीत होता है। अध्यास की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि यह अध्यास बिम्ब-प्रतिबिम्ब न्याय से प्रवृत्त होता है और इसी के कारण जीव अपने में सुख-दुःख का अनुभव करने लगता है। वास्तव में यह सब एक प्रकार का नाटक है, बुद्धि का विलास है। एकमात्र शक्तितत्त्व ही नामरूपात्मना नाना रूपों में भासित होने लगता है।

ऊपर के पटल में ज्ञान और योग का निरूपण किया गया है। अब **बाइसवें पटल** में बताया जा रहा है कि उनकी भी अपेक्षा भक्ति अधिक श्रेष्ठ है। निरपेक्ष भक्त की सर्वोत्तमता को बताते हुए यहाँ भक्ति की महिमा गाई गई है। भगवान् शिव कहते हैं कि कर्मयोगी और ज्ञानयोगी की अपेक्षा भक्त मुझे अधिक प्रिय है। भक्तिपूर्वक समर्पित वस्तु का अक्षय फल मिलता है। भक्तिदशा की प्राप्ति ईश्वर का वरदान है। शिव कहते हैं कि मैं स्वयं भी भक्त के वश में हो जाता हूँ। अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, यह शिवभक्ति ही मुक्ति मानी जाती है। देवी पार्वती के प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव भक्ति के लक्षणों का विस्तार से वर्णन करते हैं। भक्ति के लक्षणों में [२६]अष्टांग प्रणाम का भी उल्लेख है। वे यह भी कहते हैं कि इस भक्ति के वेग में भक्त मुक्ति को भी कुछ नहीं समझता, अणिमा आदि सिद्धियों की तो कथा ही क्या है? इस पर देवी पुनः प्रश्न करती हैं कि यह भक्ति किस प्रकार से उत्पन्न होती है? उत्तर में शिव कहते हैं कि इसके लिये गुरु की सेवा सर्वश्रेष्ठ उपाय है। गुरु को ईश्वर मान कर उनकी मन, वचन और शरीर से सेवा करनी चाहिये। इस भक्ति के अभ्यास से ज्ञान और योग में भी मनुष्य को दृढता प्राप्त होती है। भक्ति के अभाव में मनुष्य कैसे दुःख भोगता है, इसको भी यहाँ स्पष्ट किया गया है। इस पर देवी पुनः प्रश्न करती है कि जब भक्ति ही ईश्वर की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है, तो इतने सारे मतभेद क्यों प्रवृत्त हो गये हैं? और भक्तिहीन पुरुष के द्वारा धारित इष्टलिंग से मुक्ति मिलेगी या नहीं? इस पर शिव

२५. इस विषय को विस्तार से समझने के लिये "आगम और तन्त्रशास्त्र" में प्रकाशित "भागवत की तत्त्वसमन्वय प्रक्रिया" शीर्षक निबन्ध देखिये (पृ. १३१-१४१)।

२६. यहाँ टिप्पणी में (पृ. ३७७) अष्टांग और पंचांग प्रणाम के लक्षण दिये गये हैं। निगमागम शास्त्र के महान् विद्वान् श्रीमान् अप्पय दीक्षित ने शिवार्चनचन्द्रिका के प्रणामविधि प्रकरण (पृ. १००-१०१) में चतुर्विध (अष्टांग, पंचाग, त्र्यंग और एकांग) प्रणाम का निरूपण किया है।

उत्तर देते हैं कि इष्टलिंग के धारणमात्र से मनुष्य अवश्य मुक्ति की ओर बढ़ता है। इससे मनुष्य के हृदय में ईश्वर के प्रति भक्तिभाव का उदय होता है। मतभेदों का निरूपण सीढ़ियों पर चढ़ने के समान है और एक के बाद दूसरी सीढ़ी का अपनी योग्यता के अनुसार सहारा लेता हुआ वह अन्ततः परम गुह्य शिवज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। शिवज्ञान के अंगों का यहाँ विशद विवेचन किया गया है और कहा गया है कि इनके सहारे मनुष्य का मन स्थिर हो जाता है। यह चित्त की स्थिरता ही सर्वश्रेष्ठ योग है। अन्ततः वह शिवभक्त मेरा आश्रय ग्रहण कर मुक्त हो जाता है। यहाँ जगत् को मिथ्या इस अभिप्राय से बताया गया है कि वास्तव में उसकी कोई सत्ता नहीं है। यह तो मात्र शिव का नाटक है।

अन्तिम **तेईसवें पटल** के प्रारंभ में देवी भगवान् से प्रश्न करती है कि आप तो निर्लेप हैं, निसंग हैं। तब आप इस जगत् के आधार कैसे हो सकते हैं? इस पर भगवान् शिव आकाश, वायु, पर्वत आदि का दृष्टान्त देकर इस बात को सिद्ध करते हैं कि कैसे भगवान् शिव इस जगत् के अधिष्ठाता, कर्ता और उपादान भी बनते हैं। इस पर देवी पुनः प्रश्न करती है कि जगत् की स्थिति के रहते आपकी अद्वयता कैसे बनी रह सकती है? इस पर "मृत्तिकेत्येव सत्यम्" इत्यादि उपनिषद् वचन को उद्धृत करते हुए वे बताते हैं कि वास्तव में नामरूपात्मक यह जगत् कल्पनामात्र है। समुद्र में उठे बुदबुदों के समान यह सारा जगत् उस सुखसागर शिव से ही निकलता है और उसी में लीन हो जाता है। इस पर देवी यह कहती हुई विराम लेती है कि परतन्त्र प्रकृति का यह कार्य नहीं हो सकता। उसके प्रेरक के रूप में तो आपकी सत्ता सर्वोपरि है।

इस प्रकार संक्षेप में सारे ग्रन्थ का सार यहाँ प्रस्तुत कर दिया गया है। यदि हम इस पर विहंगम दृष्टि डालें, तो देखेंगे कि यहाँ सभी तान्त्रिक मतवादों का संक्षेप में उल्लेख हुआ है और उनमें से [२७]सात शैव मतों की पूरे ग्रन्थ में अनेक बार चर्चा इस अभिप्राय से हुई है कि वीरशैव मत में और उसमें भी निराभारी वीरशैव की तुर्यावस्था तक पहुँचने में ये सोपान का कार्य करते हैं। वीरशैव और निराभारी वीरशैव के लक्षण, चर्या, महिमा और वैशिष्ट्य की यहाँ अनेक स्थलों पर चर्चा की गई है। यहाँ (१.१०३) स्पष्ट घोषणा की गई है कि शैव और पाशुपत मत में कोई भेद नहीं है। षट्स्थल सिद्धान्त के प्रसंग में षड्विध अंगों और उपांगों का वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता। यहाँ षडूर्मियों और [२८]अरिषड्वर्ग का भी उल्लेख है, जिस पर विजय पाना आध्यात्मिक मार्ग की प्रथम वरीयता है। लिंग, सज्जिका, शिवदोरक आदि से संबद्ध सामग्री भी यहाँ पर्याप्त मिलती है। अलग-अलग पटलों में इनका निरूपण हुआ है। इष्टलिंग, शिवमन्त्र, दीक्षा आदि का ग्रहण गुरु से ही किया जाता है, अतः योग्य गुरु और शिष्य दोनों के लक्षण भी यहाँ बताये गये हैं। गुरु की महिमा का यहाँ अनेक स्थलों पर निरूपण किया गया है। आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर हुए व्यक्ति के लिये अनेक स्थलों पर (पृ. २६२, ३३९, ३४१, ३४४, ३५६, ३८७) "गुरुतः शास्त्रतः स्वतः" इस किरणागम के वचन की गूंज सुनाई

२७. ऊपर की तीसरी टिप्पणी देखिये।

२८. न्यायदर्शन (४.१.३-६) में दोषों के अन्तर्गत इनका विवरण मिलता हैं इनमें से मोह को वहाँ पापीयान् बताया गया है।

पड़ती है। इस विषय पर अभिनवगुप्त के तन्त्रालोक और उसकी जयरथ रचित टीका में (४.४१-७८) पर्याप्त विचार किया गया है। हमने भी लुप्तागमसंग्रह द्वितीय भाग के उपोद्घात (पृ. २१६-१७) में "सत्तर्कस्वानुभवयोर्गरीयस्त्वम्" शीर्षक के अन्तर्गत इस विषय पर विचार किया है। सन्त [२९]ज्ञानेश्वर का अमृतानुभव तो प्रसिद्ध ही है।

दीक्षाविधि के प्रसंग में इष्टलिंग, विभूति और रुद्राक्ष धारण एवं मन्त्रजप आदि पर यहाँ पर्याप्त सामग्री मिलती है। करपंकज-पूजा के प्रसंग में यहाँ समस्त देवताओं और तीर्थों की स्थिति बताई गई है और कहा गया है कि इस पीठ पर की गई इष्टलिंग की पूजा सर्वश्रेष्ठ है। इसी तरह से दीक्षांग होम की पूरी पद्धति वैदिक विधि-विधान के अनुसार की गई है। आजकल संस्कृत भाषा और वैदिक विधि-विधानों का मजाक उड़ाना एक साधारण बात हो गई है। यह हमारे ऊपर बाह्य अपसंस्कृति का प्रभाव है। अभी कुछ साल पहले नादेड़ (महाराष्ट्र) में वीरशैव शिवाचार्यों के द्वारा एक यज्ञ का आयोजन किया गया था। उसके विरुद्ध वहाँ आश्चर्यजनक प्रचार हुआ। प्रमाण मांगे गये। ऐसे व्यक्तियों को प्रस्तुत आगम के चतुर्थ पटल का एक बार अवलोकन कर लेना चाहिये। वहाँ की धार्मिक सभाओं में यह भी सुनाई पड़ा कि इस्लाम और ईसाई धर्म में एक ही ईश्वर मान्य है। इसके विपरीत भारतीय धर्मों में ईश्वरों की संख्या का कोई ठिकाना नहीं है। इस दुष्प्रचार का सीधा अर्थ यह है कि सारी मानव जाति को इन दो धर्मों की शरण में आ जाना चाहिये। क्या इससे मानव जाति को शान्ति मिल सकेगी ? क्या ऐसा करने से पूरी मानवता को भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी देन विचार की स्वतन्त्रता बची रह सकेगी। अनेकता में एकता को देखना ही भारतीय दर्शन का निष्कर्ष है। इसके लिये सहिष्णुता अपेक्षित है। एकदेवतावाद सहिष्णुता और समन्वय को जन्म नहीं दे सकता। वह तो एक दूसरे पर अपने विचार जबर्दस्ती लादने का ही प्रयत्न करता रहेगा। फलतः मानव मन सदा अशान्त रहेगा। धर्मान्तरण इसी की परिणति है, जिसके घेरे में अब बौद्ध धर्म भी आ गया है।

भारतीय धर्म और दर्शन अशान्त मानव मन को शान्ति की ओर ले जाने की प्रमुख रूप से शिक्षा देते हैं। इनका उद्घोष है कि साधक एक ही जन्म में देवस्वरूप बन सकता है। इसके लिये वह किसी भी इष्टदेव का सहारा ले सकता है। प्रस्तुत आगम (१९. ८६) में भी शैव, वैष्णव आदि छः मतों (षण्मत) की चर्चा है। यहाँ (१७.१९-२१) तो यह भी कहा गया है कि एक ही परिवार में पति शिव की और पत्नी विष्णु की अथवा पति विष्णु की और पत्नी शिव की आराधना कर सकती है। आज इसी सहिष्णुता-प्रधान दृष्टि की हमें अपेक्षा है। आगम और तन्त्रशास्त्र ने सभी भारतीय धर्मों और मतवादों में अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया है। इस विषय पर केन्द्रीय तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ में दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोधयोजना की ओर से सम्पन्न हुई "भारतीय तन्त्रशास्त्र"

---

२९. डॉ. प्रभाकर सदाशिव पण्डित, आमलनेर के हिन्दी अनुवाद के साथ यह ग्रन्थ हिन्दी कुटीर, बुलानाला, वाराणसी से प्रकाशित है।

विषयक कार्यशाला में पर्याप्त विचार हुआ है। इस कार्यशाला का पूरा विवरण शीघ्र प्रकाशित होगा।

आगम ग्रन्थों को देखने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ जाति की अपेक्षा गुणों पर अधिक ध्यान दिया गया है। प्रस्तुत आगम में ऐसे अनेक स्थल (पृ. १०, ७६, ११७, २७२, ३१३, ३२४) आपको देखने को मिलेंगे। इस आगम का तो यहाँ तक कहना है कि वीर माहेश्वरों के आठ लक्षणों से सम्पन्न [३०]चाण्डाल भी शिव को अत्यन्त प्रिय है। मकुटागम की प्रस्तावना में इस विषय पर पर्याप्त विचार किया जा चुका है। भारत की विभिन्न भाषाओं में विकसित सन्तों के विचारों पर आगम-तन्त्रशास्त्र का गहरा प्रभाव पड़ा है। वे ही उनके प्रेरणास्रोत हैं, इस पर भी हम लिख चुके हैं। पूरी भारतीय प्रजा को आगमशास्त्र का यह संदेश है कि बिना किसी धार्मिक मतभेद के वेद से लेकर सन्तों की वाणियों तक के पूरे भारतीय वाङ्मय का आदर करना चाहिये। ब्राह्मणवाद, मनुवाद जैसे अपसंस्कृति से प्रसूत शब्दों के प्रभाव को आगमशास्त्र की यह विचारधारा ही नियंत्रित कर सकती है।

दसवें पटल में शिवयोग के अष्टांगों का निरूपण पातंजल योग से भिन्न पद्धति से किया गया है। [३१]जप की भी योगांगता आगम शास्त्रों में वर्णित है। ज्ञान और योग की परस्पर सापेक्षता का और भक्तियोग का यहाँ १२वें और २१वें पटल में तथा भक्ति की श्रेष्ठता का २२वें पटल में निरूपण हुआ है। आगमों के ज्ञान, योग, क्रिया और चर्या नामक चार अंगों की भी यहाँ चर्चा है। आगमों में प्रतिपादित दर्शन की यह विशेषता है कि यह सामान्य मनुष्य की भी समझ में बड़ी सरलता से आ जाता है। अत्यन्त सरल भाषा में यहाँ उन सभी उदात्त भावनाओं का संक्षेप में प्रतिपादन कर दिया गया है, जो कि मानव की आध्यात्मिक उन्नति में परम सहायक होते हैं। [३२]यहाँ कहा गया है कि मनुष्य को अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति के प्रति द्वेषभाव नहीं रखना चाहिये, समान स्तर के मनुष्यों के प्रति असूया (निन्दा) का भाव नहीं रखना चाहिये और उसे हीन कोटि के मनुष्यों का अपमान नहीं करना चाहिये। महाकवि मातृचेट के अध्यर्धशतक में इसी अभिप्राय का श्लोक मिलता है, इसकी सूचना हम पृ. १२९ की टिप्पणी में दे चुके हैं।

---

३०. ऊपर की १९ संख्या की टिप्पणी देखिये।

३१. पाशुपत मत में जप को क्रियालक्षण योग का एक अंग माना है। पाशुपत सूत्र (५.२१-२३) में बताया गया है कि मन्त्र के पाठ से और ॐकार में ध्यान एवं धारणा को स्थिर करने पर साधक निष्ठा योग की सहायता से रुद्र के सायुज्य को प्राप्त करता है। "तज्जपस्तदर्थभावनम्" (१.२८) इस योगसूत्र का भी यही अभिप्राय है। जप की यह योगांगता वैष्णव और शैव आगमों में भी वर्णित है (देखिये— जयाख्यसंहिता, ३३.११ और मृगेन्द्रागम योगपाद, श्लो. ३)। लक्ष्मीतन्त्र (३९. ३५) में वाचिक, उपांशु और मानस नामक भेदों के अतिरिक्त जप का ध्यानात्मक चौथा प्रकार भी वर्णित है। ऐसा लगता है कि जप की योगांगता का सर्वप्रथम निरूपण पाशुपत मत में हुआ। चन्द्रज्ञानागम (१.८.६१-६४) आदि में सगर्भ-अगर्भ और सध्यान जप का भी निरूपण है। प्रस्तुत आगम (११.८९-९२) में भी जप के ये पंचविध भेद निरूपित हैं।

३२. "अद्वेष्टारोऽधिके स्वस्मात् स्वसमेष्वनसूयवः। अतिरस्कारिणो न्यूने वीरास्ते शिवयोगिनः।।" (८.१९)।

बहुत थोड़े शब्दों में मानव मन को श्रेष्ठता की ओर उन्मुख करने का यह एक महान् मन्त्र है। क्या मानव इस शिक्षा को अपने मन में उतार सकेगा?

शैवभारती शोधप्रतिष्ठान की शोध ग्रन्थमाला में भाषानुवाद और अंग्रेजी अनुवाद के साथ आगम-ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना है। तद्नुसार गत वर्ष भाषानुवाद के साथ चन्द्रज्ञानागम, सूक्ष्मागम, मकुटागम और कारणागम का प्रकाशन हुआ था। आज शिवरात्रि के पावन पर्व पर पारमेश्वरागम का भाषानुवाद के साथ नवीन संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है। काशी ज्ञानसिंहासन के वर्तमान जगद्गुरु श्री १००८ डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी की प्रेरणा से यह ज्ञानसत्र प्रवृत्त है और इसकी विशेषता यह है कि ग्रन्थ-प्रकाशन के सभी स्तरों पर, विशेष कर वीरशैव धर्म-दर्शन के जटिल स्थलों को सुबोध भाषा में समझाने में महास्वामीजी का महनीय सहयोग रहता है। पूरे ग्रन्थ पर और भाषानुवाद पर उनकी सूक्ष्मेक्षिका समस्त दोषों को दूर कर देती है। बचे-खुचे दोषों का परिहार मुद्रण के अवसर पर पड़ी पण्डित जनार्दन शास्त्री पाण्डेय जी की पैनी दृष्टि ने कर दिया है। जंगमवाड़ी मठ में शोधरत और अध्ययनरत सुबुद्ध छात्रों ने भी अपनी-अपनी आहुतियाँ इसमें दी हैं और इन्हीं के प्रयासों की समष्टि का यह फल चिन्तनशील पाठकों के सामने प्रस्तुत है। वे ही इस ज्ञानसत्र की सांगता और निरंगता में प्रमाण हैं। हमें आशा है कि वे भी इस ज्ञानसत्र की त्रुटियों के परिमार्जन में अपना महनीय सहयोग देंगे।

प्रेस कापी तैयार हो जाने के बाद बाकी चार ग्रन्थों से पाठ-संकलन, टिप्पणी-लेखन, श्लोकार्धसूची निर्माण आदि सभी कार्यों में हिरेहाल सिरिगेरी के श्री मरुलसिद्ध शिवाचार्य स्वामी जी का, श्लोकार्धसूची को अकारादि क्रम से संयोजित करने में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के आगम प्राध्यापक डॉ. शीतलाप्रसाद उपाध्याय और सिद्धराम देव हिप्परगि का विशेष सहयोग रहा है। इन कार्यों के संपादन में श्री सिद्धराम देव सुरकोड़, श्री सिद्धराम शिवाचार्य स्वामी सुल्ला, श्री तोण्टदार्य देव मरेगुद्दि ने भी यथासमय अपने को प्रस्तुत किया है। वीरशैव धर्म-दर्शन के प्रचार और प्रसार में अनवरत लगे हुए इन आचार्यों का दक्षिण में कितना सम्मान है, उत्तर भारत के लोग उसकी कल्पना नहीं कर सकते। अपने विद्यागुरुओं के प्रति भी ये उतने ही विनयावनत हैं, यह एक सुखद आश्चर्य है, जो कि उत्तर भारत में अब लुप्त होता जा रहा है। हम इन सबके प्रति शैवभारती शोधप्रतिष्ठान की ओर से आभार व्यक्त करते हैं।

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी
महाशिवरात्रि, संवत २०५०

विद्वद्वशंवद
व्रजवल्लभ द्विवेदी
निदेशक

❖❖❖❖

विषयानुक्रमणी

परिशिष्टभागः

पारमेश्वरागमः

प्रथमः पटलः

मतभेदस्वरूपनिरूपणम्

मङ्गलाचरणम्

वन्दे गिरीन्द्रतनयाद्विरदाननाग्नि-
भूनन्दिभृङ्गिरिटिसेवितपादपद्मम् ।
पञ्चाननं फणिशशीभतरक्षुचर्म-
भूषं महेशमनिशं शिरसा गिरीशम् ॥१॥
पाशाङ्कुशेष्टदविषाणकराग्रबीज-
पूरोज्ज्वलं तरुणदिव्य[१]जटाप्रकाशम् ।
कोटीरकोटिशशिरेखमुमातनूजं
वन्दे गणेन्द्रमनिशं वरदानदक्षम् ॥२॥
कैलासशिखरे रम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते[२] ।
सर्वकल्याणनिलये पुण्ये शङ्करमन्दिरे ॥३॥
एकदा रहसि प्रेम्णा पार्वती परमेश्वरम् ।
सर्वलोकोपकाराय नमस्कृत्यैवमब्रवीत् ॥४॥

गिरीन्द्रतनया (पार्वती), द्विरदानन (गणेश), अग्निभू (कुमार कार्तिकेय), नन्दी, भृंगी, रिटि आदि के द्वारा जिनकी चरणवन्दना की जा रही है, पाँच मुख वाले, सर्प और चन्द्रमा से अलंकृत, हाथी और व्याघ्र के चर्म को धारण करने वाले, गिरीश महेश की मैं निरन्तर सिर झुकाकर वन्दना करता हूँ ।।१।। इनके हाथों में पाश, अंकुश, सभी प्रकार की कामनाओं की पूर्ति करने वाला सींग और उज्ज्वल बीजपूर (बिजोरा) फल विद्यमान हैं, विशाल दिव्य जटाजूट से जो सुशोभित हैं, जिनके ललाट के कोने में चन्द्रमा की रेखा सुशोभित है, वरदान में प्रवीण, गणों के स्वामी, पार्वती के पुत्र, उस गणेश की मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ ।।२।। सिद्धों और गन्धर्वों के द्वारा सेवित, सभी प्रकार के कल्याणों के खजाने, भगवान् शिव के निवासस्थान पवित्र मनोरम कैलास पर्वत के शिखर पर विद्यमान एकान्त स्थल में बैठीं भगवती पार्वती सभी लोकों के उपकार के लिये किसी समय भगवान् शिव को प्रेमपूर्वक प्रणाम कर बोलीं ।।३-४।।

---

१. दीप्त-ख., सूर-ग. घ.। २. भक्तिसाधननायके-कटि.।

पार्वत्युवाच

मतभेदनिरूपणम्

देवदेव महादेव चन्द्रशेखर धूर्जटे ।
मतभेदस्वरूपं मे वद तत्त्वेन सर्वशः ।।५।।
मतानि कतिभेदानि लक्षणं तस्य तस्य किम् ।
आचारश्च कथं तत्र प्रायश्चित्तं फलं त्वपि ।।६।।

ईश्वर उवाच

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि मतानां लक्षणादिकम् ।
यज्ज्ञात्वा निर्वृतिं याति शिवः संजायते स्वयम् ।।७।।

सौगत-वैदिक-सौर-वैष्णवमतानि

आदौ तु सौगतमतं [१]तच्च पञ्चविधं प्रिये ।
बौद्धसौगतचार्वाकजैनार्हतविभागतः ।।८।।
तेषामिदं महामुख्यं मतं साधारणं प्रिये ।
तारे तुत्तारतारे स्वाहेति शून्यार्थको मनुः ।।९।।

पार्वती का प्रश्न

चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले, जटाजूट में गंगा को धारण करने वाले हे देवों के देव महादेव ! इस लोक में नाना प्रकार के मतवाद प्रचलित हैं । उनको आप पूरी तरह से एक-एक कर मुझे समझाइये ।।५।। ये मतवाद कितने प्रकार के हैं ? उन उन मतवादों का स्वरूप कैसा है ? उनके आचार का, प्रायश्चित्त विधि का और प्राप्त होने वाले फल का भी निरूपण आप कीजिये।।६।।

ईश्वर का उत्तर

हे देवि! तुम सुनो ! मैं विभिन्न मतवादों के स्वरूप को बताऊंगा, जिसको जानकर जीव मुक्ति को प्राप्त करता है, स्वयं साक्षात् शिव हो जाता है ।।७।।

सबसे पहले सौगत (बौद्ध) मत की गणना की जाती है। हे प्रिये ! इसके बौद्ध, सौगत, चार्वाक, जैन और आर्हत नाम के पांच भेद होते हैं ।।८।। हे प्रिये ! शून्यता ही इन सबका प्रमुख सिद्धान्त है। [1]'तारे तुत्तारे तुरे स्वाहा' इस महामन्त्र का ये सब जप करते हैं।।९।। हे ईशानि ! इसके बाद वेदसंमत वैदिक मत की गणना की जाती है।

---

१. तत्र-क.।

1. बौद्ध मन्त्रयान में प्रसिद्ध देवी तारा का यह मन्त्र है।

अथ वैदिकमीशानि मतं यद् वेदसंमतम् ।
मन्त्रस्तु ब्रह्मगायत्री सर्वसाधारणः प्रिये ।।१०।।
ततोऽधिकं सौरमतं गायत्री सौरलक्षणा ।
तच्च पञ्चविधं देवि पञ्चभेदं निशामय ।।११।।
वैकर्तनं तथादित्यं पौष्णं मार्तण्डसंज्ञितम् ।
सौरं सर्वोत्तमं तत्र यत्तु सूर्याधिदैवतम् ।।१२।।
ततोऽधिकं महादेवि मतं वैष्णवमुत्तमम् ।
तद्भेदमपि वक्ष्यामि तच्च पञ्चविधं मतम् ।।१३।।
गोपालं नारसिंहं च रामं कृष्णात्मकं परम् ।
नारायणमितीशानि गायत्री वैष्णवी तथा ।।१४।।

सप्तविधं शैवमतम्

अथ वक्ष्ये गिरिसुते मतं मम महत्तरम् ।
शैवं सप्तविधं पुण्यं वीरशैवादिभेदतः ।।१५।।
वीरशैवं तथानादिशैवमादिपदं[1] ततः ।
अनुशैवं महाशैवं योगशैवं तु षष्ठकम्[2] ।।१६।।

हे प्रिये ! सभी वेदानुयायी मतों में ब्रह्मगायत्री का सब कोई जप करते हैं ।।१०।। इससे अधिक महत्त्व का सौर मत माना जाता है। हे देवि ! इसके पाँच भेद होते हैं । उनके नाम तुम सुनो ।।११।। इनके नाम हैं— वैकर्तन, आदित्य, पौष्ण, मार्तण्ड और सौर । इन सब मतों के अधिपति (इष्टदेव) सूर्य हैं, अतः इनमें सूर्य की उपासना ही प्रधान है ।।१२।। हे महादेवि! इससे भी श्रेष्ठ और उत्तम वैष्णव मत माना जाता है । इसके भी पाँच भेद होते हैं । उन पाँच भेदों को मैं गिनाता हूँ।।१३।। इनके नाम हैं– गोपाल, नारसिंह, राम, कृष्ण और नारायण। हे ईशानि ! ये सब वैष्णवी गायत्री का जप करते हैं ।।१४।।

हे गिरिपुत्रि ! अब मैं अपने मत का निरूपण कर रहा हूँ, जो कि इन सभी मतों में श्रेष्ठ है । यह पुण्यदायक शैवमत वीरशैव आदि के भेद से सात प्रकार का है।।१५।। वीरशैव, अनादिशैव, आदिशैव, अनुशैव, महाशैव और छठा मत योगशैव नाम से प्रसिद्ध है।।१६।। सातवाँ मत ज्ञानशैव कहलाता है । इन सात मतों में वीरशैव मत ही सर्वश्रेष्ठ

---

१. परं–क.। २. मम्–ग. घ. ङ.।

सप्तमं ज्ञानशैवाख्यं तत्र सर्वोत्तमोत्तमम् ।
वीरशैवमितीशानि तदङ्गानीतराणि तु ।।१७।।

गाणपत्यादिमतानि

गाणपत्यं वैरभद्रचं भैरवं शरभाभिधम् ।
नान्दिकेशं च कौमारं पैशाचमिति सप्तधा ।।१८।।
अष्टकोटिमहाभेदं गाणपत्यमतं प्रिये ।
सप्तधा वीरभद्राख्यं भैरवं चाष्टधोदितम् ।।१९।।
[१]शारभं तत्पञ्चविधं नान्दिकेशं त्रिधोदितम् ।
कौमारमिति पैशाचमतं तु त्रिविधं प्रिये ।।२०।।
सौगतादीनि यावन्ति वैष्णवान्तमतानि तु ।
यच्च शैवं मम मतं सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ।।२१।।

षड्दर्शनानि

तन्त्रं तु षड्विधं प्रोक्तं षड्दर्शनविभेदतः ।
वीरशैवं वैष्णवं च शाक्तं सौरं विनायकम् ।।२२।।

है । अन्य सभी मत इसी के अंग माने जाते हैं ।।१७।।

इनके अतिरिक्त [1]गाणपत्य, वैरभद्रच, भैरव, शरभ, नान्दिकेश, कौमार और पैशाच नाम के अन्य सात प्रकार के मत भी यहाँ प्रसिद्ध हैं ।।१८।। हे प्रिये ! इनमें से गाणपत्य मत आठ प्रकार (कोटि) का, वीरभद्र मत सात प्रकार का, भैरव मत आठ प्रकार का, शारभ मत पाँच प्रकार का, नान्दिकेश मत तीन प्रकार का एवं कौमार और पैशाच मत भी तीन तीन प्रकार का है ।।१९-२०।। यहाँ सौगत मत से लेकर वैष्णव मत पर्यन्त जितने भी मतवाद वर्णित हैं, वे एक दूसरे की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं । इनमें मेरा जो शैवमत है, वह तो इन सबमें उत्तमोत्तम है ।।२१।।

छः दर्शनों के भेद से तन्त्रशास्त्र के छः भेद शास्त्रों में बताये गये हैं। ये हैं— वीरशैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, विनायक (गाणपत्य) और कापाल । दर्शन की दृष्टि से तन्त्रों के ये छः भेद ही माने गये हैं । इनमें से जो व्यक्ति जिस तन्त्र का अनुयायी

---

१. शरभाख्यं पञ्च–ख.।

1. मृगेन्द्रागम चर्यापाद (१.३६-३७) में आठ मतों के नाम दिये गये हैं।

कापालमिति विज्ञेयं दर्शनानि षडेव हि ।
[1]तत्तत्तन्त्रोक्तमार्गेण तत्तत्कर्म समाचरेत्[2] ।। २३।।

मतसाङ्कर्यनिषेधः

शैवं पाशुपतं सोमं [3]लाकुलं च चतुर्विधम् ।
शैवभेदमिति ज्ञेयं संकरं न समाचरेत् ।। २४।।
अनादिशैवः प्रथम आदिशैवो द्वितीयकः ।
तृतीयस्तु महाशैवश्चतुर्थो ह्यनुशैवकः ।। २५।।
पञ्चमोऽवान्तरः शैवो[4] योगशैवस्तु षष्ठकः ।
सप्तमो वीरशैवाख्यस्तत्तत्कर्म समाचरेत्[5] ।। २६।।
तत्तदागमकर्माणि तत्तद्दैवं न मिश्रयेत् ।
गोपालं [6]पञ्चरात्रं च नारसिंहं च वैष्णवम् ।। २७।।
नारायणं पञ्चविधं संकरं न समाचरेत् ।
नित्याऽनित्या शाबराख्या शक्तिश्चेति चतुर्विधा ।। २८।।
शाक्तभेदमिति ज्ञेयं संकरं न समाचरेत् ।
ब्रह्मेन्द्रः सावनः सूर्य इति सौरश्चतुर्विधः ।। २९।।

है, वह उसी के अनुसार आचरण करे ।।२२-२३।।

शैव मत के अन्य चार भेद भी होते हैं । उनके नाम हैं— शैव, पाशुपत, सोम और लाकुल। इनके अनुयायी भी अपने अपने मत का ही पालन करें, एक दूसरे मत को आपस में मिलावें नहीं ।।२४।। प्रथम अनादिशैव, द्वितीय आदिशैव, तृतीय महाशैव, चतुर्थ अनुशैव, पंचम अवान्तरशैव, छठा योगशैव और सातवां वीरशैव— पूर्व प्रदर्शित ये सात प्रकार के शैव भी अपने-अपने शास्त्रों में वर्णित विधियों का ही पालन करें ।।२५-२६।। जिस जिस आगम में देवताओं की उपासना-पद्धति जिस क्रम से बताई गई है, उसको आपस में मिलाना नहीं चाहिये । गोपाल, पंचरात्र, नारसिंह, वैष्णव और नारायण नाम के पंचविध आगमों में परस्पर संकर नहीं करना चाहिये ।।२७-२८।। नित्या, अनित्या, शाबरा और शक्ति— ये शाक्त आगम के चार भेद हैं । इनमें भी परस्पर घालमेल नहीं करना चाहिये ।।२८-२९।। ब्रह्मा, इन्द्र, सावन और सूर्य के भेद से सौर

---

१. तत्र तन्त्रोक्त-क. ख.। २. रभेत्-क.। ३. नकुलं-क.। ४. शैवः प्रवरः शैवपष्ठकः-क.। ५. रभेत्-क. ङ.। ६. पाञ्च-ख. ङ.।

तस्मिंस्तस्मिन् यथा प्रोक्तं तत्तद्देवं न मिश्रयेत् ।
अर्हश्चार्वाकबौद्धश्च जिनश्चेति चतुर्विधम्[१] ।। ३० ।।
वैनायकमिति ज्ञेयं संकरं न समाचरेत् ।
निरीश्वरं सेश्वरं च कापालं भैरवं तथा ।। ३१ ।।
चतुर्विधं तु कापालं संकरं न समाचरेत् ।
अत्रादौ वीरशैवाख्यं तन्त्राणामुत्तमोत्तमम् ।। ३२ ।।

पञ्चाक्षरमन्त्रोद्धारः

तत्र मन्त्रो महादेवि शैवपञ्चाक्षरो मम[२] ।
तदुद्धारं प्रवक्ष्यामि शृणु शैलकुमारिके ।। ३३ ।।
[1]जविपूर्वं मरुत्पूर्वं स्मरपूर्वं समन्वितः ।
पार्श्वमक्षिसमायुक्तं वरुणस्थं धनुः प्रिये ।। ३४ ।।

मत के भी चार भेद हैं । इनमें भी परस्पर देवताओं का सांकर्य नहीं करना चाहिये।।२९-३०।। आर्हत, चार्वाक, बौद्ध और जिन— ये चार प्रकार के नास्तिक मत हैं। इसी तरह से वैनायक मत भी है । इनमें भी परस्पर सांकर्य नहीं होना चाहिये ।।३०-३१।। निरीश्वर, सेश्वर, कापाल और भैरव के भेद से कापालिक मत चार प्रकार का है। इनमें भी परस्पर संकर दोष नहीं आना चाहिये । ऊपर बताये गये सभी तन्त्रों में वीरशैव तन्त्र सर्वोत्तम माने गये हैं।।३१-३२।।

हे महादेवि! उस वीरशैव तन्त्र में शिव पंचाक्षर मन्त्र उपदिष्ट है। उसके उद्धार की पद्धति मैं बताऊँगा। हे शैलकुमारि ! उसे तुम सावधानी से सुनो ।।३३।। सबसे पहले यहाँ जवि (नकार) रखा जाता है । उसके बाद मरुत् (विसर्ग) को आगे करके

१. विंधाः–ग. घ.। २. मनुः–ख.।

1. जविर्नकारः[१], स पूर्वो यस्य तथाभूतो मरुद्[२] अकारः। सर्गो विसर्गः, स च स्मरपूर्वः[३], स्मरो मकारः। पार्श्व[४]. शकारः, स अक्षिसमायुग् [५]इकारयुक्तः। वरुणो वकारः[६], तत्र स्थितं [७]धनुराकारः। वह्नी रेफः[८], ततः पूर्वो यकारः। ततो मन्त्रः— नमः शिवाय। १. नः शङ्खिनी क्षमा दीर्घजिह्वानन्दाट्टहासिनी। दीर्घद्रोणा च दीर्घाध्वा नादिनी नन्दिनी जविः।। २. अः श्रीकण्ठः सुरेशश्च ललाटं चैकमातृकः। कीर्तिर्निवृत्तिर्वागीशो नरकारिर्हरो मरुत्।। ३. मं महाकाल वैकुण्ठो नृणां बीजश्च मन्मथः। ४. शः शब्दः कामरूपी च कामरूपो महामतिः। वृषघ्नः शयनः शान्तसुभगा विस्फुलिङ्गिनी।। पार्श्वं देवो महालक्ष्मीर्महेन्द्रः कुलकौलिनी। ५. इः सूक्ष्मा शाल्मली विद्या चन्द्रः पूषाऽक्षिगुह्यकः। ६. वो वालो वारुणी सूक्ष्मा वरुणो मेदसंज्ञकः। ७. आकारो विजयोऽनन्तो धनुश्छायो विनायकः। ८. रो रक्तः क्रोधिनी रेफः पावकस्तैजसो मतः। क पुस्तकटिप्पणीतः सर्वमेतदुद्धृतम्।

वह्निपूर्वं ततो देवि मन्त्रः साक्षान्मदात्मकः ।
सर्वेषामपि शैवानां सर्वसाधारणो मनुः ।। ३५।।

देव्युवाच

मततारतम्यविषयकः प्रश्नस्तत्समाधानं च

उक्तान्येतानि देवेश सर्वाणि च समानि वा ।
तारतम्येन वा तत्र किं मतं चन्द्रशेखर[१] ।। ३६।।
नोक्तं शाक्तमतं देव ह्युत्तमं वाऽधमं समम् ।
तदद्य कथय स्वामिन् यत्तु सर्वोत्तमोत्तमम् ।। ३७।।

ईश्वर उवाच

सर्वाणि च महादेवि मतानि तु[२] महान्त्यपि ।
प्राप्यमेकं फलं तेषां विशेषस्तत्र वक्ष्यते ।। ३८।।

स्मर (मकार) का स्थान है । आगे आदि (इकार) के साथ पार्श्व (शकार) को रखकर वरुण (वकार) के साथ धनु (आकार) को जोड़ा जाता है । सबके अन्त में वह्नि (रेफ) का पहला अक्षर यकार रखा जाता है । इस तरह से 'नमः शिवाय' मन्त्र का स्वरूप बन जाता है । हे देवि ! यह मन्त्र साक्षात् शिव का ही स्वरूप है । सभी प्रकार के शैवों के लिये यह साधारण मन्त्र है, अर्थात् सभी प्रकार के शैव समान रूप से इस मन्त्र का जप करते हैं ।।३४-३५।।

पार्वती का प्रश्न

हे देवेश ! यहाँ आपने जिन मतों का वर्णन किया है, वे सब समान कोटि के हैं या उनमें तारतम्य है ? यदि तारतम्य है, तो इनमें सर्वश्रेष्ठ मत कौन सा है।।३६।। यहाँ आपने शाक्त मत के विषय में यह नहीं बताया कि यह उत्तम है, अधम है या सबके समान है। हे स्वामिन् ! इसलिये आज मुझे आप यह बताइये कि इनमें सर्वश्रेष्ठ मत कौन सा है।।३७।।

ईश्वर का उत्तर

हे महादेवि ! ये सभी मत अपने-अपने में महान् हैं, क्योंकि इन सबका प्राप्य फल एकमात्र मुक्ति है। तो भी इनकी जो अपनी विशेषता है, उसे मैं तुमको बताता हूँ।।३८।।

---

१. खरम्-ख. ग.। २. च-ग. घ. ङ.।

वीरशैवमतवैशिष्ट्यम्

वित्तायासमहायत्नसाध्यान्यन्यानि पार्वति ।
महाफलं शुभकरं शैवमेव न संशयः ।। ३९।।
तत्र वक्ष्ये शिवे वीरशैवं सर्वोत्तमोत्तमम् ।
नान्यस्य तद्भवेद्योग्यं शाक्तेयं सर्वसंमतम् ।। ४०।।
वीरशैवमतं सद्यो भोगमोक्षैकसाधनम् ।
सर्वोत्तमं मम मतं यतः सर्वोत्तमोऽस्म्यहम् ।। ४१।।
न वीरशैवसदृशं मतमस्ति जगत्त्रये ।
सर्वभोगप्रदं पुण्यं शिवसायुज्यदायकम् ।। ४२।।
यथा मत्सदृशो नास्ति पुरुषाणां त्वया समा ।
स्त्रीणां तथा वीरशैवसदृशं नास्ति वै मतम् ।। ४३।।
अपि पापशतं कृत्वा ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
वीरशैवमतं प्राप्य शिव एव न संशयः ।। ४४।।

हे पार्वति ! अन्य मतों में प्रदर्शित यज्ञ-यागादि अनुष्ठानों के आयोजन में बहुत धन खर्च करना पड़ता है, बहुत मेहनत करनी पड़ती है और पूरी सावधानी बरतनी पड़ती है। इसके विपरीत शैव मत में प्रदर्शित अनुष्ठान से महान् शुभकर फल अनायास मिल जाता है। इसलिये निःसन्देह वीरशैव मत सर्वश्रेष्ठ है।।३९।। हे शिवे ! मैं तुम्हें बताऊंगा कि कैसे वीरशैव मत ही सभी मतों में सर्वश्रेष्ठ है। इसकी योग्यता सभी में नहीं रहती। शाक्त मत का पालन तो कोई भी कर सकता है।।४०।। वीरशैव मत तत्काल भोग (अष्टविध ऐश्वर्य) और मोक्ष दोनों को देने वाला एकमात्र साधन है। यह मेरा मत सर्वोत्तम इसलिये है कि मैं स्वयं भी सर्वोत्तम हूँ।।४१।। इस त्रिलोकी में वीरशैव मत के समान दूसरा कोई मत नहीं है। यह सभी प्रकार के भोगों (ऐश्वर्य) को देने वाला, पवित्र और शिवसायुज्य को भी देने वाला है।।४२।। जैसे पुरुषों में मुझ सरीखा दूसरा पुरुष कोई नहीं है, स्त्रियों में जैसे तुम्हारे समान कोई दूसरी स्त्री नहीं है, उसी तरह से वीरशैव मत के समान दूसरा कोई मत नहीं है।।४३।। जानते हुए अथवा अनजाने में नानाविध पाप करने वाला व्यक्ति भी वीरशैव मत का आश्रय लेकर साक्षात् शिव ही हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।४४।। वीरशैव को न तो पाप कर्म से कोई

न तस्यास्ति भयं पापान्नाधिक्यं पुण्यकर्मणः ।
स्वयं हि पुण्यपापानां निर्णेता च नियामकः ।। ४५ ।।
ये वीरशैवे देवेशि दीक्षिताः शिवयोगिनः ।
तान् दृष्ट्वैव पलायन्ते दूरतो यमकिङ्कराः ।। ४६ ।।

भस्मरुद्राक्षलिङ्गधारणमाहात्म्यम्

सभस्मरुद्राक्षतनुं सलिङ्गं शिवयोगिनम् ।
दृष्ट्वा सद्यो विमुच्यन्ते पापिनोऽपि न संशयः ।। ४७ ।।
यस्य भस्म ललाटेऽस्ति कण्ठे लिङ्गं मदात्मकम् ।
रुद्राक्षधारणं देहे सोऽहं देवि न संशयः ।। ४८ ।।
य इच्छेन्मम सारूप्यं सोऽर्चयेच्छिवयोगिनम् ।
य इच्छेद्रौरवं घोरं स निन्देच्छिवयोगिनम् ।। ४९ ।।
नित्यं पश्येद् वीरशैवदीक्षितं शिवयोगिनम् ।
यस्य कण्ठगतोऽहं वै स(न) तस्मादुत्तमः प्रिये ।। ५० ।।
यादृशी भावना कार्या मयि त्वयि शिवे तथा ।
तथैव कार्या वै वीरशैवदीक्षित उत्तमे ।। ५१ ।।

भय उत्पन्न होता है और न पुण्य के कारण उसमें कोई विशेषता ही आती है, क्योंकि वह तो पुण्य और पाप का निर्णय करने वाला नियामक बन जाता है।।४५।। हे देवेशि ! जो शिवयोगी वीरशैव मत में दीक्षित हो जाते हैं, उनको देखकर तो यमराज के किंकर दूर से ही भाग खड़े होते हैं।।४६।।

भस्म, रुद्राक्ष और इष्टलिंगधारी शिवयोगी को देखकर पापीजन भी निःसन्देह सभी तरह के पापों से तत्काल मुक्त हो जाते हैं।।४७।। हे देवि ! जिसके ललाट पर भस्म लगी है, जिसके कण्ठ में शिवस्वरूप इष्टलिंग विराजमान है, शरीर पर जिसने रुद्राक्ष धारण किये हैं, निःसन्देह वह शिवस्वरूप हो जाता है।।४८।। जो व्यक्ति शिव के सारूप्य को प्राप्त करना चाहता है, उसे शिवयोगी की पूजा करनी चाहिये। शिवयोगी की निन्दा करने वाला अवश्य ही घोर रौरव नरक में जाता है।।४९।। हे प्रिये ! वीरशैव दीक्षाप्राप्त शिवयोगी अपने कण्ठ में इष्टलिंग को सदा धारण किये रहता है, अतः वह सर्वोत्तम है। इसलिये उसका प्रतिदिन दर्शन करना चाहिये।।५०।। मेरे प्रति, तुम्हारे प्रति और शिवलिंग के प्रति जिस तरह की पवित्र धारणा रखी जाती है, उसी तरह की भावना वीरशैव मत में दीक्षित उत्तम व्यक्ति के प्रति भी रखनी चाहिये।।५१।। हे शिवे ! उसकी

तस्य पूजा मम शिवे तन्निन्दा च ममैव हि ।
यद्यस्ति मयि सद्भक्तिरर्चयेच्छिवयोगिनम् ।।५२।।
निमिषं निमिषार्धं वा यत्र स्युः शिवयोगिनः ।
तत्कैलासं परं विद्धि तत्र काशी शिवोऽप्यहम्[१] ।।५३।।
मम यो धारयेल्लिङ्गं यथोक्तं गुरुणा शिवे ।
चाण्डालस्पृष्टदोषोऽपि स्मरतो नश्यति क्षणात् ।।५४।।
न तस्य जातिभेदोऽस्ति न शुच्यशुचिकल्पना ।
न स्पृष्टिर्नापि वाऽशुद्धिः सर्वं शिवमयं यतः ।।५५।।
भुक्त्वाऽवशिष्टपात्रं यत्तदुच्छिष्टधिया शिवे ।
क्षालयेच्छिवयोगी यः स याति नरकं ध्रुवम् ।।५६।।
न स्पृष्टिर्न रजोदोषो न स्त्रीबालादिकल्पना ।
न जन्ममरणाशौचं न स्नानादिविधिर्यतः ।।५७।।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये चान्यजातयः ।
लिङ्गधारणमात्रेण शिवा एव न संशयः ।।५८।।

पूजा मेरी ही पूजा है और उसकी निन्दा भी मेरी ही निन्दा है। मेरे प्रति जिस व्यक्ति की सच्ची भक्ति है, उसे शिवयोगी की पूजा करनी चाहिये।।५२।। निमेष अथवा आधे निमेष के लिये भी जिस स्थान पर शिवयोगी ठहरते हैं, वही स्थान श्रेष्ठ कैलास बन जाता है। वही काशी है और मैं स्वयं भी वहीं रहता हूँ।।५३।। हे शिवे ! गुरु की बताई गई पद्धति से जो इष्टलिंग को धारण करता है, उसका स्मरण करने मात्र से चाण्डाल-स्पर्शजन्य दोष तत्काल नष्ट हो जाता है।।५४।। यहाँ जातिभेद की कल्पना नहीं रह जाती, पवित्रता और अपवित्रता की कल्पना भी समाप्त हो जाती है। स्पर्शदोष और अशुद्धि सब कुछ समाप्त हो जाते हैं, क्योंकि यहाँ तो सब कुछ शिवमय है।।५५।। हे शिवे ! भोजन करने के बाद जो शिवयोगी उच्छिष्ट बुद्धि से उस पात्र को धोता है, वह निश्चित ही नरक में जाता है।।५६।। इस मत में स्पर्शदोष, रजोदोष, स्त्री-बालक आदि की कल्पना, जन्म और मरणजन्य आशौच तथा स्नानविधि आदि की कोई मान्यता नहीं है।।५७।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा अन्य किसी भी जाति का व्यक्ति हो, वह इष्टलिंग को धारण करने मात्र से निःसन्देह शिवस्वरूप हो जाता है।।५८।।

---

१. स्म्यहम्-क।

स्त्रियो बालास्तथा वृद्धा खञ्जाः कुब्जान्धपङ्गवः ।
उन्मत्ता बधिराः [१]काणाः शठा धूर्ताश्च वञ्चकाः ।।५९।।
चोरा जारास्तथा वेश्या आचाण्डालान्तसंभवाः ।
मल्लिङ्गधारणादेव मद्रूपा एव ते शिवे ।।६०।।
न बालवृद्धभेदोऽस्ति नमस्कारादिपूजने ।
सर्वेऽपि वन्दनीया हि विधवापुष्पिणीमुखाः ।।६१।।
यस्यास्ति भक्तिरीशानि वीरशैवमताश्रये ।
भक्तिमात्रपवित्रा हि सर्व [२]एवाधिकारिणः ।।६२।।

देव्युवाच

वीरपदनिर्वचनविषयकः प्रश्नः

जय शङ्कर सर्वेश सर्वज्ञ सकलोत्तम ।
मते तु वीरपूर्वत्वे किं प्रमाणमिहोच्यताम् ।।६३।।
यौगिकं रूढिकं वेदमुपचारोऽपि वा प्रभो ।
तदद्य कथयेशान नास्ति चान्यस्य चेदृशम् ।।६४।।

हे शिवे ! स्त्री, बालक, वृद्ध, लूले, कुबड़े, अन्धे, लंगड़े, पागल, बहरे, काने, कपटी, धूर्त, ठग, चोर, व्यभिचारी, वेश्या और चाण्डाल पर्यन्त सभी प्राणी इष्टलिंग के धारण करने से शिवस्वरूप हो जाते हैं।।५८-६०।। नमस्कार करने में, पूजा करने में यहाँ बालक अथवा वृद्ध का भेद नहीं किया ज़ाता। विधवा, रजस्वला आदि सभी यहाँ वन्दनीय माने जाते हैं।।६१।। हे ईश्वरि ! वीरशैव मत के प्रति जिनकी भक्ति है, वे सब उसके अधिकारी माने जाते हैं, क्योंकि भक्तिमात्र से वे पवित्र हो जाते हैं।।६२।।

पार्वती का प्रश्न

हे शंकर ! आपकी जय हो। आप सबके स्वामी, सर्वज्ञ और सबमें श्रेष्ठ हैं। वीरशैव मत में वीर शब्द पहले क्यों जोड़ा गया है? इसमें क्या प्रमाण है? यह आप मुझे बतावें।।६३।। हे प्रभो ! यह वीर शब्द यौगिक (धातु से निष्पन्न) है, रूढ़ (लोकप्रसिद्ध) है या औपचारिक (औपाधिक) है? हे सबके स्वामी ! आप मुझे बताइये कि यह पद अन्य किसी मत से क्यों नहीं जुड़ा हुआ है।।६४।।

---

१. कुष्ठाः–क.। २. एका–ख. ग. घ.।

ईश्वर उवाच

साधु पृष्टं त्वया देवि सर्वलोकहितं त्विदम् ।
महारहस्यमेतत् ते वक्ष्ये मोहवशार्दितः ।। ६५ ।।

वीरपदनिर्वचनम्

वीरत्वं नाम विश्वेशि तुरीया यत्र यत्र वै ।
गुरूक्तमार्गनिरता मते वीरपदाभिधे ।। ६६ ।।
सर्वेऽपि वीरा देवेशि तुरीयास्तत्र[1] तत्र ये ।
किन्तु मे शैवभेदो यो वीरशैवः स उच्यते ।। ६७ ।।
अन्यत्र कर्मबाहुल्यादाचारस्य व्यतिक्रमात् ।
न चित्तशुद्ध्यलाभाच्च भेद[2]सद्भावतः सुखम् ।। ६८ ।।

लिङ्गधारणमाहात्म्यम्

अत्र वक्ष्ये विशेषं ते लिङ्गधारणवैभवात् ।
भक्तिमात्रेण कल्याणि सुखं दुःखाम्बुधिं तरेत् ।। ६९ ।।

ईश्वर का उत्तर

हे देवि ! तुमने यह सही प्रश्न किया है। इस प्रश्न में समस्त जिज्ञासुओं का कल्याण छिपा हुआ है। यद्यपि इसका उत्तर अत्यन्त गोपनीय है, तो भी तुम्हारे प्रति मोह के वशीभूत हो मैं इस रहस्य को प्रकट करूँगा।।६५।।

हे विश्वेश्वरि ! तुरीय अवस्था में पहुँचे हुए सभी योगी यद्यपि वीर कहलाते हैं, किन्तु इस वीरशैव में वीर वे हैं, जो कि गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग का दृढ़ता से पालन करते हैं।।६६।। हे देवेशि ! तुरीय दशा में पहुँचे हुए सभी मतों के अनुयायी यद्यपि वीर हैं, किन्तु यह शब्द अब वीरशैव नामक शैव मत के लिये रूढ़ हो गया है।।६७।। अन्य मतों में कर्मकाण्ड की बहुलता है। इसी से सदाचार का पालन सही रूप से नहीं होने पाता और इससे चित्त की शुद्धि भी नहीं होने पाती। भेदभाव के नष्ट न हो पाने से उसको आत्मसुख की अनुभूति भी नहीं होने पाती।।६८।।

हे कल्याणि ! वीरशैव मत की इस विशेषता को मैं तुम्हें बताऊँगा कि यहाँ इष्टलिंग धारण की महिमा से भक्तिमात्र से मनुष्य सुखपूर्वक दुःखसागर को पार कर लेता है।।६९।। इस श्रेष्ठ वीरशैव मत में प्रवेशमात्र से इष्टलिंगधारण की महिमा के

---

१. या यत्र यत्र–ग. घ.। २. भेदः–घ. ङ.।

प्रवेशमात्रेण मते मम शैवे मतोत्तमे ।
अनायासेन सुसुखं[1] लिङ्गधारणवैभवात् ।।७०।।
अन्यत्र नास्ति मल्लिङ्गधारणं मतवर्तिषु ।
शैवस्थ एव कुर्वीत लिङ्गधारणमीश्वरि ।।७१।।
मतान्तरस्थो यो मूढः कुर्यान्मल्लिङ्गधारणम् ।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतो नरकमश्नुते ।।७२।।
[2]यो विना गुरुकारुण्यमिच्छया लिङ्गधारणम् ।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतो नरकमश्नुते ।।७३।।
योऽन्यधर्मः परं धर्ममाचरेदिच्छयाऽन्वितः ।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतो नरकमश्नुते ।।७४।।
यदि भक्तिर्दृढा देवि मम लिङ्गस्य धारणे ।
शिवयोगिनमाश्रित्य तं गुरुं शिवमर्चयेत् ।।७५।।

दीक्षां विना लिङ्गधारणे दोषः

शिवदीक्षां विना देवि यः कुर्याल्लिङ्गधारणम् ।
स याति नरकं घोरं यस्त्यजेत्तदभक्तितः ।।७६।।

सहारे मनुष्य अनायास आत्मसुख को प्राप्त कर लेता है।।७०।। हे ईश्वरि ! अन्य मतों में इष्टलिंग धारण का विधान नहीं है। वीरशैव मत को स्वीकार करके ही मनुष्य को इष्टलिंग धारण करना चाहिये।।७१।। अन्य मत का अनुसरण करने वाला जो मूर्ख व्यक्ति इष्टलिंग को धारण करेगा, तो जीवित अवस्था में चाण्डालसदृश हो जायगा और मरने के बाद नरक में जायगा।।७२।। अन्य मत में रहता हुआ जो अन्य मत के आचारों का इच्छापूर्वक आचरण करता है, वह जीवित अवस्था में चाण्डाल बन जाता है और मरने के बाद नरक में जाता है।।७३।। जो व्यक्ति बिना गुरुकृपा (बिना दीक्षा) के अपनी इच्छा से इष्टलिंग धारण करता है, वह जीवित अवस्था में चाण्डाल बन जाता है और मरने के बाद नरक में चला जाता है।।७४।। हे देवि ! यदि किसी को इष्टलिंग के धारण में दृढ़ भक्ति है, तो वह शिवयोगी के पास जाकर उस गुरुरूप शिव की पूजा करे।।७५।।

हे देवि ! शिवदीक्षा के बिना जो इष्टलिंग धारण करता है अथवा भक्ति के अभाव में जो उसका परित्याग कर देता है, वह घोर नरक में जाता है।।७६।। हे ईश्वरि ! इसलिये

---

१. ससुखं-ग. घ.।　२. श्लोकयोः (७३-७४) विपर्यस्तः पाठः-ग. घ.।

विना विधानमीशानि न कुर्याल्लिङ्गधारणम् ।
कृतं चेदकृतं विद्धि न तच्छैवमतं भवेत् ।।७७।।

वीरशैवमतोत्कर्षः

लिङ्गधारणमात्रेण शिवत्वप्राप्तिरेव हि ।
शैवं मम मतं देवि सद्योमुक्तिविधायकम् ।।७८।।
तस्माच्छैवमतं सर्वमतानामुत्तमोत्तमम् ।
मम स्वरूपं देवेशि मल्लिङ्गस्य च धारणात् ।।७९।।
विना नानुग्रहं तेषां मम शैवमते शिवे ।
भक्तिः सम्पद्यते क्वापि तत्पुनर्भवभाजनम् ।।८०।।
सकृत् प्रविश्य च नरो गतेषु बहुजन्मसु ।
मम शैवमते देवि सोऽहमेव न संशयः ।।८१।।

पञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्यम्

यथा नदीनां सर्वासां पुण्या भागीरथी शिवे ।
यथैव भवती सर्वयोषितां पुरुषेष्वहम् ।।८२।।

बिना गुरुदीक्षा रूप विधिविधान के इष्टलिंग धारण नहीं करना चाहिये। यदि कोई ऐसा करता है, तो वह न करने के बराबर है, क्योंकि बिना संस्कार के इष्टलिंग धारण वीरशैव मत में स्वीकृत नहीं है।।७७।।

हे देवि ! इष्टलिंग के धारण मात्र से निश्चय ही शिवत्व की प्राप्ति हो जाती है, क्योंकि यह वीरशैव मत तत्काल मुक्ति का विधान बताता है।।७८।। हे देवि ! इसलिये यह वीरशैव मत सभी मतों के बीच सर्वश्रेष्ठ है। इष्टलिंग को धारण करने से वह शिवभक्त साक्षात् शिव का ही स्वरूप हो जाता है।।७९।। हे पार्वति ! मेरे अनुग्रह के बिना किसी भी व्यक्ति की वीरशैव मत में श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न नहीं होती। वह तो पुनर्भव, अर्थात् जन्म-मरण की परम्परा में पड़ा रहता है।।८०।। हे देवि ! बहुत सी जन्म-परम्पराओं के बीत जाने के बाद जो मनुष्य एक बार वीरशैव मत में प्रवेश करता है, वह निःसन्देह शिव-स्वरूप हो जाता है।।८१।।

हे शिवे ! जैसे सभी नदियों में भागीरथी गंगा श्रेष्ठ है, उसी तरह सभी स्त्रियों में तुम और सभी पुरुषों में मैं श्रेष्ठ हूँ।।८२।। इसी तरह से सभी पुण्य क्षेत्रों में काशी,

यथैव काशी क्षेत्राणां[१] तीर्थेषु मणिकर्णिका ।
मम पञ्चाक्षरीमन्त्रः सर्वमन्त्रेषु वै यथा ।।८३।।
यथैव सर्वलोकेषु कैलासस्थानमावयोः ।
तथा शैवमतं देवि विद्धि सर्वोत्तमोत्तमम् ।।८४।।
मम सर्वोत्तमत्वेन मत्सृष्टत्वात् परस्य च ।
तदेव तारतम्यं ते मते मम परत्र तु ।।८५।।
यथा [२]वर्धयते राजा भृत्यं कर्मानुसारतः ।
तारतम्यपदं दत्त्वा तथैवाहं मते मम ।।८६।।

शिवलिङ्गमहिमा

विशेषं तत्र वक्ष्यामि रहस्यं गोप्यतां त्वया ।
न प्रकाशय कुत्रापि विना भक्तं सुलक्षणम् ।।८७।।
देवालयादिषु यथा चित्रादिषु यथा गृहे ।
दृश्यते चाकृतिर्यस्य तज्ज्ञानं जायते स्फुटम् ।।८८।।

तीर्थों में मणिकर्णिका और सभी मन्त्रों में शिव-पञ्चाक्षरी मन्त्र श्रेष्ठ है।।८३।। हे देवि ! जैसे हम दोनों को कैलास पर्वत अन्य सभी लोकों की अपेक्षा अत्यन्त प्रिय है, उसी तरह से यह वीरशैव मत भी अन्य सभी मतों की अपेक्षा सर्वोत्तम है।।८४।। अन्य सभी देवताओं की अपेक्षा मैं सर्वोत्तम हूँ, इसीलिये मेरे द्वारा प्रवर्तित मत भी सर्वोत्तम है। मुझमें और अन्य देवताओं में जो तारतम्य है, वही तारतम्य अन्य मतों के संबन्ध में भी समझना चाहिये।।८५।। जैसे राजा अपने सेवक को उसकी सेवा से सन्तुष्ट हो क्रमशः उच्च पद प्रदान कर उसे बढ़ावा देता है, उसी तरह से वीरशैव मत का अनुसरण करने वाले को मैं भी आगे बढ़ाता हूँ।।८६।।

यहाँ मैं एक विशेष रहस्य की बात तुम्हें बताता हूँ, इसे गुप्त रखो। सुलक्षण भक्त के सिवाय अन्य किसी के सामने इसे प्रकाशित मत करो।।८७।। मन्दिर आदि में, चित्र आदि में अथवा अपने घर में हम जिसकी आकृति देखते हैं, उसका स्पष्ट ज्ञान हमें होता है।।८८।। इसी तरह से वीरशैव मत में दीक्षा के समय प्राप्त मन्त्र

---

१. क्षेत्रेषु-ग. घ.। २. वर्वयते-क.।

एवं [1]हि वीरमन्त्रे तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
लिङ्गस्य दर्शनाद् देवि मम ज्ञानं प्रजायते ।।८९।।
गतेषु बहुसंख्येषु दुःखरूपेषु जन्मसु ।
मत्कारुण्येन तस्यान्ते जायते लिङ्गदर्शनम् ।।९०।।
यदीदमिति[2] जानाति लिङ्गं मम महेश्वरि ।
मज्ज्ञानाद्दर्शनात्सद्यो मल्लिङ्गस्य च सोऽस्म्यहम् ।।९१।।
एवं हि महिमा देवि मम लिङ्गस्य किं पुनः ।
धृते तु तस्मिन् स्वतनौ सर्वा लिङ्गमयी तनुः ।।९२।।
लीलार्थकमपि त्वीशि यत्तल्लिङ्गमुदाहृतम् ।
तल्लिङ्गमयमित्येतच्छरीरं तस्य धारणात् ।।९३।।

देव्युवाच

किमर्थं सर्वे लिङ्गधारणं न कुर्वन्तीति प्रश्नस्तत्समाधानं च

वृषध्वज वृषारूढ विरूपाक्ष विषादन ।
न ते कुर्वन्ति किं सर्वे लिङ्गधारणमीश्वर ।।९४।।

से व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है। ऐसे शिवभक्त को इष्टलिंग का दर्शन करने मात्र से शिवज्ञान प्राप्त हो जाता है।।८९।। अनेक प्रकार के दुःखों से भरे हुए असंख्य जन्मों के बीत जाने के उपरान्त उसका अन्तिम जन्म आने पर मैं उस पर अपनी अनुग्रह-दृष्टि डालता हूँ। तब उसे इष्टलिंग का दर्शन होता है।।९०।। हे महेश्वरि ! उस अनुग्रह-दृष्टि के कारण वह इष्टलिंग के वास्तविक स्वरूप को पहचानता है। उस स्थिति में वह इष्टलिंग के दर्शन मात्र से तत्काल यह जान लेता है कि मैं शिव ही हूँ।।९१।। हे देवि ! इष्टलिंग के दर्शन की यह महिमा है। जब शिवभक्त इसको अपने शरीर पर धारण कर लेता है, तब तो उसका सारा शरीर ही लिंगमय हो जाता है।।९२।। हे पार्वति ! शास्त्रों में लिंग शब्द का प्रयोग शिव की नाना प्रकार की लीलाओं के लिये भी किया गया है। उस शिवलिंग के धारण से शिवभक्त का शरीर भी लीलामय हो जाता है।।९३।।

पार्वती का प्रश्न

हे वृषभध्वज, नन्दीवाहन, तीन नेत्र वाले, विष का पान करने वाले ईश्वर ! जब ऐसी स्थिति है, तब सब कोई इष्टलिंग को क्यों नहीं धारण करते।।९४।।

---

१. त्वमत्रादप्यत्र-ग. ब. ङ.। २. यदेतदिति-ख. ग. घ., यदेतमिति-ङ.।

ईश्वर उवाच

कथं भविष्यति शिवे विना मत्करुणां नृणाम् ।
कर्मपूरितदृष्टीनां मन्मायामोहितात्मनाम् ।। ९५।।

लिङ्गपूजाविधानम्

तदनुष्ठानमात्रेण विधूयाखिलबन्धनम् ।
सर्वकल्याणनिलयं मम सायुज्यमेति सः ।। ९६।।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शक्त्याऽशक्त्यादिनापि वा ।
यन्न्यूनमतिरिक्तं वाऽवस्थात्रययुतोऽपि वा ।। ९७।।
विगुणा[1] यान्ति साद्गुण्यं शैवस्थशिवयोगिनः ।
सकृल्लिङ्गार्चनेनैव यत्तद्रूपं महेश्वरि ।। ९८।।
सर्वत्र मम दर्शित्वं भक्तिरेकान्तरूपिणी ।
मन्मतस्थस्य[2] मत्प्राप्त्यै द्वयमेव हि साधनम् ।। ९९।।
न [3]पुष्पिणी त्यजेत् पूजां न भुक्त्वा नाशुचिस्त्वपि ।
यदैव पूजयेल्लिङ्गं तदाऽनुग्राहको ह्ययम् ।। १००।।

ईश्वर का उत्तर

हे पार्वति ! मेरी कृपा के बिना मेरी माया से मोहित, भले और बुरे कर्मों की अधिकता के कारण भ्रमित दृष्टि वाले मनुष्यों का उद्धार कैसे हो सकता है।।९५।।

इष्टलिंग धारण कर उसकी आराधना करने मात्र से मनुष्य समस्त बन्धनों को काट कर सभी प्रकार के अभ्युदय के खजाने को, मेरी सायुज्य पदवी को प्राप्त कर लेता है।।९६।। जानते हुए अथवा अनजाने में, शक्तिपूर्वक अथवा उसके अभाव में, न्यूनता अथवा अधिकता में— इन तीनों ही स्थितियों में हे महेश्वरि! एक ही बार इष्टलिंग की पूजा करने से वीरशैव मत में स्थित शिवयोगी की सारी विगुणता सगुणता में बदल जाती है।।९७-९८।। वीरशैव मत में स्थित शिवयोगी के लिये मेरी प्राप्ति के दो ही उपाय हैं— एक तो सर्वत्र मेरे ही स्वरूप का दर्शन करना और दूसरा मेरे प्रति एकान्त भक्ति।।९९।। स्त्री रजस्वला भले ही हो, उसे इष्टलिंग पूजा कभी नहीं छोड़नी चाहिये। इसी तरह भोजन के बाद भी और अशुचि अवस्था में भी इष्टलिंग पूजा नहीं छोड़नी चाहिये। भक्त जिस किसी अवस्था में जब भी इष्टलिंग की पूजा करता है, मैं उस पर अनुग्रह करता हूँ।।१००।। इष्टलिंग के स्मरण से, कीर्तन से और उसको धारण

१. विगुणं याति–ग. ङ.। २. स्य च–ख. घ.। ३. पुष्पाणि–क.।

स्मरणात् कीर्तनाद् देवि मम लिङ्गस्य धारणात् ।
अनायासेनातिशयं फलं स्यादुत्तमोत्तमम् ।।१०१।।
न मेऽस्ति यस्मिन् कारुण्यं न तस्यात्र रुचिर्भवेत् ।
यदैव स्यादत्र रुचिस्तदा मुक्तो न संशयः ।।१०२।।
अतो [१]महारहस्यं हि मतमेतन्महत्तरम् ।
शैवं पाशुपतं चेति यदेकं नामभेदतः ।।१०३।।
तत्र सप्तविधेष्वेषु वीरशैवं महत्तरम् ।
शैवे वीरत्वमात्रेण किं पुनर्लिङ्गधारणात् ।।१०४।।

शिवयोगिमहिमा

यथैव दर्शनाल्लोके शिखरस्य शिवालये ।
नश्यन्त्यनेकपापानि शिवत्वं ज्ञानसंभवात् ।।१०५।।
तथैव दर्शनाल्लिङ्गधारिणः शिवयोगिनः ।
सद्यो नश्यन्ति पापानि तमः सूर्योदये यथा ।।१०६।।

करने से अनायास अतिशय उत्तम से उत्तम फल मिलता है।।१०१।। जिस जीव पर मेरी कृपा-दृष्टि नहीं पड़ती, उसकी इष्टलिंग की आराधना में रुचि जगती ही नहीं। यदि उसका मन शिवपूजा में रम जाता है, तो वह निःसन्देह मुक्त हो जाता है।।१०२।। अतः यह वीरशैव मत सर्वश्रेष्ठ है, इसमें मेरी उपासना का सारा रहस्य छिपा हुआ है। वीरशैव और पाशुपत मत में नाम-भेद होते हुए भी ये दोनों एक ही हैं।।१०३।। सात प्रकार के शैव मतों में वीरशैव मत सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि यहाँ शैव पद के साथ वीर पद इसलिये जुड़ा हुआ है कि उसका अनुयायी वीर पुरुष के समान दृढ़ संकल्प के साथ इष्टलिंग धारण करता है।।१०४।।

लोक में यह बात प्रचलित है कि मन्दिर के शिखर को देखने से मनुष्य के सारे पाप नष्ट होकर उसमें शिवज्ञान प्रगट हो जाता है। इष्टलिंगधारी शिवयोगी के दर्शनमात्र से भी उसी तरह से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय के साथ ही सारा अन्धकार दूर हो जाता है।।१०५-१०६।। हे महादेवि ! इसीलिये कलिकाल

---

१. मम–ग. घ. ङ.।

अत एव महादेवि गुप्तं मतमिदं कलौ ।
मन्मतज्ञानमात्रेण मुच्येयुरपि पापिनः ।। १०७ ।।
लाभः[1] शैवमतस्यैको वीरशैवप्रवर्तनम् ।
भक्तिर्भूतदया चेति मत्कैवल्यं चतुर्विधम् ।। १०८ ।।
यदि चास्त्यधिकं मत्तस्तदा स्यान्मन्मतात् परम् ।
यदि स्यान्मत्परं देवि मत्स्वातन्त्र्यं कुतस्तदा ।। १०९ ।।
इत्थं ते कथितं देवि मतभेदमतः परम् ।
तारतम्यं फलं चापि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।। ११० ।।

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे शिवाद्वैतसिद्धान्ते वीरशैव-
दीक्षाप्रकरणे मतभेदनिरूपणं नाम
प्रथमः पटलः समाप्तः[2] ।।१।।

में इस मत को गुप्त रखा गया है। मेरे इस मत को जानने मात्र से पापी व्यक्ति भी मुक्त हो जाते हैं।।१०७।। शैवमत के अनुसरण का एक सबसे बड़ा लाभ यह है कि भक्त की वीरशैव मत की ओर प्रवृत्ति होती है। उसमें ईश्वरभक्ति और भूतदया जाग्रत् होती है और उसे चतुर्विध कैवल्य की प्राप्ति होती है।।१०८।। हे देवि ! यदि मुझसे बढ़कर कोई देवता हो, तो मेरे मत से बढ़कर कोई दूसरा मत भी हो सकता है। यदि मुझसे भी बढ़कर दूसरा कोई होगा, तो मेरी स्वतन्त्रता कहाँ रह जायगी।।१०९।। हे देवि ! इस तरह से मतभेदों का यह सारा विवरण देकर उनकी ज्येष्ठता-कनिष्ठता का भी सारा स्वरूप और फल तुम्हें बता दिया है। अब आगे तुम फिर क्या सुनना चाहती हो।।११०।।

इस प्रकार शिवाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक श्रीपारमेश्वर तन्त्र के
वीरशैवदीक्षा प्रकरण में नाना मतों का निरूपण करने वाला
यह प्रथम पटल समाप्त हुआ।।१।।

---

१. लोभः–ख.। २. 'समाप्तः' नास्ति–क. ख. ङ.।

द्वितीयः पटलः

लिङ्गसज्जिकादिलक्षणम्

देव्युवाच

त्रियम्बक नमस्तेऽस्तु त्रिपुरघ्न यमान्तक ।
वद मे करुणासिन्धो लिङ्गधारणलक्षणम् ।।१।।
दीक्षादि क्रमशः सर्वं सज्जिकादिगुणादिकम् ।
शिवाग्निजननं चापि सर्वं विस्तरतः प्रभो ।।२।।

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि लिङ्गानां भेदमादितः ।
दीक्षायाः सज्जिकादेश्च सर्वं निगदतो [१]मम ।।३।।

लिङ्गलक्षणं भेदाश्च

मम लिङ्गमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
मम लिङ्गमिदं विद्धि [२]पाषाणादिविनिर्मितम् ।।४।।

पार्वती का प्रश्न

हे त्रिपुरनाशक, यमराज का भी अन्त कर देने वाले, तीन नेत्रों वाले, करुणा के सागर, भगवन् शिव ! मुझे आप इष्टलिंग धारण की सारी विधि बताइये।।१।। हे प्रभो ! क्रमशः आप दीक्षाविधि, सज्जिका और गुण (शिवसूत्र) आदि का स्वरूप और शिवाग्नि को उत्पन्न करने की पद्धति, यह सब विस्तार से समझाइये।।२।।

ईश्वर का उत्तर

हे देवि ! तुम सावधानी से सुनो। मैं तुमको पहले लिंगों के भेद का, तब दीक्षाविधि का और बाद में सज्जिका आदि का स्वरूप बता रहा हूँ।।३।।

इस जगत् में स्थावर (स्थिर) और जंगम (चर) जो कुछ भी है, वह सब शिवलिंग स्वरूप है। पाषाण, धातु आदि से जो बना है, उसे भी तुम शिवलिंग स्वरूप ही समझो।।४।। नर्मदा आदि नदियों से उत्पन्न, पर्वत से उत्पन्न, पुण्यक्षेत्र में प्रकट हुआ,

---

१. दितं मया–क. ख.। २. य(म)त्पाषाणमयं शिवे–कटि.।

नादेयं शैलसंभूतं पुण्यक्षेत्रसमुद्भवम् ।
गङ्गोद्भवं सागरजं लिङ्गं तन्मम संमतम् ।।५।।
यद्देवि शिवनाभाख्यं लिङ्गं तत्परमुत्तमम् ।
यद्दीयते हि गुरुणा लिङ्गं सर्वोत्तमोत्तमम् ।।६।।
काम्यान्यन्यानि लिङ्गानि तत्तदिष्टार्थदानि हि ।
सौवर्णपारदादीनि स्थूलं स्थूलं प्रशस्यते ।।७।।
क्रमुकाकृतिमारभ्य यावदिच्छास्ति धारणे ।
उत्तरादुत्तरं[१] श्रेष्ठं मम लिङ्गं महेश्वरि ।।८।।
पारदं[२] सर्वकामाय सौवर्णं वित्तकामिनः ।
राजतं तु प्रजाकामि ताम्रं शत्रुविनाशनम् ।।९।।
त्रपुजं रोगनाशाय सीसकं पापनाशनम् ।
स्फाटिकं ज्ञानदं पुण्यं रुद्राक्षं मोक्षदायकम् ।।१०।।
दारुजं सर्वनाशाय कांस्यं रोगार्तिदायकम् ।
श्रीशैलजं महादेवि ह्यैहिकामुष्मिकप्रदम् ।।११।।

गंगा और सागर में उत्पन्न लिंग भी मेरा ही स्वरूप है।।५।। हे देवि ! इन सबमें मन्दिर में विधिवत् स्थापित शिवलिंग सर्वश्रेष्ठ है। दीक्षाविधान पूर्वक गुरु के द्वारा प्रदत्त इष्टलिंग इससे भी श्रेष्ठ है।।६।। साधकों को इष्टफल देने वाले अन्य अनेक प्रकार के काम्य लिंग भी हैं। इनमें सुवर्ण, पारद इत्यादि से बने हुए लिंग आकार में जितने बड़े होते हैं, तदनुसार ही वे बढ़कर फल प्रदान करते हैं।।७।। हे महेश्वरि ! इन लिंगों की मोटाई सुपाड़ी के आकार से लेकर धारक की इच्छा के अनुसार बड़ी बनाई जा सकती है। लिंग के आकार की वृद्धि के अनुसार ही उसकी श्रेष्ठता बढ़ती जाती है।।८।। पारद लिंग सभी कामनाओं को पूरा करने वाला, सुवर्णनिर्मित लिंग धन देने वाला, चाँदी का लिंग सन्तति देने वाला और तांबे का बना लिंग शत्रु का नाश करने वाला है।।९।। जस्ते का बना लिंग रोग का नाशक, सीसे का बना पापों का नाशक, स्फाटिक लिंग ज्ञानद एवं पुण्यद और रुद्राक्ष का लिंग मोक्ष का प्रदाता है।।१०।। हे महादेवि ! दारु (काष्ठ = लकड़ी) का बना लिंग सर्वनाश कर देता है। कांसे का लिंग रोग और पीड़ा पहुँचाता है। श्रीशैल के पाषाण से निर्मित लिंग ऐहिक और आमुष्मिक सभी सुखों को देता है।।११।। हे देवि ! इन सभी लिंगों में सर्वोत्तम और सभी कामनाओं को पूरा करने

---

१. त्तराच्छ्रेष्ठं–क. ङ.।　२. रत्नजं–कटि.।

सर्वोत्तमोत्तमं लिङ्गं सर्वाभीष्टार्थदायकम् ।
यद्दत्तं गुरुणा देवि लिङ्गं तदहमेव हि ।।१२।।
बदरीफलमानं तु कृतं धर्माभिवृद्धिदम् ।
क्रमुकीफलमानं तु धर्तुः सर्वार्थदायकम् ।।१३।।
जम्बीरफलमानं तु सर्वकामार्थदायकम् ।
ततोऽधिकं प्रियं यावच्चतुर्वर्गफलप्रदम् ।।१४।।
न प्रमाणं तदन्तस्य शिवनाभस्य पार्वति ।
यद्दत्तं गुरुणा तस्य सर्वलक्षणलक्षितम् ।।१५।।
सर्वसाधारणं देवि सर्वसौभाग्यदायकम् ।
सर्वसिद्धिकरं लिङ्गं यच्च पाषाणनिर्मितम् ।।१६।।
सर्वोत्तमोत्तमं लिङ्गं यच्च श्रीशैलजं शिवे ।

केचन नियमाः

दोषाश्च बहवः सन्ति [१]दृष्ट्याादीनि धरात्मजे ।।१७।।

वाला इष्टलिंग तो वह है, जो कि गुरु के द्वारा विधिवत् प्रदत्त है, क्योंकि उसमें मैं स्वयं निवास करता हूँ।।१२।। बदरीफल (बेर) के समान आकृति वाला इष्टलिंग धारक की धर्मबुद्धि को बढ़ाता है। सुपारी के समान मान (प्रमाण) वाला इष्टलिंग धारक की सारी इच्छाएँ पूरी करता है।।१३।। जंबीरफल (नींबू) के आकार का इष्टलिंग सभी कामनाओं को पूरा करता है। इससे बड़ा भी इष्टलिंग अपनी प्रिय आकृति का धारण किया जा सकता है। उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है।।१४।। हे पार्वति ! शिवनाभ नामक लिंग के आकार की कोई अन्तिम सीमा नहीं है। इसी तरह से गुरु के द्वारा दीक्षा के समय प्रदत्त इष्टलिंग सर्वश्रेष्ठ है, उसे सभी लक्षणों से युक्त माना जाता है।।१५।। हे देवि ! पाषाणनिर्मित इष्टलिंग सामान्य रूप से सभी के धारण करने योग्य है। यह इष्टलिंग सर्वविध सौभाग्य को देने वाला और सभी प्रकार की सिद्धियों को सुलभ कराने वाला है।।१६।। हे शिवे ! श्रीशैल के पाषाण से निर्मित इष्टलिंग सर्वोत्तम माना जाता है।

---

१. हृष्ट्या–क. छिन्नभिन्नादयः शिवे–कटि।

अन्यलिङ्गेषु सर्वेषु नैव पाषाणसंभवे ।
जातके मृतकाशौचे मलमूत्रविसर्जने ॥ १८॥
रतावशुद्धावुद्योगे रणे निद्रादिषु प्रिये ।
कर्मणा मनसा वाचा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥ १९॥
न लिङ्गमुत्सृजेत् क्वापि प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
न पूजापि परित्याज्या कृच्छ्रेऽपि कुलनायिके[1] ॥ २०॥
न सकृत् स्मरणं वापि मम लिङ्गस्य सद्गुरोः ।
तेष्वेकतममादाय लिङ्गं स्वाभिमतं शिवे[2] ॥ २१॥
धारयेदात्मतादात्म्यं प्राणलिङ्गं ममेति तत् ।
अथ कुर्यान्महादेवि सज्जिकाख्यं तदालयम् ॥ २२॥

स्थिरचरभेदेन लिङ्गद्वैविध्यम्

यथा स्थिरस्य लिङ्गस्य तद्वदेव चरस्य च ।
स्थिरलिङ्गालयं देवि प्रसिद्धं [3]दृढलक्षणम् ॥ २३॥

अन्य सभी प्रकार के इष्टलिंगों में अनेक प्रकार के दोष आ जाते हैं, किन्तु ये दोष श्रीशैल के पाषाण से निर्मित इष्टलिंग में नहीं आते।।१७-१८।। हे प्रिये ! जननाशौच अथवा मरणाशौच के उपस्थित होने पर, मल और मूत्र का विसर्जन करते समय, रतिकाल में, किसी अपवित्र कार्य को करते समय, युद्धभूमि में, नींद लेते समय अथवा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति दशा में भी कर्म, वाणी और मन से कभी भी इष्टलिंग को शरीर से अलग करने की न सोचे, भले ही प्राण निकल जांय। इसी तरह से अत्यन्त संकट आने पर भी पूजा का कभी परित्याग न करे।।१८-२०।। हे शिवे ! इष्टलिंग का और सद्गुरु का एक बार सहारा ले लेने के बाद इनका विस्मरण कभी नहीं करना चाहिये। ऊपर बताये गये इष्टलिंगों में से किसी एक इष्टलिंग का इच्छानुसार ग्रहण कर यह मेरा प्राणलिंग है, इस प्रकार अपनी आत्मा से उसका तादात्म्य स्थापित कर उसे धारण करना चाहिये। हे महादेवि ! इष्टलिंग का निर्धारण हो जाने के बाद उसके निवास के लिये सज्जिका बनानी चाहिये।।२१-२२।।

स्थिरलिंग के लिये जैसे देवालय बनाया जाता है, उसी तरह चरलिंग (इष्टलिंग) के लिये भी वह आवश्यक है। चरलिंग के लिये मजबूत सज्जिका नामक आलय बनाया जाता है।।२३।। हे शांकरि ! इस सज्जिका और चरलिंग का लक्षण, लिंग पूजन विधि,

---

१. नाशके–कटि.। २. प्रिये–ख.। ३. दृष्ट–ख. ; घ. ङ.।

जानास्येतत्स्वरूपं च चरलिङ्गस्य शाङ्करि ।
लक्षणं पूजनविधिमाचारं लिङ्गधारणम् ।। २४।।
क्रमेण शृणु तत्सर्वं तारतम्यफलं शिवे ।
स्थिरलिङ्गार्चको[१] लोके न शुद्धः पङ्क्तिकर्मसु ।। २५।।

इष्टलिङ्गार्चकाः श्रेष्ठाः

[२]धृतलिङ्गार्चकाः सर्वे पावनाः पङ्क्तिकर्मसु ।
[३]पृथग् लिङ्गस्य स्थित्या तु स्वदेहस्याप्यशुद्धितः ।। २६।।
स्प्रष्टुं न योग्यता लिङ्गं न चैवं शिवयोगिनः ।
धृतलिङ्गशरीरत्वात् [४]प्रदातुर्ज्ञानसंभवात् ।। २७।।
शुचिरेव सदा तस्य [५]नाशुद्धिर्नैव चाशुचिः ।
गच्छन् तिष्ठन् स्वपन् भुञ्जन् जाग्रन्नपि हसन्नपि ।। २८।।
खादन्नपि[६] पिबन् वापि लिङ्गपूजां समाचरेत् ।
यथोपविश्य पीठादौ शिवयोगी प्रवर्तते ।। २९।।

विविध आचार और लिंगधारण की विधि— यह सब तुमको जान लेना चाहिये। हे शिवे ! मैं क्रमशः इनको तथा इनके फल को तुम्हें बताता हूँ। स्थिर (स्थावर) लिंग की पूजा करने वाला लोक में पंक्तिपावन के योग्य नहीं माना जाता।।२४-२५।।

अपने शरीर पर इष्टलिंग धारण करने वाले सभी समान पंक्ति में बैठने के अधिकारी होते हैं। शरीर से इष्टलिंग की पृथक् स्थिति रहने पर तो यह शरीर ही अशुद्ध माना जाता है।।२६।। ऐसा व्यक्ति शिवलिंग को और शिवयोगी को स्पर्श करने की योग्यता से भी वंचित रहता है। शरीर पर इष्टलिंग धारण के बाद ही उसमें गुरुप्रदत्त ज्ञान को धारण करने की सामर्थ्य आती है।।२७।। शिवलिंग को धारण करने वाला व्यक्ति सदा पवित्र माना जाता है। शुद्धि और अशुद्धि से वह ऊपर उठ जाता है। चलते-फिरते, खड़ा होकर, सोकर, भोग भोगता हुआ, जागता हुआ, हँसता हुआ, खाता-पीता हुआ— इन सभी स्थितियों में इष्टलिंग की पूजा अवश्य करनी चाहिये।।२८-२९।।

---

१. काः .... शुद्धाः-ख. ग. ङ.। २. धृतलिङ्गार्चको मर्त्यः पावनः पङ्क्तिकर्मसु। त्याज्या ह्यलिङ्गिनः सर्वे पङ्क्तिकर्मादिकेषु च।।-कटि.। ३. पृथक्स्थत्वाच्च लिङ्गस्य स्वदेहस्याप्यशुद्धिदम्-ख. घ. ङ। ४. सदा तु-ख. ग. घ. ङ.। ५. न शुचि-ग. ङ.। ६. खादन् पिबन् शयानो वा-ग. घ. ङ.।

तथोपविष्ट एवासौ धावन् पूजितवानपि ।
न कायक्लेशसहनं नोपवासादिपीडनम् ।। ३० ।।

चतुर्विधा मुक्तिः

यथेच्छमपि भुञ्जानो भोगाल्लिङ्गं [१]समर्चयेत् ।
दया भूतेषु मद्भक्तिः सर्वत्र मम दर्शनम् ।। ३१ ।।
मल्लिङ्गधारणं नित्यं मुक्तिरेषा चतुर्विधा ।

चरलिङ्गरक्षाप्रकारः

तस्मात् सौलभ्यमीशानि तारतम्येन योगिनाम् ।। ३२ ।।
मतस्य मम चान्यस्य मन्मते लिङ्गधारणात् ।
तस्य लिङ्गस्य विश्वेशि चरं कुर्याच्छिवालयम् ।। ३३ ।।
पञ्चसूत्रोत्थलिङ्गस्य यावत् पूर्णं तथा भवेत् ।
सौवर्णमुत्तमं देवि यदि शक्तिस्तथाचरेत् ।। ३४ ।।

जैसे शिवयोगी आसन आदि पर बैठ कर पूजा करता है, वैसे ही बैठ कर भी पूजा की जा सकती है और दौड़ते हुए भी। इसके लिये शरीर को कष्ट देने की अथवा उपवास आदि करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है।।२९-३०।।

नाना प्रकार के भोगों को अपनी इच्छा के अनुसार भोगता हुआ व्यक्ति भी इन भोगों को शिवार्पित कर मेरी पूजा करे। सभी प्राणियों पर दयाभाव, शिवभक्ति, सर्वत्र शिवदर्शन और इष्टलिंगधारण— यह चार प्रकार की मुक्ति मानी जाती है, अर्थात् ये चार मुक्ति के साधन हैं।।३१-३२।।

हे ईशानि ! मेरे मत की अन्य मतों से तुलना करने पर मेरे मत में योगियों को सुविधा यह रहती है कि यहाँ इष्टलिंग धारण मात्र से ये सब स्थितियाँ अपने आप प्राप्त हो जाती हैं। हे विश्वेशि ! इस इष्टलिंग का सज्जिका नामक चर शिवालय बनाना चाहिये।।३२-३३।। हे देवि ! पंचसूत्र प्रमाण वाले इष्टलिंग को पूरी सुविधा के साथ जिसमें बैठाया जा सके, ऐसा उत्तम शिवालय बनाना चाहिये। सुवर्ण-निर्मित सज्जिका उत्तम मानी जाती है। शक्ति के अनुसार इसका निर्माण करावे।।३४।। चाँदी की, पीतल

---

१. ममा-क. ख.।

राजतं पित्तलं ताम्रं नैव कांस्येन कारयेत् ।
सीसेन त्रपुणा देवि तान्तवी पाटिकापि वा ।। ३५।।
एतेष्वन्यतमं नित्यं नान्यत् कुर्यादनापदि[१] ।
परित्यज्यापि यत्नेन प्राणमानधनादिकम् ।। ३६।।
संरक्षणीयं गिरिजे लिङ्गमेव न संशयः ।
संभावितेन द्रव्येण विना तन्तुपटोद्भवम् ।। ३७।।

सज्जिकालक्षणम्

कर्कटाद्याकृतिश्चान्या[२] यथाकामफलप्रदा ।
पञ्चसूत्रप्रमाणेन सज्जिका लिङ्गरूपिणी ।। ३८।।
तादृशस्य च लिङ्गस्य भोगमोक्षैकसाधनी ।
भोगस्वर्गापवर्गाय मम नन्दीश्वराकृतिः ।। ३९।।

की और तांबे की भी सज्जिका बनाई जा सकती है, किन्तु कांसे की, सीसे की, जस्ते की, तन्तुओं की अथवा कपड़े की सज्जिका कभी नहीं बनानी चाहिये।।३५।। ऊपर बताई गई सुवर्ण, रजत, पित्तल और ताम्र की ही सज्जिका सदा प्रयत्नपूर्वक बनानी चाहिये, ऊपर बताई गई निषिद्ध वस्तुओं से नहीं। ऐसा करते समय भले ही प्राण, सम्मान और धन का त्याग करना पड़े।।३६।।हे गिरिजे ! जिस किसी भी संभावित द्रव्य से लिंग की रक्षा करना ही निःसन्देह प्रमुख प्रयोजन है। तन्तुओं से और वस्त्र से निर्मित सज्जिका से यह प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता।।३७।।

इस सज्जिका को सुन्दर कर्कट (केकड़े के समान गोल) आदि की आकृति का बनाना चाहिये। यह कामना के अनुसार फल देने वाली है। [1]पंचसूत्र-प्रमाण शिवलिंग की सज्जिका साक्षात् लिंग का ही स्वरूप है।।३८।।पंचसूत्र-प्रमाण शिवलिंग की ऐसी सज्जिका भोग और मोक्ष को देने वाली है। इसी तरह नन्दीश्वर आकृति की सज्जिका भोग, स्वर्ग और अपवर्ग को देने वाली है।।३९।।अर्कफल (आक की फली) के समान

---

१. दनारतम्–ख.। २. ती रम्या–ख. ग. घ. ङ.।

1. पांच मापों से बना हुआ लिंग पंचसूत्र लिंग कहलाता है। बाण (लिंग) का वर्तुल भाग, पीठ की लम्बाई, पीठ के ऊपरी भाग की चौड़ाई और पीठ के निचले भाग की चौड़ाई— इन चारों का माप समान होना चाहिये और गोमुख का माप बाण के वर्तुल भाग से आधा रहना चाहिये। यही पंचसूत्र प्रक्रिया है। इसका सचित्र विवरण वीरशैवाचारप्रदीपिका (पृ. १३) में देखिये।

भोगमोक्षैकफलदा सज्जिकार्कफलाकृतिः ।
[१]आयुरारोग्यफलदा याऽसौ चूतफलाकृतिः ॥४०॥
आयुष्मत्पुत्रसौभाग्यफलदा मोदकाकृतिः ।
ऐश्वर्यविजयायुष्यतेजःप्रज्ञाविलासकृत् ॥४१॥
सज्जिका शिवलिङ्गस्य विल्वीफलसमाकृतिः ।
शिवलिङ्गाकृतिः सज्जा भोगमोक्षैकसाधनी ॥४२॥
यद्यदिष्टतमं देवि भूषणं मणिकाञ्चनम् ।
तदेव सज्जिकां कृत्वा सर्वकामं समश्नुते ॥४३॥
[२]एका द्वारकपाटाढ्या पादत्रितयशोभिनी ।
सन्नद्धगुणसंबद्धा दृढा सन्तानशोभिनी ॥४४॥
चतुरस्रं पङ्कजाभं वर्तुलं बिम्बकोपमम् ।
यथा संदर्शितं देवि गुरुणा तत्तथाचरेत् ॥४५॥

आकृति वाली सज्जिका भोग और मोक्ष को देने वाली है। आम्रफल के आकार वाली सज्जिका दीर्घायु और आरोग्य प्रदान करती है।।४०।।मोदक (लड्डू) जैसी आकृति वाली सज्जिका दीर्घायु, पुत्र-पौत्र, सम्पत्ति और सौभाग्य को देने वाली है। विल्वफल (बेल) के समान आकृति वाली शिवलिंग की सज्जिका ऐश्वर्य, विजय, दीर्घायु, तेजस्विता और प्रज्ञा के विलास को भी देती है। इसी तरह से शिवलिंग के आकार वाली सज्जिका भोग और मोक्ष दोनों को देने वाली है।।४१-४२।। हे देवि ! शिवभक्त को जो-जो आभूषण, रत्न, सुवर्ण आदि रुचिकर लगते हैं, उनसे सज्जिका को सजा कर वह अपनी सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।।४३।। कोई सज्जिका द्वार, कपाट और तीन पायों से सुशोभित रहती है। यह एक सरीखी मजबूत डोरी से जुड़ी रहती है।।४४।। हे देवि ! चतुरस्र (चौकोनी), कमल सदृश, वर्तुल (गोल) और बिम्बफल के समान आकार वाली भी सज्जिकाएं होती हैं। इनमें से गुरु ने जिसका विधान किया हो, उसी आकार की सज्जिका बनानी चाहिये।।४५।।

---

१. नास्त्येषा पङ्क्तिः-घ.। २. श्लोकयोः (४४-४५) विपर्यस्तः पाठः-ख. ग. घ. ङ.।

सज्जिकागुणलक्षणम्

सौवर्णः स्याद्यदि गुणः सर्वसौभाग्यदायकः ।
राजतः पुत्रकीर्तिः स्यात्ताम्रश्चेद् धनधान्यकृत् ।।४६।।
पैत्तलः सर्वभोगाय कांस्यः कल्मषनाशनः ।
त्रपुसीसमयो वापि सर्वाभीष्टफलप्रदः ।।४७।।
दारिद्र्याय च संविद्धि पटजः सर्वदुःखकृत् ।
कार्पटः सर्वभोगाय तान्तवः सर्वकामदः ।।४८।।
शुक्लो ज्ञानप्रदस्तत्र रक्तो वश्यकरो गुणः ।
श्यामः शत्रुभयकरः पीतः पुत्रप्रदायकः ।।४९।।
चित्रो विचित्रफलदः सुदृढश्छेदवर्जितः ।
अग्रन्थिऋजुरूपः स्यादा नाभ्या कण्ठमध्यतः ।।५०।।
यावदिच्छं[१] भवेद् देवि सज्जिकागुण उत्तमः ।
तावदेव[२] प्रकुर्वीत सज्जिकागुणमीश्वरि ।।५१।।

सज्जिका से जुड़ा हुआ सूत्र यदि सुवर्णनिर्मित है, तो वह सभी प्रकार के सौभाग्य को देने वाला है। चांदी का बना सूत्र यशस्वी पुत्र को देने वाला और तांबे का बना शिवसूत्र (डोरा) धन-धान्य का प्रदाता माना गया है।।४६।।पीतल का डोरा सभी प्रकार के भोगों को देने वाला, कांसे का सभी पापों का नाश करने वाला, रांगा अथवा सीसे का बना सूत्र समस्त अभीष्ट फल को देने वाला है।।४७।।चिथड़ों से बना डोरा दारिद्र्य और दुःख को देने वाला है, नवीन वस्त्र से बना डोरा सभी प्रकार के भोगों को देने वाला और तन्तुओं से बना सभी कामनाओं को देने वाला है।।४८।।सफेद डोरा हानिप्रद, लाल डोरा वशीकरण में उपयोगी, काला डोरा शत्रु के भय को देने वाला और पीला डोरा पुत्र को देने वाला माना गया है।।४९।।चितकबरा डोरा विचित्र फलों का प्रदाता है। यह डोरा (शिवसूत्र) मजबूत, बिना टूटा हुआ, बिना गांठ का, प्रारंभ से अन्त तक समान मोटाई वाला और कण्ठ से नाभि पर्यन्त लम्बाई वाला होना चाहिये।।५०।।हे देवि ! धारक शिवभक्त को अपनी इच्छा के अनुसार सज्जिका के उत्तम शिवसूत्र (डोरा) का प्रमाण रखना चाहिये।।५१।।

---

१. दिच्छा-ग. घ. ङ.। २. तान्तवेन-कटि.।

सज्जिकाशिवसूत्रयोगमहिमा

[1]या सज्जिका भवद्रूपा मद्रूपो यो गुणः शिवे ।
उभयोरावयोर्योगाज्जगदेतच्चराचरम् ॥५२॥
पुंरूपमखिलं देवि मम रूपं न संशयः ।
स्त्रीरूपमखिलं देवि तव रूपं न संशयः ॥५३॥
मया विना क्वचिन्नास्ति तव रूपं तथा मम ।
तदेकरूपलाभाय गुणयोगः प्रकीर्तितः ॥५४॥
शिवस्यैव भवेद् द्वारमेकं[2] स्यादेकमेव हि ।
सार्गलं तिर्यगररं सर्वमेकात्मकं शिवे ॥५५॥
यस्य[3] द्वारयुगे देवि गौरी कात्यायनी उभे ।
पार्श्वयोः [4]शाङ्करी रौद्री भद्रकाल्युपरि त्वधः ॥५६॥
यस्याः पादत्रयं धर्मकामार्थात्मकमीश्वरि ।
[5]यस्या मदात्मकगुणो भोगमोक्षफलात्मकः ॥५७॥

हे शिवे ! यह जो सज्जिका है, वह तुम्हारा स्वरूप है और शिवसूत्र मेरा। इस तरह से हम दोनों के योग से ही इस सारे चर और अचर जगत् की सृष्टि होती है।।५२।।हे देवि ! इस संसार में पुरुष रूप में विद्यमान समस्त जीव निःसन्देह मेरा स्वरूप है और स्त्री रूप में विद्यमान समस्त जीव निःसन्देह तुम्हारा स्वरूप है।।५३।।मेरे बिना तुम्हारी कोई अलग सत्ता नहीं है और इसी तरह से तुम्हारे बिना मेरी भी कोई अलग स्थिति नहीं है। इस एकरूपता को दिखाने के लिये सज्जिका और शिवसूत्र का योग प्रदर्शित है।।५४।।हे शिवे ! इष्टलिंग को अन्दर रखने और बाहर निकालने के लिये एक ही द्वार रहना चाहिये। इस द्वार को बन्द करने के लिये एक तिरछी अर्गला लगानी चाहिये। ऐसा करने में यह सब मिलकर एक हो जाते हैं, अर्थात् इनकी भिन्न स्थिति नहीं रहती।।५५।। हे देवि ! उस द्वार के दोनों पार्श्व भागों में गौरी और कात्यायनी स्थित हैं और हे शांकरि ! उस द्वार के ऊपर और नीचे रौद्री और भद्रकाली स्थित हैं।।५६।। हे ईश्वरि ! इस सज्जिका के तीन पाद धर्म, काम और अर्थ के प्रतीक हैं। इसमें बंधा हुआ शिवसूत्र भोग और मोक्ष रूप फल को देने वाला है।।५७।।इस शिवसूत्र के दोनों

---

१. सज्जिका या–ख.। २. मेकस्याधिकमेव हि–कटि.। ३. यस्या–ख.। ४. शार्वरी–ग. घ.। ५. पङ्क्तिरियं ५८ तमश्लोकानन्तरं स्थापिता–ख.।

गुणस्याग्रद्वयोरेव संबद्धौ च[1] सुवर्तुलौ ।
पद्मकुड्मलसद्रूपौ प्रोक्तौ ज्ञानक्रियेति च ।। ५८ ।।
तदुपर्येकमीशानि चित्रमेकं स्वरूपकम् ।
आत्मपूर्वाग्रमाकुञ्च्य ह्यात्माग्रमवकुञ्चयेत् ।। ५९ ।।
पार्श्वद्वयाग्रे संयोज्य यथोक्तं गुरुणा ततः ।
[2]उक्तमेवं मया लिङ्ग[3] सज्जिकागुणलक्षणम् ।। ६० ।।

दीक्षार्थं गुर्वाश्रयणम्

तद्धारणक्रमं वक्ष्ये दीक्षापूर्वं सुविस्तरम् ।
यस्तु मत्करुणापात्रं चरमं जन्म यस्य वा ।। ६१ ।।
तस्यैव जायते भक्तिर्मम लिङ्गस्य धारणे ।
निर्विष्टविषयः शान्तः सर्वत्र समदर्शनः ।। ६२ ।।
मुमुक्षुरीश्वरे भक्तः श्रीगुरुं शिवमाश्रयेत् ।

गुरुलक्षणम्

सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वज्ञं सर्वसंमतम् ।। ६३ ।।

अग्र भागों को मिलाकर कमल की कली के समान गोल दो गांठे दी जाती हैं और इन दोनों गांठों को ज्ञान और क्रिया शक्ति का स्वरूप माना जाता है।।५८।।हे ईशानि ! इन दोनों गांठों के ऊपर एक अनोखी गांठ मारनी चाहिये। इस गांठ का एक कोना आगे मोड़कर और दूसरे को पीछे ले जाकर गुरु के द्वारा बताई विधि से पृष्ठ भाग में गांठ बाँधे। इस प्रकार सज्जिका के साथ शिवदोरक के संयोजन की विधि मैंने यहाँ बताई है।।५९-६०।।

अब मैं दीक्षाविधि के साथ विस्तार से इष्टलिंग धारण की पद्धति को बताता हूँ। जो मुमुक्षु मेरी कृपा का अधिकारी होता है अथवा जिसका यह अन्तिम जन्म है, उसी की इष्टलिंग के धारण में भक्ति उत्पन्न होती है।।६१-६२।। विषय पराङ्मुख, शान्त स्वभाव का, सबको समान दृष्टि से देखने वाला, ईश्वर का मुमुक्षु भक्त शिवस्वरूप गुरु की शरण में जाय।।६२-६३।।

---

१. द्वौ–ख. ग. घ. ङ.। २. उक्तमेवं मया देवि लिङ्गधारणमुत्तमम्–कटि.। ३. लिङ्ग–ग.।

सदाचाररतं शुद्धं शिवभक्तमलोलुपम् ।
यथार्थवादिनं शान्तं द्वेषासूयादिवर्जितम् ।। ६४।।
विदिताखिलशास्त्रार्थमिङ्गितज्ञमनाकुलम् ।
[1]अनर्थातुरमात्मज्ञमकामुकमवञ्चकम् ।। ६५।।
वाग्मिनं शिवतत्त्वार्थबोधकं हृष्टमानसम् ।
एतादृशगुणोपेतमुपेयाद् गुरुमीश्वरम् ।। ६६।।
रिक्तहस्तेन नोपेयादुपसर्पन् गुरुं शुचिः ।
नमस्कृत्य विधानेन साष्टाङ्गं भक्तिपूर्वकम् ।। ६७।।
कृताञ्जलिपुटः स्थित्वा स्तुत्वा विज्ञापयेत्ततः ।
नमस्ते नाथ भगवन् शिवाय गुरुरूपिणे ।। ६८।।
देहि शिष्याय मे वीरशैवदीक्षामभीष्टदाम् ।
इति पृष्टोऽथ शिष्येण यदि दातुमना गुरुः ।। ६९।।

यह गुरु सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न, सब कुछ जानने वाला और सभी का आदरपात्र होना चाहिये। सदाचार का पालन करने वाला, शुद्ध चित्तवृत्ति वाला, शिव का भक्त, अचपल, यथार्थ वक्ता, शान्त, द्वेष-मात्सर्य आदि दोषों से रहित, समस्त के अर्थ को जानने वाला, इशारे से सब कुछ जान लेने वाला, अव्याकुल, द्रव्यलोभ से मुक्त, आत्मज्ञान से सम्पन्न, विषयासक्ति से रहित, किसी को न ठगने वाला, प्रवचन शक्तिसम्पन्न, शिवतत्त्व के ज्ञान से सम्पन्न और सदा प्रसन्नचित्त रहने वाला— इन सब गुणों से सम्पन्न ईश्वर-स्वरूप गुरु की शरण में जाना चाहिये।।६३-६६।।गुरु के पास जाते समय व्यक्ति को खाली हाथ नहीं जाना चाहिये। स्वयं पवित्र होकर अष्टांग प्रणाम की विधि के अनुसार भक्तिभावपूर्वक नमस्कार कर हाथ जोड़कर खड़े हुए उनकी स्तुति करे और तब उनसे निवेदन करे कि हे स्वामिन्, हे भगवन्! मैं गुरु के रूप में भगवान् शिव को ही नमन करता हूँ।।६७-६८।। मुझ शिष्य को आप अभीष्ट वस्तुओं को देने वाली वीरशैव दीक्षा से सम्पन्न करें, इस प्रकार शिष्य की प्रार्थना पर गुरु यदि उसे दीक्षा देना चाहता है।।६९।। तो विद्वान् गुरु को चाहिये कि पहले वह तीन

---

१. अनाथा-घ.।

विशोध्य वर्षत्रितयमथ तं दीक्षयेद् बुधः ।

शिष्यलक्षणम्

कुशलं श्रीगुरोर्भक्तं श्रीगुरोः प्रियकारिणम् ।। ७० ।।
कर्मणा मनसा वाचा छायेवानुचरं सदा ।
गुरुमन्त्रात्मदैवेषु[1] तथैवासनमुद्रयोः ।। ७१ ।।
अभेदभावनाधीरं सत्यवादिनमास्तिकम् ।
प्राणार्थमानवसुभिर्मनोवाक्कायकर्मभिः ।। ७२ ।।
सर्वदा सर्वभावेन गुरुशुश्रूषणे रतम् ।
अप्रमत्तमुदाराङ्गं दृढचित्तमनामयम् ।। ७३ ।।
असत्यवादरहितमवञ्चकमदुर्हृदम् ।
[2]अनर्थलोभमर्थाढ्यं मृदुसंभाषणप्रियम् ।। ७४ ।।
इत्यादिगुणसम्पन्नमथ तं दीक्षयेच्छिवे ।
हस्तमस्तकसंयोगमाचरेच्च शिवं स्मरेत् ।। ७५ ।।
अस्तु तिष्ठ शिवाज्ञेति ह्यङ्गीकुर्याद् गुरुस्ततः ।
यः सदा गुरुसेवायामप्रमत्तो जितेन्द्रियः ।। ७६ ।।

वर्ष पर्यन्त उस शिष्य की परीक्षा कर उसे शुद्ध करे।

यह शिष्य गुरु का भक्त हो, गुरु के प्रिय कार्यों को सम्पन्न करने वाला हो।।७०।।हे शिवे ! जो मन, वचन और कर्म से सदा गुरु का छाया के समान अनुसरण करने वाला हो; गुरु, मन्त्र, आत्मा, देवता, आसन और मुद्रा इन सबमें गंभीरता से अभेद दृष्टि रखने वाला हो, सत्यवादी और आस्तिक हो; प्राण, धन, संमान, मन, वचन और शरीर— इन सबसे सदा सभी स्थितियों में गुरु की सेवा में लगा रहने वाला हो, जो अप्रमादी, उदार मन का, दृढ़ संकल्प वाला, शरीर और मन से पूर्ण स्वस्थ, सत्यवादी, वंचना से रहित हो और दुष्ट हृदय वाला न हो, जिसको अर्थ का लोभ न हो, स्वयं धन से संपन्न हो, मधुर और प्रिय भाषा बोलने वाला हो— इन सब गुणों से सम्पन्न शिष्य को दीक्षा दे। उसके मस्तक पर अपना वरद हस्त रख कर शिव का स्मरण करे।।७१-७५।।जो शिष्य अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर बिना प्रमाद और आलस्य के सदा गुरुसेवा में लगा रहता है, उसे गुरु स्वीकार कर ले, उससे कहे कि तुम मेरे पास रहो, शिव की ऐसी ही आज्ञा है।।७६।।

---

१. देवेषु–घ.। २. अनर्था–ग. घ. ङ.।

शिष्यकर्तव्यानि

भुक्तिमुक्तिफलप्राप्त्यै सेवेदीशधिया गुरुम् ।
न लङ्घयेद् गुरोश्छायामात्मच्छायां तथा गुरौ ॥ ७७॥
प्रसारयेत् प्रयत्नेन शिष्यो भूष्णुः कदाचन ।
उच्चासनं न सेवेत नोच्चैर्ब्रूयात् तदग्रतः ॥ ७८॥
[1]न चेष्टयेद्यथात्मेच्छं नान्यां[2] गोष्ठीं समाश्रयेत् ।
न गुरोरग्रतो गच्छेन्न स्वपेद् गुरुसंनिधौ ॥ ७९॥
सह श्रीगुरुणा शिष्यो न कुर्यात् क्रयविक्रयम् ।
नोच्चैर्हसेन्न प्रलपेन्नोपविश्येत् तदग्रतः ॥ ८०॥
मुखावलोके[3] सेवेत सुप्रसन्नमनोमुखः ।
कृच्छ्रेऽपि नात्मनः क्लेशं तदग्रे संप्रकाशयेत् ॥ ८१॥
शय्या चासनवस्त्रादि यत्तत् स्पृष्टं तु पूजयेत् ।
पादुकावाहनादीनि नापसव्यं व्रजेद् गुरोः ॥ ८२॥

गुरु के द्वारा स्वीकृत वह शिष्य गुरु की भगवान् के रूप में सेवा करे, इससे उसे भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। वह शिष्य गुरु की छाया को न लांघे और न अपनी छाया गुरु के ऊपर पड़ने दे। भविष्णु शिष्य को इन दोनों बातों पर पूरी सावधानी बरतनी चाहिये। गुरु के सामने उसे ऊँचे आसन पर नहीं बैठना चाहिये और उनके आगे ऊँची आवाज में बात न करे।।७७-७८।। गुरु के सामने वह मनमाना आचरण न करे, गुरु की सन्निधि को छोड़कर वह अन्य गोष्ठियों में शामिल न होवे, उसे गुरु के आगे नहीं चलना चाहिये और न गुरु के पास सोना ही चाहिये।।७९।। संमाननीय गुरु के साथ शिष्य को कभी क्रय-विक्रय (वस्तुओं को खरीदना अथवा बेचना) नहीं करना चाहिये। गुरु के सामने जोर-जोर से हंसना, प्रलाप करना और उनके सामने पीठ करके बैठना, ये सब वर्जित हैं।।८०।। सुप्रसन्न मन और वदन (मुँह) वाला शिष्य सदा गुरु के मुँह का अवलोकन करता रहे और उनके इंगित मात्र से उनकी सेवा में लग जाय। भयंकर संकट के पड़ जाने पर भी शिष्य गुरु के सामने उसे प्रकाशित न करे।।८१।। गुरु के द्वारा स्पृष्ट (उपभुक्त) शय्या, आसन, वस्त्र, पादुका, वाहन आदि की शिष्य को पूजा करनी चाहिये और गुरु की बाई ओर वह कभी न चले।।८२।। जो-जो वस्तुएं

---

१. द्वौ (७९-८०) श्लोकौ ८१ तमश्लोकानन्तरं स्थापितौ-ग. घ.। २. नान्यगोष्ठिं-क. ग. घ. ङ.। ३. लोकी-ग. घ. ङ.।

समर्प्य गुरवेऽश्नीयाद् यद्यदिष्टं तथात्मनः ।
भावयेच्छ्रीगुरो रूपं जगदेतच्चराचरम् ।। ८३ ।।
संस्मरेच्छ्रीगुरोर्नाम जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
कर्तव्ये तु नमस्कारे ज्येष्ठपूज्यशिवादिषु ।। ८४ ।।
प्रणमेद्यत्र कुत्रापि गुरुमेव हृदि स्मरन् ।
इत्यादिगुणसंपन्नमुपपन्नं स्वभक्तितः ।। ८५ ।।
परिगृह्य गुरुः शिष्यं शिवदीक्षासु योजयेत् ।

दीक्षाक्रमः

इषोर्जमार्गशीर्षेषु तपस्यपि तपस्यके ।। ८६ ।।
माधवे शुक्लपक्षे तु पूर्णासु च विशेषतः ।
जयासु शिवदीक्षा या उत्तरोत्तरवृद्धिकृत् ।। ८७ ।।
पञ्चम्यां तु प्रजावृद्धिर्दशम्यां पशुवृद्धिकृत् ।
पौर्णमास्यां तु दीक्षा च चतुर्वर्गफलप्रदा ।। ८८ ।।

शिष्य को प्रिय लगती हों, उन्हें पहले गुरु को समर्पित कर देने के बाद ही वह अपने उपयोग में लावे। इस चराचरात्मक जगत् में वह अपने श्रीगुरुदेव के रूप की ही भावना करे।।८३।। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति— इन सभी अवस्थाओं में शिष्य को गुरु के नाम का स्मरण करते रहना चाहिये। इसी तरह से अपने से ज्येष्ठ, पूजनीय और भगवान् शिव आदि को प्रणाम करते समय भी गुरु का स्मरण करना चाहिये।।८४।। ऐसा शिष्य जिस किसी को भी प्रणाम करे, हृदय में सदा उसे गुरु का ही स्मरण करना चाहिये। इस तरह के ऊपर बताये गये गुण-गणों से सम्पन्न शिष्य के भक्तिभावपूर्वक शरण में आने पर उस शिष्य को गुरु स्वीकार कर ले और उसे उसके योग्य शिवदीक्षा से सम्पन्न करे।।८५-८६।।

आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ, फाल्गुन अथवा वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में और विशेष कर पूर्णा (५, १०, १५) अथवा जया (३, ८, १३) तिथियों में शिवदीक्षा देनी चाहिये। यहाँ दी गई उत्तरोत्तर तिथियाँ फल में वृद्धि करने वाली हैं।।८६-८७।। पंचमी तिथि में दीक्षा देने से प्रजा (सन्तति) की वृद्धि होती है। दशमी तिथि को दी गई दीक्षा पशुसम्पदा को बढ़ाने वाली है। पूर्णमासी तिथि को दी गई दीक्षा चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को देने वाली है।।८८।। द्वादशी, चतुर्दशी, नवमी और

[1]द्वादश्यां तु चतुर्दश्यां नवम्यामष्टमीदिने ।
शिवरात्र्याममायां च कार्तिके सोमवासरे ॥८९॥
शुक्रार्कभौमवारेषु मघाद्र्रारेवतीषु च ।
श्रोणाश्विनीभरण्यग्निस्वातीमूलेन्दुधिष्ण्यिषु[2] ॥९०॥
फाल्गुनीशततारासु स्वजन्मर्क्षे गुरोस्तु वा ।
वैधृतिं च व्यतीपातमतिगण्डं च गण्डकम् ॥९१॥
शूलव्याघातमितरे वर्जयित्वाऽखिलाः शुभाः ।
भद्रं वा करणं देवि किंस्तुघ्नमपि बालवम् ॥९२॥
मुक्त्वेतराणि गिरिजे यथायोगं समाचरेत् ।
सर्वलक्षणसंपन्ने दिने कुर्यात् तथापि वा ॥९३॥
दोषाल्पत्वं गुणाधिक्यं वीक्ष्य दीक्षां प्रयोजयेत् ।
अपूर्वदीक्षाकरणे विधिरेष उदाहृतः ॥९४॥

अष्टमी तिथियों में, शिवरात्रि और अमावास्या में तथा कार्तिक मास के सोमवार के दिन दी गई दीक्षा शुभ मानी जाती है।।८९।। शुक्र, रवि और मंगलवार को तथा मघा, आर्द्रा, रेवती, श्रवण, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, स्वाति, मूल, फाल्गुनी और शततारा (शतभिषा) नक्षत्रों में तथा इसी तरह से अपने और गुरु के जन्मदिन के नक्षत्र में दी गई दीक्षा श्रेष्ठ मानी जाती है।।९०-९१।। वैधृति, व्यतीपात, अतिगण्ड, गण्ड, शूल, व्याघात और इसी तरह के अन्य कुयोगों को छोड़कर बाकी सब दिन दीक्षा के लिये शुभ माने जाते हैं।।९१-९२।। हे देवि गिरिजे ! भद्रा, किंस्तुघ्न और बालव करणों को छोड़कर अन्य शुभ करणों में दीक्षा देनी चाहिये। सारांश यह है कि सभी प्रकार के अच्छे लक्षणों से सम्पन्न दिन में ही दीक्षाविधि सम्पन्न करनी चाहिये।।९२-९३।। जिस दिन दोषों की अल्पता और गुणों की अधिकता हो, उसकी पूरी परीक्षा करने के उपरान्त ही अपूर्व, अर्थात् मुख्य दीक्षा देनी चाहिये। मुख्य दीक्षा के लिये सामान्यतः यही विधि शास्त्रों में प्रदर्शित है।।९४।।

---

१. च-ख. ग. घ.। २. विष्णुषु-ग. घ.।

लिङ्गादिनाशे इतिकर्तव्यता

यद्यवान्तरदीक्षा चेत् सर्वकालो न संशयः ।
यदि नश्येत् प्रमादेन लिङ्गमन्यद् यथाविधि ।। ९५।।
दीक्षापूर्वं प्रकर्तव्यं यदि सज्जिकया सह ।
स्फुटिते तु क्वचिल्लिङ्गे दीक्षां सद्यः समाचरेत् ।। ९६।।
मध्ये भेदे महादेवि तदगाधे जले क्षिपेत् ।
एकरात्रिविधानेन विना होमाभिषेचनम् ।। ९७।।
संस्कृत्य धारयेल्लिङ्गं न दोषस्तत्र विद्यते ।
अथ चेत्सज्जिकानाशस्तदान्यां कारयेत् पुनः ।। ९८।।
प्राणस्थापनमारभ्य शिष्टं संस्कारमाचरेत् ।
गुणनाशे पुनर्देवि गुणमन्यं सुयोजयेत् ।। ९९।।

गुरुप्रदत्तलिङ्गस्य यावज्जीवं धारणम्

सज्जिकागुणलिङ्गादौ यन्नष्टं [१]तत्तदाचरेत् ।
यल्लिङ्गमादितो लब्धं यावज्जीवं तदेव हि ।। १००।।

अवान्तर दीक्षा के लिये तो बिना सन्देह के सभी काल उचित माने गये हैं। जैसे कि प्रमादवश यदि इष्टलिंग नष्ट हो गया है, तो ऐसी अवस्था में तत्काल दीक्षा विहित है।।९५।। इसी तरह से यदि सज्जिका के साथ इष्टलिंग नष्ट हो गया है अथवा स्फुटित हो गया है, तो इस स्थिति में तत्काल दीक्षा का विधान है, जिससे कि अन्य इष्टलिंग धारण किया जा सके।।९६।।हे महादेवि ! इष्टलिंग के बीच में से टूट जाने पर उस टूटे हुए इष्टलिंग को अथाह (अगाध) जल में डाल देना चाहिये। बिना होम और अभिषेक के मात्र एक ही रात्रि के विधान को पूरा कर इष्टलिंग को संस्कृत कर उसे धारण कर लेना चाहिये। ऐसा करने में कोई दोष नहीं है। अब यदि सज्जिका भी नष्ट हो गई है, तो उसके स्थान पर दूसरी सज्जिका बनवा लेनी चाहिये।।९७-९८।। इसमें प्राणप्रतिष्ठा से लेकर आगे के संस्कार यथाविधि किये जाते हैं। हे देवि ! इसी तरह शिवसूत्र (गुण) के नष्ट हो जाने पर दूसरा शिवसूत्र बाँध ले।।९९।।

सज्जिका, शिवसूत्र और इष्टलिंग में से किसी के भी नष्ट हो जाने पर ऊपर की पद्धति से उसे धारण करना चाहिये। इस प्रसंग में शास्त्रों का मुख्य विधान यही

१. तत्तथा–क.ख.ग.ङ।

नान्यल्लिङ्गं भवेन्मध्ये यदि स्यात् स तु पातकी ।
सज्जिकागुणवस्त्रादि यद्दत्तं गुरुणा ततः ।।१०१।।
यावज्जीवं तदेव स्यादन्यथा याति रौरवम् ।
यल्लिङ्गं गुरुणा दत्तं प्राणलिङ्गं तदेव हि ।।१०२।।
मध्ये नष्टे प्रमादेन देहं त्यक्त्वा शिवं व्रजेत् ।

गुर्वन्तराश्रयणनिषेधः

अतिक्रम्य गुरुं यस्तु गुरुमन्यं समाश्रयेत् ।।१०३।।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतो नरकमश्नुते ।
गुरुभक्त्या महेशानि सदा मल्लिङ्गधारणात्[1] ।।१०४।।
इहामुत्र सुखं तस्य सौभाग्यं च पदे पदे ।
सज्जिकादिक्रमं देवि[2] लिङ्गधारणलक्षणम्[3] ।।

है कि शिष्य जिस इष्टलिंग को मुख्य दीक्षा के अवसर पर गुरु से प्राप्त करता है, उसे ही जीवन पर्यन्त धारण करे।।१००।। बीच में अन्य इष्टलिंग के धारण करने का कोई विधान नहीं है। जो ऐसा करता है, वह पातकी (पतित) माना जाता है। दीक्षा के समय गुरु जो सज्जिका, गुण (शिवसूत्र), वस्त्र आदि देता है, उनको जीवन पर्यन्त धारण किये रहना चाहिये, अन्यथा वह रौरव नरक में जाता है। इसी तरह से दीक्षा के समय गुरु शिष्य को जो इष्टलिंग देता है, वह प्राणलिंग कहलाता है। गुरुप्रदत्त इस प्राणलिंग के बीच में ही नष्ट हो जाने पर शिवभक्त को अपने प्राणों का परित्याग कर शिवपद प्राप्त कर लेना चाहिये।।१०१-१०३।।

जो शिष्य अपने प्रथम गुरु का परित्याग करके दूसरे गुरु की शरण ग्रहण करता है, वह अपने जीवनकाल में चाण्डाल बन जाता है और मरने के बाद नरक में जाता है।।१०३-१०४।।हे महेशानि ! गुरु के प्रति भक्तिभाव प्रदर्शित करते हुए जो शिष्य उनसे विधिवत् दीक्षा प्राप्त कर सदा इष्टलिंग धारण किये रहता है, वह इस लोक और परलोक में सुख भोगता है, पदे-पदे उसे सौभाग्य की प्राप्ति होती है। हे देवि ! इस तरह से

---

१. पूजनात्-कटि। २. चाथ-ख. ग. घ. ङ.। ३. भेदं विशेपतः-ख. ग. घ. ङ.।

उक्तं तवाखिलं देवि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०५॥

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे शिवाद्वैतसिद्धान्ते वीरशैवदीक्षा-प्रकरणे लिङ्गसज्जिकादिस्वरूपनिरूपणं नाम द्वितीयः पटलः [1]समाप्तः॥२॥

सज्जिका आदि बनाने का क्रम, इष्टलिंग धारण की पद्धति इत्यादि सब कुछ तुमको यहाँ बता दिया गया है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहती हो॥१०४-१०५॥

इस प्रकार शिवाद्वैतसिद्धान्त के प्रतिपादक श्री पारमेश्वर तन्त्र के वीरशैव-दीक्षा प्रकरण में लिंग, सज्जिका आदि के स्वरूप का निरूपण करने वाला यह द्वितीय पटल समाप्त हुआ॥२॥

---

१. 'समाप्तः' नास्ति–क. ख. ङ.।

तृतीयः पटलः

दीक्षाविधिनिरूपणम्

देव्युवाच

नमस्ते मेरुकोदण्डधारिणे फणिहारिणे ।
वद विश्वेश दीक्षाया विधानं परमेश्वर ॥१॥

ईश्वर उवाच

शृणु वक्ष्यामि देवेशि दीक्षाविधिमनुत्तमम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण योग्यः स्याल्लिङ्गधारणे ॥२॥

दीक्षाविधौ मण्डपनिर्माणम्

उपलिप्य गृहं सम्यगुक्तलक्षणके दिने ।
सुधादिशोभितं कुर्याद् रङ्गवल्ल्याद्यलङ्कृतम् ॥३॥
वितानतोरणैर्युक्तं[1] धूपदीपविराजितम् ।
सन्मङ्गलसमायुक्तं यथाविभवविस्तरम् ॥४॥

पार्वती की पृच्छा

मेरु पर्वत का धनुष बनाकर उसको धारण करने वाले, सर्पों का हार धारण करने वाले शिव को मैं प्रणाम करती हूँ। हे सारे विश्व के स्वामी परमेश्वर ! मुझे अब आप दीक्षा की विधि बताइये।।१।।

शिव का समाधान

हे देवेशि ! अत्युत्तम दीक्षाविधि का मैं तुमको वर्णन करूँगा, उसे तुम सावधानी से सुनो। इसको जानने मात्र से लिंगधारण की योग्यता प्राप्त हो जाती है।।२।।

ऊपर बताये गये किसी भी शुभ दिन में घर को गोबर आदि से भली-भाँति लीपना चाहिये। चूना आदि करके उसे सुन्दर बना देना चाहिये और रंगोली से उसे अलंकृत करे।।३।। उस गृह को वन्दनवार, तोरण-द्वार आदि से अपने वैभव के अनुसार सजाना चाहिये। धूप, दीप आदि से तथा समस्त मंगल-सामग्री से उसे सुसज्जित करना चाहिये।।४।। अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार उदार मन से अपनी बुद्धि और

---

१. णाभ्युक्तं-ग. घ. ङ.।

यथाशक्ति यथाभक्ति मनोमत्यर्थसंयुतम् ।
कार्यं हि वैभवं देवि वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।।५।।

यजमानकर्तव्यानि

यजमानः समुत्थाय निर्वर्त्य प्रातराह्निकम् ।
मित्रबान्धवसंयुक्तो मङ्गलस्नानमाचरेत् ।।६।।
सुशुभे सुसमे देशे गोमयेनोपलिप्य च ।
रक्तमृत्तिकया तत्र विलिप्य चतुरस्रकम् ।।७।।
बाहुमात्रप्रमाणेन पञ्चवर्णैर्विलेखयेत् ।
रङ्गकैश्चित्रकैः पद्मैः सर्वत्र समलङ्कृते ।।८।।
मण्डले नूतनं वस्त्रमाच्छाद्य तदुपर्यथ ।
पञ्चप्रस्थप्रमाणेन निक्षिपेच्छालितण्डुलान् ।।९।।
तदुपर्यमलं कुम्भं निक्षिपेन्नूतनं दृढम् ।
अनुलिप्य [1]सुधाभ्युक्तमापूरितजलं शिवे[2] ।।१०।।

धन का उपयोग करते हुए दीक्षा-स्थल को वैभवशाली बनाना चाहिये। इस कार्य में किसी प्रकार की कंजूसी न करे।।५।।

यजमान को जल्दी उठकर अपनी प्रातःकाल की सारी क्रियाओं को पूरा कर अपने मित्रों और बन्धु-बान्धवों के साथ मंगलस्नान करना चाहिये।।६।। सब तरफ से समान (समतल) और मंगलमय स्थान का चयन कर उसे गोमय (गोबर) से लीपकर लाल मिट्टी से पोतना चाहिये और उसके ऊपर चौकोर मण्डल बनाना चाहिये। इस मण्डल के ऊपर पाँच प्रकार के रंगों से हस्तप्रमाण रेखाएँ खीचनीं चाहिये और बीच में रंग-बिरंगे कमलों से उसे अलंकृत करना चाहिये।।७-८।। अब इस मण्डल के ऊपर नूतन वस्त्र बिछाना चाहिये और उस वस्त्र के ऊपर पांच प्रस्थ (८० मुट्ठी) प्रमाण श्रेष्ठ कोटि का चावल रखना चाहिये।।९।।हे शिवे ! उस चावल के ढेर के ऊपर नया निर्मल दृढ़ कलश स्थापित करना चाहिये। वह कलश चूने अथवा किसी से पुता हुआ हो और उसमें जल भी भरा रहना चाहिये।।१०।। यह कलश अश्वत्थ (पीपल), उदुम्बर (गूलर),

---

१. सदाभ्युक्त-ग. घ.। २. शिवम्-ग. घ. ङ.।

पञ्चपल्लवसंयुक्तं कुङ्कुमाद्यैरलङ्कृतम् ।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटचूतमहीरुहान् ॥११॥
कलशोपरितः सूत्रं वेष्टयित्वा यथाविधि ।
तदन्तर्नवरत्नानि निक्षिपेद् भक्तिशक्तितः ॥१२॥
सुवर्णं वा यथाशक्ति तत्सर्वं गुरवेऽर्पयेत् ।
प्राणप्रतिष्ठां कुम्भस्य कुर्यान्मूलेन पार्वति ॥१३॥
गुणितं पट्टवसनं निक्षिपेत् कलशोपरि ।
आबद्धकण्ठहारिद्रमावेष्टितमहांशुकम् ॥१४॥

कलशार्चनम्

संवेष्ट्य मालिकाभिश्च दिव्यधूपैः सुधूपयेत् ।
चत्वार ऋत्विजस्तत्र गुरुरेकस्तु पञ्चमः ॥१५॥
समर्चयेयुः कलशं विल्वपत्रैस्तिलाक्षतैः ।
दूर्वाभिः कोमलाग्राभिर्द्रोणैश्च करवीरकैः ॥१६॥

प्लक्ष (पाकर), वट और आम्र वृक्षों के पाँच प्रकार के पल्लवों से और कुंकुम आदि से अलंकृत हो।।११।। कलश के ऊपर विधिपूर्वक रक्तसूत्र (नाड़ा) लपेटना चाहिये और उसके भीतर अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार नवरत्न का निक्षेप करना चाहिये।।१२।। अथवा अपनी शक्ति के अनुसार उसमें सुवर्ण डालना चाहिये और यह सब बाद में गुरु को समर्पित कर देना चाहिये। हे पार्वति ! तत्पश्चात् मूल मन्त्र से कलश में प्राण-प्रतिष्ठा करे।।१३।। उस कलश के ऊपर लपेटा हुआ वस्त्र रखे। कलश के कण्ठ पर हलदी से रंगा वस्त्र रखे और पूरे कलश को सुन्दर रेशमी साड़ी आदि से ढक दे।।१४।।

तब उस कलश को मालाओं से सजाना चाहिये। दिव्य सुगन्धित धूप से उसे सुवासित करना चाहिये। इस दीक्षाविधि को चार ऋत्विक् और उनके साथ पाँचवाँ गुरु मिलकर सम्पन्न करते हैं।।१५।। ये सब मिलकर उस कलश की विल्वपत्र, तिल, अक्षत, कोमल अग्र भाग वाली दूर्वा से और द्रोण (दौना) एवं करवीर (कनेर) पुष्पों से पूजा करें।।१६।। मूल पंचाक्षरी मन्त्र से, प्रणव से, श्रेष्ठ [1]प्रसादपंचाक्षरी मन्त्र से,

---

1. ॐ हां हीं हूं हैं हौं— यह प्रसादपंचाक्षरी मन्त्र का स्वरूप है। 'हः' का संयोजन करने पर षडक्षरी मन्त्र बनता है। करन्यास, अंगन्यास, देहन्यास में सृष्टि, संहार आदि के क्रम से इनका विनियोग होता है।

पञ्चाक्षरेण तारेण पराप्रासादमन्त्रतः ।
शक्तिपञ्चाक्षरेणैव पञ्चब्रह्मानुवाककैः ।।
अर्चयन्ति पृथक् चैते पञ्चैतल्लिङ्गमृत्विजः ।।१७।।
[१]ध्यात्वाऽऽवाह्य महादेवं कलशोपरि[२] पूजयेत् ।
मामनाद्यन्तमीशानमुमया सहितं शिवम्[३] ।।१८।।
चतुर्भुजं चन्द्रकलावतंसं [४]वराभयैणोरुकुठारपाणिम् ।
वामाङ्कसंशोभितशैलकन्यं भजेन्महेशं परमात्मरूपम् ।। १९।।
अथ संपूज्य विधिवत् षोडशैरुपचारकैः ।
यस्य स्मृत्यादिकर्मान्ते[५] समाप्य कलशार्चनम् ।। २०।।
उपस्थानं प्रकर्तव्यं ऋत्विग्भिरपि पञ्चभिः ।
श्रीरुद्रस्यानुवाकेन मूलेन मनुना शिवे ।। २१।।
एवं दिनत्रयं कुर्यात् प्रत्यहं कलशार्चनम् ।
षड्रसैरन्नपानाद्यैर्भोजयेल्लिङ्गधारिणः ।। २२।।

शक्तिपंचाक्षरी मन्त्र से और पंचब्रह्म के प्रतिपादक पाँच अनुवाकों से ये पाँचों अलग-अलग शिवलिंग की पूजा करते हैं। हे शिवे ! ध्यान और आवाहन कर तब कलश के ऊपर मुझ अनादि, अनन्त, ईशान की उमा पार्वती के साथ पूजा करनी चाहिये।।१७-१८।। भगवान् शिव चतुर्भुज हैं, चन्द्रकला का आभूषण धारण करने वाले हैं, इनके चार हाथों में वर, अभय, मृग और कुठार विद्यमान हैं। इनके वाम अंग में पार्वती जी विराजमान हैं। भगवान् का ध्यान इसी रूप में किया जाता है।।१९।इसके बाद शिवलिंग की षोडश उपचारों से पूजा करे और तब "यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या" इस मन्त्र से कलश का पूजन करे।।२०।। हे शिवे ! तब पाँचों ऋत्विजों को श्रीरुद्र के अनुवाक से अथवा मूल मन्त्र से [1]उपस्थान करना चाहिये।।२१।। इस तरह तीन दिन तक लगातार कलश का पूजन करना चाहिये। तब छः रस से सम्पन्न अन्न और पान से इष्टलिंगधारियों को तृप्त करना चाहिये।।२२।। हे देवि ! इस अवधि में यजमान के हाथ में कंकण बँधा रहना चाहिये।

---

१. ध्यात्वाहूय-ख.। २. शं परि-ख.। ३. शिवे-क.। ४. 'वरा.....रूपम्' नास्ति-क., तत्स्थाने-'च वराभये' इत्येव पाठस्तत्र। ५. कर्मान्तं-क.।

1. सूर्य या अग्नि के संमुख खड़े होकर मन्त्रपाठ करना 'उपस्थान' कहलाता है। यहाँ कलश के उपस्थान का विधान है।

आबद्धकङ्कणो देवि नियतो नियतेन्द्रियः ।
एकाहारो भवेन्नित्यं यजमानः पयोव्रती ॥ २३॥

दीक्षाक्रमः

अथ तद्दक्षिणे भागे कुम्भस्थापनदेशतः ।
वितानादिसमोपेते [1]सुकृते वेदिकोपरि ॥ २४॥
निक्षिप्य पीठममलं मूलमन्त्रेण तद्गुरुः ।
सद्योजातेन तदुपर्याच्छाद्यांशुकमुत्तमम् ॥ २५॥
वामदेवेन तदुपर्येतल्लिङ्गं विनिक्षिपेत् ।
अघोरेणाथ लिङ्गस्य सञ्जिकाया गुणस्य च ॥ २६॥
तत्पुरुषस्यानुवाकेन ईशानस्यानुवाकतः ।
क्रमेण कुर्यात् तत्प्राणप्रतिष्ठां गुरुरादरात् ॥ २७॥
पूर्वोक्तमेवं ध्यायेत[2] लिङ्गरूपां तनुं मम ।
आवाहनादि कुर्वीत गुरुर्ऋत्विक्समन्वितः ॥ २८॥

लिङ्गार्चनम्

मूलेनावाहनं कुर्यादासनं शम्भवे नमः ।
पाद्यमीशाय देवाय दद्यादर्घ्यं शिवाय च ॥ २९॥

शरीर, मन और वचन का तथा इन्द्रियों का नियमन रखना चाहिये। वह एक ही बार फल-दूध आदि का आहार ग्रहण करे।।२३।।

अब जिस स्थल पर कलश स्थापित किया गया है, उसकी दाहिनी और चंदोवा (वितान) से ढके हुए स्थान पर सुन्दर आकार की बनाई गई वेदिका के ऊपर गुरु मूल मन्त्र से निर्मल पीठ की स्थापना करे। सद्योजात मन्त्र से उस पीठ पर उत्तम वस्त्र बिछावे।।२४-२५।। वामदेव मन्त्र से उसके ऊपर लिंग को रखे। अब अघोर मन्त्र से लिंग की, तत्पुरुष और ईशान अनुवाक से सञ्जिका और गुण (शिवदोरक) की क्रमशः गुरु आदर पूर्वक प्रतिष्ठा करे।।२६-२७।। ऊपर १९वें श्लोक में बताई गई मेरी शिवलिंग स्वरूपिणी तनु (शरीर) का ध्यान करे। गुरु ऋत्विजों के साथ मिलकर तब मेरी आवाहन आदि पूजाविधि को सम्पन्न करे।।२८।।

मूल मन्त्र से आवाहन करे। 'शम्भवे नमः' मन्त्र से आसन समर्पित करे। 'ईशाय देवाय नमः' से पाद्य और 'शिवाय नमः' से अर्घ्य प्रदान करे।।२९।। 'महादेवाय ते नमः'

---

१. सुवृते-क.। २. ध्यायीत-घ. ङ.।

दद्यादाचमनं स्नानं महादेवाय ते नमः ।
पञ्चामृतस्नानमथ कुर्यात् पञ्चानुवाककैः ॥ ३०॥
आपो हि ष्ठेति शुद्धोदस्नानंलिङ्गाय कारयेत् ।
दद्यात् कपर्दिने वस्त्रमुत्तरीयं त्रिशूलिने ॥ ३१॥
यज्ञसूत्रं ततो [१]दद्यान्नमः पशुपतये शिवे ।
गन्धं कामान्तकायेति चाक्षतान् मृत्युघातिने ॥ ३२॥
पुष्पं वृषध्वजायेति समर्प्याङ्गानि पूजयेत् ।
शिवाय पादौ गुरवे गुल्फौ जङ्घे मृडाय च ॥ ३३॥
जानुनी शङ्करायेति नम ऊरू भवाय च ।
कटिं पिनाकहस्ताय नाभिं मेरुधनुर्भृते ॥ ३४॥
उदरं विश्वरूपाय विरूपाक्षाय च स्तनौ ।
हृदयं पार्वतीशाय वक्षः कैलासवासिने ॥ ३५॥
कण्ठं तु नीलकण्ठाय स्कन्धौ स्कन्दसुताय ते ।
अनन्तबाहवे बाहून् हस्तान् हस्तित्वचे नमः ॥ ३६॥

मन्त्र से स्नानांग आचमन प्रदान करे। तब पंचब्रह्म के पाँच अनुवाकों से पंचामृत स्नान करावे।।३०।। 'आपो हि ष्ठा' मन्त्र से लिंग को शुद्धोदक स्नान करावे। 'कपर्दिने नमः' मन्त्र से वस्त्र और 'त्रिशूलिने नमः' से उत्तरीय अर्पित करे।।३१।। हे शिवे ! तब 'पशुपतये नमः' मन्त्र से यज्ञसूत्र, 'कामान्तकाय नमः' से गन्ध और 'मृत्युघातिने नमः' से अक्षत समर्पित करे।।३२।। 'वृषध्वजाय नमः' से पुष्प समर्पित करने के बाद अंगों की पूजा करे। 'शिवाय नमः' से चरणों की, 'गुरवे नमः' से गुल्फों (टखनों) की, 'मृडाय नमः' से जंघाओं (पिंडलियों) की पूजा करे।।३३।। 'शङ्कराय नमः' से जानुओं (घुटनों) की, 'भवाय नमः' से ऊरुओं (जंघाओं) की, 'पिनाकहस्ताय नमः' से कटि-भागों की और 'मेरुधनुर्भृते नमः' से नाभि की पूजा करे।।३४।। 'विश्वरूपाय नमः' से उदर (पेट) की, 'विरूपाक्षाय नमः' से स्तनों की, 'पार्वतीशाय नमः' से हृदय की और 'कैलासवासिने नमः' से वक्षस्थल की पूजा करे।।३५।।'नीलकण्ठाय नमः' से कण्ठ की, 'स्कन्दसुताय नमः' से कन्धों की, 'अनन्तबाहवे नमः' से बाहुओं की और 'हस्तित्वचे नमः' से हाथों की पूजा करे।।३६।। हे देवि ! 'अङ्गजहते नमः' से अंगुलियों की, 'पञ्चमुखाय नमः'

---

१. दद्यात् पशूनां पतये नमः—ख. ङ.।

अङ्गुलीरङ्गजहृते कक्षं पञ्चमुखाय ते ।
कर्णौ दिक्कर्णिने देवि नासिकां सर्वगन्धिने ॥ ३७॥
वक्त्रं तु सर्ववक्त्राय नेत्राणि त्रिदृशे नमः ।
भ्रुवौ भूभारभङ्गाय ललाट[१]मलिकाक्षिणे ॥ ३८॥
शिरः सर्वोत्तमायेति सर्वाङ्गं शशिमौलिने ।
पूजयित्वाऽखिलाङ्गानि महापूजामथाचरेत् ॥ ३९॥
सहस्रनामभिर्देवि रुद्रसूक्तोक्तनामभिः ।
मूलमन्त्रेण चान्यैर्वा स्तोत्रमन्त्रैः समर्चयेत् ॥ ४०॥

पूजोपयोगीनि पुष्पाणि

पञ्च पुष्पाणि पूजायामवश्यं विधिनाऽर्चयेत् ।
द्रोणं च विल्वपत्रं च नित्यं नित्यार्चने शिवे ॥ ४१॥
तिलाक्षतैस्तण्डुलैर्वा नित्य[२]पूजां समाचरेत् ।
यान्यन्यानि सुगन्धीनि वन्यानि ग्रामजानि वा ॥ ४२॥

से कक्ष (कांखों) की, 'दिक्कर्णिने नमः' से कानों की और 'सर्वगन्धिने नमः' से नासिका की पूजा करे।।३७।। 'सर्ववक्त्राय नमः' से मुख की, 'त्रिदृशे नमः' से तीन नेत्रों की, 'भूभारभङ्गाय नमः' से भौंहों की और 'अलिकाक्षिणे नमः' मन्त्र से ललाट की पूजा करे।।३८।। 'सर्वोत्तमाय नमः' मन्त्र से सिर की और 'शशिमौलिने नमः' से सारे अंग की पूजा करे। इस प्रकार अवान्तर अंगपूजा को पूरा कर पुनः महापूजा प्रारंभ करे।।३९।। हे देवि ! शिवसहस्रनाम से, रुद्रसूक्त में आये नामों से, मूलमन्त्र से अथवा अपने अभीष्ट अन्य स्तोत्र-मन्त्रों से शिव का यह महापूजन करना चाहिये।।४०।।

हे शिवे ! पूजा में [1]पाँच प्रकार के पत्र-पुष्पों का विधिवत् उपयोग होता है। नित्यपूजा में द्रोणपुष्प और विल्वपत्र को अवश्य ग्रहण करना चाहिये।।४१।। तिलमिश्रित अक्षत अथवा केवल अक्षतों से भी नित्यपूजा की जा सकती है। इनके अतिरिक्त सुगन्धियुक्त पुष्पों से भी, भले ही वे वन में उत्पन्न हुए हों या ग्राम में, पूजा की जा सकती है।।४२।। मेरी पूजा में सभी प्रकार के पुष्पों, पल्लवों और पत्रों का, भले ही

---

१. टं मल्लि–क. ख. ग.। २. नित्यं–घ.।

1. पाँच प्रकार के पत्र-पुष्प ४७वें श्लोक में देखिये।

सर्वं स्यान्मम पूजायां पुष्पं पल्लवपत्रकम् ।
[१]ग्राम्यं वा वनजं वापि सर्वं स्यात् केतकीं विना ॥ ४३॥
[२]पद्मैरपामार्गकैश्च कह्लारैश्च कदम्बकैः ।
चम्पकैर्जातिकुसुमैर्मल्लिकावनसंभवैः ॥ ४४॥
उत्पलैः करवीरैश्च शेवन्तीपाटलीमुखैः ।
चूतपुन्नागबकुलमरुगैर्दवनादिभिः ॥ ४५॥
कुटजैर्वा कुरुबकैः कुन्दकेसरनागकैः ।
इत्याद्युक्तैरनुक्तैर्वा मम लिङ्गं सुपूजयेत् ॥ ४६॥
दूर्वाभिस्तुलसीविल्वैः करवीरैश्च कोमलैः ।
द्रोणैश्च पञ्चभिर्नित्यं मम लिङ्गं समर्चयेत् ॥ ४७॥
मोक्षार्थी विल्वजैः पत्रैरर्चयेच्च तिलाक्षतैः ।
धर्मार्थी द्रोणकुसुमैरर्थार्थी करवीरजैः ॥ ४८॥
धत्तूरैरर्ककुसुमैरपामार्गैर्मनोरथी ।
तुलसी शत्रुनाशाय जातिर्वश्याय योषिताम् ॥ ४९॥

वे गाँव में उत्पन्न हुए हों या वन में, समान रूप से उपयोग होता है। केवल केतकी (केवड़ा) का मेरी पूजा में कभी उपयोग नहीं होता।।४३।। कमल से, अपामार्ग (चिचिड़ा) से, रक्तकमल से, कदम्ब से, चम्पक से, बेला से, मल्लिका से और वन में उत्पन्न पुष्पों से मेरी पूजा की जाती है।।४४।। इसी तरह से उत्पल (नीलकमल), करवीर, शेवन्ती, पाटली, आम्रमंजरी, पुंनाग, बकुल, मरुवा, दमनक आदि से भी पूजा की जाती है।।४५।। कुटज, कुरुबक, कुन्द, केसर और नागकेसर से और इसी तरह से यहाँ बताये गये अथवा नहीं भी बताये गये पुष्पों से भी मेरे इष्टलिंग की पूजा करनी चाहिये।।४६।। कोमल दूर्वा (दूब), तुलसीदल, विल्वपत्र, करवीर (कनेर) और द्रोणपुष्प— इन पाँच प्रकार के पत्र-पुष्पों से इष्टलिंग की प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये।।४७।। मोक्ष की इच्छा वाला साधक विल्वपत्र से अथवा तिलमिश्रित अक्षत से इष्टलिंग की पूजा करे। धर्म को चाहने वाला द्रोणपुष्प से और धन चाहने वाला करवीर पुष्प से पूजा करे।।४८।। अपने मनोरथ को पूरा करने की जिसकी इच्छा है, उसे धतूरे के और आक के पुष्पों से एवं अपामार्ग से इष्टलिंग की पूजा करनी चाहिये। शत्रु का नाश करने के लिये तुलसी से और स्त्रियों को वश में करने के लिये जाति (वेला = मोगरा) से पूजा की जाती है।।४९।।

---

१. नास्त्येषा पङ्क्तिः—ग, घ.। २. पङ्क्त्योर्विपर्यस्तः पाठः—ग, घ.।

अर्कपुष्पं राजवश्यं नृवश्यं कमलार्चनम् ।
मल्लिकाभिर्जयार्थी [१]चेद् दूर्वाभिः कीर्तिकामनः ।।५०।।
आरोग्यकाम्युत्पलजैः पुत्रकामी कुरुण्टकैः ।
पुन्नागैः पशुकामी [२]चेत् सर्वार्थी सर्वसंभवैः ।।५१।।

लिङ्गार्चनक्रमः

एवं संपूज्य विश्वेशि प्रत्यहं तु दिनत्रयम् ।
तथाष्टाङ्गयुतं धूपं गन्धावग्रहकारिणे ।।५२।।
कर्पूरादिसुदीपांश्च सोमसूर्याग्निचक्षुषे ।
नैवेद्यं षड्रसोपेतं यद्यद् योग्यं ममादरात् ।।५३।।
अन्नानां पतये तुभ्यमिति मन्त्रेण निर्मलम् ।
[३]तत्सर्वमर्पयेद् देवि लिङ्गरूपे मयि प्रिये ।।५४।।
ताम्बूलं च सकर्पूरं रसज्ञायेति मन्त्रतः ।
घृताक्तवर्तिसंयुक्तं नीराजनमथाचरेत् ।।५५।।

आक के पुष्प से पूजा राजा को वश में करने वाली और कमल से की गई पूजा मनुष्य को वश करने वाली है। जय चाहने वाला मल्लिका पुष्प से और कीर्ति की कामना वाला दूर्वा से पूजा करे।।५०।। आरोग्य चाहने वाला कमल से, पुत्र की कामना वाला कुरुण्टक पुष्पों से, पशु की कामना करने वाला पुंनाग से और नाना प्रकार की कामनाओं वाला साधक नाना प्रकार के पुष्पों से पूजा करे।।५१।।

हे विश्वेशि ! इस तरह तीन दिन तक इस प्रकार की पूजा करता रहे। इस पुष्पपूजा के बाद 'गन्धावग्रहकारिणे नमः' मन्त्र से अष्टांग युक्त धूप समर्पित करे।।५२।। 'सोमसूर्याग्निचक्षुषे नमः' मन्त्र से कर्पूर-वर्तिका युक्त दीपक दिखावे। हे देवि ! 'अन्नानां पतये नमः' इस मन्त्र से षड्रस सम्पन्न जो कुछ निर्मल, स्वच्छ भोजन साधक बना सकता है, उसे आदरपूर्वक इष्टलिंगरूपधारी मुझ शिव को समर्पित करे।।५३-५४।। 'रसज्ञाय नमः' मन्त्र से कर्पूरमिश्रित ताम्बूल (पान) मुझे समर्पित करे और इसके बाद घृत में डूबी हुई दीपवर्तिका से मेरी आरती उतारे।।५५।। तब 'त्र्यम्बकं यजामहे' इस

---

१. च-ग. घ.। २. च-घ.। ३. तत्तत् सम-ग. घ. ङ.।

मन्त्रपुष्पं ततो दद्यात् त्र्यम्बकेति सुमन्त्रतः ।
प्रदक्षिणां नमस्कारान् कृत्वा स्तोत्रैः [१]स्तुवेदथ ।।५६।।
क्षमापनं प्रार्थनां च यस्य स्मृत्या क्षमापयेत् ।
रात्रौ जागरणं कुर्यान्मम लिङ्गस्य सन्निधौ ।।५७।।

सज्जिकागुणसंस्कारः

लिङ्गेन सह कुर्वीत सज्जिकाया गुणस्य च ।
प्राणस्थापनमारभ्य यथा लिङ्गस्य तत्तथा ।।५८।।
यदि तन्तुपटोत्पन्नौ न चैवं सज्जिकागुणौ ।
यदि लोहमयी सज्जा यदि वा तादृशो गुणः ।।५९।।
लिङ्गेन सह संस्कारं कुर्यादेवमतन्द्रितः ।
शैथिल्ये सज्जिकादेस्तु संस्कृत्य पुनरन्यतः ।।६०।।
अष्टबन्धे विशीर्णे तु पुनर्बन्धं च कारयेत् ।
यदि मोहात् त्यजेद्देहं स चाण्डालो भविष्यति ।।६१।।

पवित्र मन्त्र से मन्त्रपुष्पांजलि समर्पित करे। अन्त में प्रदक्षिणा और नमस्कार करके विविध स्तोत्रों से मेरी स्तुति करे।।५६।। भगवान् से क्षमा मांगे और प्रार्थना करे। "यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या" इस मन्त्र से क्षमा माँगी जाती है। रात्रि में शिवलिंग के पास बैठकर जागरण करे।।५७।।

इष्टलिंग के साथ सज्जिका और शिवसूत्र की भी प्राणप्रतिष्ठा से लेकर सारी पूजाविधि उसी प्रकार की जाती है।।५८।। यदि सज्जिका और शिवसूत्र तन्तु और वस्त्र से बनाये गये हैं, तब उनकी प्राणप्रतिष्ठा नहीं की जाती। सज्जिका और सूत्र यदि लोह आदि धातु से बने हैं, तभी उनका यह संस्कार किया जाता है।।५९।। उनका यह संस्कार इष्टलिंग के साथ ही बिना आलस्य के सम्पन्न करना चाहिये। सज्जिका, शिवसूत्र आदि के शिथिल होने पर उसे छोड़कर मजबूत सज्जिका आदि का ग्रहण कर उनका पुनः संस्कार करना चाहिये।।६०।। अष्टबन्ध के खुल जाने पर उनको विधिवत् पुनः बाँध लेना चाहिये। यदि कोई उनका पुनः विधिवत् संस्कार नहीं करता, तो वह देहत्याग के बाद चाण्डाल योनि में जन्म लेता है।।६१।। सज्जिका अथवा शिवसूत्र के नष्ट

---

१. स्तुया–ख. ।

यन्नष्टं तत्प्रकुर्वीत यथाशास्त्रं गुरोर्वचः ।
न तिष्ठेन्नियमेनासौ लिङ्गसंपूजनादृते ।। ६२।।

दीक्षितेन समयपालनम्

नान्यधर्मो भवेद्धर्मो न धर्मोऽधर्म एव च ।
नान्यधर्मैर्न पाषण्डैर्न दुर्वृत्तैर्न लोलुपैः ।। ६३।।
न धूर्तैर्नागुरोर्भक्तै[1]र्नाभक्तैर्नानृतोक्तिभिः ।
न मतद्वेषिभिर्मूर्खैर्नानाचाररतैरपि ।। ६४।।
न शठैर्नार्थलुब्धैश्च नागुरूक्तार्थकारिभिः ।
न स्त्रीषु लोलुपैर्जारैर्न[2] चोरैरात्मकारिभिः ।। ६५।।
न दूषकैर्हिंसकैर्वा नानर्हैश्च क्वचित् प्रिये ।
सहोपवेशयेद्भाषेदश्नीयात् सङ्गमाचरेत् ।। ६६।।
स्वपेद् गच्छेदुपश्लोक्येन्नालोकेन्नाभिवादयेत् ।
यदि शक्तस्तदा लिङ्गं शिवयोगी समर्चयेत् ।। ६७।।

हो जाने पर उनका शास्त्रविधि के अनुसार पुनः निर्माण करना चाहिये, ऐसी गुरु की वाणी है। इष्टलिंग पूजा किये बिना उसे कहीं भी नियमतः नहीं रहना चाहिये।।६२।।

दूसरों का धर्म अपना धर्म कभी नहीं हो सकता और न अपना धर्म कभी अधर्म की कोटि में आ सकता है। अन्य धर्मों के अनुयायियों के, पाखंडियों के, दुराचारियों के और इन्द्रियलोलुप व्यक्तियों के साथ नहीं रहना चाहिये।।६३।। धूर्त, गुरु के प्रति भक्तिभाव न रखने वाले, भक्तिहीन, असत्यवादी, वीरशैव मत से द्वेष रखने वाले, मूर्ख और मनमाने तरीके से भाँति-भाँति का आचरण करने वाले के साथ भी नहीं रहना चाहिये।।६४।। लुच्चे, द्रव्यलोभी, गुरु की आज्ञा का अनुसरण न करने वाले, स्त्रियों के प्रति बुरी दृष्टि वाले, चोर और अहंकारी व्यक्ति के साथ भी शिवभक्त को नहीं रहना चाहिये।।६५।। हे प्रिये ! दूसरों में बुराई देखने वाले, हिंसक और अयोग्य व्यक्तियों के साथ भी उसे कभी नहीं रहना चाहिये, उनको अपने पास नहीं बैठाना चाहिये और न उनके साथ भाषण और भोजन ही करना चाहिये।।६६।। ऐसे व्यक्तियों के साथ सोना, कहीं जाना, उनकी स्तुति करना, उनको देखना अथवा अभिवादन करना भी वर्जित है। यदि समर्थ है, तो शिवभक्त इन सबका परित्याग कर सदा केवल इष्टलिंग की पूजा ही किया करे।।६७।। पुण्यकाल में, शुभ

१. र्नापापैः-ख.। २. नरैर्न-क.।

पुण्यकालेषु योगेषु विशेषेण समर्चयेत् ।
संक्रान्तौ विषुवे चैव स्वजन्मत्रितये दिने ।।६८।।
नवम्यां च चतुर्दश्यां सितायां सोमवासरे ।
यथाशक्त्यर्चयेल्लिङ्गं पौर्णमास्यां विशेषतः ।।६९।।
[१]अर्धोदयादियोगेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
व्यतीपाते कुहूयोगे प्रदोषे च विशेषतः ।।७०।।
प्रतित्रयोदशीरात्रौ शनियोगे विशेषतः ।
कृष्णभौमचतुर्दश्यां गुरूणां च मृतेऽहनि ।।७१।।
पित्रोः सिद्धिङ्गतदिने विशेषेण समर्चयेत् ।
शुक्लभौमचतुर्थ्यां तु कृष्णाष्टम्यां विशेषतः ।।

योग में [1]संक्रान्ति काल में, विषुव काल में और अपने जन्मदिन से लगातार तीन दिन तक अथवा अपने जन्मदिन, दीक्षादिन और गुरु के जन्म दिन में।।६८।। शुक्ल पक्ष की नवमी, चतुर्दशी के दिन सोमवार के रहने पर तथा पूर्णमासी के दिन विशेष रूप से अपनी भक्ति के अनुसार इष्टलिंग की पूजा करनी चाहिये।।६९।। [2]अर्धोदय आदि योगों के उपस्थित होने पर, चन्द्र और सूर्य के ग्रहण के अवसर पर, व्यतीपात, कुहू योग और विशेष कर प्रदोष के दिन शिवलिंग की पूजा अवश्य करे।।७०।। प्रत्येक पक्ष की त्रयोदशी की रात्रि में, विशेष कर शनिवार के रहने पर, कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में मंगलवार रहने पर, गुरुजनों की लिंगैक्य (मृत्यु) तिथियों पर, माता-पिता के लिंगैक्य (मृत्यु) दिन पर विशेष रूप से शिवार्चन करना चाहिये।।७१।। शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के दिन मंगलवार रहने पर और कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन अपने वैभव के अनुसार नृत्त, गाने-बजाने और संगीत का आयोजन करना चाहिये।।७२।।

१. "अर्धोदयस्य लक्षणं महाज्योतिषे— अमार्कश्रवणे पाते युक्ता चेत् पुष्यमाघयोः। अर्धोदयः स विज्ञेयः किञ्चिन्न्यूनो महोदयः।।७१।। कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मघास्विन्दुः करे रविः। यदा तदा गजच्छाया श्राद्धे सर्वैरवाप्यते।।७२।। नभस्यसितपक्षे च षष्ठी कुजदिने यदा। रोहिणीपातयोगेन सा षष्ठी कपिला स्मृता।।७३।।" इत्ययमधिकः पाठो दृश्यते— ग. घ. ङ.।

1. सूर्य के एक राशि से दूसरी राशि में जाने के संक्रमण काल को संक्रान्ति कहते हैं। दिन-रात का कालमान जब बराबर रहता है, उस काल को विषुव काल कहा जाता है। तुला और मेष संक्रान्ति में यह काल पड़ता है।
2. अर्धोदय आदि कालों का लक्षण संस्कृत टिप्पणी में दिया गया है।

[१]नृत्यवादित्रगीताद्यैर्यथाविभवविस्तरम् ।।७२।।

घण्टानादमहिमा

दरिद्रः करतालैर्वा घण्टानादेन चार्चयेत् ।
कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागमकोटयः[२] ।।७३।।
श्रवणेनैव घण्टाया नादस्यायान्ति संक्षयम् ।
श्रूयते हि जनैर्यावद् घण्टानादः समन्ततः ।।७४।।
तावत्पापानि रक्षांसि [३]शक्ताः स्थातुं नहि क्षणम् ।
तस्मात् प्रयत्नतो देवि घण्टानादं सुसाधयेत् ।।७५।।
तथैव यत्नतो देवि ताडयेज्जयघण्टिकाम् ।
तदभावेऽपि यत्नेन कांस्यनादं समाचरेत् ।।७६।।
कुर्वीत कहलानादं मम लिङ्गार्चनोत्सवे ।
लिङ्गधारी विशेषेण शङ्खनादेन पूजयेत् ।।७७।।
सर्वाभावेऽपि यत्नेन यतः शङ्खो मम प्रियः ।
दीपान् प्रज्वालयेद् देवि मम लिङ्गस्य सन्निधौ ।।७८।।
अभिषेकः प्रकर्तव्यो यथाशक्त्यमलोदकैः ।
चुलुकोदकमारभ्य यावच्छक्त्यभिषेचने ।।७९।।

दरिद्र व्यक्ति स्वयं ही करताल बजा कर और घंटानाद कर शिवपूजन करे। करोड़ों, ब्रह्महत्याओं से उत्पन्न पापों का और अगम्यागमन जन्य पापों का क्षय घंटाध्वनि के सुनने मात्र से हो जाता है।।७३।। मनुष्य चारों दिशाओं में जितनी दूर तक घंटे की ध्वनि को सुनते हैं, उतनी दूर तक सभी प्रकार के पाप और राक्षस आदि क्रूर जीव एक क्षण के लिये भी नहीं रह सकते। इसलिये हे देवि ! प्रयत्नपूर्वक घण्टानाद करते रहना चाहिये।।७४-७५।। हे देवि ! इसी तरह प्रयत्नपूर्वक जयघण्टिका (झंगट) को बजाना चाहिये और उसके अभाव में कांसे से बने हुए बाजों को बजाना चाहिये।।७६।। इष्टलिंग का पूजन करते समय [1]कहलानाद करना चाहिये। इष्टलिंगधारी शिवभक्त को पूजा के समय अन्य किसी वाद्य के न मिलने पर विशेष रूप से शंखध्वनि करनी चाहिये, क्योंकि शंख मुझे बहुत ही प्रिय है।।७७-७८।। हे देवि ! इष्टलिंग की सन्निधि में दीपों को प्रज्ज्वलित करना चाहिये। स्वच्छ जल से अपनी शक्ति के अनुसार अभिषेक

---

१. नास्त्येषा पङ्क्तिः–क. ख. ङ.। २. इतः परं 'श्रूयते ......तावत्पापानि.... तस्मात्' इति पङ्क्तित्रयं स्थाप्यते–ग. घ.। ३. शक्त्या–क. ङ.।

1. शिवमानसपूजास्तोत्र में— "वीणाभेरिमृदङ्गकाहलकला गीतं च नृत्यं तथा" यहाँ मृदंग के साथ काहल वाद्य का उल्लेख है। उसी को यहाँ 'कहला' कहा गया है।

तावदासेचयेल्लिङ्गमधिकस्याधिकं फलम्[१] ।
साधयेद् यत्नतो गन्धं कस्तूर्यादि स्वशक्तितः ॥८०॥
अशक्तः सर्वयत्नेन द्रोणपुष्पैः समर्चयेत् ।
सर्वदा सर्वयत्नेन सर्वं त्यक्त्वा तु पार्वति ॥८१॥
[२]सर्वाल्लाभात् परं मत्वा लिङ्गार्चनपरो भवेत् ।

चतुर्थदिनकृत्यम्

[३]यथाशक्ति यथाभक्ति यथाकालं यथासुखम् ॥८२॥
यथासंभावितैर्द्रव्यैर्लिङ्गपूजापरो भवेत् ।
चतुर्थे तु दिने देवि कृत्वोषस्यवगाहनम् ॥८३॥
यथेच्छा यजमानस्य मङ्गलस्नानमाचरेत् ।
समेत्य बहुभिर्वृद्धैः शिवतत्त्वार्थवेदिभिः ॥८४॥

करना चाहिये। अभिषेक एक चुल्लू पानी से भी किया जा सकता है और अपनी शक्ति के अनुसार इसको बढ़ाया भी जा सकता है। अधिक पूजा करने का फल भी अधिक मिलता है, यह तो लोक में प्रसिद्ध ही है।।७८-८०।। अपनी शक्ति के अनुसार शिवभक्त को कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्यों को मिला कर प्रयत्नपूर्वक चन्दन तैयार करना चाहिये। हे पार्वति ! अशक्त होने पर सब कुछ छोड़ कर शिवभक्त सदा केवल द्रोणपुष्प से ही प्रयत्नपूर्वक पूजा कर सकता है। अन्य सांसारिक लाभों से श्रेष्ठ मानकर शिवभक्त को सदा इष्टलिंग का पूजन करना चाहिये।।८०-८२।।

हे देवि ! तीन दिन के अनुष्ठान को पूरा करने के बाद चौथे दिन प्रातःकाल स्नान करना चाहिये और तब अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार यथासमय सुविधापूर्वक उपलब्ध होने वाले द्रव्यों का संग्रह कर उनसे इष्टलिंग का पूजन करना चाहिये।।८२-८३।। यजमान की इच्छा के अनुसार शिवतत्त्व के वेत्ता अनेक वृद्ध जनों के साथ उसे मंगलस्नान कराना चाहिये।।८४।।

---

१. इतः परम्—'ग्रन्थान्तरेऽष्टगन्धस्य लक्षणं लिख्यते— कस्तूरी कुङ्कुमं गन्धं कर्पूरं च सुशोभनम्। उशीरं चागरुः कोष्ठं तमालदलमेव च।। शिवाष्टगन्धमेतत्तु ह्यष्टमूर्तिस्वरूपकम्।।" इत्ययमधिकः पाठ–ग. घ. ङ.। २. सर्वला–ग. घ.। ३. "चतुर्थे.... यथाशक्ति.... यथासंभा...." इत्ययं पङ्क्तिक्रमः–ग. घ.।

शिवयोगिभिः पालनीया नियमाः

लिङ्गपूजासु निरतैर्लिङ्गिभिः शिवयोगिभिः ।
पीठे पुराणं [1]लैङ्गं मे नन्दीशं पूजयेच्छिवे ॥८५॥
नन्द्यूर्मिका सदा धार्या भक्तस्याङ्गुष्ठपर्वणि ।
नोच्छिष्टदोषश्चान्योन्यं भुञ्जतां धृतलिङ्गिनाम्[2] ॥८६॥
न च प्रक्षालनं पाण्योस्तदुच्छिष्टधिया शिवे ।
शयानः श्रीगुरोः पादपद्माग्रे शयिता भवेत् ॥८७॥
यथा शिवे तथा लिङ्गे यथा लिङ्गे तथा गुरौ ।
यथा गुरौ तथा प्राणे तथा प्राणेऽनुशासने ॥८८॥
यथा यथैव तच्छास्त्रे मते चापि तथा भवेत् ।
एकाभिमानः सद्भक्तिर्वीरशैवमते मम ॥८९॥

हे शिवे ! इसके बाद इष्टलिंग की पूजा में सदा लगे रहने वाले इष्टलिंगधारी शिवयोगी पीठ पर स्थापित प्राचीन शिवलिंग और नन्दीश की भी पूजा करे। इस वचन का यह स्पष्ट संकेत है कि इस शिवादेश के आधार पर शिवयोगियों को अपने इष्टलिंग की पूजा के साथ मन्दिर में स्थापित प्राचीन शिवलिंग और नन्दीश्वर की पूजा करने पर एकनिष्ठा में कोई बाधा नहीं आवेगी।।८५।। शिवभक्त को अपने अँगूठे में नन्दी के चिह्न से अंकित अंगूठी सदा धारण करनी चाहिये। इष्टलिंगधारी जब परस्पर मिलकर भोजन करते हैं, तो उनमें उच्छिष्ट दोष नहीं माना जाता।।८६।। हे शिवे ! उच्छिष्ट दोष की शंका से हाथ धोने की भी यहाँ आवश्यकता नहीं मानी जाती। शिष्य सोते समय अपने गुरु के चरणों में सोवे।।८७।। शिष्य शिव के समान ही इष्टलिंग के प्रति, इष्टलिंग के समान ही गुरु के प्रति, गुरु के समान ही अपने प्राण के प्रति और प्राण के समान ही शास्त्र के प्रति पूरी श्रद्धा रखे।।८८।। शिष्य को जैसी शास्त्र के प्रति श्रद्धा है, उसी तरह का भाव उस मत के प्रति भी रहना चाहिये। मेरे वीरशैव मत के प्रति श्रद्धा का अभिप्राय एकमात्र उसी को अंगीकार करना है।।८९।।

---

१. लिङ्गं–ख.। २. लिङ्गधारिणाम्–ख.।

लिङ्ग-विभूति-रुद्राक्षधारणमहिमा

लिङ्गधारणमात्रेण कुतोऽसौ मानुषः शिवे ।
सदा विभूतिसंपर्कात् सदा रुद्राक्षधारणात् ।। ९० ।।
धारणान्मम लिङ्गस्य सोऽहमेव न संशयः ।
अणुमात्रमपीशानि ललाटे यस्य दृश्यते ।। ९१ ।।
तन्नामपाविता भूतिः सोऽहं रुद्रो न संशयः ।
धृतसद्भूतिसर्वाङ्गं ये पश्यन्त्यपि[१] पापिनः ।। ९२ ।।
त एव धन्या गिरिजे ते चान्यान् पावयन्ति च ।
यस्य देहेऽस्ति रुद्राक्षो यावद्भक्त्यैक एव वा ।। ९३ ।।
तं दृष्ट्वा दूरतो यान्ति पापानि विविधानि च ।
विभूतिरपि रुद्राक्षं लिङ्गं यस्य त्रयं तनौ ।। ९४ ।।
स साक्षाद् रुद्र ईशानि सोऽहमेव न संशयः ।
मम लिङ्गार्चनाभूतिरुद्राक्षमनुजापनैः ।। ९५ ।।
एकैकमेव मत्प्राप्त्यै किं फलं सर्वसन्निधौ ।
ललाटे भस्मना पुण्ड्रं [२]करे रुद्राक्षजापनम् ।।

हे शिवे ! मनुष्य ने यदि इष्टलिंग धारण कर लिया है, सदा विभूति धारण किये रहता है और सदा रुद्राक्ष धारण करता है, तब वह मनुष्य कहाँ रह जायगा। जो भक्त मेरे इष्टलिंग को धारण करता है, वह तो साक्षात् शिव ही हो जाता है। हे ईशानि ! जिस शिष्य के ललाट पर थोड़ी सी भी विभूति लगी है, वह साक्षात् शिव ही है।।९०-९१।। मेरे नाम से पवित्र की गई भस्म को धारण करने वाला निःसन्देह साक्षात् शिव ही है। सर्वांग में भस्म लगाये शिवभक्त को देखकर पापी जन भी पापमुक्त हो जाते हैं। हे गिरिजे ! ऐसे शिवभक्त धन्य हैं, जो दूसरों को भी पवित्र बना देते हैं।।९२-९३।। जिसने अपने शरीर पर भक्तिभावपूर्वक एक भी रुद्राक्ष धारण कर रखा है, उसको देखकर नाना प्रकार के पाप बहुत दूर चले जाते हैं।।९३-९४।। हे ईशानि ! जिस शिवभक्त के शरीर पर विभूति, रुद्राक्ष और इष्टलिंग ये तीनों विराजमान हैं, यह साक्षात् रुद्र ही है, निःसन्देह वह मुझसे अभिन्न है।।९४-९५।। मेरे इष्टलिंग का पूजन, भस्म का और रुद्राक्ष का धारण तथा शिवपंचाक्षरी मन्त्र का जप— इनमें से प्रत्येक में शिवपद-प्राप्ति की सामर्थ्य है। जिस भक्त में ये सभी साधन विद्यमान हों, उसके फल का वर्णन करना असंभव है, उसे तो सब कुछ प्राप्त हो जाता है। हे देवि ! ललाट

१. न्त्यप्य-क.। २. रुद्राक्षो मनुजापनम्-ख.।

कण्ठे च लिङ्गाभरणं [1]सोऽहं देवि न संशयः ॥९६॥

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे शिवाद्वैतसिद्धान्ते वीरशैवदीक्षायां [2] लिङ्गार्चनविधिर्नाम तृतीयः पटलः समाप्तः[3] ॥३॥

पर जिसने भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण कर रखा है, शरीर पर रुद्राक्ष धारण किये है, जो शिवपंचाक्षरी मन्त्र का जप करता है और कण्ठ में जिसने इष्टलिंग का आभूषण धारण कर रखा है, वह निःसन्देह मैं ही हूँ।।९५-९६।।

इस प्रकार शिवाद्वैतसिद्धान्त के प्रतिपादक श्री पारमेश्वर तन्त्र के वीरशैवदीक्षा प्रकरण में लिंगार्चन विधि का प्रतिपादक यह तृतीय पटल समाप्त हुआ।।३।।

---

१. सोऽहमेव–ग. घ. ङ.। २. दीक्षाप्रकरणे–ख.। ३. 'समाप्तः' नास्ति–क. ख.।

चतुर्थः पटलः

होमविधिनिरूपणम्

ईश्वर उवाच

उपविश्य गुरुः पीठे प्राणायामादिकं चरेत् ।
वीरशैवाख्यदीक्षाङ्गं करिष्ये होममित्यथ ।।१।।

स्थण्डिलकुण्डप्रभेदाः

कृत्वा संकल्पमीशानि होमदेशं विशोधयेत् ।
स्थण्डिलं वापि कुण्डं वा यथाकामं समाचरेत् ।। २।।
स्थण्डिले सर्वसंपत्तिः कुण्डे सर्वार्थसिद्धयः ।
स्थण्डिलं त्रिविधं प्रोक्तं कुण्डं पञ्चविधं शिवे ।। ३।।
चतुरस्रत्र्यस्रवृत्तभेदा धर्मार्थकामदाः ।
चतुरस्रत्र्यस्रवृत्तार्धचन्द्रकमठाः क्रमात् ।। ४।।
धर्मार्थकामसायुज्यकैवल्यफल[1]दायिनः ।
एतेष्वन्यतमे देवि प्रदेशे होमकर्मणः ।।५।।

ईश्वर का उपदेश

गुरु अपने आसन पर बैठकर आचमन, प्राणायाम आदि करे और फिर यह संकल्प करे कि वीरशैव धर्म की दीक्षा के लिये मैं हवन करूँगा।।१।।

हे ईशानि ! ऐसा संकल्प लेने के बाद वह हवन करने के स्थान की शुद्धि करे। इसके लिये वह अपनी इच्छा के अनुसार स्थण्डिल अथवा कुण्ड का निर्माण करे।।२।। हे शिवे ! स्थण्डिल पर हवन करने से सभी प्रकार की सम्पत्तिं का लाभ होता है और कुण्ड में आहुति देने से मनुष्य के सभी प्रयोजन सिद्ध होते हैं। इनमें से स्थण्डिल तीन प्रकार का और कुण्ड पाँच प्रकार का होता है।।३।। स्थण्डिल के चतुरस्र (चौकोर), त्र्यस्र (त्रिकोण) और वृत्त (गोल) नामक भेद क्रमशः धर्म, अर्थ और काम को देने वाले तथा कुण्ड के चतुरस्र, त्र्यस्र, वृत्त, अर्धचन्द्र और कूर्माकृति नामक भेद क्रमशः धर्म, अर्थ, काम, सायुज्य और कैवल्य पद को देने वाले हैं। हे देवि ! इन सबमें से किसी एक में गुरु हवन करे।।४-५।।

---

१. पद-ख.।

होमाङ्गविधेयता

पुण्याहवाचनं कृत्वा नान्दीकर्म समाचरेत् ।
[1]पञ्चगव्यादिकं पीत्वा[2] सभां च शिवयोगिनाम् ।। ६।।
संपूज्य शक्तितो भक्त्या गुरुरग्निमथानयेत् ।
योगिनीभिः सहेशानि चतुर्भिर्लिङ्गधारिभिः ।। ७।।
सूर्यारणिशिवागारशिवयोगिगृहादिभिः ।
मूलमन्त्रेण चोद्दीप्याभिवादेत् पञ्चमुद्रया[3] ।। ८।।

अग्नेर्वीक्षणादयोऽष्टौ संस्काराः

पूर्वभागेऽग्निकुण्डस्य संस्थाप्याग्निमथोपरि ।
संस्कुर्यात् स्थापनं देशं वीक्षणादिभिरष्टभिः ।। ९।।
वीक्षणं ताडनं देवि प्रोक्षणं चाभिमर्शनम् ।
घातनं प्रार्थनं चाभिमन्त्रणं च नमस्कृतिः ।। १०।।

पुण्याहवाचन के बाद गुरु शुभ नान्दी कर्म सम्पन्न करे। पंचगव्य का प्राशन करे और शिवयोगियों की सभा का यथाशक्ति पूजन कर भक्तिपूर्वक अग्नि का आहरण करे। हे ईशानि ! यह कार्य चार लिंगधारियों और योगिनियों की सहायता से करे।।६-७।। यह अग्नि सूर्य की किरणों से अथवा अरणिकाष्ठ से उत्पन्न की जाती है अथवा शिवमन्दिर और शिवयोगी के घर से लाई जाती है। मूल मन्त्र से गुरु उसे प्रज्वलित करे और पंचविध मुद्रा (स्तंभन, चतुरस्र, धेनु, मत्स्य और योनि) दिखाकर उसका अभिवादन करे।।८।।

अग्निकुण्ड के पूर्व भाग में अग्नि को स्थापित करने के बाद उस स्थान को [1]वीक्षण आदि आगे बताये गये आठ संस्कारों से पवित्र करे।।९।। हे देवि ! ये आठ संस्कार हैं— वीक्षण, ताडन, प्रोक्षण, अभिमर्शन, घातन, प्रार्थन, अभिमन्त्रण और नमस्कार।।१०।।

---

१. 'योगिनीभिः... सम्पूज्य.... पञ्च' इत्ययं पङ्क्तिक्रमः—ग. घ.। २. कृत्वा—क. ख.। ३. ग्रन्थान्तरे पञ्चमुद्राः प्रदर्श्यति— "स्तम्भनं चतुरस्रं च धेनुर्मत्स्यं तथैव च। योनिमुद्रा नमस्कारे पञ्च मुद्राः प्रकीर्तिताः।।" इत्यधिकः पाठः—ग. घ.।

1. भूमिसंस्कार, कुण्डनिर्माण, अग्निसंस्कार, घृतसंस्कार आदि की यहाँ प्रदर्शित पूरी प्रक्रिया वैदिक पद्धति का अनुसरण करती है।

वीक्षयेत् प्रणवेनादौ यागदेशं गुरुः शिवे ।
तथाष्ट[1]मन्त्रतोयेन प्रोक्षणं ताडनं विदुः ॥११॥
तदेवं प्रोक्षणं नाम ऋजुतैक्ष्ण्यादिभेदतः ।
स्पृष्ट्वा हस्तेन तत्कुण्डं जपो यद्यभिमर्शनम् ॥१२॥
घातनं तु खनित्रेण खातनं हवनस्थले ।
प्रार्थयेन्मूलमन्त्रेण यथाशक्त्यभिमन्त्रणम् ॥१३॥
तेनैव द्वादशजपैः स्पृष्ट्वा तदभिमन्त्रणम् ।
नमस्कृतिर्नमस्कार एतैरेष्टभिरन्विते[2] ॥१४॥

अग्निस्थापनम्

[3]मेखलात्रयसंयुक्ते साश्वत्थदलशोभिते ।
सार्धारत्न्यन्तरागाधे तादृग्व्यायामशोभिते ॥१५॥
मूलेनाग्निं प्रतिष्ठाप्य पुनस्तेनानुमन्त्रयेत् ।
हुमिति प्रोक्षितं चाग्नौ निक्षिपेत् समिधां शतम् ॥१६॥

हे शिवे ! गुरु यागप्रदेश को पहले प्रणव मन्त्र का उच्चारण करते हुए देखे, यही वीक्षण संस्कार है। आठ बार प्रणव मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से उस स्थल को ताडित करना ताडन और उस पूरे स्थल पर जल को छिड़कना प्रोक्षण कहलाता है। हाथ से कुण्ड का स्पर्श कर जो मन्त्रजप किया जाता है, वह अभिमर्शन कहलाता है।।११-१२।। हवन स्थल को खुरपी आदि की सहायता से खोदना (खातन) घातन, मूल मन्त्र से यथाशक्ति स्तुति करना प्रार्थन और मन्त्र का बारह बार जपकर उस स्थल को प्रणाम करना ही नमस्कार संस्कार है। इन आठ संस्कारों से हवन-स्थल को पवित्र बनाना चाहिये।।१३-१४।।

यह हवन-कुण्ड तीन मेखलाओं से और पीपल के पत्ते के आकार की योनि से शोभित रहता है। इसकी गहराई और लम्बाई-चौड़ाई डेढ़-डेढ़ हाथ (अरत्नि) की रहती है।।१५।। मूल मन्त्र से उस कुण्ड में अग्नि को प्रतिष्ठित किया जाता है और उसी मन्त्र से अग्नि की प्रार्थना की जाती है। इसके बाद हुँ मन्त्र से प्रोक्षित उस अग्निकुण्ड में सौ समिधाएं रखी जाती हैं।।१६।। हे शिवे ! गुरु स्वयं हुंकार स्वरूप कवच मन्त्र

१. मन्त्रि-क. ग. घ.। २. रचितैः-ख, रन्वितैः-ग. घ. ङ.। ३. श्लोकोऽयं १३३ पृष्ठे टिप्पण्यां स्थापितः-ख.।

धमन्या धमयेदग्निं कवचेन गुरुः शिवे ।
ज्वलितेऽग्नौ पुनर्ध्यायेन्मामेव परमेश्वरि ॥१७॥
चतुर्भुजमुदाराङ्गं चन्द्रशेखरमव्ययम् ।
कुठारैणाभयवरपाणिपङ्कजशोभितम् ॥१८॥
[1]वामाङ्कालिङ्गिताद्रीन्द्रतनयं परमेश्वरम् ।
मन्दस्मितं त्रिनयनमुमारमणमीश्वरि ॥१९॥
अथ ध्यायेत[2] भवतीमेवंरूपां विचक्षणः ।
उद्यदादित्यसंकाशामरुणाभरणांशुकाम् ॥२०॥
अन्तर्गतमहावह्निं गुर्विणीं कुण्डरूपिणीम् ।
सह तारेण मूलेन दद्यादाज्याहुतीर्दश ॥२१॥
शिरोऽसि जगतामीशेत्यनेनाग्निं विभावयेत् ।
तद्गर्भकोटरे[3] देवि समुत्पन्नं हुताशनम् ॥२२॥
नमोऽग्नये ते रुद्राय पशूनां पतये नमः ।
नम उग्राय वीराय नमस्ते चन्द्रमौलये ॥२३॥

का उच्चारण करता हुआ धौकनी से अग्नि को प्रज्वलित करे और उस प्रज्वलित अग्नि में मेरे ही स्वरूप का ध्यान करे।।१७।। हे ईश्वरि ! मेरा वह स्वरूप चार भुजा वाला, कोमल अंग वाला, कभी नष्ट न होने वाली चन्द्रकला से सुशोभित, कुठार-एण-(हरिण)-अभय-वरमुद्रा से सुशोभित चार हाथों वाला, वाम अंक में पार्वती से सुशोभित, मन्द मुसकान और तीन नेत्रों से सुशोभित है।।१८-१९।। इसके बाद वह बुद्धिमान् गुरु भगवती पार्वती का भी ध्यान करे कि वह भगवती स्वयं उदित हो रहे सूर्य के समान लाल वर्ण की हैं और लाल वर्ण के ही वस्त्र पहने हुए हैं। कुण्डरूपिणी उस महाशक्ति ने अपने भीतर महान् अग्नि को गर्भ के रूप में धारण कर रखा है। शिव-शक्ति के इस ध्यान के बाद प्रणव के साथ मूल मन्त्र का उच्चारण कर उस कुण्ड में दस आहुतियाँ दे।।२०-२१।। हे देवि ! 'शिरोऽसि जगतामीश' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए उस कुण्ड के गर्भ से प्रकट हुए अग्नि को नमन करे।।२२।। 'नमोऽग्नये' इत्यादि श्लोक का उच्चारण करते हुए, मैं उस रुद्रस्वरूप, पशुओं के

---

१. वामाङ्गा-ख. ग. घ.। २. यीत-ग. घ. ङ.। ३. जठरे-घ. ङ.।

इत्यग्नौ पृथगाज्येन हुनेदेवं शताहुतीः ।

रुद्रध्यानम्

अथ यत्नेन कुण्डस्थं ध्यायेद् रुद्रं हुताशनम् ॥ २४॥
सप्तहस्तं चतुश्शृङ्गं सप्तजिह्वं द्विशीर्षकम् ।
त्रिपादं निर्मलमुखं सुखासीनं [१]स्रुचार्पितम् ॥ २५॥
तोमरं व्यजनं व्यालं[२] चापबाणौ वराभये ।
दधानं सर्वभूषाढ्यं सद्योजातं महेश्वरम् ॥ २६॥
नमो रुद्राय देवाय चेशानाय कपर्दिने ।
हुताशनाय नीलाय लोहिताय ककुद्मते ॥ २७॥
सहतारेण मूलेन प्रतिमन्त्रान्तरं तदा ।
हुनेदाज्येन देवेशि षोडशाज्याहुतीः क्रमात् ॥ २८॥

अग्नेर्जातकर्मादयः संस्काराः

जातस्य जातकर्मार्थं[३] हुनेदाज्याहुतीर्दश ।
सहतारेण मूलेन जातकर्मेदमुच्यते ॥ २९॥

पति, उग्र, वीर और चन्द्रमौलि स्वरूप अग्नि का नमन करता हूँ, इस प्रकार कहते हुए गुरु उस अग्नि में घृत की सौ आहुतियाँ दे।।२३-२४।।

इसके बाद प्रयत्नपूर्वक कुण्ड में स्थित उस रुद्रस्वरूप अग्नि का ध्यान करे कि यह अग्नि सात हाथ वाला, चार सींग वाला, सात जीभ और दो शिर वाला है। इसके तीन पैर हैं और मुख अतीव निर्मल है। सुखपूर्वक बैठा हुआ यह अग्नि स्रुचा के द्वारा अर्पित घृत को ग्रहण करता है।।२४-२५।। इसके सात हाथों में तोमर, व्यजन, व्याल, धनुष, बाण, वर और अभय मुद्रा स्थित हैं। सभी आभूषणों से सुशोभित यह अग्नि साक्षात् सद्योजात महेश्वर है।।२६।। हे देवेशि ! 'नमो रुद्राय' इस श्लोक के साथ प्रणव तथा मूल मन्त्र का उच्चारण कर सोलह घृताहुतियाँ दे।।२७-२८।।

कुण्डस्थित अग्नि के जातकर्म संस्कार के लिये प्रणव के साथ मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए घृत की दस आहुतियाँ दी जाती है, अर्थात् इसी से यह संस्कार सम्पन्न होता है।।२९।। हे ईशानि ! रुद्राग्नि मन्त्र के साथ सप्रणव मूल मन्त्र का उच्चारण

---

१. शुचा-ग. घ. ङ.। २. वालं-क. ङ., तालं-ख.। ३. कामार्थं-क. ख.।

रुद्राग्निरिति चेशानि[1] नामकर्मैवमाचरेत् ।
सहतारेण मूलेन हुनेदाज्याहुतीर्दश ॥ ३०॥
पृथग्भूतमुमेशाभ्यामग्निं संचिन्त्य योगिनम् ।
कुर्यान्निष्क्रमणं नाम हुनेदाज्याहुतीर्दश ॥ ३१॥
कर्णवेधाभिधं नाम संस्कारं मणिकुण्डलम् ।
भावयित्वा शुचिः कर्णे हुनेदाज्याहुतीर्दश ॥ ३२॥
अथान्नप्राशनार्थं च चौलार्थं क्रमशो दश ।
कृत्वोपनयनं नाम संस्कारं मूलमन्त्रतः ॥ ३३॥
तारेण शतमूलेन नमो रुद्राय च क्रमात् ।
हुनेदाज्याहुतीरग्नौ प्रीत्यर्थं विंशतिं हुनेत् ॥ ३४॥
शतमष्टोत्तरं पश्चान्मूलेनाज्येन पार्वति ।
कुर्याद् विवाहसंस्कारं स्वाहया सह वै शुचेः ॥ ३५॥
तरुणं रूपसम्पन्नमर्चिभि[2]र्दीप्ततेजसम् ।
स्वाहाशोभितवामाङ्कमभिध्यायेद्धुताशनम् ॥ ३६॥

कर घृत की दस आहुतियाँ देकर अग्नि का नामकरण संस्कार सम्पन्न करे।।३०।। अब यह कुण्डस्थ अग्नि उमा और महेश से पृथक् हो गया है, ऐसा विचार करते हुए घृत की दस आहुतियाँ देकर उस योगी स्वरूप अग्नि का निष्क्रमण नामक संस्कार करे।।३१।। उस कुण्डस्थ अग्नि के कानों में शुद्ध भावना से मणिमय कुंडलों की कल्पना कर दस आहुति देने से अग्नि का कर्णविध नामक संस्कार किया जाता है।।३२।। इसके बाद अन्नप्राशन और चौलकर्म नामक संस्कारों के लिये क्रमशः दस-दस घृत-आहुतियाँ दे। इसके बाद मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसका उपनयन संस्कार करे। अग्निदेव की प्रीति के लिये यहाँ प्रणव और मूल मन्त्र के साथ 'नमो रुद्राय' मन्त्र से बीस आहुतियाँ दे।।३३-३४।। हे पार्वति ! इसके बाद मूल मन्त्र से घृत की १०८ आहुतियाँ देकर अग्नि का स्वाहा के साथ विवाह संस्कार सम्पन्न करावे।।३५।। विवाह संस्कार के बाद तरुण, रूपसम्पन्न, अपनी ज्वालाओं से देदीप्यमान, वामांक पर बैठी स्वाहा से सुशोभित अग्नि का ध्यान करे।।३६।।

१. चैतानि-क.। २. र्चिषादित्य-घ.।

अग्नेः सप्तजिह्वाः

तस्य जिह्वा महादेवि सप्त सप्तार्चिषः शुभाः ।
ध्यात्वा क्रमेण च हुनेत् सप्तसप्ताहुतीः शिवे ।। ३७।।
लेलिहाना कराली च रोचिष्क्केशा त्रिलोहिता ।
विद्युत्प्रभा शिवाख्या च तत्र मध्या शिवाभिधा ।। ३८।।
[1]तस्यां विशेषतो देविं हुनेदाज्याहुतीर्दश ।
सहतारेण मूलेन ध्यायेद् रुद्रमयं शुचिम् ।। ३९।।
अर्थार्थी लेलिहानायां कराल्यां धर्मकामतः ।
पुत्रकीर्त्यर्थवान् रोचिष्क्केशायां पुष्टिकामनः ।। ४०।।
[2]आयुष्कामी हुनेच्छान्तो लोहितायां पशुप्रियः ।
विद्युत्यरिविनाशाय[3] प्रभायां शिवलोकधीः ।। ४१।।
मोक्षार्थी जुहुयाद् देवि शिवायां च तनौ मम ।
दशद्वादशपञ्चाष्टत्रिंशत्षोडशषष्टितः ।। ४२।।

हे महादेवि ! सात अर्चियों से सुशोभित उस अग्निदेव की कल्याणकारिणी सात जिह्वाएँ होती हैं। हे शिवे ! उन सबका ध्यान करते हुए प्रत्येक के लिये सात-सात आहुतियाँ दे।।३७।। लेलिहाना, कराली, रोचिष्क्केशा, त्रिलोहिता, विद्युत्, प्रभा और शिवा— ये अग्नि की सात जिह्वाओं के नाम हैं। इनमें शिवा नामक जिह्वा की स्थिति बीच में मानी गई है।।३८।। हे देवि ! इस शिवा नामक जिह्वा में विशेष रूप से सप्रणव मूल मन्त्र से दस घृताहुतियाँ देनी चाहिये और अग्नि का रुद्र के रूप में ध्यान करना चाहिये।।३९।। धन की इच्छा वाला व्यक्ति लेलिहाना में, धर्म की कामना वाला कराली में और पुत्र की, कीर्ति की तथा पुष्टि की कामना वाला व्यक्ति रोचिष्क्केशा जिह्वा में आहुति दे।।४०।। आयु की और पशुओं की कामना वाला व्यक्ति शान्त भाव से त्रिलोहिता जिह्वा में आहुति दे। इसी तरह से शत्रु का नाश चाहने वाला विद्युत् नामक जिह्वा में और शिवलोक की इच्छा वाला व्यक्ति प्रभा नामक जिह्वा में आहुति दे। हे देवि ! इसी तरह मोक्ष की कामना वाला व्यक्ति मेरी शिवा नामक जिह्वा में आहुति दे।।४१-४२।।

---

१. नास्त्ययं श्लोकः—ग. घ.। २. "मोक्षार्थी ..... आयु.....दश....विद्यु" इति पङ्क्तिक्रमः—क. ख.। ३. शार्थं—ख. घ.।

अष्टोत्तरशतं चैव हुनेदाज्याहुतिं शिवे ।

मेखलापूजनम्

अथ कुण्डस्य परितो मेखलात्रितये यजेत् ॥ ४३॥
जया च विजया भद्रा तीव्रा[१] गौरी ककुद्मती ।
ईश्वरी शाम्भवी दिव्या ज्वालिनी भोगदायिनी ॥ ४४॥
कल्याणी गगना रक्ता नन्दा ज्योतिष्मती क्रमात् ।
प्रणवादिनमोमन्त्रैर्दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् ॥ ४५॥
पाशाङ्कुशवराभीतिहस्ताश्चा[२]र्धेन्दुशेखराः ।
तृतीयस्यां मेखलायां पूज्याः षोडश शक्तयः ॥ ४६॥
हृल्लेखा गगना रक्ता महोच्छुष्का कपिञ्जला ।
अरुणा मालिनी शान्ता निद्रा [३]चुक्रोधिनी क्रिया ॥ ४७॥
अलम्बुषा सिनीवाली कुहू राका यथाक्रमात् ।
मध्यमे मेखलावृत्ते पूज्याः षोडश शक्तयः ॥ ४८॥

हे शिवे ! उक्त कामनाओं की पूर्ति के लिये अग्नि की उक्त सात जिह्वाओं में क्रमशः दस, बारह, पाँच अड़तीस, सोलह, साठ और एक सौ आठ आहुतियाँ देनी चाहिये।।४२-४३।।

अब कुण्ड की चारों तरफ बनी तीन मेखलाओं में जया, विजया, भद्रा, तीव्रा, गौरी, ककुद्मती, ईश्वरी, शांभवी, दिव्या, ज्वालिनी, भोगदायिनी, कल्याणी, गगना, रूपा, नन्दा और ज्योतिष्मती नामक देवियों की पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से अपने-अपने नाम के साथ प्रारंभ में प्रणव और अन्त में नमः जोड़कर (ॐ जयायै नमः) पूजा करे। पाश, अंकुश, वर और अभय मुद्रा को हाथों में और ललाट पर चन्द्रकला को धारण करने वाली इन सोलह देवियों की पूजा मेखला की तृतीय रेखा में की जाती है।।४३-४६।। हल्लेखा, गगना, रक्ता, महोच्छुष्मा, कपिंजला, अरुणा, मालिनी, शान्ता, निद्रा, क्रोधिनी, क्रिया, अलम्बुषा, सिनीवाली, कुहू और राका नाम की सोलह शक्तियों की पूजा मेखला की मध्य रेखा में की जाती है।।४७-४८।। अमृता, मानदा, पूषा, पुष्टि, तुष्टि, रति,

---

१. चित्रा-ख.। २. अर्धेन्दु-ख. घ. ङ.। ३. तु-ख.।

अमृता मानदा पूषा पुष्टिस्तुष्टी रतिर्धृतिः ।
शशिनी चन्द्रिका कान्ता ज्योत्स्ना प्रीतिः प्रियंवदा ।। ४९।।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च विपनी च क्रमादिमाः ।
प्रथमे मेखलावृत्ते पूज्याः षोडश शक्तयः ।। ५०।।
[1]इन्द्राद्या अष्टदिक्पाला वाहनादिसुसंयुताः ।
दुर्गागणपतिक्षेत्रपालमृत्युञ्जयास्ततः ।। ५१।।
स्ववाहनायुधोपेताः पूज्याः कुण्डे ततो हुनेत् ।
अभयङ्कर ईशानि मध्ये दिक्षु [2]चतुर्ष्वपि ।। ५२।।
क्रमेणाज्याहुतिं तेषामेकमेकमतन्द्रितः ।
जयादिशक्तिमारभ्याऽभयङ्करमथान्ततः ।। ५३।।
सहतारेण मूलेन त्रिपञ्चाशत् कुलेश्वरि ।

अग्निप्रार्थनम्

अथ संप्रार्थयेदग्निं ज्वलन्तं मम रूपिणम् ।। ५४।।
नमस्ते सप्तजिह्वाय नमस्ते रुद्रमूर्तये ।
नमः सर्वहविर्भोक्त्रे नमो [3]दीक्षाग्नये नमः ।। ५५।।

धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ता, ज्योत्स्ना, प्रीति, प्रियंवदा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा और विपनी— इन सोलह शक्तियों की पूजा मेखला के प्रथम वृत्त में क्रमशः की जाती है।।४९-५०।। [हे ईशानि ! अपने-अपने वाहन आदि से सुसज्जित इन्द्र आदि आठ दिक्पालों की अपनी-अपनी दिशाओं में पूजा करनी चाहिये।] इसी तरह से दुर्गा, गणपति, क्षेत्रपाल और मृत्युंजय की चारों दिशाओं में और अभयंकर की मध्य में पूजा करे। इन सबकी अपने-अपने वाहनों और आयुधों के साथ पूजा की जाती है। पूजा कर लेने के बाद तब कुण्ड में आहुति दे।।५१-५२।। हे कुलेश्वरि ! अब जया शक्ति से लेकर अभयंकर देवता पर्यन्त तिरपन देवताओं के लिये गुरु पूरी सावधानी के साथ एक-एक आहुति दे। घृत की ये आहुतियाँ प्रणवसहित मूल मन्त्र से इन सभी देवताओं को दी जाती हैं।।५३-५४।।

इसके बाद शिवस्वरूप उस प्रज्वलित अग्नि की प्रार्थना करे। सात जिह्वा वाले, रुद्र की साक्षात् मूर्ति, सभी प्रकार की हवियों के भोक्ता, इस दीक्षाग्नि को मैं प्रणाम करता हूँ।।५४-५५।। चार शृंग वाले, शान्तस्वरूप, वीतिहोत्र अग्नि को मैं प्रणाम करता

---

१. पङ्क्तिरियं नास्ति-क. ख.। प्रकरणानुरोधादस्या अभाव एवोचितः। २. विदिक्ष्वपि-ख. ग. घ. ङ.। ३. दीक्ष्व-क. ग.।

चतुश्शृङ्गाय शान्ताय वीतिहोत्राय ते नमः ।
वैश्वानराय देवाय वह्नये विश्वकर्मणे ॥५६॥
धनञ्जयाय रुद्राय ज्वलनाय नमोऽस्तु ते ।
नमस्तनूनपादे ते नमस्ते जातवेदसे ॥५७॥
उषर्बुधाय बोध्याय अहिर्बुध्न्याय ते नमः ।
नमस्ते बर्हिषे नित्यं नमः शुष्माय शम्भवे ॥५८॥
कृपीटयोनये तुभ्यं नमस्ते कृष्णवर्त्मने ।
आश्रयाशाय च बृहद्भानवे ते नमो नमः ॥५९॥
इति संप्रार्थ्य कुण्डस्थमावयोस्तनयं शिवे ।
[१]आवयोरेकरूपेण ध्यायेदग्निमतन्द्रितः ॥६०॥
प्रणवैरष्टभिस्तोयैः परितोऽग्निमवेक्षयेत् ।
नमः पद्भ्यां गुरुः कुर्याद् वह्नेः परिसमूहनम् ॥६१॥

परिधिस्थापनम्

प्रणवेनाहृतैर्दर्भैः परितोऽग्निं परिस्तरेत् ।
प्रणवेनाग्न्युपस्थे च पालाशान् परिधीन् क्षिपेत् ॥६२॥

हूँ। विश्वकर्मा वह्नि को, वैश्वानर देव को मैं प्रणाम करता हूँ। धनंजय, रुद्रस्वरूप, ज्वलनशील अग्नि का नमन करता हूँ। उषाकाल में जग जाने वाले, दूसरे को बोध देने वाले, अहिर्बुध्न्य अग्नि को मैं प्रणाम करता हूँ। बर्हिस्वरूप, शुष्म और सबके कल्याणकारी अग्नि का मैं नमन करता हूँ। कृपीटयोनि और कृष्णवर्त्मा नाम से परिचित होने वाले और अपना आश्रय लेने वाले की आशाओं को पूरा करने वाले बृहद्भानु स्वरूप अग्नि को मैं प्रणाम करता हूँ।।५६-५९।। हे शिवे ! इस तरह से हम दोनों के (शिव-पार्वती) के पुत्र उस कुण्ड में स्थित अग्नि की प्रार्थना कर तब उसका शिव और पार्वती के अभिन्न स्वरूप में ध्यान करना चाहिये।।६०।। प्रणव का आठ बार उच्चारण करते हुए अग्नि का चारों तरफ अवेक्षण संस्कार करे। 'ॐ नमः' इन दो पदों का उच्चारण करते हुए अग्नि का परिसमूहन करे।।६१।।

प्रणव का उच्चारण करते हुए दर्भ ग्रहण कर उनको अग्नि की चारों ओर बिछा दे। इसके बाद प्रणव का उच्चारण करते हुए ही पालाश काष्ठ की [1]परिधियों को अग्नि

---

१. आवयोरिति पङ्क्तिः प्रणवैरित्यतः परं स्थापिता–घ.।

1. 'परिधि' शब्द यहाँ बाहुमात्र परिमाण के काष्ठखण्ड के लिये प्रयुक्त है। समिधा, पवित्र, वेद, इध्म, परिधि आदि शब्दों के अर्थ चन्द्रज्ञानागम (पृ. १२४) की टिप्पणियों में देखिये।

औदुम्बराः शमीजाता यदि कामप्रदाः शिवे ।
पालाशाश्वत्थकाश्मर्यमयाः परिधयोऽन्यतः ।। ६३ ।।
अथाग्निमर्चयेत् पश्चाद् दिक्षु रक्ताक्षतैः शुभैः ।
प्रागादीशानपर्यन्तं क्रमेणैभिः प्रदक्षिणैः ।। ६४ ।।
नमः शिवाय रुद्राय मृडाय शशिमौलये ।
ईशानाय गिरीशाय रुद्रायाष्टाङ्गमूर्तये ।। ६५ ।।
अलङ्कृत्याष्टभिर्दिक्षु पुष्पैरप्यमलैः शिवे ।
अग्नेरुत्तरदिग्भागे बहु दर्भान् क्षिपेद् ध्रुवम् ।। ६६ ।।

यज्ञपात्रस्थापनम्

तेनैव प्रणवाद्येन चैतत् तदुपरि क्षिपेत् ।
दर्व्याज्यस्थालिका चैव प्रोक्षणी पूर्णपात्रिका ।। ६७ ।।
इध्मस्त्रुचावितीशानि षट्पात्राणि प्रयोजयेत् ।
[1]सहानुव्यग्रदर्भाग्रपाणिनावेक्ष्य साम्भसा ।। ६८ ।।
कृत्वोत्तानानि पात्राणि पुनश्चावेक्षयेत् प्रिये ।
प्रणवेन हृदा मूर्ध्नि प्रोक्षणीमग्रतो नयेत् ।। ६९ ।।

में डाले।।६२।। हे शिवे ! उदुम्बर और शमी वृक्ष की परिधियाँ सब तरह की कामनाओं को पूरा करने वाली हैं। निष्काम अथवा नित्य कर्म के लिये पालाश, अश्वत्थ और काश्मरी की परिधियाँ लेनी चाहिये।।६३।। इसके बाद पूर्व दिशा से ईशान पर्यन्त आठ दिशाओं में कल्याणप्रद लाल अक्षतों से शिवाय, रुद्राय, मृडाय, शशिमौलये, ईशानाय, गिरीशाय, रुद्राय, अष्टांगमूर्तये— इन आठ नामों से प्रदक्षिणा क्रम से अग्नि की पूजा करनी चाहिये।।६४-६५।। हे शिवे ! इन्हीं आठ नामों से अग्निदेव को पुष्पों से अलंकृत कर तब अग्नि की उत्तर दिशा में ढेर सारी कुशाएं जरूर फैला दे।।६६।।

हे ईशानि ! इसके बाद उन्हीं कुशाओं के ऊपर प्रणव और नमः पदों का उच्चारण करते हुए दर्वी, आज्यस्थाली, प्रोक्षणी, पूर्णपात्रिका, इध्म और स्रुचा नामक छः यज्ञीय पात्रों को स्थापित करे।।६७-६८।। हे प्रिये ! इसके बाद दर्भ को हाथ में लेकर उसके अग्र भाग से इन सभी पात्रों पर जल छिड़के। फिर उन पात्रों को उलटा कर पुनः उनका प्रोक्षण करे। प्रणव का उच्चारण करते हुए प्रोक्षणी-पात्र को हृदय से मस्तक पर्यन्त ऊपर उठावे।।६८-६९।। सप्रणव मूल मन्त्र से उस प्रोक्षणीपात्र में अक्षत के साथ जल

१. सह त्रिरन्वग्–ख. ग. घ. ङ.।

सहतारेण मूलेन साक्षतं जलमानयेत् ।
शिवाय शम्भवे तुभ्यं नमो रुद्राय मृत्यवे ॥७०॥
प्रोक्षयेद् यागसामग्रीं सपवित्रेण पाणिना ।
तदन्यत्र समुत्सृज्य पूर्णपात्रमथाहरेत् ॥७१॥
तच्चापि पूर्ववत् कृत्वा चोद्धृत्य मुखतः समम् ।
क्षिपेदुत्तरतोऽग्नेश्च हुं फट् स्वाहेति मन्त्रतः ॥७२॥
तदुपर्यष्टभिर्दर्भैराचार्यः प्रणवेन च ।
मूलमन्त्रेण चाभ्यर्च्य नमस्कृत्याभिमन्त्रयेत् ॥७३॥
तत आदाय चाचार्य आज्यस्थालीं पवित्रकम्[1] ।
अपनीय[2] क्षिपेद् देवि चाज्यसंस्कारमाचरेत् ॥७४॥
अन्तर्गतपवित्राय आज्यधानीं पृथक् चरेत् ।
नम ॐ निक्षिपेद् वह्नौ स्वाहादेवीं[3] विलापयेत् ॥७५॥
हुं फट् दर्भाग्रयुगलमाज्यधान्यां क्षिपेच्छिवे ।
प्रदर्श्य ज्वलितान् दर्भान् पुनस्तैरेव साग्निभिः ॥७६॥

ग्रहण करे और उससे 'शिवाय शम्भवे' इस पंक्ति का उच्चारण करते हुए सपवित्र हाथ से सारी यज्ञीय सामग्री को प्रोक्षित करे। तब प्रोक्षणीपात्र को रखकर पूर्णपात्र को हाथ में ले।।७०-७१।। इस पूर्णपात्र का भी पूर्ववत् प्रोक्षण करके उसे अपने मुँह के बराबर ऊपर उठाकर 'हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए अग्नि की उत्तर दिशा में रखे।।७२।। उस पूर्णपात्र के ऊपर आचार्य आठ दर्भ रखे। प्रणव और मूल मन्त्र से उनकी पूजा करे, नमस्कार करे और उनको अभिमन्त्रित करे।।७३।। हे देवि ! इसके बाद आचार्य आज्यस्थाली को हाथ में ले। उसके ऊपर रखे पवित्र को उठाकर उससे आज्य का संस्कार करे, उसमें गिरी वस्तु को निकाल दे।।७४।। इसके बाद उस पवित्र को आज्यस्थाली से अलग कर दे और 'नमः ॐ' मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसे वह्नि में डाल कर स्वाहा शब्द का उच्चारण करे।।७५।। हे शिवे ! तब उस आज्यस्थाली में 'हुँ फट्' का उच्चारण करते हुए दो दर्भों के अग्र भागों को घृत से भिगो कर उन्हें अग्नि से प्रज्वलित कर उन्हें अग्नि को दिखाते हुए सप्रणव मूल मन्त्र से अग्नि-स्थित शिव के लिये समर्पित कर दे।।७६-७७।। हे देवि ! इसके बाद गुरु स्रुचा से वायव्य

१. काम्-क. ख. ग.। २. नीया-क. ख. ग.। ३. देवि-क. ख. ग.।

सहतारेण मूलेन क्षिपेद् वह्नौ शिवेऽर्पयेत् ।
अथ स्रुचा समारभ्य वायुमाग्नेयकोणगाम् ।।७७।।
आपूरयेदविच्छिन्नामाज्यधारां गुरुः शिवे ।
तथा निर्ऋतिमारभ्यैशानान्तं तारवर्मणा ।।७८।।
शास्त्रमूर्ध्ना स्रुचा देवि जुहुयाच्चक्षुषी स्रुचा ।
तारपूर्वेण मूलेन शिवायेति समर्पयेत् ।।७९।।

होमविधानम्

अथ स्रुचाज्यमाचार्य ऋत्विजश्च समन्ततः ।
दक्षिणोदक्प्रतीचीषूपविश्याग्नौ हुनेद् घृतम् ।।८०।।
पञ्चानुवाकमन्त्रैस्तु शतमष्टोत्तरं क्रमात् ।
सहतारेण मूलेन सहस्रं च सहर्त्विजा ।।८१।।
[१]प्रत्यहं गुरुणा होमः कार्योऽग्नौ गिरिनन्दने ।
अथ हुत्वाष्टदिक्पालान् तारहुंफट्शिरोन्वितम् ।।८२।।

कोण से आग्नेय कोण पर्यन्त तथा नैर्ऋत्य कोण से ईशान कोण पर्यन्त सीधी अविच्छिन्न घृतधारा प्रणव और कवच (हुं) मन्त्र का उच्चारण करते हुए अग्निकुण्ड में बहावे।।७७-७८।। हे देवि ! इसके बाद शास्त्ररूपी मस्तक वाली स्रुचा से घृत की आहुति देनी चाहिये। इसी तरह से प्रणवपूर्वक मूल पंचाक्षर मन्त्र से स्रुचा द्वारा चक्षु को आहुति समर्पित करे।।७९।।

अब आचार्य और ऋत्विक् गण अग्निकुण्ड की चारों ओर दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में बैठ कर अग्नि में घृत की आहुतियाँ दें।।८०।। ये सब [1]पंचानुवाक के पाँच मन्त्रों से क्रमशः एक सौ आठ आहुतियाँ और सप्रणव मूल मन्त्र से एक हजार आहुतियाँ दें।।८१।। हे गिरिजे ! गुरु को प्रतिदिन अग्नि में हवन करना चाहिये। इसके बाद आठ दिक्पालों को आहुति देकर प्रणव, हुं, फट्, स्वाहा का उच्चारण करते हुए दुर्गा, गणपति, गौरी, ईश्वरी और अचलात्मजा को; दुर्वासा, शिव, रुद्र, त्रियम्बक और

---

१. प्रत्येकं–ख. ग. घ.।

1. पंचानुवाक अथवा पंचब्रह्म पद से तैत्तिरीय आरण्यक (१०.४३) अथवा महानारायणोपनिषत् (१५ अनु.) में वर्णित सद्योजात आदि पाँच ब्रह्मों (शिवमुख) के प्रतिपादक पाँच मन्त्रों का ग्रहण होता है।

दुर्गां गणपतिं गौरीमीश्वरीमचलात्मजाम् ।
दुर्वाससं शिवं रुद्रं त्रियम्बकमुमापतिम् ॥ ८३॥
कश्यपं कपिलं कण्वं जमदग्निं च नन्दिनम् ।
वृषभं भृङ्गिरिटिकान् कुमारमपि पार्षदान् ॥ ८४॥
एकैकस्य क्रमादष्टौ हुनेदाज्याहुतीः प्रिये ।
हुनेद् नवग्रहान् तत्तन्मन्त्रैः[१] पूर्णाहुतिं हुनेत् ॥ ८५॥
कृत्वा स्विष्टकृतं पश्चात् प्रायश्चित्ताहुतीर्हुनेत् ।
अग्निमूर्धाऽग्नये चेति कद्रुद्रायानुवाककैः ॥ ८६॥
पञ्चब्रह्ममयैस्तारमूलेन क्रमशो हुनेत् ।
सहतारेण मूलेन होमशेषं समापयेत् ।
ततः शाखानुसारेण गुरुरेवमतन्द्रितः ॥ ८७॥

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे शिवाद्वैतसिद्धान्ते वीर-
शैवदीक्षाप्रकरणे [२]होमप्रकरणं नाम
चतुर्थः पटलः समाप्तः[३] ॥४॥

उमापति को; कश्यप, कपिल, कण्व, जमदग्नि और नन्दी को; वृषभ, भृंगी, रिटी, कुमार और पार्षदों को आहुतियाँ देनी चाहिये।।८२-८४।। हे प्रिये ! इनमें से प्रत्येक को क्रमशः आठ-आठ घृत की आहुतियाँ दी जाती हैं। अपने-अपने मन्त्रों से नौ ग्रहों को आहुति देने के बाद पूर्णाहुति देनी चाहिये।।८५।। स्विष्टकृत् आहुतियों को देने के बाद प्रायश्चित्त के निमित्त आहुतियाँ दी जाती हैं। ये आहुतियाँ अग्निर्मूर्धा, अग्नये, कद्रुद्राय आदि अनुवाकगत मन्त्रों से, पंचब्रह्ममय मन्त्रों से, सप्रणव मूल मन्त्र से दी जाती हैं। इसके बाद गुरु सप्रणव मूल मन्त्र से होम के शेष कार्य को पूरा करे। यह कार्य अपनी-अपनी शाखा के अनुसार बिना आलस्य के पूरा किया जाता है।।८६-८७।।

इस प्रकार शिवाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक श्रीपारमेश्वर तन्त्र के
वीरशैवदीक्षा प्रकरण में होम की विधि को बताने वाला
यह चतुर्थ पटल समाप्त हुआ।।४।।

---

१. मन्त्रैः पूर्णाहुतिं हवेच्चरेत्-क.। २. दीक्षाहोम-क. ख.। ३. 'समाप्तः' नास्ति-क. ख. ङ.।

पञ्चमः पटलः

लिङ्गधारणदीक्षानिरूपणम्

अथ शृणु महादेवि दीक्षाबन्धनलक्षणम् ।
सज्जिकागुणलिङ्गानां संयोगक्रममादितः ॥१॥

सज्जिकागुणलिङ्गानां संयोगक्रमः

पुनः संपूज्य तल्लिङ्गं यथाशक्त्युपचारकैः ।
सज्जिकां च गुणं वस्त्रमुद्वास्य प्रणवेन तत् ॥२॥
स्मृत्वा मां मूलमन्त्रेण गुरुरावाह्य सज्जिकाम् ।
अभिमन्त्र्यानुवाकैस्तैः स्वीकुर्याच्च गुणं ततः ॥३॥
द्विषड्वारं तु मूलेनाभिमन्त्र्याथ नियोजयेत् ।
सह तारेण मूलेन योजयेत् सज्जिकां गुणम् ॥४॥
तेनैवान्तस्तरेद् वस्त्रं लिङ्गं तेनैव पूजयेत्[1] ।
तेनैवोपरि सौवर्णं पूजयेत् पुष्पमुत्तमम् ॥५॥

हे महादेवि ! अब तुम दीक्षा-बन्धन के लक्षण को तथा सज्जिका, शिवसूत्र और इष्टलिंग के संयोजन के क्रम को प्रारम्भ से सुनो ॥१॥

प्रणव का उच्चारण करते हुए सबसे पहले इष्टलिंग पर ढके हुए वस्त्र को हटाना चाहिये। इसके बाद अपनी शक्ति के अनुसार विभिन्न उपचारों से इष्टलिंग की पूजा करनी चाहिये॥२॥ गुरु मूल मन्त्र से मेरा (शिव का) स्मरण करके और सज्जिका का आवाहन कर पंचब्रह्म के पाँच अनुवाक मन्त्रों से उसको अभिमन्त्रित कर तब शिवसूत्र का ग्रहण करे॥३॥ बारह बार मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए उस दोरक (शिवसूत्र) को अभिमन्त्रित करना चाहिये और सप्रणव मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए शिवसूत्र का सज्जिका के साथ संयोजन करे॥४॥ सप्रणव मूल मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) से ही सज्जिका में वस्त्र बिछाना चाहिये, उसी से इष्टलिंग की पूजा करे और उसी से इष्टलिंग के ऊपर सुवर्ण-पुष्प स्थापित करे॥५॥ सुवर्ण-पुष्प या पत्र से रहित लिंग

---

१. निक्षिपेत्—ख.।

सुवर्णरहितं लिङ्गं धारयेन्न कदाचन ।
ससुवर्णमभीष्टार्थं कार्यं लिङ्गं न संशयः ॥६॥
कपाटं बन्धयेद् देवि मूलेनार्गलयोजनम् ।
मूलेन वस्त्रमाबद्ध्य सम्प्रदायगुरूक्तितः ॥७॥
विशिष्टं पूजयेद् देवि ध्यायेत्तां सज्जिकां ततः ।
मम रूपं परं ध्यात्वा [१]स्तुवीतानेन पार्वति ॥८॥

लिङ्गस्तुतिः

नमः शिवाय रुद्राय शङ्कराय कपर्दिने ।
मृडाय नीलकण्ठाय नमो धूर्जटये[२] नमः ॥९॥
ॐ नमः परमेशाय नमः ॐकाररूपिणे ।
घण्टाप्रियाय शर्वाय सर्वाय शशिमौलये ॥१०॥
नमः फणीन्द्रभूषाय तरक्षुगजचर्मिणे ।
नमो ललाटनेत्राय नमस्ते त्वष्टमूर्तये ॥११॥
नमस्ते पञ्चवक्त्राय नमो मृत्युञ्जयाय ते[३] ।
नमोऽन्धकद्विषे तुभ्यं नमस्ते मेरुधन्विने[४] ॥१२॥

कभी धारण न करे। अपनी मनःकामनाओं को पूरा करने की अभिलाषा वाला शिवभक्त सदा बिना संशय के सुवर्णसहित शिवलिंग धारण करे।।६।। हे देवि ! मूल मन्त्र का उच्चारण कर सज्जिका का द्वार बन्द करे, मूल मन्त्र से ही अर्गला लगावे और मूल मन्त्र से ही अपने सम्प्रदाय और गुरु के उपदेश के अनुसार सज्जिका को वस्त्र से बाँधे।।७।। हे देवि ! इसके बाद इन सबका विशिष्ट पूजन करे और उस सज्जिका का ध्यान करे। हे पार्वति ! इसके बाद मेरे श्रेष्ठ स्वरूप का ध्यान कर उसकी स्तुति करे।।८।।

मैं शिव को, रुद्र को, शंकर को, कपर्दी को, मृड को, नीलकण्ठ को और धूर्जटि को प्रणाम करता हूँ।।९।। मैं ॐकार स्वरूप परमेश्वर को प्रणाम करता हूँ। घण्टाप्रिय, शर्व, सर्व, और शशिमौलि को प्रणाम करता हूँ।।१०।। श्रेष्ठ नाग का आभूषण धारण करने वाले, तरक्षु (बाघ) और हाथी के चर्म को धारण करने वाले, ललाटनेत्र और अष्टमूर्ति शिव को मैं प्रणाम करता हूँ।।११।। पांच मुख वाले मृत्युंजय, अन्धकासुर का वध करने वाले और मेरु पर्वत का धनुष धारण करने वाले को मैं प्रणाम करता हूँ।।१२।। पार्वती के पति, गणनायक (गणेश) के पिता, कुमार स्कन्द के पिता, गंगाधर

---

१. स्तुवेत् तारेण–कटि.। २. टिने–क.। ३. च–ग.घ.। ४. धन्वने–क. ख.।

नमस्ते पार्वतीशाय गणनायकसूनवे ।
नमः कुमारपुत्राय नमो गङ्गाधराय ते ।।१३।।
नमस्त्रिपुरसंहर्त्रे नमो विष्णुधवाय ते ।
नमः शशाङ्कवर्णाय नमस्ते शम्भवे नमः ।।१४।।
नम उग्राय वीराय नमः पशुपते हर ।
पाहि मां गिरिजानाथ क्षमस्व मम विप्रियम् ।।१५।।
तिष्ठ देहे मम सदा मम देहे तवात्मताम् ।
देहि सायुज्यमीशान सौभाग्यं शिव शङ्कर ।।१६।।
इति स्तुत्वाथ तल्लिङ्गं सह सज्जिगुणांशुकम् ।
निक्षिप्य पूर्ववत् पीठे स्तुत्वा नत्वाऽभिषेचयेत् ।।१७।।

लिङ्गाभिषेकः

ऋत्विक्चतुष्टययुतो गुरुस्तत्कलशाम्भसा ।
पीठस्थं यजमानं तमभिषिञ्चेदिमैः क्रमात् ।।१८।।
पञ्चानुवाकैस्तारेण मूलमन्त्रेण रुद्रतः ।
शुद्धवस्त्रधरं भक्तं सर्वालङ्कारसंयुतम् ।।१९।।

को मैं प्रणाम करता हूँ।।१३।। तीन पुरों (त्रिपुरासुर) का नाश करने वाले, विष्णु के स्वामी, चन्द्रमा के समान शुभ्र वर्ण वाले शंभु को मैं प्रणाम करता हूँ ।।१४।। उग्र, वीर, पशुपति को मैं प्रणाम करता हूँ। हे सभी के दुःखों को हरण करने वाले, गिरिजा के स्वामी ! आप मेरी रक्षा करें, मेरे सारे अपराधों को क्षमा कर दें ।।१५।। आप मेरे शरीर में सदा विराजमान रहें । यह मेरी देह आपकी ही हो जाय । हे ईशान, शिव, शंकर! आप मुझे सर्वविध सौभाग्य और सायुज्य पदवी प्रदान करें ।।१६।। इस तरह से उस इष्टलिंग की स्तुति करके सज्जिका, गुण और वस्त्र के साथ उसको पूर्ववत् पीठ पर स्थापित करे, उसकी स्तुति करे, नमन करे और अभिषेक करे।।१७।।

इसके बाद चार ऋत्विजों के साथ गुरु पीठ पर बैठे हुए यजमान शिष्य का कलश-स्थित जल से क्रमशः निम्न मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ अभिषेक करे।।१८।। पंचब्रह्मानुवाक[1] मन्त्रों से, प्रणव से, मूल मन्त्र से और रुद्राध्याय से शुद्ध वस्त्र धारण

---

1. "सद्योजातं प्रपद्यामि, वामदेवाय नमः, अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यः, तत्पुरुषाय विद्महे, ईशानः सर्वविद्यानाम्" (तैत्तिरीय आरण्यक, १०.४३-४७) ये पांच मन्त्र पंचब्रह्म के नाम से शैवशास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। पांच अनुवाकों में इनकी स्थिति होने से ये पंचानुवाक मन्त्र भी कहलाते हैं। महाना, १५.१५-१९ अनु. भी देखिये।

सहतारेण मूलेन स्वाभिमन्त्र्याष्टधा गुरुः ।
विभूतिधारणं भक्तशरीरे स्वयमाचरेत् ॥२०॥

विभूतिधारणम्

आदौ शिरसि मूलेन प्रणवेन[1] ललाटके ।
नमः कण्ठेऽक्षियुगले स्वाहा कर्णद्वयांसयोः ॥२१॥
वषट् वौषट् भुजद्वन्द्वे हुं फट् तन्मध्यमाग्रयोः ।
प्रणवेन हृदीशानि हृदा कण्ठे पराभिधे ॥२२॥
तारेण वक्षसि शिवे मूलेनोदरनाभिके ।
ऊरुजान्वङ्घ्रिजङ्घासु प्रणवेनैव लेपयेत् ॥२३॥

रुद्राक्षधारणम्

यथाशक्त्याथ रुद्राक्षान् धारयेत्तं स्वयं गुरुः ।
सम्प्रदायानुसारेण दीक्षा रुद्राक्षभस्मनोः ॥२४॥

गुरुपूजनम्

अथ भक्तो गुरुं देवि पूजयेद् भक्तिशक्तितः ।
मणिकाञ्चनवस्त्राद्यैरर्चयेत् सर्वमीश्वरि ॥२५॥

किये हुए, सभी अलंकारों से विभूषित उस यजमान का अभिषेक करे।।१९।। गुरु सप्रणव मूल मन्त्र से आठ बार भलीभाँति अभिमन्त्रित विभूति को भक्त शिष्य के शरीर पर स्वयं लगावे।।२०।।

पहले मूल मन्त्र से शिर पर, प्रणव से ललाट पर, नमः से कण्ठ और दोनों आँखों पर तथा स्वाहा से दोनों कानों और कन्धों पर भस्म लगावे।।२१।। हे ईशानि ! वषट् और वौषट् से दोनों भुजाओं पर, हुं और फट से भुजाओं के मध्य भाग एवं अग्र भाग में, प्रणव से हृदय में और हृदय (स्वाहा) मन्त्र से पर (श्रेष्ठ) स्थान कण्ठ में भस्म लगावे।।२२।। हे शिवे! प्रणव से वक्षस्थल पर, मूल मन्त्र से उदर और नाभि पर तथा इसी तरह ऊरु, जानु, चरण और जंघाओं पर प्रणव मन्त्र से भस्म लगावे।।२३।।

इसके बाद स्वयं गुरु उस शिष्य को उसकी शक्ति के अनुसार रुद्राक्ष पहनावे। रुद्राक्ष और भस्म की यह दीक्षा अपने अपने सम्प्रदाय के अनुसार दी जाती है।।२४।।

हे देवि ! अब गुरु के द्वारा दीक्षित भक्त शिष्य अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार मणि, कांचन (सुवर्ण), वस्त्र आदि से दीक्षागुरु की पूजा करे।।२५।। गुरु के दक्षिण

---

१. त्र्यम्बकेन–ख.।

गुरोर्दक्षिणपादस्य निबध्याङ्गुष्ठमूलके ।
सूत्राग्रमन्यत् तस्याग्रं गृहीत्वा हस्तयुग्मतः ॥ २६॥

मन्त्रोपदेशः

अथोपदेशं कुर्वीत गुरुः शिष्याय मे मनुम् ।
सम्प्रदायानुरूपेण यथोक्तेन विधानतः ॥ २७॥
इत्थं निर्वर्त्य देवेशि दीक्षां पूर्वाङ्गसंयुताम् ।
संबध्नीत गुरुर्लिङ्गं [1]देहे शिष्यस्य यत्नतः ॥ २८॥

कामनाभेदेन लिङ्गधारणस्थाननिर्देशः

मोक्षार्थिनः शिखादेशे बाहुमध्ये तु धर्मिणः ।
कामार्थिनः कटीदेशे कण्ठे सर्वार्थिनः प्रिये ॥ २९॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा मम मूलमहामनुम् ।
आबध्नीत गुरुर्लिङ्गं [2]देहे शिष्यस्य यत्नतः ॥ ३०॥
गायन्तीभिः पुरन्ध्रीभिः सर्ववाद्यविघूर्णितम् ।
सन्मङ्गलसमायुक्तं यथा विभवविस्तरम् ॥ ३१॥

पाद के अँगूठे के मूल में सूत्र बाँध कर उसके दूसरे सिरे को अपने दोनों हाथों से पकड़ कर शिष्य सावधानी से बैठे ।।२६।।

इसके बाद गुरु अपने सम्प्रदाय के अनुसार विधिपूर्वक शिष्य को शिवमन्त्र का उपदेश करे।।२७।। हे देवेशि ! हे शैलजे ! गुरु इस प्रकार दीक्षा के पूर्वांग को पूरा कर शिष्य के शरीर पर इष्टलिंग को बाँधे।।२८।।

मोक्ष की कामना वाले शिष्य के शिखा-स्थान पर, धर्म की कामना वाले की बाहुओं पर और काम की इच्छा वाले के कटिप्रदेश में इष्टलिंग बाँधे। हे प्रिये ! कण्ठ में इष्टलिंग को बाँधने से शिष्य की सारी कामनाएं पूर्ण होती हैं।।२९।। गुरु एक सौ आठ बार मेरे मूल महामन्त्र का जप करने के बाद शिष्य के शरीर पर यत्नपूर्वक इष्टलिंग बाँधें।।३०।। इस समय सुवासिनियों को मंगल-गान गाते रहना चाहिये। नाना प्रकार के वाद्य बजते रहें और अपने वैभव के अनुसार अन्य मांगलिक कृत्य करते रहना चाहिये।।३१।। इसके बाद शिष्य भक्तिभाव पूर्वक गुरु के सामने आकर उन्हें श्रद्धापूर्वक

१-२. शिष्याय मम शैलजे-क. ख.।

अथ शिष्यो गुरुं भक्त्या प्रणमेद् भक्तितः पुरः[1] ।
आशीर्वदेद् गुरुः शिष्यमस्तके हस्तसंयुतः ।। ३२।।
सुपुत्रो धनसंपत्तिर्बली शौर्याधिको भव ।
अथार्चयेत् सभां देवि स्वशक्त्या शिवयोगिनाम् ।। ३३।।
दक्षिणांशुकताम्बूलप्रणामाद्यैश्च भक्तितः ।
निर्मलैरन्नपानाद्यैर्भोजयेल्लिङ्गधारिणः ।। ३४।।

लब्धदीक्षः शिष्यः सदा लिङ्गपूजां कुर्यात्

यथाशक्ति यथाभक्ति सिद्धः शिवमयो जनः ।
तदाप्रभृति भक्तोऽसौ लिङ्गपूजापरायणः ।। ३५।।
समबुद्धिर्भवेदात्मगुरुलिङ्गशिवेषु[2] च ।
त्रिकालमर्चयेल्लिङ्गं [3]न्यायार्जितधनादिभिः ।। ३६।।
द्विकालमेककालं वा सर्वदा लिङ्गमर्चयेत् ।
न स्वस्थः संत्यजेत् पूजां नानापद्यनिमित्ततः ।। ३७।।

प्रणाम करे । गुरु शिष्य के मस्तक पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दे कि तुम पुत्रवान्, धनवान्, संपत्तिमान्, बलवान् और अत्यन्त शौर्यसम्पन्न बनो । हे देवि! इस प्रकार गुरु से आशीर्वाद पाने के बाद वह दीक्षित शिष्य अपनी भक्ति के अनुसार शिवयोगियों की सभा का पूजन करे।।३२-३३।। इस सभा में शिवयोगियों की दक्षिणा, वस्त्र, तांबूल, प्रणामनिवेदन आदि से भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये और उन लिंगधारियों को निर्मल अन्न-पान आदि का भोजन कराना चाहिये।।३४।।

अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार इस प्रकार दीक्षा प्राप्त कर कृतकृत्य हुआ वह भक्त शिवमय हो जाता है । इसके बाद उसे प्रतिदिन इष्टलिंग की पूजा करते रहना चाहिये।।३५।। वह अपनी आत्मा, गुरु, लिंग और शिव में सदा समान बुद्धि रखे और न्यायपूर्वक कमाये धन से त्रिकात्र में इष्टलिंग की पूजा करे।।३६।। दोनों सन्ध्याओं में अथवा एक बार प्रतिदिन वह इष्टलिंग की पूजा अवश्य करे। स्वस्थ रहते हुए वह कभी पूजा का त्याग न करे । यदि आपत्तिकाल नहीं है, तो बिना निमित्त के इष्टलिंग की पूजा का परित्याग कभी न करे ।।३७।। यदि कोई मूढ बुद्धि ऐसा करता है, तो

---

१. पुरा-ख. ग. घ.। २. चरेषु-ख.। ३. यत्ना-क.।

यदि त्यजति मूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत् ।
स्नानं तु भस्मना नित्यं सर्वाचारस्य पूर्तये ॥ ३८॥
न स्पृष्टिबुद्ध्या स्नायीत यदि कुर्यात् स पातकी ।
लिङ्गं मम धृतं येन विनष्टाखिलकर्मणा ॥ ३९॥

जातिवर्णाश्रमादिनिषेधः

ये सन्ति जातिभेदास्तानेकवच्छिवयोगिनः ।
पश्येदखिलजातिस्थानेकमातृसहोदरान् ॥ ४०॥
न स्त्रीभेदो न पुंभेदो जाति[1]वर्णाश्रमादिकम् ।
सर्वातीतमिदं विद्धि वीरशैवमतं मम ॥ ४१॥
यदनायासतो देवि भोगमोक्षौ करस्थितौ ।
धारणान्मम लिङ्गस्य पूजनाच्च निरन्तरम् ॥ ४२॥

उसका अवश्य ही रौरव नरक में पतन होता है । सभी आचारों की पूर्ति के लिये व्यक्ति को नित्य भस्मस्नान करना चाहिये ।।३८।। स्पर्शदोष के निवारण की दृष्टि से किसी को स्नान नहीं करना चाहिये । ऐसा करने वाला पातकी माना जाता है, क्योंकि उसने तो समस्त सत् और असत् कर्मों के नाशक इष्टलिंग को धारण कर रखा है । इसका अभिप्राय यह है कि इष्टलिंगधारी स्पर्शदोष से ऊपर उठ जाता है।।३९।।

जो नाना प्रकार के जातिभेद हैं, वे सब शिवयोगियों के लिये एक ही हैं । अतः इष्टलिंगधारी शिवभक्त समस्त जातियों में उत्पन्न प्राणियों को एक माता से उत्पन्न सहोदर भ्राता माने।।४०।। वीरशैव मत में स्त्री अथवा पुरुष का भेद नहीं है, जाति, वर्ण और आश्रम का भेद नहीं है। मेरा यह मत तो इन सब भेदों से ऊपर उठ गया है, अर्थात् सभी प्रकार की भेददृष्टियों को यह दूर कर देता है।।४१।। हे देवि ! वीरशैव मत के अनुसार मेरे इष्टलिंग को धारण करने से और उसका पूजन करने से अनायास ही भोग और मोक्ष दोनों हाथ में आ जाते हैं, अर्थात् इन दोनों को वह प्राप्त कर लेता है।।४२।।

---

१. वर्णक्रमा–क.।

लिङ्गपूजनमाहात्म्यम्

नान्यत् कर्म न वै कार्यं व्रतमेतन्महच्छिवे ।
एकस्य द्रोणपुष्पस्य फलं मय्यर्पितस्य तत् ।।४३।।
वक्ष्यामि शृणु देवेशि तद्द्वारे किङ्करोऽस्म्यहम् ।
यद्द्रोणकुसुमैः पूजा मम सन्निधिकारणम् ।।४४।।
ऋणात्तस्य न मोक्ष्यामि कल्पकोटिशतैरपि ।
यदेकमपि देवेशि विल्वपत्रं समर्पयेत् ।।४५।।
मम लिङ्गे विशेषेण सदा तिष्ठाम्यसंशयम् ।
तिलाक्षतैः शमीपत्रैरपामार्गैः पयोरुहैः ।।४६।।
दूर्वाभिश्चार्चयेन्नित्यमन्यैरपि सुगन्धिभिः ।
न द्वेषं चिन्तयेल्लिङ्गधारिणे शिवयोगिने ।।४७।।
न बालयुववृद्धादितारतम्यधिया भजेत् ।
प्रत्युत्तिष्ठेत् तदान्योन्यं दृष्टमात्रेण लिङ्गिनः ।।४८।।

हे शिवे ! ऐसे शिवभक्त को दूसरा कोई कार्य नहीं करना है। यही सबसे बड़ा व्रत है कि वह मुझे प्रतिदिन एक द्रोणपुष्प अर्पित कर दे। इसका फल उसे यह मिलेगा कि मैं उस शिवभक्त के द्वार पर सेवक की भाँति खड़ा रहूँगा। द्रोणपुष्प से इष्टलिंग की पूजा करने से मेरी सन्निधि (शिवसामीप्य) प्राप्त होती है।।४३-४४।। हे देवेशि ! जो शिवभक्त एक विल्वपत्र भी मुझे समर्पित करता है, तो उसके ऋण से मैं करोड़ों कल्पों में भी मुक्त नहीं हो पाता।।४५।। इष्टलिंग में मैं विशेष रूप से निःसन्देह सदा विराजमान रहता हूँ। अतः इस इष्टलिंग में मेरी तिल, अक्षत, शमीपत्र, अपामार्ग, कमल, दूर्वा तथा अन्य भी सुगन्धित पत्र-पुष्प आदि से नित्य पूजा करे। इसी तरह इष्टलिंगधारी शिवयोगी के प्रति भी कभी द्वेषभावना प्रकट न करे, क्योंकि मैं तो वहीं निवास करता हूँ।।४६-४७।। शिवयोगियों में परस्पर बालक, युवक, वृद्ध आदि अवस्थाओं के आधार पर भी कोई भेददृष्टि नहीं पनपनी चाहिये। लिंगी को मात्र देखकर ही एक दूसरे का प्रत्युत्थान आदि से आदर करना चाहिये।।४८।।

लिङ्गधारिणामन्योन्यं भेदाभावः

अभिवन्देत् तदान्योन्यं न भेदो लिङ्गधारिणाम् ।
न ब्रह्मचर्यनियमो न वानप्रस्थलक्षणम् ।। ४९।।
न संन्यासो न वैराग्यं यदि लिङ्गार्चने रतिः ।
न मुण्डनं नापि शिखा न शुक्लो नारुणः पटः ।। ५०।।
नानेकशाटचेकशाटिः[1] स्वेच्छाभोगा हि लिङ्गिनः ।

नित्य-नैमित्तिक-काम्यपूजनम्

सामान्येनार्चयेल्लिङ्गं नित्यं नित्यक्रमेण तत्[2] ।। ५१।।
नैमित्तिकेन कुर्वीत काम्यं कामानुसारतः ।
सार्वत्रिके नित्यपूजां षोडशैरुपचारकैः ।। ५२।।
यावल्लब्धं यथाशक्ति नायासस्तत्र विद्यते ।
या वै नैमित्तिकी पूजा स्वजन्मर्क्षेषु पूर्ववत् ।। ५३।।

इनको परस्पर एक दूसरे का अभिवादन करना चाहिये। इनमें परस्पर कोई भेद नहीं है। इनके लिये ब्रह्मचर्य का नियम अथवा वानप्रस्थ का लक्षण बाधक नहीं होता।।४९।। यदि शिवभक्त की इष्टलिंग के पूजन में रुचि है, तो उसके लिये संन्यास की अथवा वैराग्य की भी कोई अपेक्षा नहीं है। मुण्डन कराना, शिखा धारण करना, सफेद अथवा लाल वस्त्र पहनना जैसे नियमों का पालन भी उसके लिये आवश्यक नहीं है।।५०।। एक वस्त्र धारण करना अथवा अनेक, इस तरह के नियमों की भी यहाँ प्रवृत्ति नहीं मानी गई है, क्योंकि शिवयोगी तो स्वेच्छाविहारी माने जाते हैं।।५१।।

सामान्य रूप से शिवभक्त को प्रतिदिन नित्य कर्म की पद्धति से इष्टलिंग का पूजन करना चाहिये। नैमित्तिक पूजा अथवा कामना के अनुसार काम्य पूजा का भी विधान शिवभक्त के लिये है। नैमित्तिक अथवा काम्य पूजा को करते समय भी सर्वत्र षोडश उपचारपूर्वक नित्य पूजा अपेक्षित है।।५१-५२।। शक्ति के अनुसार प्रयत्न करने पर जो कुछ अनायास मिल जाता है, उसी से पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। अपने जन्म के नक्षत्र जैसे निमित्तों के आने पर नैमित्तिक पूजा भी इसी पद्धति से करे।।५३।।

---

१. शाटीः—क. ख. ग.। २. ततः—क.।

अभिषेकादिकं यावच्छक्ति[1] कुर्याद् विशेषतः ।
पृथक्[2] पृथग् दधिमधु[3]सिताक्षीरघृतादिभिः ।।५४।।
अभिषिञ्चेत् प्रयत्नेन मम लिङ्गं महेश्वरि ।
अभिषिञ्चेद् यथाशक्ति नारिकेलफलोदकैः ।।५५।।
[4]अन्नेन नवनीतेन मृदुशर्करयापि च ।
पञ्चामृतैर्यथाशक्ति विशेषेणाभिषेचयेत् ।।५६।।
शीतलैः शुद्धतोयैश्च सुसंशुद्धैः सुगन्धिभिः ।
धूपदीपसुपुष्पाणि मृदु नैवेद्यमर्पयेत् ।।५७।।

लिङ्गधारिणामर्चनम्

अन्नाद्यैरर्चयेद्भक्त्या स्वशक्त्या लिङ्गधारिणः ।
लिङ्गवस्त्रगुणादीनि दद्याद् यद्यदभीप्सितम् ।।५८।।
स्वर्णताम्बूलपुष्पाद्यैर्यथाशक्त्या[5] समर्चयेत् ।
स्थाप्य पृच्छेत्ततः सर्वं यदि स्यात् संनिधौ गुरोः ।।५९।।

ऐसे अवसरों पर अपनी शक्ति के अनुसार विशेष रूप से दधि, मधु, शर्करा, क्षीर, घृत आदि से इष्टलिंग का प्रयत्नपूर्वक अभिषेक करना चाहिये। हे महेश्वरि ! ऐसे अवसरों पर नारिकेल आदि फलों के जल से, अन्न से, नवनीत (मक्खन) से, मृदु शर्करा से और पंचामृत से भी शक्ति के अनुसार इष्टलिंग का अभिषेक करना चाहिये।।५४-५६।। सुगन्धित द्रव्यों से, सुवासित शीतल और शुद्ध जल से अभिषेक करने के बाद इष्टलिंग को धूप, दीप, पुष्प और स्वल्प नैवेद्य अर्पित करना चाहिये।।५७।।

इसके बाद इष्टलिंगधारी शिवभक्तों को अपनी शक्ति के अनुसार अन्न आदि प्रदान कर इष्टलिंग, शिवदोरक, वस्त्र आदि जो कुछ भी उनको अभिप्रेत हो, उनसे उनका पूजन करना चाहिये।।५८।। सुवर्ण, ताम्बूल, पुष्प आदि से उनकी यथाशक्ति पूजा कर लेने के उपरान्त समस्त पूजा-साधनों को गुरु के सामने रखकर कहना चाहिये कि मैंने अपनी शक्ति के अनुसार यह सब कुछ आपको समर्पित कर दिया है। इसके बाद भी

---

१. क्त्या-ख. ग. घ.। २. 'पृथक्' नास्ति-ग. घ. ङ.। ३. पृथक्-क. ख.। ४. अनेन-क.। ५. भक्त्या-ग. घ. ङ.।

सम्पादितं स्वशक्त्या यत् तदुक्तं यत्तदाचरेत् ।
गुरोस्तु जन्मनक्षत्रे सिद्धिंगतदिनेऽपि च ॥ ६० ॥
यथाशक्ति यथाभक्ति पूजयेल्लिङ्गधारिणः ।
न समीक्ष्य क्वचिद्वापि लिङ्गिनं शिवयोगिनम् ॥ ६१ ॥
आचारी[१] वा ह्यनाचारी[२] लिङ्गी स्यात् स विशिष्यते ।
धृतलिङ्गमहाभस्मरुद्राक्षाः शिवयोगिनः ॥ ६२ ॥
शिवास्ते शिवभक्तत्वादागता इति चिन्तयेत् ।
यद्यस्ति दूरे वा[३] देवि शिवयोगी शिवार्चकः ॥ ६३ ॥
संप्रार्थ्य कारयेद् धर्मान् यदहं स उमे शृणु ।
अलाभे गृहिणो वापि [४]ह्यर्चेल्लिङ्गिन एव हि ॥ ६४ ॥

दीक्षितनियमाः

शक्तिमात्रं[५] विशेषेण ह्यशक्तो लिङ्गमर्चयेत् ।
न कर्षेद्धरणीं वीरशैवदीक्षासु दीक्षितः ॥ ६५ ॥

गुरु यदि किसी वस्तु की इच्छा करते हैं, तो वह भी उन्हें समर्पित करना चाहिये।।५९-६०।। इसी तरह से गुरु के जन्म-नक्षत्र के दिन अथवा उनकी मृत्यु की तिथि के अवसर पर अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार इष्टलिंगधारी शिवयोगियों का पूजन करना चाहिये।।६०-६१।। यदि इष्टलिंगधारी शिवयोगी खोजने पर भी नहीं मिलते हैं, तो उस अवस्था में आचार का पालन करने वाले अथवा न भी करने वाले मात्र इष्टलिंगधारी का ही पूजन कर लेना चाहिये, क्योंकि इष्टलिंग, महाभस्म और रुद्राक्ष को धारण करने वाले शिवयोगी ही माने जाते हैं। इनके विषय में यह विचार करना चाहिये कि ये सब शिव के भक्त साक्षात् शिवस्वरूप ही हैं।।६१-६३।। हे देवि ! शिव की पूजा करने वाला शिवयोगी यदि दूर देश में भी रहता हो, तो उसी को प्रार्थना पूर्वक बुलाकर अपने सारे धर्मकार्य सम्पन्न कराने चाहिये, क्योंकि ऐसा शिवयोगी साक्षात् मेरा ही स्वरूप माना जाता है। गृहस्थ शिवयोगी के न मिलने पर इष्टलिंगधारी ब्रह्मचारी से भी यह सब कार्य कराये जा सकते हैं।।६३-६४।।

अपनी शक्ति के अनुसार शिवभक्त विशेष पूजा कर सकता है। अशक्त होने पर वह मात्र इष्टलिंग का पूजन करे। वीरशैव दीक्षा से सम्पन्न व्यक्ति को भूमिकर्षण, अर्थात् खेती-बारी नहीं करनी चाहिये।।६५।। उसे कुदाल आदि से जमीन नहीं खोदनी चाहिये।

१-२. रो-घ. ङ.। ३. देवेशि-ख. ङ.। ४. यजे-ख.। ५. त्र-ग. घ. ङ.।

न खातेन[1] खनेत् क्वापि न [2]च्छिन्द्यान्नैव बन्धयेत्।
न वहेच्छिरसा भारं न काष्ठं नेतरं लघु ।। ६६।।
यदीच्छा कुसुमं धार्यं जटोष्णीषादिभूषणम्।
दीक्षितो वीरशैवायां दीक्षायां धृतलिङ्गकः ।। ६७।।
न नीचमाचरेत् कर्म[3] नायासं नापि कुत्सितम्।

कामयार्चनम्

अथ काम्यानि कर्माणि वक्ष्यन्ते लिङ्गधारिणः ।। ६८।।
यदि स्याद् योगिनीयुक्तस्तदेत्थं व्रतमाचरेत्।
सोमवारे [4]प्रयत्नेन द्रोणपुष्पाणि चाहरेत्।। ६९।।
अभिमन्त्र्याथ मनुना तानि पञ्चाक्षरेण वै।
एकवारं समुच्चार्य मन्त्रं मम समं पुनः ।। ७०।।
एकं समर्पयेदेवं सहस्रं प्रतिवासरम्।
नियमेनैकवर्षान्तमुपोष्या ऋक्षदर्शनात्।। ७१।।

किसी वस्तु को काटना और बांधना भी उसके लिये वर्जित है। अपने सिर से उसे बोझा नहीं ढोना चाहिये, लकड़ी और अन्य कोई हल्की वस्तु भी उसे अपने सिर पर नहीं रखनी चाहिये। यदि उसे सिर पर कुछ धारण करने की इच्छा है, तो वह पुष्प धारण करे; जटा, उष्णीष (पगड़ी) आदि भी उसके योग्य आभूषण हैं।।६६-६७।। जो व्यक्ति वीरशैव दीक्षा में दीक्षित है, जिसने इसके अनुसार सद्‌गुरु से इष्टलिंग को प्राप्त कर इष्टलिंग धारण किया है, वह कभी नीच कर्म न करे, कभी कुत्सित प्रयास न करे।।६७-६८।।

अब मैं इष्टलिंगधारी के लिये काम्य कर्मों का वर्णन करूँगा। यदि वह योगिनी के साथ है, तो वह इस प्रकार व्रत का आचरण करे— सोमवार के दिन वह प्रयत्नपूर्वक द्रोणपुष्पों का संग्रह करे। पंचाक्षर मन्त्र से उन सबको अभिमन्त्रित करे। इसके बाद एक-एक पुष्प को उठाकर पंचाक्षर मन्त्र के उच्चारण के साथ उसे शिव को समर्पित करे। इस प्रकार प्रतिदिन एक हजार द्रोणपुष्प नियमपूर्वक एक वर्ष पर्यन्त अर्पित करता रहे।।६८-७१।। वह दिन भर उपवास रखकर रात्रि में नक्षत्रों को देखने के बाद भोजन

---

१. खातयेत्–ख.। २. छेदे–क. ङ.। ३. कर्मानायासं–कटि ग. घ. ङ.। ४. विशेषेण–ख. ग. घ. ङ.।

निधिलाभः पुत्रलाभः शिव एव न संशयः ।
तथैव विल्वपत्रैस्तु भोगमोक्षार्थ[१]सिद्धये ।। ७२।।
दूर्वाभी राजसम्मानं कमलैरिष्टकामिनः ।
तुलसी शत्रुनाशाय धत्तूरै रोगनाशनम् ।। ७३।।
शमी शत्रुविनाशाय कीर्तिदा हि तिलाक्षताः ।
शिवरात्र्यां महादेवि स्नायादस्तमये ह्रदे ।। ७४।।
संस्थाप्य पुरतः[२] पीठे पूजयेल्लिङ्गमात्मनः ।
कन्यार्थी पूजयेदर्कैर्वश्यार्थी तु शमीदलैः ।। ७५।।
मोक्षार्थी विल्वजैः पत्रैः सर्वार्थी द्रोणसंभवैः ।
दूर्वाभी राजवश्याय वीर्यायोत्पलजैरपि ।। ७६।।
वश्यकामी पयोजातैः सर्वार्थ्यब्जेन सुन्दरि ।
पुत्रकामी पाटलजैरर्कैरुच्चाटयेद् रिपून् ।। ७७।।

इससे उसको धनलाभ और पुत्रलाभ तो होगा ही, वह निःसन्देह साक्षात् शिव हो जायगा।।७१-७२।। इसी पद्धति से विल्वपत्र को अर्पित करने से भोग और मोक्ष की सिद्धि उसे प्राप्त होगी। दूर्वा से पूजन करने पर राजा का सम्मान और कमल से पूजा करने पर सारी मनोकामना पूरी होगी। तुलसीदल से पूजा करने पर शत्रु का नाश तथा धत्तूर (धतूरा) से सभी प्रकार के रोगों का नाश होगा। शमी से पूजन करने पर शत्रु का विनाश होगा। तिल और अक्षत कीर्ति को देने वाले हैं।।७२-७४।। हे महादेवि ! शिवरात्रि के दिन सूर्यास्त के समय अगाध जल से भरे हुए ह्रद में स्नान करे और अपने करपीठ पर इष्टलिंग को स्थापित कर उसकी पूजा करे।।७४-७५।। कन्या की कामना वाला अर्क पत्र-पुष्प से, वशीकरण चाहने वाला शमी-दल से, मोक्षार्थी विल्वपत्रों से और सर्वार्थी द्रोणपुष्प से पूजा करे। राजा को वश में करने के लिये दूर्वा दल से और बल-वीर्य को चाहने वाला नीलकमल से इष्टलिंग की पूजा करे।।७५-७६।। हे सुन्दरि ! वश्यार्थी शुभ्र कमलों से, सब कुछ चाहने वाला कमल से, पुत्रकामी पाटल पुष्पों से और शत्रु का उच्चाटन चाहने वाला व्यक्ति अर्क के पत्र-पुष्पों से उसकी पूजा करे।।७७।।

---

१. स्वर्गार्थ-ख. ग. घ.। २. करपीठे तु-ख.।

[१]करवीरैर्भवेद् ज्ञानं विद्या पुन्नागसंभवैः ।
कुरण्टकैर्धनप्राप्तिर्धत्तूरैर्मारयेदरीन् ॥ ७८॥
चूतैर्विषविनाशाय मधूकैः पशुवृद्धये ।
चम्पकैर्मित्रलाभाय नीपजैर्निधिसिद्धये ॥ ७९॥
जातीभिर्भोगसिद्ध्यर्थं मल्ली संपत्समृद्धये ।
सर्वाभीष्टार्थसिद्ध्यर्थं द्रोणपुष्पैः समर्चयेत् ॥ ८०॥
तिलाक्षतैर्विल्वदलैर्नित्यपूजां समाचरेत् ।

अतिथिसत्कारः

यथाशक्त्यर्चयेदन्नैरतिथीन् शिवयोगिनः ॥ ८१॥
तोषयेत् सर्वयत्नेन यद्यत्काले समागतम् ।
प्रत्युत्थानाभिगमनं वन्दनं प्रियभाषणम् ॥ ८२॥
आसनं चान्नपानादि यथाशक्त्यर्चयेच्छिवे ।
सर्वाभावेऽप्यशक्तो वा विनयादिभिरर्चयेत् ॥ ८३॥

करवीर पुष्पों से पूजा करने पर ज्ञान की प्राप्ति होती है, पुंनाग के पुष्पों से विद्या की तथा कुरण्टक पुष्पों से धन की प्राप्ति होती है। धत्तूर के पुष्पों से पूजा करने पर शत्रुओं का नाश हो जाता है।।७८।। आम की मंजरी से पूजा करने पर विष का नाश और मधूक से पशुधन की वृद्धि होती है, चम्पक पुष्पों से की गई पूजा से मित्र की प्राप्ति होती है और नीपज पुष्प खजाना देने वाला है।।७९।। जाति पुष्पों से भोग की सिद्धि और मल्ली (मोगरा) की मंजरी से सम्पत्ति की समृद्धि मिलती है। अपनी सभी प्रकार की मनोकामना की पूर्ति के लिये द्रोणपुष्प से इष्टलिंग की पूजा करे। शिवभक्त को अपने इष्टलिंग की तिल, अक्षत और विल्वदल से नित्य पूजा करनी चाहिये।।८०-८१।।

अपनी शक्ति के अनुसार अन्न से अतिथियों और शिवयोगियों की पूजा करनी चाहिये।।८१।। समय के अनुसार जो-जो वस्तु जिस समय प्राप्त हो, उससे प्रयत्नपूर्वक इनको सन्तुष्ट करना चाहिये। हे शिवे ! इनके आने पर स्वागत में उठ जाना, जाते समय कुछ दूर तक इनका साथ देना, प्रणाम करना, प्रियभाषण, आसन, अन्न और जल के द्वारा अपनी भक्ति के अनुसार इनका पूजन करना चाहिये।।८२-८३।। पास में कुछ

१. पङ्क्तिरेषा नास्ति–घ.।

कल्याणीं वा वदेद् वाणीं प्रमादः स्यादथान्यथा ।
यदि चेदवमानेन निराशो निर्गतोऽतिथिः ॥८४॥
इष्टं पूर्तं हुतं दत्तं सर्वमादाय गच्छति ।
अहमेव महेशानि धृत्वा जङ्गमविग्रहम् ॥८५॥
सद्भक्तानुग्रहार्थाय पर्यटामि महीतले ।
तस्माद्भक्त्या यथाशक्ति पूजयेच्छिवयोगिनः ॥८६॥

जङ्गमार्चनम्

[१]यो विजानाति गिरिजे स मामेव न संशयः ।
अर्चयेज्जङ्गमं धन्यः सन्ध्यायां गृहमागतम् ॥८७॥
लब्धमात्रेण च गृहे शिष्टेन स्वात्मजीवनात् ।
योऽर्चयेज्जङ्गमान् भक्त्या मामेवार्चितवान् [२]हि सः ॥८८॥

भी न हो और इन सब साधनों से इनका स्वागत करने में असमर्थ हो, तो भी विनय आदि से इनके प्रति आदर-भाव प्रदर्शित करे अथवा मीठी बोली से इनका स्वागत करे। ऐसा न करना प्रमाद माना जायगा।।८३-८४।। यदि अतिथि अपमानित अथवा निराश होकर किसी के घर से निकलता है, तो वह उस गृहस्थ के यज्ञ इत्यादि से संपादित इष्ट कर्म, वापी-कूप-तटाक आदि को बनाकर अर्जित किये पूर्त कर्म, हवन, दान इत्यादि के सारे फल को अपने साथ ले जाता है।।८४-८५।। हे महेशानि ! मैं ही जंगम के शरीर को धारण कर सद्भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये इस पृथ्वीतल पर घूमता रहता हूँ। इसलिये भक्तिपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार इन शिवयोगियों की पूजा, आदर-सत्कार अवश्य करना चाहिये।।८५-८६।।

हे गिरिजे ! जो भक्त इन शिवयोगियों को भलीभाँति पहचान लेता है, वह निःसन्देह मुझे ही जान लेता है। इसलिये सन्ध्या-वेला में घर पर आये जंगम की जो पूजा करता है, वह धन्य है।।८७।। गृहस्थ को जो कुछ मिलता है, उसमें से अपने परिवार का पालन करने के बाद जो कुछ बचता है, उससे यदि वह भक्तिभाव-पूर्वक जंगमों का पूजन-सत्कार करता है, तो इससे वह एक प्रकार से मेरा ही अर्चन-पूजन करता है।।८८।।

---

१. श्लोकयोः (८७-८८) विपर्ययः-ख. ग. घ. ङ.। २. नसौ-ख., स हि-ङ.।

अनाथादीनां भरणम्

साक्षान्मद्रूपमीशानि शयनासनभोजनैः ।
अनाथं रोगिणं दीनं मूकं बधिरमेव च ।।८९।।
पङ्गुं मूढं[१] दुराचारं नावमन्येत लिङ्गिनम् ।

शिवयोगिभिः पालनीया नियमाः

न कार्यः कलहो देवि अन्योन्यं शिवयोगिभिः ।।९०।।
न पैशुन्यं न मात्सर्यं न द्रोहं नापि पीडनम् ।
न स्पृशेदायुधं क्वापि प्राणैः कण्ठगतैरपि ।।९१।।
न छेदयेत् तरुं वापि लिङ्गमुद्राङ्कितं शिवे ।
नाधिरोहेन्न तन्मूले मलमूत्रादिकं त्यजेत्[२] ।।९२।।
न दहेदिन्धनं वापि शुष्कं वा लिङ्गभूरुहम् ।
पाषाणं वृषभं वृक्षं लिङ्गमुद्राङ्कितं यदि ।।९३।।

हे ईशानि ! ऐसे जंगम को साक्षात् मेरा ही स्वरूप मानकर उसकी शयन, आसन, भोजन से सहायता करनी चाहिये। अनाथ, रोगी, दीन, मूक, बधिर, पंगु, मुंडी और दुराचारी होने पर भी इष्टलिंगधारी का कभी अपमान न करे।।८९-९०।।

हे देवि ! इन शिवयोगियों को आपस में कलह नहीं करना चाहिये। आपस में एक दूसरे की चुगली करना, आपस में डाह रखना, द्रोह करना, पीडा पहुँचाना जैसे कार्य इनको कभी नहीं करने चाहिये। प्राण भले ही कण्ठ तक आ जाय, तब भी इनको शस्त्र का स्पर्श कभी नहीं करना चाहिये।।९०-९१।। हे शिवे ! [1]शिवलिंग मुद्रा से अंकित वृक्ष को कभी काटना नहीं चाहिये। उस पर चढ़ना नहीं चाहिये और न उसके नीचे कभी मल-मूत्र का त्याग ही करे।।९२।। शिवलिंग के चिह्न से अंकित वृक्ष की सूखी लकड़ी का कभी इन्धन के रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिये। शिवलिंग से अंकित

---

१. मुण्डं-क. ख.। २. इतः परम्-"ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि लिङ्गमुद्राङ्कितां शिलाम्। नाविन्द्याद् वेदविद् देवि लिङ्गद्रोही भवेद्यतः।।" इत्ययमधिकः श्लोकः-ख.।

1. वीरशैवों के पाँच आचारों का चन्द्रज्ञानागम के क्रियापाद के नवम पटल में विस्तार से वर्णन है। वहाँ शिवाचार के अन्तर्गत षोडश शुद्धियों का विधान है। वहाँ बताया गया है कि अपने उपयोग में आने वाली वस्तुओं की शुद्धि के लिये उनको नन्दीमुद्रा और शिवलिंगमुद्रा से अंकित करना चाहिये। उसी प्रकार यहाँ बिल्ववृक्ष को लिंगमुद्रा से अंकित करने का विधान है, जो कि शिवाचार का ही एक अंग है। शिवलिंगमुद्रा से अंकित हो जाने पर वह बिल्ववृक्ष शिवस्वरूप हो जाता है। इसीलिये उसका छेदन न करना इत्यादि विधियाँ यहाँ कही गई हैं।

नापसव्यं व्रजेद् योगी शिवलिङ्गी विलोकयन् ।
[1]नाधिरोहेदनड्वाहं रथं वा तुरगं गजम् ।। ९४।।
यथेच्छं विहरेल्लिङ्गी ह्युपानत्पादुकादिभिः ।
वृषभं लिङ्गमुद्राङ्कं दृष्ट्वा भूमौ खनेन्मृतम् ।। ९५।।
न स्पर्शयेच्च नोपेक्षेच्छ्वादिभिर्मांसलोलुपैः ।
शैवदीक्षाश्रितो लिङ्गी नैवालिङ्गिनमर्चयेत् ।। ९६।।
नैवापेक्षेत तत्पूजामर्चयेदेव लिङ्गिनम् ।
पूज्योऽपि पूजको वापि लिङ्गिनामेव लिङ्गिभिः ।। ९७।।
नान्यैर्भयं न चान्येषामाचारोऽयं हि लिङ्गिनाम् ।
असमानतयाऽनर्हान्मन्मताश्रयवर्जनात् ।। ९८।।
पूज्यपूजककर्मादौ यदयोग्या ह्यलिङ्गिनः ।
तदद(र्च)ने वा पूजायां दर्शने भाषणेऽपि वा ।। ९९।।
संबन्धे संगमे वापि सल्लापे सहभोजने ।
शयने सहयाने वा सुखदुःखादिषु प्रिये ।। १००।।

पाषाण, वृषभ अथवा वृक्ष के रास्ते पर आ पड़ने पर उसको अपने दाहिने तरफ रखकर जाना चाहिये। ऐसा शिवयोगी बैल, हाथी अथवा घोड़े पर बैठकर यात्रा न करे।।९३-९४।। वह शिवलिंगधारी जूता, पादुका आदि पहन कर यथेच्छ भ्रमण कर सकता है। लिंगमुद्रा से अंकित मृत वृषभ को देखकर उसे भूमि में गाड़ना चाहिये।।९५।। मांस-लोभी कुत्ते आदि प्राणियों के स्पर्श से भी उसे बचाना चाहिये। शैवी दीक्षा से सम्पन्न शिवयोगी अदीक्षित व्यक्ति का कभी भी पूजन न करे।।९६।। अलिंगी व्यक्ति उसकी पूजा करे, इसकी भी अपेक्षा उसको नहीं रखनी चाहिये। उसे अपनी पूजा इष्टलिंगधारी से ही करानी चाहिये। पूज्य और पूजकभाव लिंगियों का ही लिंगियों के साथ परस्पर रहना चाहिये।।९७।। उसे दूसरों से भय नहीं होना चाहिये और न वह दूसरों को ही भयभीत करे, यही लिंगियों का आचार है। मेरे मत का त्याग करने वाले अलिंगी व्यक्ति लिंगी जनों की बराबरी कभी नहीं कर सकते।।९८।। अलिंगी व्यक्ति पूज्य-पूजकभाव तथा शिवपूजा के अयोग्य हैं, अतः अर्चन, पूजन, दर्शन, भाषण, परस्पर संबन्ध, संगम, संलाप, सहभोजन, शयन, सहयान (यात्रा), सुख-दुःख आदि के अवसर

---

१. अधि-क. ख. ग.।

लिङ्गिनां शिवभक्तानां योग्या एव हि लिङ्गिनः ।
ज्ञानविज्ञानसंपन्नः सर्वसाधनवानपि ॥१०१॥
अशुद्ध एव देवेशि यद्यलिङ्गी भवेज्जनः ।
अशिष्टो [१]वा विशिष्टो वा भक्तोऽभक्तोऽपि वा यदि ॥१०२॥
अलिङ्गिभ्यो वरो लिङ्गी लोहानामिव काञ्चनम् ।
किमत्र बहुनोक्तेन शृणु तत्त्वमुमे मम ॥१०३॥

वीरशैवमतस्य श्रेष्ठत्वम्

सर्वसिद्धान्तसारो हि मन्मताश्रयिणां[२] नृणाम् ।
यथा देवेष्वहं श्रेष्ठो यथा त्वमनघे स्त्रियाम् ॥१०४॥
यथाऽपवर्गः प्राप्येषु तथा शैवमतं मम ।
तत्र सप्तविधानां तु वीरशैवमनुत्तमम्[३] ॥१०५॥
तदाश्रयादृते देवि न पुंभिर्लभ्यते सुखम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जनः शैवमतं श्रयेत्[४] ॥१०६॥

पर हे प्रिये ! शिवभक्त लिंगियों का लिंगियों के साथ ही संपर्क होना उचित माना गया है।।९९-१०१।। हे देवेशि ! ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न और सभी प्रकार की साधन-सम्पत्तियों से सम्पन्न व्यक्ति भी यदि लिंगधारी नहीं है, तो वह अशुद्ध ही माना जाता है।।१०१-१०२।। यदि लिंगी अशिष्ट हो या विशिष्ट, भक्त हो या अभक्त, तो भी वह अलिंगी की अपेक्षा उसी प्रकार श्रेष्ठ माना जाता है, जैसे कि सभी धातुओं में सुवर्ण श्रेष्ठ माना गया है। इस विषय में ज्यादा कहने से क्या लाभ, तुम संक्षेप में वीरशैव मत का सारभूत अंश मुझसे सुनो।।१०२-१०३।।

सभी सिद्धान्तों का सार यही है कि मनुष्यों के लिये शैवमत का अनुसरण ही हितकर है। जैसे देवताओं में मैं श्रेष्ठ हूँ, वैसे ही हे निष्पाप पार्वति ! तुम स्त्रियों में श्रेष्ठ हो।।१०४।। प्राप्य वस्तुओं में जैसे (मोक्ष) अपवर्ग श्रेष्ठ है, उसी तरह से सभी मतों में शैव मत श्रेष्ठ है। शैव मत सात प्रकार का है और इनमें वीरशैव मत सर्वोत्तम है।।१०५।। हे देवि ! उस वीरशैव मत का आश्रय लिये बिना मनुष्य सुख नहीं प्राप्त कर सकता। इसलिये सभी प्रकार का प्रयत्न कर व्यक्ति को शैवमत स्वीकार करना चाहिये।।१०६।। इन शैवमतों में भी विशेष रूप से वीरशैव मत को स्वीकार करना

---

१. वापि-ग. घ. । २. यणं-ग. । ३. मतं श्रयेत्-ग. घ.। ४. मनुत्तमम्-ग. घ.।

[१]वीरशैवमतं तत्र विशेषेण समाश्रयेत् ।
इति ते कथितं देवि वीरशैवमतोत्तमम् ।
आचारं लक्षणयुतं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।१०७।।

*इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे शिवाद्वैतसिद्धान्ते वीरशैवदीक्षा-
प्रकरणे लिङ्गधारणस्वरूपनिरूपणं नाम
पञ्चमः पटलः समाप्तः[२] ।।५।।*

चाहिये। इसीलिये हे देवि ! मैंने तुमको यहाँ सर्वश्रेष्ठ वीरशैव मत का स्वरूप और उसके श्रेष्ठ आचारों का निरूपण किया है। अब आगे पुनः तुम क्या सुनना चाहती हो।।१०७।।

*इस प्रकार शिवाद्वैतसिद्धान्त के प्रतिपादक इस पारमेश्वर तन्त्र के दीक्षा
प्रकरण में लिंगधारण के स्वरूप का निरूपण करने वाला
यह पंचम पटल समाप्त हुआ।।५।।*

---

१. नास्त्ययं श्लोकः–ग. घ.। २. 'समाप्तः' नास्ति–क. ख. ङ.।

षष्ठः पटलः

[1]षट्स्थलस्वरूपनिरूपणम्

[2]देव्युवाच

कपर्दिन् करुणासिन्धो मेरुधन्वन् महेश्वर ।
वद मे षट्स्थलज्ञानलक्षणं तत्फलं विभो ।।१।।

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि स्थलषट्कस्य लक्षणम् ।
यज्ज्ञात्वा जायते सद्यः शिव एव न संशयः ।।२।।
गोपनीयं प्रयत्नेन दरिद्राणां[3] यथा निधिः ।
यथा स्त्रियां तथा गोप्या स्वयोनिरिव सुव्रते ।।३।।
शिवभक्तिविहीनाय दुराचाररताय च ।
नास्तिकाय न दुष्टाय वक्तव्यः षट्स्थलक्रमः ।।४।।

देवी का प्रश्न

हे कपर्दिन् (जटाजूटधारी), करुणासिन्धो, मेरुधन्वन् (मेरु पर्वत को धुनष बनाने वाले), महेश्वर ! हे विभो ! मुझे आप षट्स्थल के ज्ञान का लक्षण और उसका फल बताइये।।१।।

ईश्वर का उत्तर

हे देवि ! तुम सुनो, मैं तुम्हें षट्स्थल का लक्षण बताऊँगा। जिसको जानकर मनुष्य निःसन्देह तत्काल साक्षात् शिव हो जाता है।।२।। हे सुव्रते ! इस ज्ञान की प्रयत्नपूर्वक उसी तरह से रक्षा करनी चाहिये, जैसे कि दरिद्र व्यक्ति अकस्मात् प्राप्त निधि की अथवा स्त्रियां अपनी योनि की रक्षा करती हैं।।३।। शिवभक्ति से रहित, दुराचार में निरत, नास्तिक और दुष्ट व्यक्ति को षट्स्थल-क्रम का उपदेश नहीं करना चाहिये।।४।।

---

१. नास्त्येषा पङ्क्तिः-ग.। २. पार्वत्युवाच-ग. घ.। ३. द्रेण-घ. ङ.।

परमात्मा षड्विधोऽभवत्

अहमेकः परानन्दः परमात्मा सदाशिवः ।
सृष्ट्वा मायामयीं शक्तिं तथाऽहं षड्विधोऽभवम् ।।५।।
शैवदीक्षाकल्पवृक्षस्तत्फलं स्थलषट्ककम् ।
इति संज्ञां विधायाहमसृजं मुक्तिसाधनम् ।।६।।
अहमेव जगत्स्रष्टा पुनर्मय्येव लीयते ।
अहमेव स्थलं विद्धि षड्विधं [1]मम रूपकम् ।।७।।

षट्स्थलनामनिर्देशः

भक्तो माहेश्वरश्चैव प्रसादी प्राणलिङ्गकः[2] ।
शरणः शिवलिङ्गैक्यः स्थलषट्कं मम प्रियम्[3] ।।८।।

भक्तस्थललक्षणम्

गुरौ च जङ्गमे लिङ्गे तारतम्यविशेषतः ।
पूजयेत् त्रिविधं रूपं तद्भक्तस्थलमुच्यते ।।९।।
तदेव पृथिवीतत्त्वं तनुरन्यतमा मम ।
तस्याधिदेवता चाहं सोऽहं देवि न संशयः ।।१०।।

मैं ही अकेला परम आनन्द स्वरूप सदाशिव परमात्मा हूँ। मैं ही मायामयी शक्ति की रचना कर उसकी सहायता से षड्विध रूप धारण कर लेता हूँ।।५।। वीरशैव दीक्षा एक कल्पवृक्ष है। उसी के फल के रूप में षट्स्थल नाम से मैंने इस मुक्ति के सिद्धान्त की सृष्टि की है।।६।। मैं ही इस जगत् का स्रष्टा हूँ। पुनः मुझमें ही यह लीन हो जाता है। मुझे ही तुम स्थल जानो। मेरा यह रूप छः प्रकार है।।७।।

भक्त, माहेश्वर, प्रसादी, प्राणलिंगी, शरण और शिवैक्य ये छः स्थल मुझे प्रिय हैं।।८।।

गुरु में, जंगम में और इष्टलिंग में मेरा ही रूप तरतमभाव से विद्यमान है। मेरे इस त्रिविध रूप की जो पूजा करता है, वही भक्तस्थल के नाम से प्रसिद्ध होता है।।९।। यह भक्तस्थल पृथिवीतत्त्व का प्रतिनिधि है। यह मेरा अन्यतम रूप है, अर्थात् अष्टमूर्ति शिव का पृथिवीतत्त्वमय पहला स्वरूप है। इसका अधिपति देवता मैं ही हूँ, इसमें कोई संशय नहीं है।।१०।। हे देवि ! साक्षात् मेरा ही स्वरूप धारण करने वाले जंगम की

---

१. च मम प्रियम्–ग. घ.। २. ङ्गिकः–क. ख.। ३. रूपकम्–ग. घ.।

जङ्गमं पूजयेद्यस्तु साक्षान्मद्रूपमीश्वरम् ।
स मां पूजितवानेव सोऽहं देवि न संशयः ॥११॥
तस्माद् यो भक्तिमान् शक्तो जङ्गमेषु महात्मसु ।
तद्धि भक्तस्थलं विद्धि मम चातिप्रियं शिवे ॥१२॥

माहेश्वरस्थललक्षणम्

यो गुरूक्तेन मार्गेण लिङ्गपूजारतः सदा ।
जङ्गमानर्चयेच्छक्त्या स हि माहेश्वरः स्मृतः ॥१३॥
त्रिकालमर्चयेल्लिङ्गं मम भक्तेषु भक्तिमान् ।
स्वमताचारनिरतः स वै माहेश्वरः प्रिये ॥१४॥
जलतत्त्वमिदं देवि तनुरन्यतमा मम ।
तस्याधिदेवता चाहं सोऽहं देवि न संशयः ॥१५॥
[1]य उक्तलक्षणस्तु स्यादाचारे जङ्गमार्चने ।
स्थलं माहेश्वरं विद्धि मम चातिप्रियं शिवे ॥१६॥

जो पूजा करता है, वह मेरी ही पूजा करता है, निःसन्देह वह मैं ही हूँ।।११।। हे शिवे ! इसलिये जो व्यक्ति इन जंगम महात्माओं की अपनी शक्ति के अनुसार भक्ति करता है, उसे ही तुम भक्तस्थल जानो। यह मुझे अत्यन्त प्रिय है।।१२।।

जो गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से सदा इष्टलिंग की पूजा करता रहता है और अपनी शक्ति के अनुसार जंगमों की भी पूजा करता है, उसे माहेश्वर कहते हैं।।१३।। हे प्रिये ! जो तीनों कालों में इष्टलिंग की पूजा करता है, मेरे भक्तों के प्रति भक्तिभाव प्रदर्शित करता है और वीरशैव मत में प्रदर्शित आचारों का पालन करता है, वह माहेश्वर कहलाता है।।१४।। हे देवि ! यह माहेश्वरस्थल जलतत्त्व का प्रतिनिधि है, यह मेरी दूसरी मूर्ति है। इसका अधिपति देवता मैं ही हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१५।। हे शिवे ! आचार के पालन और जंगम के पूजन में जो साधक निष्ठा-भक्ति पूर्वक लगा हुआ है, उसे ही माहेश्वर स्थल कहते हैं। यह मुझे अत्यन्त प्रिय है।।१६।।

---

१. यदुक्त-ख.।

प्रसादिस्थललक्षणम्

योऽनर्पितं महेशानि नार्चयित्वापि जङ्गमान् ।
नाश्नाति न त्यजेन्मह्यमर्पितं कृच्छ्रगोऽपि वा ॥१७॥
सोऽयं प्रसादी कथितः सोऽहमेव न संशयः ।
तत्प्रसादिस्थलं विद्धि मम चातिप्रियं शिवे ॥१८॥
अग्नितत्त्वमिदं देवि तनुरन्यतमा मम ।
तस्याधिदेवता चाहं सोऽहमेव न संशयः ॥१९॥

प्राणलिङ्गिस्थललक्षणम्

यथा प्राणे तथा लिङ्गे यथा लिङ्गे तथा शिवे ।
[१]प्राणलिङ्गशिवेष्वेकबुद्धिमान् प्राणलिङ्गिकः ॥२०॥
यः प्राणलिङ्गलिङ्गी स्यात् स रुद्रो नात्र संशयः ।
प्राणलिङ्गिस्थलमिदं मम चातिप्रियं शिवे ॥२१॥
वायुतत्त्वमिदं देवि तनुरन्यतमा मम ।
तस्याधिदेवता चाहं सोऽहमेव न संशयः ॥२२॥

हे महेशानि ! जो भगवान् को बिना अर्पित किये और जंगमों की पूजा किये बिना भारी संकट आने पर भी भोजन नहीं करता और मुझे समर्पित भोजन का कभी परित्याग नहीं करता, उसे प्रसादी कहते हैं। वह निःसन्देह मेरा ही स्वरूप है। हे शिवे ! इसे तुम प्रसादीस्थल जानो। यह मुझे अत्यन्त प्रिय है।।१७-१८।। हे देवि ! यह प्रसादीस्थल अग्नितत्त्व का स्वरूप है। यह मेरी तीसरी मूर्ति है। निःसन्देह इसका अधिपति देवता मैं ही हूँ।।१९।।

अपने प्राण के समान ही इष्टलिंग में और इष्टलिंग के समान ही शिव में, अर्थात् प्राण, इष्टलिंग और शिव इन तीनों में समान बुद्धि रखने वाला प्राणलिंगी कहलाता है।।२०।। हे देवि ! जो व्यक्ति सूक्ष्म प्राणलिंग के स्वरूप को जानकर उसकी उपासना करता है, वह निःसन्देह साक्षात् रुद्र का ही स्वरूप है। यही प्राणलिंगीस्थल है। यह मुझे अत्यन्त प्रिय है।।२१।। हे देवि ! यह प्राणलिंगी वायुतत्त्व का स्वरूप है। यह मेरी चौथी मूर्ति है। निःसन्देह इसका अधिपति देवता मैं ही हूँ।।२२।।

---

१. श्लोकोऽयं नास्ति–ग. घ.।

शरणस्थललक्षणम्

ईषणात्रयनिर्मुक्तो नित्यमेकान्तसेवनः ।
मम ध्यानरतो नित्यं शरणः परिकीर्तितः ।।२३।।
शरणत्वाधिकारी यः स देहान्ते शिवो भवेत् ।
शरणाख्यस्थलमिदं मम चातिप्रियं शिवे ।।२४।।
व्योमतत्त्वमिदं देवि तनुरन्यतमा मम ।
तस्याधिदेवता चाहं सोऽहमेव न संशयः ।।२५।।

शिवलिङ्ग्यैक्यस्थललक्षणम्

न पूजा नैव च ध्यानं [१]न योगकरणादिकम् ।
अहन्ताभावनाधीरः शिवलिङ्गैक्यसंज्ञकः ।।२६।।
य एष शिवलिङ्गैक्यसंज्ञकः परमेश्वरः ।
स्थलं तच्छिवलिङ्गैक्यं मम चातिप्रियं शिवे ।।२७।।

तीन प्रकार की तृष्णा (पुत्रकामना, धनकामना और प्रतिष्ठाकामना रूपी कामनाओं) से जो मुक्त है, सदा एकान्त में रहता है, सदा मेरे ध्यान में लगा रहता है, वह साधक शरण कहलाता है।।२३।। इस प्रकार शरणस्थल का अधिकारी व्यक्ति मृत्यु के उपरान्त साक्षात् शिव हो जाता है। हे शिवे ! इसी स्थिति को शरणस्थल कहा जाता है। यह मुझे अत्यन्त प्रिय है।।२४।। हे देवि ! यह शरण आकाशतत्त्व का स्वरूप है। यह मेरी पांचवीं मूर्ति है। निःसन्देह इसका अधिपति देवता मैं ही हूँ।।२५।।

हे शिवे ! जिस स्थिति में पूजा, ध्यान, योग, [1]करण आदि की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती, ऐसा शिवलिंगी जब सब कुछ मैं ही हूँ, मेरे सिवाय यहाँ और कुछ भी नहीं है, ऐसी दृढ़ भावना में लीन हो जाता है, तो वह शिवैक्य क़हलाता है।।२६।। हे शिवे ! परशिव के साथ समरस स्थिति को प्राप्त साधक ही ऐक्य या ऐक्यस्थल कहलाता है। यह मुझे अत्यन्त प्रिय है।।२७।। हे देवि ! यह शिवैक्य साक्षीतत्त्व का

---

१. न मनश्चलनं त्वपि–कटि.।

1. शरीर के अंगों को किसी विशेष प्रकार की स्थिति में रखने का नाम करण है। महामुद्रा, महाबन्ध आदि का इसमें समावेश किया जाता है।

साक्षितत्त्वमिदं देवि प्रधानेयं तनुर्मम।
मम रूपमिदं विद्धि[१] सोऽहमेव न संशयः ॥ २८॥

षट्स्थलज्ञानमहिमा

[२]य इदं षट्स्थलं नाम रहस्यं परमं पदम्।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते सद्यो जन्मसंसारबन्धनात् ॥ २९॥
स्थलषट्कपरिज्ञानं देवानामपि दुर्लभम्।
मामृते परमेशानि नान्यो जानाति कश्चन ॥ ३०॥
त्वत्स्नेहपाशसंबद्धमनसा कथितं मया।
स्थलषट्कपरिज्ञानमिदं तुभ्यं निवेदितम् ॥ ३१॥

महेश्वरस्य षडङ्गानि

तत्र वक्ष्ये विशेषं ते शृणुष्व सरहस्यकम्।
षडङ्गानि महेशानि महेशस्य परात्मनः ॥ ३२॥
[1]सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥ ३३॥

स्वरूप है। यह मेरी प्रधान मूर्ति है। इसे तुम मेरा ही स्वरूप जानो। शिवैक्यस्वरूप को प्राप्त शिवयोगी साक्षात् मेरा ही स्वरूप है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।२८।।

इस तरह से यह जो षट्स्थल का स्वरूप यहाँ बताया गया है, वही यह रहस्यात्मक परम पद है, जिसको जानकर व्यक्ति जन्म और संसार के सभी बन्धनों से तत्काल मुक्त हो जाता है।।२९।। हे परमेशानि ! इन षट्स्थलों का ज्ञान देवताओं के लिये भी दुर्लभ है। मेरे सिवाय इनके स्वरूप को अन्य कोई नहीं जानता।।३०।। तुम्हारे स्नेहपाश में मेरा मन बंधा हुआ है। इसलिये यह षट्स्थल का ज्ञान मैंने तुम्हें करा दिया है।।३१।।

हे महेशानि ! अब मैं एक विशेष रहस्य तुम्हारे सामंने प्रकाशित कर रहा हूँ, वह यह कि परम परमात्मा महेश्वर के छः अंग हैं।।३२।। सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिबोध, स्वतन्त्रता, सदा अलुप्तशक्ति और अनन्तशक्ति— ये महेश्वर के छः अंग हैं, ऐसा शास्त्रों के जानकार विद्वानों का कहना है।।३३।। हे शांकरि ! भक्तस्थल का साधक भगवान्

---

१. देवि–ग. ङ.। २. यदिदं–ख., श्लोकयोः (२८–२९) विपर्ययः–ग. घ.।
1. यह श्लोक विभिन्न आगमों और पुराणों में भी उपलब्ध होता है।

यद्भक्तस्थलमित्याहुस्तत्सर्वज्ञत्वमुच्यते ।
यन्महेश्वरकं नाम सा तृप्तिर्मम शाङ्करि ।।३४।।
यत्प्रसादाभिधं स्थानं तद्बोधो मे निरङ्कुशः ।
यत्प्राणलिङ्गकं नाम तत्स्वातन्त्र्यमुदाहृतम् ।।३५।।
यदस्ति शरणज्ञानमलुप्ता शक्तिरुच्यते ।
यदैक्यस्थानमूर्ध्वस्थं शक्त्यनन्तेशिता मम ।।३६।।
[१]एतदङ्गस्थलं देवि गुह्याद् गुह्यतमं परम् ।
एतानि मम चाङ्गानि चक्षुरादीन्यसंशयम् ।।३७।।
एतदङ्गस्थलज्ञानं यदि पुंसां महात्मनाम् ।
सद्गुरोरुपदेशेन वर्तते स परः शिवः ।।३८।।
न यस्याङ्गपरिज्ञानं नाङ्गाङ्गिभावबोधनम् ।
न तेन लभ्यते मुक्तिर्दूरस्था हि यतः शिवे ।।३९।।

शिव का सर्वज्ञता नामक अंग है। माहेश्वरस्थल का साधक शिव का तृप्ति नामक अंग है।।३४।। प्रसादी नाम का साधक शिव का सर्वत्र अप्रतिहत अनादिबोध या निरंकुश बोध नामक अंग है और प्राणलिंगी स्थल का साधक शिव का स्वातन्त्र्य नामक अंग है।।३५।। शरणस्थल का साधक शिव का अलुप्तशक्ति नामक अंग है। सबसे ऊपर जो ऐक्य का साधक है, वह मेरा अनन्तशक्ति नामक अंग है।।३६।। हे देवि ! ऊपर बताये छः स्थल अंगस्थल कहलाते हैं। इनका स्वरूप गुह्य से भी अति गुह्यतर है। निःसन्देह ये मेरे चक्षु आदि अंगों से अभिन्न हैं, अर्थात् मेरी पाँच ज्ञानेन्द्रियों और छठे मन का प्रतिनिधित्व करते हैं।।३७।। जिन महात्मा पुरुषों को इन छः अंग-स्थलों का ज्ञान सद्गुरु के उपदेश से प्राप्त होता है, वे साक्षात् परशिव स्वरूप हो जाते हैं।।३८।। हे शिवे ! जिस व्यक्ति को इन अंगों का ज्ञान नहीं है और जिसको अंगांगीभाव का ज्ञान नहीं है, उसको कभी मुक्ति नहीं मिल सकती, क्योंकि वह उससे बहुत दूर हो जाता है।।३९।।

---

१. श्लोकोऽयं १४८ पृष्ठे टिप्पण्यां स्थापितः–ख.।

उपाङ्गषट्कनिरूपणम्

अथ वक्ष्ये विशेषं ते शृणुष्वैकमनाः शिवे ।
उपाङ्गषट्कमपरं भक्त्यादि परमं पदम् ।। ४० ।।
भक्तिः कर्मक्षयो बुद्धिर्विचारो दर्पसंक्षयः ।
सम्यग्ज्ञानमिति प्रोक्तं स्थलषट्कं मम प्रियम् ।। ४१ ।।

१. भक्तिलक्षणम्

कामुकस्य यथा जारकान्तायामभिवेशनम् ।
यथैव लब्धे च निधौ दरिद्रस्य मनस्तथा ।। ४२ ।।
अस्पृष्टविषयस्नेहो यो मोहः शुद्धसात्त्विकः ।
मयीश्वरे महादेवि सद्भक्तिरभिधीयते ।। ४३ ।।
भक्तिर्माता पिता देवि कामधेनुः सुरद्रुमः ।
करस्थममृतग्रासं विद्धि भक्तिं कुलेश्वरि ।। ४४ ।।
यो भक्तिरहितो मर्त्यः समस्ता निष्फलाः क्रियाः ।
न तस्य परलोकोऽस्ति मृतः श्वानो भविष्यति ।। ४५ ।।

हे शिवे ! अब मैं एक विशेष बात तुमको बताऊँगा, उसे तुम सावधानी से सुनो। ऊपर के छः अंगों के अतिरिक्त भक्ति आदि के रूप में परम पद को देने वाले छः उपांग भी हैं।।४०।। भक्ति, कर्मक्षय, बुद्धि, विचार, दर्पनाश और सम्यग्ज्ञान ये छः उपांग स्थल हैं। ये मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।।४१।।

कामुक व्यक्ति का मन जैसे व्यभिचारिणी स्त्री में लगा रहता है, दरिद्र का मन जैसे अकस्मात् प्राप्त खजाने में लगा रहता है, उसी तरह से हे महादेवि ! जिस भक्त का मन विषय-स्नेह से दूर हट जाता है और मुझ ईश्वर के प्रति शुद्ध सात्त्विक ममता के रूप में प्रकट हो जाता है, उसे ही सद्भक्ति कहा जाता है।।४२-४३।। हे देवि ! ऐसे शिवभक्त की भक्ति ही माता और भक्ति ही पिता है। उसके लिये यह भक्ति कामधेनु है, कल्पवृक्ष है। हे कुलेश्वरि ! उस भक्ति को तुम अपने हाथ में स्थित अमृत समझो।।४४।। जो मनुष्य भक्तिभावना से रहित है, उसके सारे प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। उसे सद्गति नहीं मिल सकती। मरने के बाद वह श्वान योनि में जन्म लेता है।।४५।। भक्ति से रहित व्यक्ति के पूजा, जप आदि सारे कर्म निष्फल हो जाते

भक्तिहीनस्य कर्माणि वृथा पूजाजपादिकम् ।
धृतमङ्गलसूत्रापि विधवा न सुवासिनी ॥४६॥
तथा भक्तिर्वृथा यस्य तद्वशाद् गतजन्मसु ।
प्राप्तानि बन्धकर्माणि तेषां स्यात् संक्षयो लघु ॥४७॥

२. कर्मक्षयलक्षणम्

दुर्वासनानुबन्धीनि कर्माणि प्रकृतानि च ।
कृता भक्तिमयी शक्तिः सा नाशयति तानपि[१] ॥४८॥

३. बुद्धिलक्षणम्

कर्मबन्धेषु नष्टेषु बुद्धिः स्वच्छा भवत्यथ ।
संत्यक्तविषया देवि स्थिरा मयि परात्मनि ॥४९॥
यस्यास्ति [२]निर्मला बुद्धिरधीशे मयि शङ्करे ।
स मामुपैति भ्रमरकीटन्यायेन सुन्दरि ॥५०॥
न यस्य निर्मला बुद्धिः स ध्यायेद् विषयान् सदा ।
[1]ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषू[३]पजायते ॥५१॥

हैं। मंगलसूत्र धारण करने से जैसे विधवा सुवासिनी नहीं हो सकती, उसी तरह ऐसे व्यक्ति की भक्ति भी फलवती नहीं हो सकती। इसी कारण से उसको विगत जन्मों में किये गये कर्मों के आधार पर बन्धन में पड़ना पड़ता है। ऐसे कर्मों का अनायास क्षय सद्भक्ति के द्वारा ही संभव हो सकता है।।४६-४७।।

पूर्वजन्मों की दुर्वासनाओं के कारण चले आ रहे कर्मों को और प्रकृत जन्म में किये जाने वाले कर्मों को भी यह भक्तिमयी शक्ति नष्ट कर देती है।।४८।।

हे देवि ! कर्मबन्धन के नष्ट हो जाने पर मनुष्य की बुद्धि निर्मल हो जाती है। वह विषयों की ओर उन्मुख न होकर मुझ परमात्मा में स्थिर हो जाती है।।४९।। हे सुन्दरि ! जिसकी निर्मल बुद्धि सबके स्वामी मुझ शंकर में स्थिर हो जाती है, वह [2]भ्रमर-कीट न्याय से मुझे प्राप्त कर लेता है।।५०।। जिसकी बुद्धि निर्मल नहीं होती, वह सदा विषयों का ही ध्यान करता रहता है। विषयों का ध्यान करने वाला पुरुष उन्हीं में आसक्त हो जाता है।।५१।। इस आसक्ति के कारण वह उनको चाहने लगता है,

---

१. तानि हि-ख. ग. घ.। २. निश्चया-ग. घ. ङ.। ३. स्तेषु प्रजा-कटि.।

1. भगवद्गीता (२.६२-६३) से तुलना कीजिये।
2. भ्रमर का गुंजन सुन कर साधारण कीट स्वयं भ्रमर बन जाता है, उसी तरह से शिव का ध्यान करने वाला जीव स्वयं शिव बन जाता है।

सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः ।।५२।।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशाद् विनश्यति ।
तच्छुद्धबुद्धिमानेति मामेव मयि शङ्करे[1] ।।५३।।

४. विचारलक्षणम्

तया गुरूक्तवाक्यार्थचिन्तनं निश्चयो हृदि ।
हिताहितविवेकस्य[2] विचारः स उदाहृतः ।।५४।।
विना गुरूक्तवाक्यार्थविचारं न प्रयोजनम् ।
विचारेणैव जानाति सकलं च शुभाशुभम् ।।५५।।

५. दर्पसंक्षयलक्षणम्

एवं विचारिते शास्त्रे ज्ञात्वा मामखिलेश्वरम् ।
स्वरूपमपि[3] जानाति तस्य स्याद् गर्वसंक्षयः ।।५६।।

न मिलने पर वह क्रोध से अभिभूत हो जाता है, क्रोध से अभिभूत व्यक्ति को मोह घेर लेता है और इसके कारण स्मृति भ्रष्ट हो जाती है।।५२।। स्मृति का भ्रंश होने पर उसकी मति मारी जाती है और बुद्धि के नष्ट हो जाने पर वह स्वयं भी नष्ट हो जाता है। इसके विपरीत मुझ शंकर के प्रति शुद्ध बुद्धि वाला मनुष्य मुझे ही प्राप्त करता है।।५३।।

उस शुद्ध बुद्धि से गुरु के द्वारा उपदिष्ट वाक्यार्थ का चिन्तन करने पर मनुष्य के हृदय में हित और अहित का निश्चय करने की जो सामर्थ्य पैदा होती है, उसे ही विचार कहते हैं।।५४।। गुरु के द्वारा उपदिष्ट वाक्यार्थ के सिवाय अन्य विषयों पर विचार करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। गुरु के उपदेश का अनुसरण करने पर वह समस्त शुभ और अशुभ भावों को जान पाता है।।५५।।

इस तरह से गुरु के उपदेश के अनुसार शास्त्र का मनन कर समस्त प्राणियों के स्वामी के रूप में मुझे जान लेता है और अपने स्वरूप को भी जब वह जान लेता है तो उसके दर्प (अहंकार) का नाश हो जाता है।।५६।।

---

१. जगदीश्वरि–ख.। २. कयोः–ख.। ३. मभि–घ. ङ.।

६. सम्यग्ज्ञानलक्षणम्

निरस्तदर्पसंबद्धः शिव[१]ज्ञानरतो भवेत् ।
तेन शीघ्रं गिरिसुते सम्यग्ज्ञानं ततो भवेत् ॥५७॥
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यत्यात्मन्यथो मयि ।
प्रत्ययत्रितयैक्येन सम्यग्ज्ञानी स चास्म्यहम् ॥५८॥
चराचरात्मकं सर्वं भावयन् परमात्मनः ।
मम रूपं महेशानि सम्यग्ज्ञानी स उच्यते ॥५९॥

अङ्गोपाङ्गानां परस्परं संबन्धः

उपाङ्गषट्कमेतद्धि भक्तादिस्थलषट्कम् ।
भक्तादिसर्वज्ञत्वादि भक्त्यादिक्रमशः शिवे ॥६०॥
यस्य सर्वज्ञता भक्तिर्या तृप्तिः कर्मसंक्षया ।
अनादिबोधो या[२] बुद्धिर्विचारो मे स्वतन्त्रता ॥६१॥
अलुप्तशक्तिरिति या सा च मे गर्वसंक्षया[३] ।
अनन्तशक्तिरिति मे सम्यग्ज्ञानं ददाति सा ॥६२॥

हे गिरिसुते ! जिसका अंहकार नष्ट हो गया है, वह शिवज्ञान में लीन हो जाता है। ऐसा होने पर उसे शीघ्र ही सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।।५७।। इस सम्यग्ज्ञान के प्राप्त हो जाने पर वह समस्त प्राणियों को अपने में और अपने को मुझमें देखने लगता है। इस तरह से सभी प्राणियों में, अपने में और शिव में– तीनों में एकता का दर्शन करने वाला सम्यग्ज्ञानी कहलाता है, वह मेरा ही स्वरूप हो जाता है।।५८।। हे महेशानि ! चराचरात्मक सारे जगत् को मुझ परमात्मा का ही स्वरूप समझने वाला सम्यग्ज्ञानी कहलाता है।।५९।।

हे शिवे ! ये सब ऊपर बताये गये भक्ति, कर्मक्षय आदि छः प्रकार के उपांग तथा भक्त, माहेश्वर आदि छः प्रकार के स्थल; सर्वज्ञता, नित्यतृप्तता आदि शिव के छः अंगों से तथा भक्ति, कर्मक्षय आदि उपांगों से परस्पर जुड़े हुए हैं।।६०।। सर्वज्ञता ही भक्ति है, तृप्ति ही कर्मक्षय है, अनादिबोध ही बुद्धि है, स्वतन्त्रता ही विचार है, अलुप्तशक्ति ही गर्वक्षय है और यह जो मेरी अनन्तशक्ति है, वह सम्यग्ज्ञान को देने वाली है।।६१–६२।।

---

१. ध्यान–ख.। २. यो–ख. ग. घ.। ३. यः–ख.।

स्थलषट्कनिर्णयः

अङ्गोपाङ्गात्मभावेन स्थलषट्कस्य निर्णयम् ।
यो जानाति स देवेशि शिव एव न संशयः ।। ६३।।
पादपाणिशिरोदेहमङ्गषट्कं महेश्वरि ।
भक्तादिसर्वज्ञत्वादि भक्त्यादिस्थानषट्ककम् ।। ६४।।
लब्ध्वा च[१] तत्स्थलज्ञानं विदितः सद्गुरोर्मुखात् ।
षडूर्मिसङ्गरहितः षड्वर्गपरिवर्जितः ।। ६५।।
परित्यज्याथ महताऽहङ्कारं स शिवो भवेत् ।
ऊर्मिवर्गभयं यस्य न स मुक्तो न संशयः ।। ६६।।

षडूर्मयः

क्षुत्पिपासे महेशानि शोकमोहौ जनिर्मृतिः ।
संसाराब्ध्यूर्मयश्चैता यथाब्धावूर्मयस्तथा ।। ६७।।
क्षुत्पिपासे प्राणधर्मौ शोकमोहौ मनोगतौ ।
जननं मरणं चेति देहधर्मौ षडूर्मयः ।। ६८।।

हे देवेशि ! इस तरह से अंग और उपांग के रूप में जो व्यक्ति षट्स्थल सिद्धान्त को जानता है, वह निःसन्देह शिव ही है।।६३।। हे महेश्वरि ! भक्त आदि छः, सर्वज्ञता आदि छः और भक्ति आदि छः—ये सब दो हाथ, दो पैर, सिर और पूरा शरीर इस तरह से भगवान् शिव के अथवा भक्त के अंगों के रूप में जाने जाते हैं।।६४।। इस स्थल-ज्ञान को सद्गुरु के मुख से प्राप्त कर मनुष्य सब कुछ जान लेता है, वह छः प्रकार की ऊर्मियों और अरिषड्वर्ग से मुक्त हो जाता है।।६५।। अपनी सद्बुद्धि के सहारे अंहकार का त्याग कर वह साक्षात् शिव हो जाता है। जिस शिवभक्त को ऊर्मियों का और अरिषड्वर्ग का भय नहीं है, वह निःसन्देह मुक्त हो जाता है।।६६।।

हे महेशानि ! भूख-प्यास, शोक-मोह और जन्म-मरण– ये छः संसाररूपी समुद्र की ऊर्मियाँ है। समुद्र में जैसे लहरें निरन्तर उठती रहती हैं, उसी तरह से संसारी जीव को ये छः ऊर्मियाँ सदा सताती रहती हैं।।६७।। क्षुधा और पिपासा प्राण के, शोक और मोह मन के तथा जन्म और मरण देह के धर्म हैं। ये ही छः ऊर्मियाँ हैं।।६८।।

---

१. चैतत्–ग. घ.।

भवन्त्यप्राप्य दुःखाय प्राप्यापि च तथैव हि[१] ।
आगमापायिनो नित्यं न स्वस्थं स्थापयन्त्यमी ।। ६९।।
अत ऊर्मिवदूर्मित्वं तद्दुःखजनकं नृणाम् ।
तेषामिदं सहायो हि वर्गषट्कं दुरासदम् ।। ७०।।

अरिषड्वर्गः

कामः क्रोधश्च लोभश्च मोहश्च मद एव हि ।
मात्सर्यं च क्रमेणैतद् वर्गषट्कमुदाहृतम् ।। ७१।।
अरिवत् प्रतिकूलत्वादरिषड्वर्ग [२]उच्यते ।
तदूर्मिषट्कमरिषड्वर्गं त्यक्त्वा विमुच्यते ।। ७२।।

साधनतारतम्यम्

भक्तादिसम्यग्ज्ञानान्तमुत्तरोत्तरमुत्तमम् ।
साधनं पूर्वपूर्वं स्यात् साध्यं स्यादुत्तरोत्तरम् ।। ७३।।
ऊर्मिवर्गविहीनस्य सम्यग्ज्ञानाधिकारिणः ।
सुज्ञातस्थलषट्कस्य मुक्तिः करतले स्थिता ।। ७४।।

न मिलने पर भी ये दुःख देती हैं और इसी तरह से मिल जाने पर भी। इनका आना-जाना निरन्तर लगा रहता है। ये मनुष्य को कभी चैन से नहीं रहने देतीं।।६९।। समुद्र की लहरों का जैसा ही इनका स्वभाव है, इसलिये इनको भी ऊर्मि नाम दे दिया गया है। ये मनुष्य को सदा दुःख देती रहती हैं। इस कार्य में दुःसह षड्वर्ग इनकी सहायता करता है।।७०।।

इस षड्वर्ग में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य की क्रमशः गणना होती है।।७१।। शत्रु के समान ये मनुष्य को हानि पहुँचाते हैं, इसलिये इनको अरि-षड्वर्ग कहा जाता है। पूर्वोक्त छः ऊर्मियों के साथ इस अरि-षड्वर्ग पर जो विजय प्राप्त कर लेता है, वह मुक्त हो जाता है।।७२।।

भक्त आदि छः अंगों से लेकर सम्यग्ज्ञान पर्यन्त उपांगों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठता मानी जाती है। इनमें पूर्व पूर्व का स्थल साधन और उत्तरोत्तर स्थल साध्य माना जाता है।।७३।। षडूर्मि और षड्वर्ग से विहीन, सम्यग्ज्ञान के अधिकारी और छः स्थलों को भली-भाँति जानने वाले मनुष्य के हाथ में मुक्ति स्वयं आ जाती है।।७४।। हे ईशानि ! जिस भक्त

---

१. च-ख.। २. र्गमु-ग. घ.।

यस्य प्रियोऽहमीशानि स ममासीत् प्रियो यतः ।
उक्तलक्षणसंपन्नः सोऽहमेव न संशयः ॥७५॥
कृतपुण्यफलाद् वीरशैवदीक्षाधुरन्धरः ।
त्रिसन्ध्यमनया स्तुत्या स्तुवेन्मामेवमद्रिजे ॥७६॥

शिवस्तुतिः

नमः शिवाय रुद्राय नम ॐकाररूपिणे ।
भक्तस्थलस्वरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥७७॥
गजचर्माम्बरभृते व्याघ्रचर्मधराय ते ।
महेशस्थलरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥७८॥
कपर्दिने सकालाय ककुद्मिध्वजशोभिने ।
प्रसादस्थलरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥७९॥
नमः परात्मने तुभ्यं प्राणलिङ्ग[१]स्थलात्मने ।
शुद्धस्फटिकवर्णाय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥८०॥
नीलकण्ठाय नित्याय निर्मलाय परात्मने ।
शरणस्थलरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥८१॥

को मैं प्रिय लगता हूँ, वह मेरा भी प्रिय हो जाता है। इसीलिये ऊपर बताये गये लक्षणों से सम्पन्न शिवभक्त निःसन्देह साक्षात् शिव ही बन जाता है।।७५।। हे हिमालयपुत्रि ! पूर्व जन्म में किये गये पुण्य-कर्मों के फलस्वरूप जिसको वीरशैव दीक्षा मिल गई है, वह धुरन्धर शिवभक्त आगे बताई गई स्तुति से तीनों सन्ध्याओं में मेरी स्तुति करे।।७६।।

शिव को, रुद्र को मैं प्रणाम करता हूँ। ॐकार स्वरूप शिव को मैं नमन करता हूँ। भक्तस्थल स्वरूप शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।७७।। हाथी के चर्म का वस्त्र पहने हुए, व्याघ्र के चर्म को धारण करने वाले, महेशस्थल रूपी शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।७८।। कपर्दी (जटाजूटधारी), काल के भी काल, नन्दीश्वर से सुशोभित ध्वज वाले, प्रसादस्थल रूपी शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।७९।। परमात्मा के रूप में विद्यमान तुमको मैं प्रणाम करता हूँ। प्राणलिंगस्थल स्वरूप, शुद्ध स्फटिक के समान शुभ्र वर्ण वाले शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।८०।। नीलकण्ठ, सदा विद्यमान, निर्मल, परमात्मा, शरणस्थल स्वरूप शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।८१।।

---

१. लिङ्गि-ग. घ.।

त्रिशूलमृगहस्ताय कुठाराभयपाणये ।
शिवलिङ्गैक्यरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥८२॥
नमो दक्षमखान्ताय नमोऽन्धकविघातिने[१] ।
नमः सर्वज्ञरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥८३॥
पार्वतीशाय पृथवे पराय परमेष्ठिने ।
नमस्ते नित्यतृप्ताय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥८४॥
नमस्ते वेदरूपाय नमः [२]कन्थानिषङ्गिणे ।
नमस्त्वनादिबोधाय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥८५॥
नाटिताखिलभूताय नगजार्धशरीरिणे ।
नमः स्वतंन्त्रतन्त्राय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥८६॥
नमः शशाङ्कचूडाय शशाङ्कायुतरोचिषे ।
अलुप्तशक्तये नित्यं शिवलिङ्गाय ते नमः ॥८७॥
नमः कैलासवासाय नमस्ते पुरघातिने ।
[३]नमोऽस्त्वनन्तशक्ताय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥८८॥

भगवान् शिव के एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे में मृग, तीसरे में कुठार है और चौथा हाथ अभय मुद्रा में स्थित है। उस शिवलिंगैक्य स्वरूप शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।८२।। दक्ष के यज्ञ का ध्वंस करने वाले, अन्धकासुर का नाश करने वाले, सर्वज्ञस्वरूप शिवलिंग को मैं नमन करता हूँ।।८३।। पार्वती के पति, पृथु (विशाल) स्वरूप, परस्वरूप, परमेष्ठी, नित्यतृप्तिस्वरूप शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।८४।। वेदस्वरूप शिव को प्रणाम। कन्था का कवच धारण करने वाले को प्रणाम। अनादिबोधस्वरूप शिवलिंग को प्रणाम।।८५।। समस्त प्राणियों को नचाने वाले, पार्वती के रूप में आधा शरीर धारण करने वाले, स्वातन्त्र्यशक्ति स्वरूप शिवलिंग को प्रणाम।।८६।। अपनी जटा पर चन्द्रमा को धारण करने वाले, हजारों चन्द्रमाओं की कान्ति को धारण करने वाले, नित्य अलुप्तशक्ति स्वरूप शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।८७।। कैलास पर्वत पर निवास करने वाले शिव को प्रणाम। त्रिपुरों का नाश करने वाले, अनन्तशक्ति स्वरूप शिवलिंग को प्रणाम।।८८।। अपने [1]निःश्वास

---

१. न्तक–ग. घ.। २. कन्धि–क.। ३. नमस्ते भक्तरूपाय–ग. घ.।

1. 'यस्य निःश्वसितं वेदाः' इत्यादि वचनों में वेदों को भगवान् का निःश्वास माना गया है। हयग्रीव इत्यादि अवतार धारण कर ईश्वर ने वेदों की रक्षा की है।

निःश्वासोत्पन्नवेदाय [1]साश्वी(क्षि)भूतत्रयीमते ।
नमस्ते भक्तिरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ।।८९।।
कमलोद्भववन्द्याय कपर्दिन् जटिने नमः ।
कर्मक्षयात्मने तुभ्यं शिवलिङ्गाय ते नमः ।।९०।।
नमो गणेशपुत्राय नमस्ते स्कन्दसूनवे ।
नमो बुद्धिस्वरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ।।९१।।
गङ्गाधराय गोभर्त्रे गौरीवक्त्रावलोकिने ।
नमो विचाररूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ।।९२।।
विश्वेश्वराय विश्वाय विश्वरूपाय वेधसे ।
दर्पक्षयस्वरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ।।९३।।
सर्वाधाराय सर्वाय सर्वोत्पत्तिलयात्मने ।
सम्यग्ज्ञानस्वरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ।।९४।।
नमश्चिद्घनरूपाय सच्चिदानन्दमूर्तये ।
समग्रैश्वर्यरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ।।९५।।

से वेदों को उत्पन्न करने वाले, साक्षी के रूप में तीनों वेदों की रक्षा करने वाले, भक्तिस्वरूप शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।८९।। कमल से उत्पन्न ब्रह्मा के द्वारा वन्दनीय, कपर्दी, जटाधारी शिव को प्रणाम। कर्मक्षय नामक उपांग स्वरूप तुझ शिवलिंग को प्रणाम।।९०।। गणेश और स्कन्द जैसे पुत्रों से सुशोभित तुझको प्रणाम। मैं बुद्धिस्वरूप शिवलिंग को प्रणाम करता हूँ।।९१।। गंगा को धारण करने वाले, नन्दी वृषभ के स्वामी, पार्वती के मुख को देखते रहने वाले, विचारस्वरूप शिवलिंग को प्रणाम।।९२।। विश्व के स्वामी, विश्वमय और विश्वस्वरूप, सबके रक्षक, दर्पक्षयस्वरूप शिवलिंग को मैं नमन करता हूँ।।९३।। सभी के आधारभूत, सर्वस्वरूप, सबकी उत्पत्ति और नाश के कर्ता, सम्यग्ज्ञानस्वरूप शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।९४।। चिद्घन स्वरूप, सत् चित् आनन्द की मूर्ति को प्रणाम। समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।९५।। मृत्यु को जीत लेने वाले, रुद्र, तीन आँखों और तीन मूर्तियों

---

१. श्वाश्वी–क. ख. ग.।

मृत्युञ्जयाय रुद्राय त्र्यम्बकाय त्रिमूर्तये ।
महावीर्याय वीराय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥९६॥
वेदवेदान्तवेद्याय वेदार्थाय[1] विवेकिने ।
महसे यशसे तुभ्यं शिवलिङ्गाय ते नमः ॥९७॥
सोमसूर्याग्निनेत्राय नमस्ते त्वष्टमूर्तये ।
नमो महाश्रीरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥९८॥
[2]निराकाराय कवये [3]कारणाय कलात्मने ।
नित्यज्ञानस्वरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥९९॥
सूर्यकोटिप्रकाशाय सूक्ष्माय सुखरूपिणे ।
शुद्धवैराग्यरूपाय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥१००॥
नमः षड्भाग्यरूपाय नमः षड्भाग्यदायिने ।
मुक्तये मुक्तिसंधात्रे शिवलिङ्गाय ते नमः ॥१०१॥
अतीतत्र्यष्टतत्त्वाय त्र्यष्टतत्त्वस्वरूपिणे ।
पञ्चविंशात्मतत्त्वाय शिवलिङ्गाय ते नमः ॥१०२॥

वाले, महावीर्य-सम्पन्न महावीर शिवलिंग को मैं नमन करता हूँ।।९६।। वेद और वेदान्त (उपनिषदों) के द्वारा जानने योग्य, वेदार्थस्वरूप विवेकसम्पन्न महान् यशस्वी शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।९७।। सोम, सूर्य और अग्नि रूप तीन नेत्रों वाले, अष्टमूर्ति, महाश्री-सम्पन्न शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।९८।। निराकार, कवि, सबका निर्माण करने वाले; निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, शान्त्यतीता और शान्त्यतीतोत्तरा नामक छः कलाओं से सम्पन्न, नित्यज्ञान-स्वरूप शिवलिंग को मैं नमन करता हूँ।।९९।। करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान, सूक्ष्म, सुखस्वरूप, शुद्ध वैराग्य-सम्पन्न शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।१००।। ऊपर बताये गये छः प्रकार के भाग्यों (अंगों) से सम्पन्न, षड्विध भाग्यों को देने वाले आपको प्रणाम है, प्रणाम है। मुक्तिस्वरूप, मुक्ति को धारण करने वाले शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।१०१।। तीन गुना आठ, अर्थात् चौबीस तत्त्वों से जो अतीत है और जो चौबीस तत्त्वों से सम्पन्न भी है, ऐसे पचीसवें तत्त्व के रूप में प्रसिद्ध शिवलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।१०२।।

---

१. ध्याय-कटि. ङ.। २. श्लोकद्वयं (१००-१०१) १०२ तमश्लोकानन्तरं विद्यते-ग. घ.। ३. कर-क. ख. ङ.।

वरदमृगकुठाराभीतिहस्ताम्बुजाय
स्फुटमुकुटविराजच्चन्द्रमःशेखराय ।
मृदुलविमलदूर्वाश्लिष्टभूभृत्सुताय
प्रणवमय नमः श्रीशङ्करार्यो[१] नमस्ते ॥१०३॥

स्तवराजफलश्रुतिः

इति [२]स्तुवीत यो भक्त्या त्रिसन्ध्यं प्रत्यहं शिवे ।
तद्दृष्टिगोचराः सर्वे शिवा एव न संशयः ॥१०४॥
एतद्विजानतो देवि नान्यदस्ति ततः परम् ।
ज्ञातव्यं परतत्त्वाख्यं सोऽहमेव न संशयः ॥१०५॥
अनेन स्तवराजेन भावयेन्मामधीश्वरम् ।
देहान्ते सर्वमाप्नोति[३] मम सायुज्यमव्ययम् ॥१०६॥
विचारयेदेतदर्थं सम्यग् गुरुमुखाच्छिवे ।
न स भूयो निपतति संसारे दुःखसागरे ॥१०७॥

जिसके चार हाथ वरद-मुद्रा, मृग, कुठार और अभय-मुद्रा से सुशोभित हैं, जिसके सिर पर विराजमान मुकुट पर चन्द्रमा सुशोभित है, कोमल विमल दूर्वा के समान शरीर वाली हिमालय पुत्री पार्वती से जो आश्लिष्ट हैं, ऐसे प्रणवस्वरूप, देवताओं में सर्वश्रेष्ठ भगवान् शंकर को मैं प्रणाम करता हूँ।।१०३।।

हे शिवे ! इस तरह से जो शिवभक्त प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में मेरी स्तुति करता है, तो उसकी दृष्टि में निःसन्देह सब कोई शिवस्वरूप ही हो जाते हैं, अर्थात् उनको सब कुछ शिवमय दिखाई पड़ता है।।१०४।। हे देवि ! जिसको सब कुछ शिवस्वरूप ही प्रतीत होता है, उसके लिये इससे आगे अन्य कुछ जानने योग्य परतत्त्व बचा नहीं रह जाता। निःसन्देह वह तो साक्षात् शिव ही हो जाता है।।१०५।। इस स्तवराज से जो शिवभक्त मुझ सबके स्वामी की आराधना करता है, देहपात होने के बाद वह सब कुछ पा जाता है, मेरी अव्यय सायुज्य पदवी को भी वह हस्तगत कर लेता है।।१०६।। हे शिवे ! जो शिवभक्त श्रीगुरु के मुख से इस विषय को समझ कर उस पर विचार करता है, वह इस दुःख के सागर-संसार में फिर कभी नहीं पड़ता।।१०७।। यदि कोई

---

१. योन्तकाय-क.। २. स्तुवति-क.। ३. दाप्नोति-ग. घ.।

परित्यज्यापि सर्वस्वं सर्वयत्नेन सर्वदा ।
सर्वदा वर्तयेदेतद् यदीच्छेत् सुखमात्मनः ॥१०८॥
एतत्ते कथितं देवि षट्स्थलज्ञानमुत्तमम् ।
सफलं लक्षणयुतं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०९॥

*इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे शिवाद्वैतसिद्धान्ते दीक्षा-
प्रकरणे षट्स्थलनिरूपणं नाम
षष्ठः पटलः [१]समाप्तः ॥६॥*

व्यक्ति अपनी आत्मा को सुख-शान्ति पहुँचाना चाहता है, तो वह अपने सर्वस्व का परित्याग कर सभी प्रकार के प्रयत्नों से सदा इसी उपाय का सहारा ले॥१०८॥ हे देवि ! यह मैंने तुमको लक्षण और फल के साथ षट्स्थल के उत्तम ज्ञान को कह सुनाया है, अब पुनः तुम क्या सुनना चाहती हो॥१०९॥

*इस प्रकार शिवाद्वैतसिद्धान्त के प्रतिपादक पारमेश्वर तन्त्र के
दीक्षा प्रकरण में स्थित षट्स्थल का निरूपण करने
वाला छठा पटल समाप्त हुआ॥६॥*

---

१. 'समाप्तः' नास्ति-क. ख. ङ.।

सप्तमः पटलः

सप्तविधशैवमतनिरूपणम्

श्रीदेव्युवाच

निस्तरङ्गसुखाम्भोधौ नौकाक्रीडन शङ्कर ।
नमस्ते निर्विकाराय निर्विशेषाय शम्भवे ॥१॥
कथितानि त्वयाऽन्यानि यानि सप्तविधानि मे ।
वीरशैवादिभेदेन शैवं सप्तविधं त्विति ॥२॥
उपक्रमेणानाद्यादिमतानां लक्षणादिकम् ।
यज्ज्ञात्वा मनुजः सद्यो वीरशैवे प्रवर्तते ॥३॥

ईश्वर उवाच

शृणुष्वैकमना देवि माहात्म्यं तु मतस्य मे ।
अनादिशैवभेदस्य लक्षणाचारमादितः ॥४॥

१. अनादिशैवलक्षणम्

प्रवेशमात्रेण मते का मुक्तिरविवेकिनाम् ।
विना स्वरूपविज्ञानं मम शम्भोरनुग्रहात् ॥५॥

देवी का प्रश्न

तरंगरहित आनन्दसागर में नौकाविहार करने वाले हे शंकर ! आपको प्रणाम है। आप निर्विकार, निर्विशेष और सबको सुख पहुँचाने वाले हैं।।१।। आपने मुझसे सात प्रकार के अन्य-अन्य मतों की चर्चा पहले की है कि वीरशैव आदि के भेद से यह शैवमत सात प्रकार का है।।२।। अब आप मुझे उन अनादि इत्यादि भेदों वाले मतों के लक्षण आदि बतावें, जिनको जान कर मनुष्य तत्काल वीरशैव मत में प्रविष्ट होना चाहता है।।३।।

शिव का उत्तर

हे देवि ! तुम सावधान होकर सुनो ! पहले मैं तुमको शैवमतों में पहले अनादिशैव मत के लक्षण, आचार और माहात्म्य को बताता हूँ।।४।।

मुझ शम्भु के अनुग्रह के बिना और शिवस्वरूप का सम्यक् ज्ञान हुए बिना केवल शैवमत में प्रवेश मात्र से अविवेकी मनुष्य को मुक्ति कैसे मिल सकती है।।५।।

कृतपुण्यानुसारेण प्रवेशो लभ्यते मते ।
ततो यदि भवेद्धीमान् जागरूको भवेद् दृढः ॥६॥
यथोक्तं गुरुणा शास्त्रं तत्तथा वर्तयेत् सदा ।
तदुक्तमनुतिष्ठेत न त्यजेत् कृच्छ्रगोऽपि वा ॥७॥
त्रिकालमर्चयेन्नित्यं मम लिङ्गमतन्द्रितः ।
जङ्गमानर्चयेद्भक्त्या स्वशक्त्याऽन्नोदकादिभिः ॥८॥
हृष्टो भवति संतुष्टे[1] नष्टे[2] शोचति लोकवत् ।
न बन्धं वेत्ति नो मोक्षं[3] सोऽनादिमतमाश्रयेत् ॥९॥
प्रमादे कुरुते प्रायश्चित्तं साकल्यसिद्धये ।
शुभं चरेच्छुभप्राप्तावशुभेऽशुभमाचरेत् ॥१०॥
तदनादिमतं शैवं नादिसोपानकं यदा ।
ततो यदि विशेषज्ञ[4]स्त्वादिशैवमतं श्रयेत् ॥११॥

अपने पूर्वजन्म में कृत पुण्य के अनुसार व्यक्ति को शैवमत में प्रवेश का अधिकार मिलता है। इसके बाद बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह दृढ़ संकल्प के साथ जागरूक रहे।।६।। गुरु ने शास्त्र की जिस तरह की व्याख्या की है, शिष्य सदा तदनुसार ही आचरण करे। उसके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करे और प्राणसंकट के आने पर भी उसे कभी न छोड़े।।७।। आलस्य को छोड़कर प्रतिदिन तीन सन्ध्याओं में इष्टलिंग का पूजन करे और अपनी शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक जंगमों का अन्न, जल आदि से स्वागत करे।।८।। किसी वस्तु के प्राप्त होने पर सामान्य जन के समान जो प्रसन्न होता है और नष्ट हो जाने पर दुःखी हो जाता है, बन्ध और मोक्ष की जिसको समझ नहीं है, ऐसा व्यक्ति अनादि मत स्वीकारे।।९।। किसी कार्य में प्रमादवश त्रुटि रह जाने पर उस त्रुटि के निवारण के लिये जो प्रायश्चित्त करता है, शुभ की प्राप्ति पर शुभ और अशुभ की प्राप्ति पर अशुभ आचरण करता है, ऐसा व्यक्ति अनादि शैवमत का अधिकारी होता है। जो व्यक्ति यहीं ठहरना नहीं चाहता, कुछ विशेष जानने की इच्छा रखता है, तो वह आदिशैव मत को स्वीकार करे।।१०-११।।

---

१. हृष्टे–ख.। २. नष्टो–ख. ग.। ३. मोहं–क.। ४. ज्ञ आदि–क.।

२. आदिशैवलक्षणम्

शक्त्या समर्चयेदन्नैर्जङ्गमान् गृहमागतान् ।
त्रिकालमर्चयेल्लिङ्गमादिशैवमते शिवे ॥१२॥
यथाशक्त्याचरेच्छास्त्रमशक्तो[1] वर्जयेत् क्वचित् ।
नाश्रयेन्नापि वर्तेत सोऽनादिरधिकः शिवे ॥१३॥

३. अनुशैवलक्षणम्

अर्चयेदेककालं वा लिङ्गं मे जङ्गमानपि ।
मम ध्यानपरो नित्यमनुशैवमतो भवेत् ॥१४॥
ज्ञानेनाधिकता यस्य शान्त्याद्यभ्यासपाटवात्[2] ।
न तस्य कर्मबाहुल्यं ज्ञानमेवाधिकं परम् ॥१५॥
तद्विशेषाधिकारी यो मतभेदेषु धीबलात् ।
कामादिरहितः शान्त उत्तरोत्तरमाश्रयेत् ॥१६॥

हे देवि ! वह आदिशैव अपनी शक्ति के अनुसार घर पर आये जंगमों को अन्न आदि से सन्तुष्ट करे और तीनों सन्ध्याओं में इष्टलिंग का पूजन करे।।१२।। हे शिवे ! वह आदिशैव अपनी शक्ति के अनुसार शास्त्रोक्त विधि का अनुसरण करे, अशक्त होने पर कहीं-कहीं उसे छोड़ सकता है। वह ऐसे आचारों का पालन नहीं करता, तदनुसार नहीं चलता। ऐसा आदिशैव अनादिशैव से श्रेष्ठ है।।१३।।

जो दिन में एक बार इष्टलिंग की और जंगमों की भी पूजा करता है, सदा मेरे ध्यान में मग्न रहता है, वह अनुशैव कहलाता है।।१४।। इसमें ज्ञान की अधिकता रहती है, चित्त की शान्ति का अभ्यास करने के लिये वह शास्त्रों का पाठ करता रहता है। ज्ञान पर ही अधिक जोर देने के कारण वह कर्मकाण्ड में ज्यादा नहीं लगता।।१५।। वह अनेक मतों की उपस्थिति में अपने बुद्धि-बल से, विवेक-बुद्धि से विशेष अधिकार प्राप्त कर लेता है। ऐसा व्यक्ति काम आदि की वासनाओं से दूर रह कर शान्त भाव से उत्तरोत्तर श्रेष्ठ मत को स्वीकार करता है।।१६।। मूढ व्यक्ति को चाहिये किं वह

---

१. शास्त्रं–ख.। २. पाटनात्–ख. ग. घ.।

नाधिकारं विना मूढो मतमुत्तममाश्रयेत् ।
सोऽवश्यं निपतेद् घोरे वृक्षाग्रच्युतपादवत् ।।१७।।
वृद्धसाधनसंपन्नः स गच्छेदुत्तरोत्तरम् ।
संतरेदखिलं दुःखं स्त्रोतसीव दृढो द्रुमः ।।१८।।

४. महाशैवलक्षणम्

अथ वक्ष्ये महाशैवं न विना जङ्गमार्चनम् ।
तत्प्रसादं विनाऽश्नाति महाशैवमते स्थितः ।।१९।।
स स्वपेच्छयनादीनि पूजायै शङ्करेऽर्पयेत् ।
सर्वेन्द्रियनिवृत्तोऽपि शिवमेवार्चयेच्छिवे ।।२०।।

५. योगशैवलक्षणम्

चराचरात्मकं सर्वं जगदेतच्छिवात्मकम् ।
भावयन्नात्मतादात्म्यं योगशैवमते वसेत् ।।२१।।
न बाह्यपूजा नाचारो नैव जङ्गमपूजनम् ।
न प्रत्युत्थानमन्यस्य योगशैवमते मम ।।२२।।

बिना योग्यता के अपने से उत्तम मत में प्रवेश का दुःसाहस न करे। जो ऐसा करता है, उसका घोर नरक में पतन होता है; जैसे कि पैर फिसल जाने पर व्यक्ति वृक्ष की चोटी से नीचे गिर पड़ता है।।१७।। अपनी साधन-सम्पत्ति को बढ़ाकर जो व्यक्ति उत्तरोत्तर उन्नतिपथ पर बढ़ता है, वह समस्त दुःखों से उसी तरह पार पा लेता है, जैसे कि मजबूत वृक्ष बाढ़ के वेग को सहन करने में समर्थ रहता है।।१८।।

अब मैं महाशैव मत को बताता हूँ। इस मत में स्थित व्यक्ति जंगम की पूजा किये बिना और उसका प्रसाद लिये बिना स्वयं कभी भोजन नहीं करता।।१९।। हे शिवे ! शयन, आसन का उपयोग करने से पहले वह उनको पूजा के रूप में शिव को समर्पित कर देता है। सभी इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त होकर वह सदा शिव की आराधना में ही लगा रहता है।।२०।।

यह सारा स्थावर-जंगमात्मक जगत् शिवात्मक है। इसके साथ अपने तादात्म्य को स्थापित कर सकने में समर्थ व्यक्ति योगशैव मत में प्रवेश करे।।२१।। मेरे इस योगशैव मत में बाह्य पूजा की, आचार-पालन की, जंगम-पूजन की और अन्य व्यक्ति के संमान में उठकर खड़े होने की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।।२२।। एकान्त

विविक्तं देशमाश्रित्य परित्यज्य धनादिकम् ।
निर्ममो निरहङ्कारो ध्यायीतात्मानमीश्वरम् ।। २३।।
जगल्लिङ्गमयं पश्येल्लिङ्गं मद्रूपमीक्षयेत् ।
ममात्मानं परं ध्यायेद् योगशैवमते स्थितः ।। २४।।

६. ज्ञानशैवलक्षणम्

तदेतज्ज्ञानशैवाख्यं ज्ञानस्य ज्ञानमुत्तमम् ।
जगत् तदात्मकं ज्ञानं महाज्ञानमितीश्वरि ।। २५।।
न ध्यानं नापि वाऽऽयासो नार्चा जङ्गमलिङ्गिनाम् ।
न योगधारणं ज्ञानशैवस्थस्य मम प्रिये ।। २६।।
यो ज्ञानशैवमतगो य उक्तक्रमनिष्ठितः ।
स जीवन्नेव विश्वेशि शिवोऽहं नात्र संशयः ।। २७।।

सोपानक्रमेण मताश्रयणम्

एवं क्रमेण सोपानं मतभेदं समाश्रयेत् ।
यदि व्युत्क्रमतो गच्छेत् स पतेन्नात्र संशयः ।। २८।।

स्थान में रहते हुए, धन की लालसा छोड़कर, ममता और अहंकार का परित्याग कर वह योग-शैव स्वयं अपने को ही ईश्वर मान कर सदा ध्यान में लगा रहे।।२३।। वह इस सारे जगत् को लिंगमय और लिंग को शिवमय देखे। योगशैव मत में स्थित व्यक्ति मुझ परमात्मा का ही सदा ध्यान करे।।२४।।

हे ईश्वरि ! ज्ञानशैव मत का स्वरूप यह है कि इसमें ज्ञानों में श्रेष्ठ ज्ञान उसी को मानते हैं, जिसमें कि यह ज्ञान प्रबल हो कि यह सारा जगत् शिवमय है। इसी ज्ञान को यहाँ महाज्ञान कहा गया है।।२५।। हे प्रिये ! मेरे इस ज्ञानशैव मत में स्थित साधक को ध्यान की, हठयोग के कठिन अभ्यास की, जंगमपूजा और लिंगपूजा की अथवा योगाभ्यास की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।।२६।। हे विश्वेशि ! ज्ञानशैव मत में प्रविष्ट व्यक्ति जब ऊपर बताई गई पद्धति में अपने जीवन को ढाल लेता है, तो वह इसी जीवन में निःसन्देह साक्षात् शिव बन जाता है।।२७।।

यहाँ बताये गये क्रम से ही सीढ़ी पर चढ़ने के समान एकमत के बाद दूसरे मत को स्वीकार करना चाहिये। उलटा चलने वाला व्यक्ति निश्चय ही पतित हो जाता है।।२८।। उत्तरोत्तर मार्ग का अनुसरण करने के बाद यदि कोई अपनी असमर्थता के

यदाश्रित्योत्तरं भेदमशक्त्या तदनुष्ठितौ[1] ।
पूर्वभेदानुसरणात् स पतेन्नात्र संशयः ।। २९।।

ज्ञानकर्मसमुच्चयः

ज्ञानाधिकारसिद्ध्यर्थमाचरेत् कर्म चोदितम् ।
ज्ञाननिष्ठाबलेनैव त्यजेत् कर्माणि नान्यथा ।। ३०।।
विना ज्ञानाधिकारेण शक्त्या कर्माणि यस्त्यजेत् ।
न याति पारं दुःखस्य विषयेष्ववसीदति ।। ३१।।

मतेषु साम्यवैषम्ये

दीक्षाहोमादिकं सर्वं सर्वत्र सममेव हि ।
आचारश्चापि भक्तिश्च समा सर्वमतेऽपि ।। ३२।।
लिङ्गस्य पूजनं नित्यं जङ्गमानां च पूजनम् ।
कर्तव्यं नियता भक्तिः सर्वभेदेष्वपि प्रिये ।। ३३।।
अनादिशैवनिष्ठस्य कर्मैव परमा गतिः ।
आदिशैवमतस्थस्य स्मरणं सततं विधिः ।। ३४।।

कारण तदनुसार आचरण न कर पूर्व मार्ग का ही अनुसरण करता है, तो वह निःसन्देह पतित हो जाता है।।२९।।

ज्ञानमार्ग का अधिकार प्राप्त करने के लिये शास्त्रविहित कर्मों का अनुष्ठान करना आवश्यक है। ज्ञान की परिनिष्ठित अवस्था के प्राप्त हो जाने पर ही कर्म का परित्याग करे, अन्यथा नहीं।।३०।। ज्ञानमार्ग का अधिकार प्राप्त किये बिना जो व्यक्ति सामर्थ्य के रहते हुए भी कर्म का परित्याग करता है, वह दुःखों के पार कभी नहीं पहुँच सकता। वह तो सांसारिक विषयों में ही डूबता-उतराता रहता है।।३१।।

इन सभी मतों में दीक्षा, होम, आचार और भक्ति इन सबकी सर्वत्र एक समान आवश्यकता रहती है।।३२।। हे प्रिये ! इन सभी भेदों में इष्टलिंग की नित्य पूजा करना, सदा जंगम का सत्कार करना आवश्यक कर्तव्य है। इसी तरह से भक्ति भी आदिशैव, अनादिशैव आदि सभी शैव-भेदों का प्रमुख साधन है।।३३।। अनादिशैव मत में कर्म की श्रेष्ठता मानी गई है। आदिशैव में सदा भगवत्स्मरण करना मुख्य विधि है।।३४।।

---

१. ष्ठितम्–क. ख.।

अनुशैवमतस्थस्य मननं मुख्यसाधनम् ।
महाशैवमतस्थस्य निश्चयः परमा गतिः ।। ३५ ।।
योगशैवमतस्थस्य योगस्याष्टाङ्गलक्षणम् ।
ज्ञानशैवमतस्थस्य[1] ज्ञानानां भावनाऽखिला ।। ३६ ।।

वीरशैवमतनिरूपणम्

वीरशैवमतस्थस्य ज्ञानयोगो हि साधनम् ।
[2]विना ज्ञानं न योगः स्यान्न ज्ञानं योगतो विना ।। ३७ ।।
न विना ज्ञानयोगाभ्यां वीरशैवमताश्रयः ।
संतारणाय भवति च्यवते नात्र संशयः ।। ३८ ।।
यथा वीरो रणे शूरो वीरशैवमते तथा ।
भक्त्या वीरो न वैरेण न बलेन च कार्यतः ।। ३९ ।।

मांसादिभक्षणनिषेधः

न मांसं भक्षयेल्लिङ्गी नाप्यपेयं पिबेत् क्वचित् ।
नाभक्ष्यं भक्षयेद् देवि नानावश्यनिमित्तकम् ।। ४० ।।

अनुशैव मत में स्थित व्यक्ति के लिये मनन मुक्ति का मुख्य साधन है। महाशैव मत वाले की परम गति दृढ़ निश्चय में है।।३५।। योगशैव में स्थित व्यक्ति के लिये अष्टांग लक्षण योग मुख्य साधन है। ज्ञानशैव मत वाला सर्वत्र ज्ञान की भावना करता है।।३६।।

वीरशैव मत में स्थित व्यक्ति ज्ञान और योग दोनों को साधन बनाता है, क्योंकि ज्ञान के बिना योग और योग के बिना ज्ञान सिद्ध नहीं हो सकता।।३७।। इस तरह से ज्ञान और योग इन दोनों के बिना वीरशैव मत का आश्रय लेने पर भी वह मुक्तिलाभ नहीं कर सकता। निश्चय ही वह इन दोनों का आश्रय न लेने पर अपने मार्ग से च्युत हो जाता है।।३८।। लड़ाई में शौर्य दिखाने वाला वीर कहलाता है, किन्तु वीरशैव मत में भक्ति में वीरता दिखाने के आधार पर व्यक्ति वीर कहलाता है, वैरभाव के कारण अथवा किसी प्रकार के बल-प्रदर्शन से या अन्य किसी पराक्रम के कार्य से वह वीर नहीं कहलाता।।३९।।

हे देवि ! इष्टलिंग की आराधना करने वाला शिवभक्त मांस का भक्षण न करे और न अपेय पदार्थों को ग्रहण करे। नाना प्रकार की आवश्यकताओं के आ पड़ने पर भी वह अभक्ष्य-भक्षण न करे।।४०।। वीरशैव गृहस्थ केवल अपने लिये कभी अन्न

---

१. शैवेन योगस्य-ग. घ.। २. विज्ञानेन न-ग. घ.।

नात्मार्थं पाचयेदन्नं[1] नाद्यान्नातिथ्यनर्पितम् ।
शक्त्या संपूजयेल्लोके[2] जङ्गमं गृहमागतम् ।। ४१।।
नाद्यादलिङ्गिनश्चान्नं दृष्टं चान्नमलिङ्गिना ।
याचयेद् गृहमागत्य दद्यादन्नमलिङ्गिने ।। ४२।।
नोदासीनं न च द्वेषं न हिंसां नापि वञ्चनम् ।
कुर्वीत लिङ्गी यत्नेन विमतेष्वप्यलिङ्गिषु ।। ४३।।
पूज्यपूजकभावादौ भोजनादिषु कर्मसु ।
विमतत्वादयोग्यत्वादेवमेवाखिलं जगत् ।। ४४।।

अतिथिसत्कारः

गृहमायान्तमालोक्य गुरुं वाऽगुरुमेव च[3] ।
यो गृही भवते नम्रः स गुरुर्नेतरः क्वचित् ।। ४५।।
तदागतं गृहे वीक्ष्य प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ।
श्रमापनोदनं कुर्याद् [4]व्यजनादिभिरादरात् ।। ४६।।

न पकावे, अतिथि को अर्पित किये बिना स्वयं कभी उसे ग्रहण न करे और अपनी शक्ति के अनुसार घर पर आये जंगम का स्वागत-सत्कार अवश्य करे।।४१।। अलिंगी के घर का अन्न कभी ग्रहण न करे और न अलिंगी के द्वारा देखे गये अन्नं को ही ग्रहण करे, किन्तु अलिंगी व्यक्ति घर पर आकर यदि याचना करता है, तो उसे अन्न अवश्य दे।।४२।। लिंगी व्यक्ति को प्रयत्नपूर्वक यह देखना चाहिये कि वह भिन्न मत वाले व्यक्तियों के प्रति भी कभी उदासीन अथवा द्वेष-बुद्धि वाला न बने, उनके प्रति हिंसा का भाव या वंचना की प्रवृत्ति न रखे।।४३।। पूज्यपूजक भाव में और पंक्ति-भोजन आदि के विषय में विरुद्ध मत वाले और अयोग्य व्यक्तियों के साथ सारा जगत् प्रायः विषम व्यवहार ही करता है।।४४।।

अपने घर पर आये श्रेष्ठ अथवा कनिष्ठ व्यक्ति के साथ जो गृहस्थ समान रूप से नम्रता का व्यवहार करता है, वही श्रेष्ठ माना जाता है। इसके विपरीत आचरण करने वाला व्यक्ति नहीं।।४५।। अपने घर पर आये अतिथि को देखकर लिंगी उसका अभ्युत्थान (उठ कर खड़ा होना) और अभिवादन (प्रणाम=नमस्कार) द्वारा स्वागत करे और आदरपूर्वक पंखा झलते हुए उसकी थकावट को दूर करने का प्रयत्न करे।।४६।।

---

१. दिष्टं-ग. घ. ङ.। २. त्काले-ख.। ३. वा-घ. ङ.। ४. यज-क. ख. ग.।

प्रणम्य स्वागतं ब्रूयात् पादप्रक्षालनं चरेत् ।
प्रथमं पूजयेद् गन्धपुष्पैः संक्षालयेत् ततः ॥४७॥
अङ्गुष्ठे भावयेद् रुद्रं तर्जन्यां शङ्करं स्मरेत् ।
मध्यमायां महादेवमनामिक्यां त्रियम्बकम् ॥४८॥
कनिष्ठिकायामीशानं पादोपरि कपर्दिनम् ।
पादाधः पञ्चवदनं गुल्फयोरुग्रभर्गकौ ॥४९॥
सर्वं लिङ्गमयं ध्यात्वा पादं जङ्गमलिङ्गिनः ।
पिबेत् संक्षालितं तोयं पीत्वा शिरसि धारयेत् ॥५०॥
न पातयेदधोबिन्दुं पादप्रक्षलनाम्भसाम् ।
पुनः संपूजयेद् गन्धपुष्पधूपादिभिः क्रमात् ॥५१॥
स्त्रियो वा पुरुषा वापि सर्वत्रातिथिपूजने[1] ।
पुंभिः पुंसां स्त्रियां स्त्रीभिर्देयं गन्धादिकं करे ॥५२॥

वह घर पर आये अतिथि को प्रणाम कर उसका स्वागत करे। उसके पैरों को धोकर गन्ध-पुष्प से उसकी पूजा कर पुनः पादप्रक्षालन करे।।४७।। उसके पादांगुष्ठ में रुद्र का, तर्जनी में शंकर का, मध्यमा में महादेव का और अनामिका में त्रियम्बक का स्मरण करे।।४८।। कनिष्ठा में ईशान का, चरण के ऊपर कपर्दी का, चरण के नीचे पंचवदन का और दोनों गुल्फों (टखनों) में उग्र और भर्ग का स्मरण करे।।४९।। इस तरह से लिंगी जंगम के समस्त चरण को लिंगमय मानकर उसका जल से प्रक्षालन करे और उस जल का आचमन कर अपने शिर पर छिड़के।।५०।। पाद-प्रक्षालन के जल की एक भी बूंद को जमीन पर न गिरने दे। इस प्रकार चरणोदक का पान कर वह गृहस्थ पुनः उन चरणों की गन्ध, पुष्प, धूप आदि से पूजा करे।।५१।। अतिथि स्त्री हो अथवा पुरुष, सर्वत्र विवाह की विधि का अनुसरण किया जाता है, अर्थात् स्त्री का स्त्री और पुरुष का पुरुष पूजन-सत्कार करते हैं। इस पूजा में गन्ध आदि हाथ में दिये जाते हैं।।५२।।

---

१. इतः परम्-"स्वयमेवार्चयेद् भक्त्या दद्यात् पाणौ न तस्य तत्। न स्त्रीणामर्चनं पुंभिः स्त्रीभिः पुंसां समर्चनम्।।" इत्यधिकः श्लोकः-ख.।

न जातिभेदस्तत्रास्ति लिङ्गिनां शिवयोगिनाम् ।
न दृष्टिस्पृष्टिदोषो वा सर्व एव शिवाः शिवे ॥५३॥

अष्टावरणनिर्देशः

गुरुर्लिङ्गं जङ्गमश्च पादतीर्थं प्रसादकम् ।
देहे विभूतिरुद्राक्षौ मम पञ्चाक्षरी मनुः ॥५४॥
अष्टावरणसंयुक्ता वीरमाहेश्वरा नराः ।
मम रूपधरा देवि विचरन्ति महीतले ॥५५॥

लिङ्गिनां पालनीया नियमाः

न त्यजेल्लिङ्गिना भुक्तं शिष्टमुच्छिष्टधीहतः ।
न क्षालयेच्च तत्पात्रं न भेदं तत्र कारयेत् ॥५६॥
येन केनापि भुक्ते तु लिङ्गिनोच्छिष्टपात्रके ।
पात्राभावैककालादौ सर्वेऽप्यश्नन्ति लिङ्गिनः ॥५७॥
न ब्रह्मवृत्त्या न क्षत्रवृत्त्या नो वैश्यवृत्तितः ।
न शूद्रवृत्त्या जीवेत यदि लिङ्गीहते सुखम् ॥५८॥

हे शिवे ! इष्टलिंगधारी शिवयोगियों में जातिभेद नहीं माना जाता। दृष्टिदोष अथवा स्पर्शदोष की भी यहाँ प्रवृत्ति नहीं होती, क्योंकि वीरशैव मत के अनुसार यहाँ सब कुछ शिवमय है।।५३।।

हे देवि ! जो वीर माहेश्वर जन गुरु, लिंग, जंगम, पादतीर्थ, प्रसाद, देह में विभूति और रुद्राक्ष का धारण एवं मेरा पंचाक्षर मन्त्र— इन आठ आवरणों से संयुक्त होते हैं, वे सब इस पृथ्वी पर मेरा ही स्वरूप धारण कर विचरण करते हैं।।५४-५५।।

लिंगी के द्वारा भोजनपात्र में छोड़े गये अन्न को उच्छिष्ट मानकर उसका परित्याग न करे और न उस पात्र का प्रक्षालन ही करे। ऐसे जंगम-प्रसाद को शिवप्रसाद से भिन्न न माने।।५६।। जिस किसी भी लिंगी के द्वारा जिस पात्र में भोजन किया गया है, उस उच्छिष्ट पात्र में अन्य पात्रों के अभाव में अन्य सभी लिंगी भोजन कर सकते हैं।।५७।। यदि कोई लिंगी यहाँ सुख चाहता है, तो उसे ब्राह्मण की, क्षत्रिय की, वैश्य की अथवा शूद्र की वृत्ति से नहीं जीना चाहिये।।५८।। यदि लिंगी व्यक्ति को सुखपूर्वक भोजन

न वै प्रतिग्रहेद् दानं न ऋणं नातिसंग्रहम् ।
यद्यस्ति भुक्तिः ससुखं नो चेद् भिक्षाटनं चरेत् ।।५९।।
पक्वं च लिङ्गिनामेव नान्नादिकमलिङ्गिनाम् ।
गृह्णीयाद् देवि यत्नेन ह्यपक्वं सर्वजातिषु ।।६०।।
नाश्नीत [1]दद्यात्पक्वं च स्वस्यान्यस्य यथारुचि ।
अपक्वं न पिबेत् तोयमलिङ्गिस्पृष्टमीश्वरि ।।६१।।
चाण्डालेनापि देवेशि संस्पृष्टं धृतलिङ्गिना ।
योग्यं स्यादन्नपानादिर्न श्रेष्ठेनाप्यलिङ्गिनि ।।६२।।
यत्नेन याचयेदन्नं यदि स्युर्लिङ्गधारिणः ।
अभावे याचयेदन्नमपक्वं चाप्यलिङ्गिनः ।।६३।।
न दध्याज्यपयस्तक्रं पक्वमप्यशुचिः प्रिये ।
जातिभेदो न कर्तव्यः पाकभेदो न गोरसे ।।६४।।

मिल जाता है, तो उसे दान अथवा ऋण कभी नहीं लेना चाहिये, द्रव्यसंग्रह से भी उसे दूर रहना चाहिये। सुखपूर्वक भोजन न मिलने पर वह भिक्षाटन करे।।५९।। हे देवि ! पका हुआ अन्न उसे लिंगी गृहस्थ के यहाँ से ही लेना चाहिये, अलिंगी व्यक्ति के घर से नहीं। अपक्व अन्न तो वह प्रयत्नपूर्वक सभी जातियों के घरों से ले सकता है।।६०।। हे ईश्वरि ! अपने द्वारा पकाये गये अन्न को दूसरों को न दे और न दूसरों के पकाये अन्न को स्वयं ग्रहण करे। अपक्व अन्न को रुचि के अनुसार लिया-दिया जा सकता है। इसी तरह से अलिंगी के द्वारा स्पृष्ट जल को भी न पीये।।६१।। हे देवेशि ! इष्टलिंगधारी चाण्डाल का छुआ अन्न-जल ग्रहण के योग्य माना जाता है, किन्तु श्रेष्ठ अलिंगी के द्वारा स्पृष्ट नहीं माना जाता।।६२।। लिंगधारी गृहस्थों के यहाँ से प्रयत्नपूर्वक अन्न ग्रहण करना चाहिये। ऐसा न होने पर अलिंगी गृहस्थ के यहाँ से अपक्व अन्न ही ग्रहण करे।।६३।। हे प्रिये ! दही, घृत, दूध, तक्र (मट्ठा) ये सब पक्व होने पर भी अशुचि नहीं माने जाते। गोरस में जातिभेद और पाकभेद वर्जित है।।६४।। शिव के पूजन में सूर्य की किरणों से स्पृष्ट जल वर्जित है, अतः इसके लिये

---

१. यद्यपक्वं-घ.।

न सूर्यकिरणस्पृष्टमुदकं शिवपूजने ।
योग्यं तदानयेद् रात्रौ चोदयात् पूर्वतो रवेः ।।६५।।
यथाकाशः प्रतिफलेन्न घटान्तःस्थिताम्भसि ।
तथाऽऽछाद्य दृढं भाण्डमुखं सूदकमानयेत् ।।६६।।
न भूमौ प्रक्षिपेत् क्वापि विना पूजास्थलं शिवे ।
यद्यन्यत्र क्षिपेत् कुम्भमशुच्यम्भः परित्यजेत् ।।६७।।
पत्रपुष्पादिपूजार्थं यद्यलिङ्गिसमाहृतम् ।
तेनार्चयित्वा गिरिजे रौरवे नरके वसेत् ।।६८।।
यदानीतं त्वशुचिना लिङ्गिनाप्यर्चनाय मे ।
संपूजयित्वा मां देवि रौरवे नरके वसेत् ।।६९।।
तदुत्थाय शुचिर्भूत्वा धृतरुद्राक्षभूतिकः ।
जपन् पञ्चाक्षरं मन्त्रं [1]स्मरन् वा नाम मे शिवे ।।७०।।

पुष्पसंग्रहप्रकारः

मौनी निरस्तचेष्टः सन् न दिशोऽन्या विलोकयेत् ।
ध्यायन् पुष्पेषु मां देवि त्वया सह लुनेच्छनैः ।।७१।।

जल सूर्योदय से पहले रात्रि में, अर्थात् ब्राह्म वेला में ही ले आना चाहिये।।६५।। घट के भीतर विद्यमान जल में प्रकाश का प्रतिबिम्ब न पड़े, इसके लिये भाण्ड के मुख को भलीभाँति ढंक कर पूजन के लिये स्वच्छ जल लाना चाहिये।।६६।। हे शिवे ! पूजास्थल के अतिरिक्त अन्य किसी स्थल पर जलपात्र को न रखे। यदि वह जल को अन्यत्र रखता है, तो अपवित्र हो जाता है। ऐसे अपवित्र जल का परित्याग ही उचित है।।६७।। हे गिरिजे ! अलिंगी के द्वारा लाये गये पत्र, पुष्प आदि से यदि लिंगधारी पूजा करता है, तो वह रौरव नरक में जाता है।।६८।। हे देवि ! इसी तरह से अपवित्र लिंगधारी के द्वारा लाई गई पूजासामग्री से इष्टलिंग का अर्चन करने पर भी रौरव नरक में वास करना पड़ता है।।६९।। हे शिवे ! इसलिये लिंगधारी प्रातःकाल उठ करके, शौच-स्नान आदि से शुद्ध होकर, भस्म और रुद्राक्ष धारण कर, पंचाक्षर मन्त्र का जप और मेरे नाम का स्मरण करे।।७०।।

हे देवि ! वह शिवभक्त मौन व्रत धारण कर, समस्त अन्य चेष्टाओं से विरत होकर, अन्य दिशाओं को न देखता हुआ, इन पुष्पों में मैं तुम्हारे साथ विराजमान हूँ, इस अभिप्राय से पुष्पों का चयन करे।।७१।। हे शिवे ! कृमि-कीट आदि के द्वारा न

---

१. स्मरेद्वा-क.।

[1]अकीटक्रिमिदष्टानि अविच्छिन्न[2]दलानि च ।
[3]अनूतनान्यपूर्वाणि पक्वान्येव लुनेच्छिवे ॥७२॥
न दारुमृन्मये पात्रे न हस्ते न च वाससि ।
पर्णादौ चूलिकादौ वा पुष्पपत्रादिकं क्षिपेत् ॥७३॥
न भूमौ निक्षिपेत् पुष्पं नाशुद्धे न शरीरके ।
स्थापयेदम्बिके शुद्धं देवतायतनं विना ॥७४॥

पूजाप्रकारः

नार्द्रैस्तिलाक्षतैर्देवि पूजयेन्मिश्रवज्जलैः ।
नीरसैः क्षालितैः शुद्धैरखण्डैरर्चयेच्छुभैः ॥७५॥
सिकतारुणनैल्यादिरहितैश्च तिलैरपि ।
त्रिकालमर्चयेन्नित्यं[4] समभागैस्तिलाक्षतैः ॥७६॥
करवीरैर्द्रोणदूर्वाविल्वपत्रैस्तिलाक्षतैः ।
अर्चयेन्नित्यमीशानि पञ्चपुष्पैरतन्द्रितः ॥७७॥
यत्नतो नित्यपूजायै पञ्चैतानि सुसाधयेत् ।
यद्यदन्यत् सुखाल्लब्धमधिकस्याधिकं फलम् ॥७८॥

खाये गये, अपने वृन्त से मजबूती से जुड़े हुए, पूरी तरह से खिले हुए, अपूर्व शोभा वाले परिपक्व पुष्पों का ही चयन करे।।७२।। लकड़ी अथवा मिट्टी के बने पात्र में, हाथ में अथवा वस्त्र में चुने हुए पुष्पों को न रखे। पत्ते अथवा दौने में ही इनको रखे।।७३।। हे अम्बिके ! पुष्पों को तोड़कर पृथ्वी पर नहीं डालना चाहिये, अशुद्ध स्थल पर अथवा शरीर पर न डाले। शुद्ध देवमन्दिर में ही उन्हें रखे।।७४।।

हे देवि ! जलमिश्रित गीले तिल और अक्षत से पूजा करे। धोकर शुद्ध किये गये, सूखे अखंडित शुभ तिलाक्षत से पूजा करे।।७५।। पूजा के तिल बालू से, लालिमा और नीलिमा से रहित होने चाहिये। तिल के समान-भाग अक्षत लेकर उनसे तीनों सन्ध्याओं में नित्य शिवपूजन करना चाहिये।।७६।। हे ईशानि ! करवीर, द्रोणपुष्प, दूर्वा, विल्वपत्र और समभाग तिलाक्षत इन पांच पुष्पों से शिवभक्त नित्य बिना आलस्य के शिव की अर्चना करे।।७७।। नित्यपूजा में यत्नपूर्वक इन पाँच वस्तुओं का संग्रह अवश्य करना चाहिये। यदि अनायास अन्य साधन भी उपलब्ध होते हैं, तो वे सब भी ग्राह्य हैं, क्योंकि अधिक साधनों से अधिक फल मिलता है।।७८।। धतूरा, आक, पलाश, कमल,

---

१. क्लिष्ट–क. ख.। २. बला–क. ख.। ३. आनू–क. ख.। ४. ल्लिङ्ग–ग. घ.।

धत्तूरैरर्कपालाशैः कमलोत्पलपाटलैः ।
नीपचम्पकपुन्नागैर्मधूकबकुलादिभिः ॥७९॥
नागकेसरशेवन्तीनीलीकुरुबकैरपि ।
मल्लिकाजातिकह्लारैर्ग्राम्यवन्यैरनेकशः ॥८०॥
पुष्पाणि सन्ति पत्राणि सुलभानि धरातले ।
अनायासेन संपाद्य पूजयेन्मां यथासुखम् ॥८१॥
शम्यपामार्गतुलसीबृहत्यस्मान्तमर्जुनम् ।
विष्णुक्रान्ता चामलकदेवदार्वादिकानि च ॥८२॥
यत्साध्यमत्यायासेन यत्प्रयत्नेन दुर्लभम् ।
यदमूल्यं विशेषेण तत्संपाद्यार्चयेच्छिवम् ॥८३॥
सुशुद्धं शीतलं रम्यं मधुरं लघु पावनम् ।
यत्नेन जलमानीयाभिषिञ्चेन्मां यथाबलम् ॥८४॥

लिङ्गसेवायां कालयापनम्

प्रत्यहं यावदुत्थानं यावत् स्वापः पुनर्निशि ।
तावच्च लिङ्गसेवार्थं कालं व्यपनयेत् सुधीः ॥८५॥

नीलोत्पल, पाटल, नीप (कदम्ब), चंपक, पुंनाग, मधूक (महुआ), बकुल (मौलसिरी), नागकेसर, शेवन्ती, नीली, कुरबक, मल्लिका, जाति (चमेली), कह्लार (श्वेतकमल) इत्यादि गाँवों में और वन में उपलब्ध होने वाले अनेक प्रकार के पुष्प और पत्र इस पृथिवी तल पर सुलभ हैं। अनायास जो मिल जाय, उनसे सुखपूर्वक मेरी पूजा करे।।७९-८१।। शमी, अपामार्ग, तुलसी, बृहती (भटकटिया), अस्मान्त, अर्जुन, विष्णुक्रान्ता, आमलक, देवदारु इत्यादि के पत्र-पुष्पों से भी तथा जिनको बहुत आयास करके प्राप्त किया जाता है, जो प्रयत्न करने पर दुर्लभ रहते हैं और जिनको मूल्य देकर खरीदा नहीं जा सकता, ऐसे सभी पदार्थों से भगवान् शिव की पूजा करे।।८२-८३।। परम पवित्र, शीतल, रमणीय, मधुर, सुपाच्य और सबको पवित्र करने वाले जल से यथाशक्ति मेरा अभिषेक करे।।८४।।

प्रतिदिन प्रातःकाल जब वह उठता है, तबसे लेकर पुनः रात्रि में शयन पर्यन्त सारा समय विद्वान् साधक को इष्टलिंग की सेवा में ही व्यतीत करना चाहिये।।८५।।

न विना मम [1]दास्येन न विना लिङ्गपूजनम् ।
तद्भवेत् सुखलाभाय यद्भवस्त्वन्यत्प्रयोजनम् ।। ८६।।
मम सेवा तपो देवि मम सेवा व्रतं शिवे ।
ममाश्रयो हि कैवल्यं धीमतां सुखमिच्छताम् ।।८७।।

वीरशैवमतस्य श्रेष्ठता

यथाऽन्धस्याक्षिलाभेन निधिलाभाद् दरिद्रिणः ।
क्षुधितस्यान्नलाभेन कामिनः कामलाभतः ।। ८८।।
कामिन्याः सद्वरप्राप्ते पुत्रलाभे त्वपुत्रिणः ।
पङ्गोः शरीरदार्ढ्येन जीवनेन पुनर्मृते ।।८९।।
तथा विद्धि मतं देवि मम शैवं महत्तरम् ।
तन्मन्थनोत्थितं सारं वीरशैवं परं शिवे ।। ९०।।
निष्ठाभेदेन मर्त्यानां भेदावान्तरभेदतः ।
कल्पिता हि मया भेदा ज्ञानमेकं हि कारणम् ।। ९१।।

मेरा दास्यभाव ग्रहण किये बिना और इष्टलिंग की उपासना किये बिना अन्य प्रयोजन की सिद्धि के लिये किये गये कार्यों से कभी सुख नहीं मिल सकता।।८६।। हे देवि ! मेरी सेवा ही तप है, हे शिवे ! मेरी सेवा ही व्रत है। सुख की इच्छा रखने वाला बुद्धिमान् व्यक्ति मेरा ही आश्रय ग्रहण करे, क्योंकि कैवल्य की प्राप्ति उसी से होती है।।८७।।

अन्धे को आँखों के मिल जाने पर, दरिद्र को खजाना मिल जाने पर, भूखे को अन्न मिल जाने पर, कामी को अपनी कामना पूरी हो जाने पर, कामिनी को सुयोग्य वर की प्राप्ति हो जाने पर, अपुत्र को पुत्र की प्राप्ति हो जाने पर, पंगु को अपने शरीर के मजबूत हो जाने पर, मरे हुए को पुनः जीवनलाभ मिल जाने पर जो सुख की अनुभूति होती है, हे देवि ! वही स्थिति मेरे महान् शैवमत का आश्रय लेने वाले की भी तुम सुलभ समझो, क्योंकि हे शिवे ! सारे शैवमतों को मथने से जो सार निकलता है, श्रेष्ठ वीरशैव मत वही है।।८८-९०।। मनुष्यों की रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार अवान्तर भेद के कारण शैवों के भेद हो जाते हैं, मनुष्यों की रुचि को देखकर मैंने इन भेदों की कल्पना की है। इस सबका मुख्य साधन ज्ञान ही है।।९१।। अन्धे के सहारे चलने वाला दूसरा

---

१. दासेन–क. ख.।

अन्धेन नीयमानोऽन्धो निपतेत् सह तेन सः ।
यथा तथाऽनभिज्ञस्य वीरशैवं मतं मम ॥९२॥
कृपाणधारागमनं व्याघ्र[1]कर्णावलम्बनम् ।
वीरशैवमतं देवि सत्यं त्वविदुषां मम ॥९३॥

शिवपूजा सावहितं विधेया

अनायासतपश्चर्यशैवलब्धेन तोषणम् ।
शिवपूजा सदा देवि कैवल्यं शिवलिङ्गिनाम् ॥९४॥
तत्र मुह्येत यो मूढस्त्यक्त्वा स्वाचार[2]मुक्तवत् ।
भ्रश्येत पश्यन् गिरिजे सदा विषयलम्पटः ॥९५॥
मुक्तिमार्गोऽयमीशानि शक्ताशक्तसमो मम ।
धीमानेति सुखं तेन न धीमान्निपतेद् ध्रुवम् ॥९६॥
विषयाग्निशिखादीर्घं तपश्चर्या[3]नलोद्धतम् ।
अभ्येत्य द्रावयेन्नित्यं ततो विजनमाश्रयेत् ॥९७॥

अन्धा जैसे उसके साथ ही गिर पड़ता है, उसी तरह से वीरशैव मत से अनभिज्ञ गुरु का अनुसरण करने वाला भी कभी मुक्त नहीं हो सकता।।९२।। हे देवि ! जैसे तलवार की धार पर चलना कठिन है, बाघ के कान को ऐंठना जैसे मुश्किल है, उसी तरह से यह भी सत्य है कि वीरशैव मत का ज्ञान न रखने वाले के लिये मुक्ति प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, अर्थात् वीरशैव मत के ज्ञान के बिना मुक्ति असंभव है।।९३।।

हे देवि ! बिना आयास (मेहनत) की तपश्चर्या से शिवानुग्रह से जो कुछ प्राप्त हो जाता है, उससे संतुष्ट रह कर जो शिवयोगी सदा शिवपूजा में लगा रहता है, शिवलिंगियों के लिये वही कैवल्य है।।९४।। हे गिरिजे ! जो मूढ़ व्यक्ति मोहवश अपने द्वारा पहले स्वीकृत शिवाचार को छोड़कर स्त्री, पुत्र आदि के प्रति आसक्त हो जाता है, तो उसका पतन निश्चित है।।९५।। हे ईशानि ! वीरशैव मत में निर्दिष्ट मुक्ति का मार्ग समर्थ और असमर्थ दोनों के लिये बराबर है, अर्थात् सभी इसका अनुसरण कर सकते हैं। इसके सहारे बुद्धिमान् व्यक्ति सुख पाता है और बुद्धिरहित व्यक्ति पतित हो जाता है, यह निश्चित है।।९६।। शिवयोगी को चाहिये कि वह तपश्चर्या के प्रभाव से अभी-अभी उत्पन्न ज्ञानाग्नि की दीर्घ ज्वालाओं से सारे विषयों को भस्म कर दे और ऐसा हो जाने पर फिर एकान्त में निवास करे।।९७।।

१. चर्मा-कटि.। २. मूक-ख.। ३. श्चर्य-क. ख. ग.।

वीरशैवलक्षणम्

अहेरिव गुणाद् भीतः सन्मानस्मरणादिव ।
कुणपादिव यः स्त्रीभ्यो वीरशैवः स उच्यते ।। ९८।।
दैवलब्धेन संतुष्टः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ।
शिवध्यानरतो नित्यं दृढचित्तो जितेन्द्रियः ।।९९।।
त्रिकालमर्चयेन्नित्यं शिवपञ्चाक्षरीं[1] जपन् ।
कीर्तयन् शिवनामानि शिवोऽहमिति भावयन् ।। १००।।
जगज्जीवमयं सर्वं चैतन्यमयविग्रहम् ।
पञ्चाक्षरमयं लिङ्गं लिङ्गं पञ्चाक्षरं महत्[2] ।। १०१।।
जगदात्मनि संपश्यन्नात्मानं जगतीक्षयन् ।
जगदात्मानमीशानि पश्येन्[3]मयि चिदात्मकम् ।। १०२।।

रज्जु में सर्प का भ्रम होने पर व्यक्ति जैसे भयभीत हो उठता है, उसी तरह अपने गुणों का संमान होता देखकर जो व्यक्ति भयभीत हो उठता है, स्त्रियों को देखकर जो उसी तरह से भयभीत हो उठता है, जैसे वह स्त्री मानों कोई मुर्दा हो, वही वीरशैव है; अर्थात् अपने संमान की अपेक्षा न रखने वाला तथा स्त्रीभोग की लालसा से विरत शिवभक्त ही वीरशैव कहलाता है।।९८।। यह वीरशैव भाग्यवश जो कुछ मिल गया, उससे सन्तुष्ट रहता है। सभी प्रकार के भूख-प्यास, दुःख-सुख आदि के द्वन्द्वों को सहन करता हुआ सदा शिव के ध्यान में लगा रहता है और दृढचित्त, जितेन्द्रिय होकर वह तीनों कालों में मेरी पूजा करता है। पंचाक्षरी मन्त्र का जप करता हुआ, शिव के नामों का कीर्तन करता हुआ वह यह भावना करता है कि मैं शिव ही हूँ।।९९-१००।। यह सारा जीवमय जगत् चैतन्यमय भगवान् शिव का शरीर है, इष्टलिंग पंचाक्षर मन्त्रस्वरूप है और पंचाक्षर मन्त्र उस महान् परम तत्त्व का प्रतिनिधि है।।१०१।। हे ईशानि ! सारे जगत् को अपने में देखता हुआ और अपने को सारे जगत् में देखता हुआ शिवयोगी जगत् को और अपनी आत्मा को भी चिन्मय शिवस्वरूप ही देखे।।१०२।।

---

१. क्षरं-ख.। २. जगत्-कटि. ङ.। ३. पश्यन्-घ. ङ.।

तथाऽधिकारसंपन्नो वीरशैवमतं[१] श्रयेत् ।
दृढवैराग्यसंपन्नो गुरुत्वेन विधानतः ।।१०३।।
[1]यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।।१०४।।
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं हि कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं तत्त्वं कुर्याद् गुरोर्मुखात् ।।१०५।।
इति ते कथितं देवि मतभेदमनुत्तमम् ।
रहस्यं वीरशैवाख्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।१०६।।

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे [२]शिवाद्वैतसिद्धान्ते वीर-शैवदीक्षाप्रकरणे दीक्षानिरूपणं नाम सप्तमः पटलः समाप्तः[३] ।।७।।

ऐसा व्यक्ति वीरशैव मत को स्वीकार करने का अधिकार प्राप्त कर लेता है। तब उसे चाहिये कि वह दृढ़ वैराग्य से सम्पन्न होकर विधिपूर्वक गुरु से वीरशैव मत की दीक्षा ग्रहण करे।।१०३।। जो व्यक्ति शास्त्र की विधि को छोड़कर मनमाना आचरण करता है, वह न तो किसी सिद्धि को ही प्राप्त कर सकता है, न सुख को और न परम गति को ही।।१०४।। इसलिये क्या करना है, क्या नहीं करना, इसमें शास्त्र के प्रमाण को ही मानना चाहिये। शास्त्र में बताई गई पद्धति से, गुरु के मुख से तत्त्व के स्वरूप को जानकर तदनुसार ही व्यक्ति को आचरण करना चाहिये।।१०५।। हे देवि ! इस तरह से मैंने तुमको शैवमत के उत्तम भेदों का स्पष्ट निरूपण किया है। साथ ही वीरशैव मत के रहस्य को भी बताया है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहती हो।।१०६।।

इस प्रकार शिवाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक श्री पारमेश्वर तन्त्र के वीरशैव-दीक्षा प्रकरण में दीक्षा के स्वरूप का निरूपण करने वाला सातवाँ पटल समाप्त हुआ।।७।।

---

१. मताश्रये–क.। २. 'शिवा...रणे' नास्ति–ग. घ.। ३. नास्ति–क. ख. ङ.।

1. भगवद्गीता (१६.२३-२४) से तुलना कीजिये।

अष्टमः पटलः

वीरशैवलक्षणाचारनिरूपणम्

देव्युवाच

वीरशैवपदस्थवीरविषयकः प्रश्नः

चिन्मयानन्दविज्ञानगगनाय महात्मने ।
नमस्ते[१] शूलहस्ताय पशूनां पतये नमः ।।१।।
कथिता मतभेदास्ते सप्तसंख्यास्त्वयाऽनघ ।
वीरशैवमतं तत्र विशेषेणाभिवर्णितम् ।।२।।
वीरत्वं नाम भगवन् विज्ञेयं तु कथं मया[२] ।
प्रविश्य वीरशैवे तु किं वा कार्यं हि लिङ्गिनाम् ।।३।।
भक्त्या मताश्रयं कृत्वा वैराग्यशिथिलेन्द्रियः ।
पुनरागत्य विषयान् [1]कां गतिं शिव गच्छति ।।४।।
एतत्क्रमेण विश्वेश वद विस्तरतो मम ।
तारतम्येन यत्प्राप्यं प्रवृत्त्या गच्छतां हर ।।५।।

देवी का प्रश्न

चिन्मय, आनन्द और विज्ञान के सागर, महात्मा, शूलपाणि, पशुओं के पति, भगवान् शिव को मैं प्रणाम करती हूँ।।१।।

हे निष्पाप ! आपने शैवमत के सात भेदों को मुझे समझाया है। साथ ही विशेष रूप से वीरशैव मत का भी वर्णन किया है।।२।। अब मेरी यह जिज्ञासा है कि मैं वीरत्व को कैसे समझूँ। वीरशैव मत में प्रविष्ट होकर लिंगियों को क्या करना चाहिये।।३।। हे शिव ! भक्तिभाव से इस मत को स्वीकार करने के बाद वैराग्य के कारण इन्द्रियों के शिथिल हो जाने के उपरान्त भी यदि कोई पुनः विषयों की ओर प्रवृत्त हो जाता है, तो उसकी क्या गति होगी।।४।। हे विश्वेश ! विस्तार से ये सारी बातें आप मुझे क्रम वार समझाइये। हे सभी कष्टों का हरण करने वाले ! आप मुझे प्रवृत्ति मार्ग पर चलने वालों के प्राप्य फलों को भी तारतम्य से कहिये।।५।।

---

१. स्त्रिशूल–ग. घ. ङ.। २. इतः परम्–"तारतम्येन यत्प्राप्तं प्रवृत्त्या गच्छ वा हरात्" इत्यधिकः पाठः–घ., तदनावश्यकः, अग्रे (श्लो. ५) विद्यमानत्वात्।

1. भगवद्गीता (६.३७) में अर्जुन भी इसी तरह का प्रश्न करते हैं।

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
सरहस्यं सविस्तारं महिमानं मतस्य मे ।।६।।

वीरलक्षणम्

वीरत्वं नाम देवेशि यथा वीरो रणे भटः ।
तथा मते च सद्भक्त्या वीरो वैराग्यतो दृढात् ।।७।।
ईषणत्रयनिर्मुक्ता ज्ञानविज्ञानतत्पराः ।
दृढवैराग्यसंपन्ना वीरास्ते शिवयोगिनः ।।८।।
अन्धा ये लिङ्गिनो देवि परस्त्रीरूपदर्शने ।
युवानश्चापि पटवस्ते वीराः शिवयोगिनः ।।९।।
[1]ये मूका लिङ्गिनो देवि परदोषानुवादने ।
सर्वज्ञा अपि वा बालास्ते वीराः शिवयोगिनः ।।१०।।

शिव का उत्तर

हे देवि ! मुझसे जो कुछ तुम पूँछ रही हो, उसका उत्तर मैं दे रहा हूँ, उसे तुम सावधानी से सुनो। पूरे रहस्य और विस्तार के साथ मैं तुम्हें वीरशैव मत की महिमा को सुना रहा हूँ।।६।।

हे देवेशि ! जैसे वीर पुरुष युद्ध में पराक्रम दिखलाता है, उसी तरह से मेरे मत में सद्भक्ति और दृढ़ वैराग्य के साथ जो अटल भाव से स्थित रहता है, उसे ही वीर कहते हैं।।७।। पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा के नाम से उपनिषदों में वर्णित तीन एषणाओं (इच्छाओं) से मुक्त, ज्ञान और विज्ञान की उपासना में लगा हुआ, दृढ़ वैराग्य से सम्पन्न शिवयोगी वीर कहलाता है।।८।। हे देवि ! जो शिवयोगी युवावस्था में सभी इन्द्रियों के समर्थ रहने पर भी परस्त्री के रूप को देखने में अन्धे के समान हैं, वे वीर कहलाते हैं।।९।। हे देवि ! जो शिवयोगी दूसरों के दोषों का वर्णन करते समय मौन धारण कर लेते हैं, सर्वज्ञ होते हुए भी जो बालक के समान अज्ञानी बन जाते हैं, वे ही इष्टलिंगधारी वीर कहलाते हैं।।१०।। जो दूसरों की स्त्रियों के प्रति नपुंसक और

---

१. श्लोकद्वयं (१०-११) नास्ति–ग. घ.।

ये षण्ढाः परकान्तासु पङ्गवो येऽन्यपीडने ।
अजिह्वा ये रसास्वादे वीरास्ते शिवयोगिनः ।।११।।
अमानिनोऽदम्भिनश्चाहिंसाक्षान्त्यार्जवान्विताः ।
आचार्योपासनपरा वीरास्ते शिवयोगिनः ।।१२।।
शौचात्मनिग्रहस्थैर्यैरनहङ्कारशालिनः ।
सर्वत्र समचित्ता ये वीरास्ते शिवयोगिनः ।।१३।।
विशुद्धभक्ता मयि ये ये च वैकान्तसेविनः[१] ।
मम ध्यानरता नित्यं वीरास्ते शिवयोगिनः ।।१४।।

ब्रह्मचर्यमष्टलक्षणम्

[1]स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च ।।१५।।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ।।१६।।

दूसरों को पीड़ा पहुँचाने में बिना हाथ के (लूले) बन जाते हैं, रसास्वाद में जो बिना जीभ के बन जाते हैं, ऐसे ही शिवयोगी वीर कहलाते हैं, अर्थात् परस्त्री, परपीड़ा और जिह्वालौल्य से पराङ्मुख शिवयोगी ही वीर कहलाते हैं।।११।। अहंकार, दंभ और हिंसा का जिन्होंने परित्याग कर दिया है, क्षमा और सरलता से जो सम्पन्न हैं, आचार्य की उपासना में जो सदा लगे रहते हैं, ऐसे शिवयोगी वीर कहलाते हैं।।१२।। जो अहंकार से रहित हैं; शौच, आत्मनिग्रह और चित्त की स्थिरता के कारण जिनमें सर्वत्र समभाव स्थिर हो गया है, ऐसे शिवयोगी वीर कहलाते हैं।।१३।। जिनकी मेरे प्रति विशुद्ध भक्ति है, जो सदा एकान्त का सेवन करते हैं, जो सदा मेरे ध्यान में निमग्न रहते हैं, ऐसे शिवयोगी वीर कहलाते हैं।।१४।।

स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रियानिर्वृति विद्वानों की दृष्टि में ये आठ मैथुन के अंग माने जाते हैं। इनकी विपरीत अवस्था ही ब्रह्मचर्य के आठ अंगों में गिनी जाती है।।१५-१६।। इन आठों लक्षणों से युक्त ब्रह्मचर्य

---

१. योगिनः—कटि.।

1. दक्षस्मृति (७.३१-३२) में भी ब्रह्मचर्य ये लक्षण इसी रूप में मिलते हैं।

तदुक्तलक्षणं(ण)ब्रह्मचर्यव्रतपरा हि ये ।
योगिनो ये महात्मानस्ते वीराः शिवयोगिनः ।।१७।।
सत्यव्रतोक्तिनिरता अस्तेयधनतत्पराः ।
अपरिग्रहशीला ये वीरास्ते शिवयोगिनः ।।१८।।
[1]अद्वेष्टारोऽधिके स्वस्मात् स्वसमेष्वनसूयवः ।
अतिरस्कारिणो न्यूने वीरास्ते शिवयोगिनः ।।१९।।
स्पर्धासूयातिरस्कारवर्जिताः शान्तचेतसः ।
मम ध्यानपरा नित्यं वीरास्ते शिवयोगिनः ।।२०।।
धृत्वा काषायवसनं भिक्षाटनपराः सदा ।
शिवध्यानरताः[१] शुद्धा वीरशैवा हि ते शिवे ।।२१।।

वीरशैवव्रतनिर्देशः

वीरशैवव्रतस्थस्य नान्यत् कार्यं हि विद्यते ।
मम पूजां विना ध्यानं स्मरणं कीर्तनं विना ।।२२।।

व्रत का पालन करने वाले, योगाभ्यास में लगे हुए महात्मा शिवयोगी वीर कहलाते हैं।।१७।।

सत्य बोलने के लिये सदा तत्पर रहने वाले, दूसरे के धन की आकांक्षा न करने वाले, परिग्रह की वृत्ति से रहित शिवयोगी ही वीर कहलाते हैं।।१८।। अपने से अधिक गुण वाले के प्रति द्वेषभाव न रखने वाले, अपने समान स्थिति वाले के प्रति ईर्ष्या न करने वाले और अपने से कम गुण वाले का तिरस्कार न करने वाले शिवयोगी वीर कहलाते हैं।।२०।। हे शिवे ! काषाय वस्त्र धारण कर जो सदा भिक्षाटन में लगे रहते हैं, शिव के ध्यान में लगे हुए ऐसे शुद्ध शिवयोगी वीरशैव कहलाते हैं।।२१।।

वीरशैव व्रत में स्थित व्यक्ति के लिये शिव की पूजा, ध्यान, स्मरण और कीर्तन के सिवाय दूसरा कोई कार्य नहीं है।।२२।। हे देवि ! ऐसा वीरशैव निद्रा से जागने

---

१. पराः–ग. घ.।

1. "अकृत्वेर्ष्यां विशिष्टेषु हीनाननवमत्य च। अगत्वा सदृशैः स्पर्धां त्वं लोके श्रेष्ठतां गतः।।" इति मातृचेटश्लोकेन तुलनीयम्।

यदोत्तिष्ठति स्वापेन[1] स्मरन्नेव गुरुं शिवम् ।
उत्थाय चिन्तयेद्देवि गुरुं मां लिङ्गरूपिणम् ।।२३।।
विसृष्टपूर्ववसनः शुद्धवस्त्रधरः शुचिः ।
प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च धृतरुद्राक्षभूतिकः ।।२४।।

भस्मधारणम्

भस्म शुद्धं समादाय मृदु वा यदपेक्षितम् ।
पात्रमध्ये विनिक्षिप्याच्छादयेत् पुनरन्यतः ।।२५।।
वामहस्ते विनिक्षिप्याच्छाद्य दक्षिणपाणिना ।
शैवं पञ्चाक्षरं मन्त्रमष्टोत्तरशतं जपेत् ।।२६।।
ततः शुद्धजलं हस्तेनाऽऽच्छाद्य प्रजपन् मनुम् ।
सह तारेण मूलेन स्नापयेद् भस्मनाम्भसा ।।२७।।
नमो भवाय रुद्राय शर्वायोग्राय शम्भवे ।
नमो विभूतिरूपाय सिद्धरूपाय ते नमः ।।२८।।

पर गुरु का और शिव का स्मरण करते हुए उठे और उठने के बाद भी लिंगरूपी शिव का और गुरु का ध्यान करे।।२३।। वह सोते समय पहने हुए वस्त्रों को बदल दे, दूसरे शुद्ध वस्त्र धारण करे, हाथों और पैरों को धोकर पवित्र हो जाय और तब भस्म और रुद्राक्ष धारण करे।।२४।।

भस्म धारण करते समय शुद्ध और नरम भस्म की जितनी मात्रा अपेक्षित है, उतनी एक पात्र में रखकर उसे दूसरे पात्र से ढँक देना चाहिये।।२५।। बाँये हाथ में उसमें से निकाल कर भस्म रखे और उसे दाहिने हाथ से ढँक दे। तब शैव पंचाक्षर मन्त्र का १०८ बार जप करे।।२६।। इसके बाद शुद्ध जल हाथ में लेकर उसे भी पूर्ववत् ढँक कर पंचाक्षर मन्त्र का जप करे। तब प्रणव सहित मूल मन्त्र का जप करते हुए उस भस्ममिश्रित जल को अपने सारे शरीर पर छिड़क ले, इसे ही भस्मस्नान कहा जाता है।।२७।। भवरूपी, रुद्ररूपी, शर्वरूपी, उग्ररूपी, शंभु को मैं प्रणाम करता हूँ। विभूतिस्वरूप सिद्धरूप शिव को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ। इन मन्त्रों से जितनी अपेक्षा है, उतनी भस्म लेकर प्रत्येक अंग में शिर से लेकर पैर तक उस

---

१. निद्रायाः–ख. घ. ङ.।

[1]इति मन्त्रेण संमर्द्य सकृद् यावदपेक्षितम् ।
प्रत्यङ्गमेतैर्मनुभिर्धारयेदाशिरः पदम् ।। २९।।
मूर्धनि प्रणवेनादौ भाले पञ्चाक्षरेण वै ।
सद्योजातेनाक्षियुगे वामदेवेन कर्णयोः ।। ३०।।
कण्ठेऽघोरेण मन्त्रेणांसयोस्तत्पुरुषेण तु[2] ।
वक्षसीशानमनुना सर्वैर्नाभावथोदरे ।। ३१।।
नमः शिवाय रुद्राय भवायोरुद्वये शिवे ।
नम उग्राय कालाय न्यसेज्जङ्घाद्वये तथा ।। ३२।।
नमः शिवाय शान्ताय पादयोरुपरि न्यसेत् ।
पादाङ्गुलीषु दशसु मन्त्रैरेतैर्विलेपयेत् ।। ३३।।
वामपादकनिष्ठादिक्रमाद् भस्म विलेपयेत् ।
दक्षपादकनिष्ठान्तं प्रादक्षिण्येन सुन्दरि ।। ३४।।
नमस्ते ऊर्ध्वलिङ्गाय ऊर्ध्वलिङ्गाय ते नमः ।
नमो हिरण्यलिङ्गाय हिरण्यलिङ्गाय ते नमः ।। ३५।।

भस्म को लगावे।।२८-२९।। सबसे पहले प्रणव मन्त्र से शिर पर, पंचाक्षर मन्त्र से ललाट पर, सद्योजात मन्त्र से दोनों आँखों पर और वामदेव मन्त्र से दोनों कानों पर भस्म को लगावे।।३०।। अघोर मन्त्र से कण्ठ पर, तत्पुरुष मन्त्र से दोनों कन्धों पर, ईशान मन्त्र से वक्षस्थल पर और सभी पंचब्रह्म मन्त्रों का एक साथ उच्चारण करते हुए उदर और नाभि पर भस्म लगावे।।३१।। 'नमः शिवाय रुद्राय च' मन्त्र से और 'नमो भवाय' इस मन्त्र से जंघाओं पर तथा 'नम उग्राय', 'नमः कालाय' इन दो मन्त्रों से पैर की पिण्डलियों पर भस्म लगावे।।३२।। 'नमः शिवाय, नमः शान्ताय' इन दो मन्त्रों से पैरों के ऊपर भस्म लगावे और फिर इन्हीं सब मन्त्रों से पैरों की दसों अंगुलियों पर भस्मलेपन करे।।३३।। हे सुन्दरि ! वाम पाद की कनिष्ठा अंगुलि से लेकर दक्षिण पाद की कनिष्ठा अंगुली तक क्रमशः आगे के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए भस्म लगावे।।३४।। ऊर्ध्वलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ, पुनः ऊर्ध्वलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ। हिरण्यलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ, पुनः हिरण्यलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।३५।। सुवर्णलिंग को मैं

---

१. श्लोकयोः (२९-३०) विपर्ययः–ग. घ.। २. वै–ख.।

नमः सुवर्णलिङ्गाय सुवर्णलिङ्गाय ते नमः ।
नमस्ते दिव्यलिङ्गाय [१]नमो दिव्याय ते नमः ।। ३६ ।।
नमो भवाय लिङ्गाय भवलिङ्गाय ते नमः ।
नमः शिवाय लिङ्गाय शिवलिङ्गाय ते नमः ।। ३७ ।।
[1]अग्निमन्त्रद्वयेनाथ गुल्फयोर्विन्यसेत् क्रमात् ।
विन्यसेद् दक्षिणे बाहौ भुजे चापि च कूर्परे ।। ३८ ।।
मणिबन्धे तथा वामबाहौ च भुजकूर्परे ।
मणिबन्धक्रमेणैतैर्मन्त्रैर्भस्म तु[२] धारयेत् ।। ३९ ।।
ज्वालाय [३]ज्वाललिङ्गाय नम आत्माय ते नमः ।
आत्मलिङ्गाय च नमो नमस्ते परमाय च ।। ४० ।।
नमः परमलिङ्गाय शिवाय [४]त्वरकन्धरे ।
नमस्त्रिशूलिने[५] पृष्ठे महादेवाय पार्श्वयोः ।। ४१ ।।
नमस्ते शम्भवे तुभ्यमलिकाक्षाय कक्षयोः ।
सह तारेण मूलेन सर्वाङ्गे भस्म लेपयेत् ।। ४२ ।।

प्रणाम करता हूँ, पुनः सुवर्णलिंग को प्रणाम करता हूँ। दिव्यलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ, पुनः दिव्यलिंग को प्रणाम करता हूँ। भवलिंग को प्रणाम, पुनः भवलिंग को प्रणाम। शिवलिंग को प्रणाम पुनः शिवलिंग को प्रणाम।।३७।। अग्नि इत्यादि दो मन्त्रों से दोनों टखनों पर भस्म लगावे। इसके बाद दक्षिण बाहु, भुजा, कोहनी और मणिबन्ध पर, इसी तरह वाम बाहु, भुजा, कोहनी और मणिबन्ध पर क्रमशः आगे पढ़े गये मन्त्रों से भस्म धारण करे।।३८-३९।। ज्वालाय नमः, ज्वाललिङ्गाय नमः, आत्मने नमः, आत्मलिङ्गाय नमः।।४०।। परमलिङ्गाय नमः, शिवाय नमः— इन मन्त्रों से ग्रीवा की रेखाओं पर, त्रिशूलिने नमः से पीठ पर और महादेवाय नमः से दोनों पसलियों पर भस्म लगावे।।४१।। भ्रमर के समान नेत्र वाले शंभु को मैं प्रणाम करता हूँ, इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए दोनों कांखों में भस्म लगावे और प्रणव के साथ मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए पूरे शरीर पर भस्मलेपन करे।।४२।।

---

१. दिव्यलिङ्गाय-ख.। २. सु-घ. ङ.। ३. ज्वल-घ. ङ.। ४. पर-घ. ङ.। ५. लिङ्गिने-घ.।

1. "अग्निरिति भस्म। वायुरिति भस्म। जलमिति भस्म। स्थलमिति भस्म। व्योम इति भस्म। सर्वं वा इदं भस्म" (भस्मजाबालोपनिषद् १.३)। ये भस्मधारण के मन्त्र हैं।

सभस्मकरक्षालननिषेधः

न क्षालयेत् करौ धृत्वा शरीरे भस्म सुन्दरि ।
निपतेत् तत्पयोबिन्दुरेनं पातयति ध्रुवम् ।।४३।।

पञ्चाक्षरमन्त्रजपः

ततो गुरूक्तमार्गेण मम पञ्चाक्षरं जपेत् ।
सहस्रं त्रिशतं वापि शतमष्टोत्तरं तु वा ।।४४।।
जप्त्वा तदनु देवेशि स्तुवीतानेन नित्यशः ।
भावयन् शिवलिङ्गात्मा(त्म)गुरूणामेकरूपताम् ।।४५।।

शिवस्तुतिः

नमः शिवाय गुरवे गुरवे शिवरूपिणे ।
शिवलिङ्गाय गुरवे शिवाय गुरवे नमः ।।४६।।
सद्योजाताय सत्याय सत्यारामाय ते नमः ।
नमो भवोद्भवायाथ शिवाय गुरवे नमः ।।४७।।

हे सुन्दरि ! शरीर पर भस्म धारण कर लेने के बाद हाथ नहीं धोना चाहिये। भस्म लगे हुए हाथों को धोने पर जल के जो बिन्दु नीचे गिरते हैं, इससे उसका निश्चय ही पतन हो जाता है।।४३।।

इसके बाद गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से मेरे पंचाक्षर मन्त्र का एक हजार बार, तीन सौ बार अथवा १०८ बार जप करे।।४४।। हे देवेशि ! जप करने के बाद आगे बताये स्तोत्र से इष्टलिंगधारी [1]शिवलिंग, आत्मा और गुरु की एकरूपता की भावना करे, अर्थात् इन तीनों को एक ही समझे।।४५।।

मैं गुरुरूपी शिव को और शिवरूपी गुरु को प्रणाम करता हूँ। गुरुरूपी शिवलिंग को और शिवलिंगरूपी गुरु को प्रणाम करता हूँ।।४६।। सद्योजात, सत्य स्वरूप और सत्य में रमने वाले शिव को मैं प्रणाम करता हूँ। सारे संसार को उत्पन्न करने वाले शिवस्वरूप गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।।४७।। अष्टमूर्तिस्वरूप, अड़तीस कलाओं से

---

1. योगिनीहृदय निगर्भार्थ (२.४८) और कौलिकार्थ (२.५१-५२) के निरूपण के प्रसंग में इसी प्रकार की भावना निर्दिष्ट है।

नमोऽष्टमूर्तये तुभ्यमष्टात्रिंशत्कलात्मने ।
नमस्ते वामदेवाय शिवाय गुरवे नमः ।।४८।।
नमो ज्येष्ठाय [१]श्रेष्ठाय कालाय कलिवैरिणे ।
नमो बलाय देवाय शिवाय गुरवे नमः ।।४९।।
नमो बलप्रमथिने मनोन्मनाय ते नमः ।
नमस्तेऽघोररूपाय शिवाय गुरवे नमः ।।५०।।
सर्वेभ्यः शर्व शर्वेभ्यो घोरघोरतराय च ।
नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः शिवाय गुरवे नमः ।।५१।।
नमस्तत्पुरुषायाथ महादेवाय ते नमः ।
नमस्ते वीरशैवाय शिवाय गुरवे नमः ।।५२।।
वीरशैवमतेशाय महावीराय शम्भवे ।
नमस्ते वीरशैवाय शिवाय गुरवे नमः ।।५३।।
ईशानाय नमस्तुभ्यमीश्वराय नमोऽस्तु ते ।
मीढुष्टमाय महते शिवाय गुरवे नमः ।।५४।।

सम्पन्न तुमको मैं प्रणाम करता हूँ। वामदेव, शिवस्वरूप गुरु को प्रणाम।।४८।। ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, काल, कलि के बैरी, बलसम्पन्न देव शिव को और गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।।४९।। बल नामक असुर के नाशक, मन को [1]उन्मनी दशा में पहुँचा देने वाले तुमको मैं प्रणाम करता हूँ। अघोर स्वरूप शिव को और गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।।५०।। हे शर्व ! सभी प्रकार के शर्वों (रुद्रों) को, उनके घोर और घोरतर स्वरूपों को, रौद्र स्वरूपों को मैं शिव और गुरु के अभिन्न रूपों में नमन करता हूँ।।५१।। तत्पुरुष स्वरूप महादेव को मैं प्रणाम करता हूँ। वीरशैव मतस्वरूप शिवस्वरूप गुरु को मैं नमन करता हूँ।।५२।। वीरशैव मत के स्वामी महावीर शंभु को मैं प्रणाम करता हूँ। वीरशैवों के पूज्य शिवस्वरूप गुरु का मैं नमन करता हूँ।।५३।। मैं ईशानस्वरूप तुमको प्रणाम करता हूँ, ईश्वरस्वरूप तुमको नमस्कार करता हूँ। [2]मीढुष्टम महान् शिव स्वरूप गुरु को प्रणाम करता हूँ।।५४।। कालकूट नामक विष का पान करने वाले, कुत्सित कर्म करने वालों

---

१. कालाय–क.।

1. अमनस्क आदि योगशास्त्र के ग्रन्थों में मन की इस स्थिति का वर्णन है।
2. शुक्लयजुर्वेद के रुद्राध्याय (१६.५१) में प्रयुक्त इस शब्द का अर्थ सभी प्रकार की कामनाओं को प्रकृष्ट रूप से देने वाला है।

सुभुक्तकालकूटाय कद्रुद्राय प्रचेतसे ।
पराय फणिभूषाय शिवाय गुरवे नमः ।।५५।।
गङ्गाधराय गौराय गौरीनाथाय विद्महे ।
धीमहीशाय देवाय तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।।५६।।
शिवलिङ्गाय गुरवे गुरवे शिवरूपिणे ।
लिङ्गप्राणैकरूपाय प्राणलिङ्गाय ते नमः ।।५७।।
एतैर्द्वादशभिः श्लोकैस्त्रिकालं प्रत्यहं शिवे ।
पूजयित्वा स्तुवेन्मां यो लिङ्गरूपिणमव्ययम् ।।५८।।
नित्यं भावयतां मर्त्यो नराणां चर्मचक्षुषाम् ।
धृत्वा मानुषरूपं[1] तु शिवोऽहं परमार्थतः ।।५९।।
यस्मिन् दिने पठेत् स्तोत्रमिदं भक्त्योषसि प्रिये ।
तदेव सुदिनं तस्य नान्यथा परमार्थतः ।।६०।।

उषसीश्वरपूजनम्

समाप्योषसिकं कर्म प्रयतो निर्गमेद् बहिः ।
यद्यस्ति भक्तिः शक्तिश्च पूजयेदुषसीश्वरम् ।।६१।।

को दण्ड देने वाले वरुणस्वरूप आपको मैं प्रणाम करता हूँ। सर्वश्रेष्ठ सर्पभूषण शिवस्वरूप गुरु को प्रणाम।।५५।। गंगा को धारण करने वाले, गौर वर्ण पार्वतीपति को हम जानते हैं, उस सबके स्वामी का हम ध्यान करते हैं, यह रुद्र देव हमें सत्कार्य की ओर प्रवृत्त करे।।५६।। शिवलिंगस्वरूप गुरु को, शिवरूपधारी गुरु को, लिंग और प्राण के समष्टिस्वरूप प्राणलिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।।५७।। हे शिवे ! इन बारह श्लोकों से तीनों कालों में प्रतिदिन मेरी पूजा कर जो व्यक्ति लिंगरूपधारी कभी नष्ट न होने वाले मेरे स्वरूप की स्तुति करता है, मेरी नित्य उपासना करने वाले अज्ञानी पुरुषों के बीच में परमार्थतः उस मनुष्य का रूप धारण कर मैं स्वयं ही रहता हूँ।।५८-५९।। हे प्रिये ! कोई मनुष्य जिस दिन प्रातःकाल इस स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वही उसके लिये सुदिन है, अन्यथा वास्तव में उसका दिन व्यर्थ जाता है।।६०।।

प्रातःकाल के सारे नित्य कर्म को पूरा करने के बाद ही व्यक्ति को पवित्र मन से गृह के बाहर निकलना चाहिये। यदि उसकी ईश्वर में भक्ति है, तो अपनी शक्ति के अनुसार उसे प्रातःकाल भगवान् शिव की आराधना भी करनी चाहिये।।६१।।

१. रूपेण-ग. घ. ङ.।

यावल्लब्धेन देवेशि पत्रपुष्पाक्षतादिभिः ।
संपाद्य पूर्वदिवसे सर्वदोषसि पूजयेत् ।।६२।।
नित्यं पूजोषसि शिवे मध्याह्ने सायमेव च ।
सायं प्रातरशक्तौ तु पूजयेत् सर्वदोषसि ।।६३।।
शक्तावुषस्यर्चनायामर्चयेदन्यथा शिवे ।
सन्ध्यायामर्चयेन्नित्यं यथारुचि तथा भवेत् ।।६४।।
नित्यं त्रिकालतो नित्यं मध्याह्नेऽर्चनमैच्छिकम् ।
नित्यं प्रातश्च सायं च पूजा नित्यैकदा शिवे ।।६५।।
अशक्तश्चासहायश्च यथेच्छं पूजयेत् सदा ।
शक्तोऽपि यो न कुरुते रौरवे नरके वसेत् ।।६६।।
सत्यामपि च सामग्र्यां शक्तावपि ममार्चने ।
न पूजयेद् यः शाठ्येन कामुको विषयातुरः ।।६७।।
कर्मज्ञानोभयभ्रष्टो निमग्नो दुःखसागरे ।
रौरवे नरके घोरे वसेदा चन्द्रतारकम् ।।६८।।

हे देवेशि ! उसे एक दिन पहले ही जो कुछ पत्र, पुष्प, अक्षत आदि अनायास मिल जाते हैं, उन्हें इकट्ठा कर प्रातःकाल ईश्वर का पूजन करना चाहिये।।६२।। हे शिवे ! प्रातःकाल, मध्याह्न वेला में और सायंकाल भी उसे प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये। सायंकाल और मध्याह्न में पूजा करने में असमर्थ व्यक्ति प्रातःकाल ही पूजा कर ले।।६३।। हे शिवे ! यदि कोई व्यक्ति प्रातःकाल पूजा करने में असमर्थ है, तो वह नित्य सायंकाल पूजा करे। अपनी रुचि के अनुसार कोई भी पक्ष ग्रहण किया जा सकता है।।६४।। हे शिवे ! प्रतिदिन तीनों कालों में अथवा नित्य मध्याह्न काल में पूजा भी अपनी इच्छा के अनुसार की जा सकती है। इसी तरह से प्रातःकाल अथवा सायंकाल में भी नित्य पूजा एक बार की जा सकती है।।६५।। जो व्यक्ति अशक्त अथवा असहाय है, वह अपनी इच्छा के अनुसार नित्य पूजा कर सकता है। समर्थ होने पर भी पूजा न करने वाला व्यक्ति रौरव नरक में जाता है।।६६।। सामग्री के उपलब्ध रहते हुए भी और मेरी पूजा की सामर्थ्य के रहते हुए भी जो व्यक्ति बहाना बनाकर मेरी पूजा नहीं करता, ऐसा कामुक, सांसारिक विषयों में फँसा हुआ व्यक्ति कर्म और ज्ञान दोनों से भ्रष्ट होकर सदा दुःख के सागर में डूबा रहता है, वह जब तक चन्द्रमा और नक्षत्रों की आकाश में स्थिति है, तब तक घोर रौरव नरक में निवास करता है।।६७-६८।।

प्राणिषु श्रेष्ठत्वक्रमः

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठा बुद्धिमन्तस्ततोऽधिकाः ।
ततस्ततोऽपि च बृहद् [1]बृहदाकृतयो जनाः[2] ।।६९।।
सर्वोत्तमा हि मनुजास्तत्र विप्रा महोत्तमाः ।
[3]वेदिनः कर्मकर्त्तारस्तदर्थज्ञा विशेषतः ।।७०।।
ततो वेदान्तसारज्ञास्ततः संन्यासिनः पराः ।
ततः पाशुपताः श्रेष्ठा लिङ्गिनस्तु ततोऽधिकाः ।।७१।।
ततोऽधिका महाश्रेष्ठा वीरमाहेश्वराः शिवे ।
न तेभ्यो ह्यधिकः कश्चिद् वीरशैवाश्रयात् परः[4] ।।७२।।
तावन्महिमसंपन्नो वीरशैवः परः शिवः ।
साक्षान्मद्रूपतामेत्य वीरशैवमती[5]भवेत् ।।७३।।

वीरशैवचर्या

निगृहीतेन्द्रियग्रामः सुविविक्तसमाश्रयः ।
यदि स्याद् ध्याननिरतः स तरेद् विपदं लघु ।।७४।।

पांचभौतिक सृष्टि में प्राणी श्रेष्ठ हैं, इन प्राणियों में भी बुद्धिमान् प्राणी श्रेष्ठ हैं और पुनः इनमें भी आकार के हिसाब से बढ़ते जाने वाले प्राणी श्रेष्ठ हैं।।६९।। इन सबमें मनुष्य सर्वश्रेष्ठ हैं और इनमें भी सबसे उत्तम ब्राह्मण हैं। इनमें भी ज्ञानी, कर्मी और अर्थज्ञ क्रमशः विशेष रूप से श्रेष्ठ माने जाते हैं।।७०।। इनसे भी बढ़कर वेदान्त के सार को जानने वाले हैं। संन्यासी इनसे भी श्रेष्ठ हैं। इनकी अपेक्षा पाशुपत श्रेष्ठ हैं और इष्टलिंग को धारण करने वाले इनसे भी श्रेष्ठ है।।७१।। हे शिवे ! इनसे भी अधिक महाश्रेष्ठ वीरमाहेश्वर हैं। वीरशैव मतावलम्बियों में वीरमहाशैवों (जंगमों) से अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है।।७२।। वीरशैव मत को स्वीकार करने वाला तो साक्षात् मेरा ही स्वरूप बन जाता है। वह वीरशैव इतनी महिमा से सम्पन्न हो जाता है कि अन्ततः वह परम शिव ही बन जाता है।।७३।।

जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है और जो एकान्तवास करता हुआ मेरे ध्यान में निमग्न रहता है, वह शिवभक्त अनायास नाना प्रकार के संकटों से मुक्त हो जाता है।।७४।। यदि शिवभक्त का वैराग्य दृढ़ नहीं हुआ है, वह रागयुक्त और

---

१. बहुधा–घ. ङ.। २. पुनः–घ. ङ.। ३. "ततः....वेदिनः....ततो वे....ततोऽधि" इत्ययं पङ्क्तीनां क्रमः–ग. घ.। ४. शैवमतं भवेत्–घ. ङ.। ५. मतं–ख. ग. घ.।

स यद्यदृढवैराग्यः सरागी विषयातुरः ।
स भूयो जायत इति न दुःखाय सुखाय हि ॥७५॥
न यावद् दृढवैराग्यं न यावद् विषयास्पृहा ।
न तावल्लभते मुक्तिं विधूतविषयो यतः ॥७६॥
यदा विनाशः प्रारब्धकर्मणः फलभोगतः ।
सञ्चितस्य स्वविज्ञानमसंश्लेषात् तदैष्यतः ॥७७॥
सवासनं महादेवि भक्तस्य शिवलिङ्गिनः ।
वीरशैवमतस्थस्य मुक्तिः करतले स्थिता ॥७८॥
द्वैविध्यं व्यवहारस्य यदा नाशः सवासनम् ।
यदेवाखण्डविज्ञानं वीरशैवस्तदा भवेत् ॥७९॥
अनालक्षितलोको यः सर्वदा[1]ऽन्नमिताशनः ।
अजागरूकश्चास्वप्नो वीरशैवः[2] स उच्यते ॥८०॥

विषयभोग के लिये आतुर है, तो ऐसे व्यक्ति को पुनः जन्म लेना पड़ता है। इसका यह जन्म दुःखदायक न होकर सुखमय होता है, अर्थात् इस जन्म में वह प्राचीन दोषों से मुक्त होकर मुक्ति-मार्ग की ओर अग्रसर होता है। इस तरह से यह दुःखमय जीवन भी उसके लिये सुखमय हो जाता है।।७५।। जब तक दृढ़ वैराग्य उत्पन्न नहीं होता, जब तक विषयों के प्रति स्पृहा समाप्त नहीं होती, तब तक वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि विषयोपभोग को छोड़े बिना मुक्ति कैसे मिल सकती है।।७६।। जब फलभोग के द्वारा प्रारब्ध कर्म का नाश हो जाता है और संचित कर्म का नाश अपने स्वरूप के ज्ञान के कारण हो जाता है, फल की वासना के त्याग के कारण जिसका भविष्य कर्म से संसर्ग नहीं होने पाता, तब हे महादेवि ! ऐसे वीरशैव मतावलम्बी इष्टलिंगधारी शिवभक्त के हाथ में मुक्ति अनायास आ जाती है, अर्थात् वह इसी जन्म में मुक्त हो जाता है।।७७-७८।। जिस भक्त का जाग्रत् और स्वप्नावस्था का सारा व्यवहार वासनाओं के साथ नष्ट हो जाता है, तभी उसमें अखण्ड परमार्थ ज्ञान की उत्पत्ति होती है, तभी वह वास्तव में वीरशैव कहलाता है।।७९।। लोक-व्यवहार में जो लिप्त नहीं होता, सदा स्वच्छ और परिमित भोजन करता है, जो [1]जाग्रत् और स्वप्न इन दोनों अवस्थाओं से अतीत हो जाता है, वही वास्तव में वीरशैव कहलाता है।।८०।। जो साधक

---

१. दान्य-क. ख.। २. शैवस्तथा भवेत्-घ.।

1. "निद्रादौ जागरस्यान्ते" इत्यादि वचनों में इस अवस्था का वर्णन मिलता है। देखिये— विज्ञानभैरव, हिन्दी अनुवाद, पृ. ८५

यदि गच्छेत् क्रमेणैव सोऽनायासेन मुच्यते ।
आरुह्य यः पतेद् भूयो व्यवधानेन मुच्यते ।।८१।।
[1]नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं देवि गच्छति ।
धृत्वा लिङ्गं मम शिवे कथं यास्यति रौरवम् ।।८२।।
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
गृहेषु लिङ्गिनामेव व्रतभ्रष्टोऽभिजायते ।।८३।।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।।८४।।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ गिरिनन्दिनि ।
क्रमेण कुरुते वीरशैवे वीरसमाश्रयम्[१] ।।८५।।
मतस्य मम जिज्ञासोश्चरमं जन्म तस्य तत् ।
स्वरूपं यत्नतः प्राप्य याति किं नो पदं मम ।।८६।।

सोपान पद्धति से क्रमशः ऊपर चढ़ता है, उसकी अनायास मुक्ति हो जाती है। इसके विपरीत जो एकाएक ऊपर चढ़ कर नीचे गिर पड़ता है, उसकी मुक्ति विलम्ब से होती है।।८१।। हे देवि ! यह निश्चित है कि कल्याण मार्ग पर चलने वाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं करता। हे शिवे ! इष्टलिंग को धारण कर लेने के बाद कोई रौरव नरक में कैसे गिर सकता है।।८२।। ऐसा व्रतभ्रष्ट व्यक्ति तो पुण्यवानों के द्वारा प्राप्य पुण्य-लोकों में अनेकों वर्षों तक निवास करने के उपरान्त इष्टलिंगधारियों के घर में जन्म लेता है।।८३।। लोक में ऐसा जन्म अत्यन्त दुर्लभ माना जाता है। इस जन्म में पूर्व जन्म के शरीर के उसके सारे संस्कार उद्बुद्ध हो जाते हैं, वह अपने पूर्व जन्म की बुद्धि से परिष्कृत हो ज्ञान से सम्पन्न हो जाता है।।८४।। हे गिरिनन्दिनि ! पूर्व जन्म के इन संस्कारों के कारण ही वह पुनः मुक्ति की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है। अन्ततः वह क्रमशः वीरशैव मत के अनुसार वीरत्व को प्राप्त करता है।।८५।। मेरे वीरशैव मत को स्वीकार करने वाले शिवभक्त का यह अन्तिम जन्म होता है। ऐसा व्यक्ति यत्नपूर्वक मेरे स्वरूप को प्राप्त कर शिवपद को कैसे प्राप्त नहीं करेगा? अर्थात् अवश्य प्राप्त करेगा।।८६।। अपने पूर्व जन्म के अभ्यास के कारण वह पराधीन सा होकर इस

---

१. श्रये-घ.।
1. भगवद्गीता (६.४०-४६) से इस प्रकरण की तुलना कीजिये।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति शिवं पदम्।।८७।।
तपस्विभ्योऽधिको लिङ्गी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
[1]कर्मिभ्यश्चाधिको योगी[2] शिवलिङ्गी विशिष्यते।।८८।।

पूजाकालः

उषःसूर्योदयात् पूर्वं मुहूर्तावध्यनेहसि।
पूजाकालः स विज्ञेयः शिवत्वप्राप्तिकारकः।।८९।।
अथवानन्तरं भानोरुदयादर्चयेच्छिवम्।
मध्याह्नेऽपि तथा सायं कृत्वा नक्षत्रदर्शनम्।।९०।।

जङ्गमभैक्ष्यनियमाः

निर्वर्त्यौषसिकीं पूजां जपस्तोत्रादिकं प्रिये[3]।
[4]निर्गमेदटितुं भैक्ष्यं प्रणम्य गुरुमादितः।।९१।।

जन्म में भगवदुपासना की ओर खिंचा चला जाता है और अपनी अनेक जन्मों की तपस्या के कारण अन्ततः शिवपद को प्राप्त करता है।।८७।। यह इष्टलिंगधारी तपस्वियों में श्रेष्ठ है, ज्ञानियों में भी श्रेष्ठ माना गया है। यह कर्म का विधिवत् अनुष्ठान करने वालों से और योगियों से भी विशिष्ट माना जाता है।।८८।।

प्रतिदिन प्रातः सूर्योदय से पहले एक मुहूर्त का काल, अर्थात् सूर्योदय से पहले के तीन घंटे का समय उषाकाल के नाम से प्रसिद्ध है। शिवत्व की प्राप्ति कराने वाला शिवपूजा का यही उषाकाल उत्तम काल होता है।।८९।। अथवा सूर्य के उदय के बाद भी अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार पूजा कर सकता है। मध्याह्न वेला में अथवा सायंकाल नक्षत्र-दर्शन के बाद भी शिव की पूजा की जा सकती है।।९०।।

हे प्रिये ! प्रातःकाल की पूजा को और मन्त्रजप, स्तोत्रपाठ आदि को करने के उपरान्त यह जंगम शिवयोगी प्रथमतः गुरु को प्रणाम कर तब भिक्षा-प्राप्ति के लिये निकले।।९१।। भिक्षाटन की यदि इच्छा है, तभी वह इसके लिये निकले। भिक्षाटन

---

१. "कर्मिभ्यश्चाधिको योगी शिवत्वप्राप्तिकारकः। अथवा...पूजाकालः स विज्ञेयः शिवलिङ्गी विशिष्यते। उषः ...... मध्याह्ने" इत्ययं पङ्क्तीनां क्रमः–ग. घ.। २. योगिभ्यः–क., श्चापि योगी यः–घ.। ३. शिवे–ख.। ४. निर्गच्छे–ख.।

यदि भिक्षाटनेच्छाऽस्ते तदा भिक्षाटनं चरेत् ।
न कर्तव्यस्त्वनियमो साधनं ज्ञानमेव हि ।।९२।।
पर्यटेल्लिङ्गिनामेव भक्तानां शिवयोगिनाम् ।
यावदिच्छन् गृहद्वारं पक्वं वाऽपक्वमेव वा ।।९३।।
निबद्धपादघण्टो वा घण्टो वा जयघण्टिकः ।
शङ्खश्च शृङ्गिनादो वा दण्डघण्टोऽपि पर्यटन् ।।९४।।
रुद्राक्षाणां च मालाभिः कन्थाकम्बलभूषितः ।
विज्ञापयित्वा गृहिणः कयांचिच्छब्दसंज्ञया ।।९५।।

गृहिणा जङ्गमसत्कारो विधेयः

भिक्षेत्याज्ञापयेल्लिङ्गी गुरुधर्ममनुस्मरन् ।
गृही वा गृहिणी वापि मत्वा जङ्गममानयेत् ।।९६।।
शिवबुद्ध्याऽर्चयित्वा तं संतृप्तं प्रेषयेत् पुनः ।
यद्यपक्वं समानीतं पक्वं कृत्वाऽर्पयेन्मम ।।९७।।

करने का कोई नियम नहीं है। सभी आवश्यक कर्मों का पालन करते हुए जिस भी साधन से ज्ञान की प्राप्ति हो, वह उसे करना चाहिये।।९२।। भिक्षाटन के लिये उसे शिवभक्त, इष्टलिंगधारी शिवयोगियों के घर पर ही जाना चाहिये। जितनी भिक्षा अपेक्षित हो, उतने घरों पर जाकर उसे पक्व अथवा अपक्व भिक्षा लेनी चाहिये।।९३।। भिक्षाटन करने वाला यह जंगम अपने पैरों में घंटिया बाँध ले अथवा हाथ में घंटा और जयघंटा (जाघटा) ले ले। शंख अथवा सींग बजाता हुआ चले अथवा चलते समय हाथ के दण्ड में बँधी हुई घंटी को ही बजाता हुआ चले।।९४।। वह रुद्राक्ष की मालाओं को पहने और कन्था एवं कम्बल को अपने शरीर पर ओढ़े रहे। वह भिक्षा देने के लिये गृहस्थों को सांकेतिक शब्दों की सहायता से प्रेरित करे।।९५।।

वह शिवयोगी जब भिक्षा के लिये घर पर आकर याचना करे, तब घर पर गृहस्वामी हो या गृहिणी हो, उसे गुरुधर्म का स्मरण कर उस जंगम को प्रणाम कर घर के भीतर ले आना चाहिये।।९६।। उस शिवयोगी को शिव मानकर उसका पूजन करे और उसे भोजन आदि से तृप्त कर तब उसको जाने देना चाहिये। वह यदि अपक्व अन्न अपने साथ लाता है, तो उसे पका कर शिवार्पित करे।।९७।। यदि वह पक्व अन्न अपने साथ

यदि स्यात् पक्वमानीतमश्नीयादर्पितं मम ।
न चैकभुक्तिनियमो नोपवासादि नो व्रतम् ।। ९८ ।।
त्रिकालमर्चयेल्लिङ्गं विहरेत यथासुखम् ।
विषयेन्द्रियसंरोधं नैरन्तर्येण यावता ।। ९९ ।।
यत्नेन यतते लिङ्गी तावल्लघु सुखं व्रजेत् ।
यथैव गच्छन् मार्गेषु शीतवातातपादिकम् ।। १०० ।।
विषह्य लघु देवेशि स्वपदं चाधिगच्छति ।
न स्त्रीषु नैवानर्हेषु नाधर्मेष्वपि जन्मसु ।। १०१ ।।
न तिर्यगादिनीचेषु जायते वीरशैवगः ।
वीरशैवमतस्थं यः पूजयेच्छिवरूपिणम् ।। १०२ ।।
निस्तारयति दातारं दशपूर्वान् दशापरान् ।
यस्तिरस्कुरुते मूढः शिवलिङ्गिनमीश्वरि ।। १०३ ।।

लाता है, तो उसे भी शिवार्पित कर ग्रहण करना चाहिये। इस जंगम के लिये एक बार भोजन करने का, उपवास रखने का अथवा व्रत रखने का भी कोई नियम नहीं है।।९८।। उसे तीनों कालों में इष्टलिंग की पूजा करनी चाहिये, विषयों के प्रति इन्द्रियों के आकर्षण को रोकने का भरसक प्रयत्न करना चाहिये और अपनी चर्या को आयास से रहित बनाना चाहिये।।९९।। जो शिवभक्त जंगम सन्मार्ग पर चलने का सतत प्रयत्न करता रहता है, वह अनायास सुख का भागी बनता है, जैसे कि मार्ग में सर्दी, गर्मी, झंझावात आदि को सहता हुआ यात्री अन्ततः लक्ष्य स्थल पर पहुँच कर सन्तोष प्राप्त करता है।।१००-१०१।। वीरशैव मत का अनुसरण करने वाला शिवभक्त स्त्री के रूप में जन्म नहीं लेता, अयोग्य व्यक्तियों अथवा अधर्म का आचरण करने वालों के कुल में जन्म नहीं लेता, पशु-पक्षी आदि की तिर्यक् योनि में भी वह जन्म नहीं लेता।।१०१-१०२।। जो शिवभक्त वीरशैव मत के अनुयायी शिवयोगी (जंगम) की पूजा करता है, वह अपने साथ अपने से पूर्व पैदा हुए दस और अपने बाद पैदा होने वाले दस कुलपुरुषों को तार देता है।।१०२-१०३।। हे ईश्वरि ! इसके विपरीत जो मूढ व्यक्ति घर आये

स कोटिकुलसंयुक्तो रौरवे नरके वसेत् ।
तदेतत् कथितं देवि वीरशैवस्य लक्षणम् ।
आचारश्च फलं चापि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।। १०४।।

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे शिवाद्वैतसिद्धान्ते वीरशैव[1]-दीक्षाप्रकरणे [2]लिङ्गधारणस्वरूपनिरूपणं नामाष्टमः पटलः समाप्तः[3] ।।८।।

शिवयोगी (जंगमों) का तिरस्कार करता है, वह अपने वंश की करोड़ों पीढ़ियों के साथ रौरव नरक में निवास करता है।।१०३-१०४।। हे देवि ! इस तरह से मैंने तुमको वीरशैव का लक्षण, उसका आचार और उस आचार से प्राप्त होने वाले फल का स्वरूप भी तुमको बता दिया है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहती हो।।१०४-१०५।।

इस प्रकार शिवाद्वैतसिद्धान्त के प्रतिपादक इस पारमेश्वर तन्त्र के वीरशैव-दीक्षा प्रकरण के अन्तर्गत लिंगधारक वीरशैव के स्वरूप का निरूपण करने वाला आठवां पटल समाप्त हुआ।।८।।

---

१. 'वीरशैव' नास्ति-ख. ग. घ. ङ.। २. 'लिङ्ग......नाम' नास्ति-ख. ग. घ. ङ.। ३. 'समाप्तः' नास्ति-क. ख. ङ.।

नवमः पटलः

वीरशैवमतमाहात्म्यनिरूपणम्

श्रीदेव्युवाच

नमश्चैतन्यरूपाय नमः पञ्चमुखाय ते ।
वद विस्तरतो देव वीरशैवस्य विक्रमम् ।।१।।
कथिता मतभेदास्ते लक्षणादि निरूपितम् ।
वीरशैवमतस्यात्र[1] महिमा वर्णितस्त्वया ।।२।।
उक्ताधिकारी ज्ञानेन वीरशैवमतं गतः ।
यथोक्तफलमाप्नोति शुश्रावेदं मयाऽखिलम् ।। ३।।
सहवासबलेनान्यो वासनावासितोऽपि वा ।
स्वस्थः परवशो वाऽपि क्रमेण ह्युत्क्रमेण वा ।। ४।।
न शास्त्राचार्यशिक्षाऽऽस्ते न ज्ञानं न विवेकता ।
हठाद्वा बुद्धितो वाऽपि कार्यार्थी वा भयातुरः ।।५।।

पार्वती का प्रश्न

चैतन्य स्वरूप, पाँच मुख वाले आपको मैं प्रणाम करती हूँ। हे देव ! अब आप मुझे विस्तार से वीरशैव के माहात्म्य को सुनावें।।१।। शैवमत के भेदों को और उनके लक्षणों को आपने बता दिया है। वीरशैव मत की महिमा का भी आपने वर्णन कर दिया है।।२।। उक्त लक्षणों से युक्त योग्य अधिकारी पूरी जानकारी के साथ जब वीरशैव मत को स्वीकार कर लेता है, तो उसको जिस फल की प्राप्ति होती है, यह सब भी मैंने सुन लिया है।।३।। हे शिव ! सज्जन लोगों की संगति के कारण, पूर्व जन्म की अच्छी वासनाओं के जाग उठने के कारण, अपनी इच्छा से अथवा दूसरों की प्रेरणा से, क्रमपूर्वक अथवा बिना ही क्रम के, शास्त्राभ्यास अथवा गुरु के उपदेश के बिना भी, किसी प्रकार के ज्ञान अथवा विवेक-बुद्धि के न रहने पर भी बलपूर्वक अथवा बुद्धिपूर्वक, अपने प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये अथवा भय के कारण, सम्यग्ज्ञान

---

१. स्यापि-ग. घ. ङ.।

अलब्धसम्यग्ज्ञानश्च न स्थैर्यं नापि चापलम् ।
वीरशैवमतं प्राप्य कां गतिं शिव गच्छति[1] ॥६॥
अभावादधिकारस्य वीरशैवमतं व्रजेत् ।
न [१]कच्चिदुभयभ्रष्टः प्राप्तत्यागेन शङ्कर ॥७॥

ईश्वर उवाच

यथोक्तस्य यथोक्तं स्यात् फलं चापि गतिर्गतिः ।
किन्त्वन्येषां प्रवक्ष्यामि महिमानं गतिं त्वयि ॥८॥

काश्यां मरणान्मुक्तिः

यथान्धो वापि पङ्गुर्वा मूको वा बधिरोऽपि वा ।
उन्मत्तो वापि सर्वज्ञो दरिद्रो वा महीपतिः ॥९॥
पुण्यवानपि पापी वा साधुर्वा दुर्जनोऽपि वा ।
यदि शुद्धोऽप्यशुद्धो वा काशीं प्राप्य भवेज्जनः ॥१०॥

की उपलब्धि न होने पर भी, स्थिरता अथवा चपलता के अभाव में भी यदि कोई वीरशैव मत को स्वीकार कर लेता है, तो उसकी क्या गति होती है?।।४-६।। हे शंकर ! वीरशैव मत में प्रवेश का अधिकार न रहने पर भी ऊपर वर्णित परिस्थितियों के कारण जो इसे स्वीकार करता है, वह प्राणत्याग के बाद कहीं दोनों ओर से तो भ्रष्ट नहीं हो जाता ? अभिप्राय यह है कि अपने मत का परित्याग करने से वह वहाँ से तो भ्रष्ट हुआ ही, वीरशैव दीक्षा का अधिकारी न होने से वह कहीं वहाँ से भी भ्रष्ट तो नहीं हो जाता?।।७।।

शंकर का उत्तर

जिस कर्म का जो फल बताया गया है, जो गति बताई गई है, वह उसे अवश्य मिलती है, यह सब तुम तो जानती ही हो, इसके लिये तुम्हें क्या बताना है, किन्तु इसी बहाने दूसरों के लिये कर्मफल की महिमा का और गति का ज्ञान कराया जा सकता है।।८।।

जैसे कोई अन्धा, लूला, गूँगा, बहरा, पागल, सर्वज्ञ, दरिद्र अथवा राजा, पुण्यवान् या पापी, सज्जन या दुर्जन, पवित्र अथवा अपवित्र— ये सभी मनुष्यमात्र काशी नगरी

---

१. कश्चि–ख. ग. घ. ङ.।

1. इसी तरह का प्रश्न भगवद्गीता (६.३७) में भी अर्जुन ने श्रीकृष्ण से किया है।

प्रवेशमात्रेण शिवे पञ्चक्रोशात्मके मयि ।
अहमेव हि ते सर्वे वीरशैवमते तथा ।।११।।

वीरशैवमतप्रवेशमात्रान्मुक्तिः

प्रवेशमात्रेण शिवे मम शैवमते नरः ।
सोऽहमेव न सन्देहः किमु वीरशिवो यदि ।।१२।।
क्षुधितस्यापि तृप्तस्य शर्करा मधुरा यथा ।
ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्चापि वीरशैवं सुखप्रदम् ।।१३।।
भयं नास्तीति विषये ह्यनुरक्तो भवेद्यदि ।
संत्यक्त[1]स्वोचिताचारः स पतेद् रौरवे चिरम् ।।१४।।
निगृहीतेन्द्रियग्रामो नियुक्तध्यानतत्परः ।
अनपेक्षः स्वतः प्राप्तेऽप्यात्मध्यानपरायणः ।।१५।।
एकान्तभक्तिरीशाने यत्सर्वत्र तदीक्षणम् ।
अहन्ताभावनाखण्डशान्तिः प्राणिदयापरः ।।१६।।

को प्राप्त कर, उसमें प्रवेश करने मात्र से, पंचक्रोशी की सीमा में प्रवेश मात्र से मुक्तिलाभ कर जैसे शिवमय हो जाते हैं, उसी प्रकार वीरशैव मत में प्रविष्ट होने के बाद बिना किसी भेदभाव के मनुष्यमात्र मुक्तिलाभ कर शिवस्वरूप हो जाते हैं।।९-११।।

हे शिवे ! मेरे द्वारा उपदिष्ट किसी भी शैवमत में प्रवेश प्राप्त कर मनुष्य शिवमय हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। फिर यदि वह वीरशैव मत में प्रविष्ट हुआ है, तो उसके लिये कहना ही क्या है।।१२।। व्यक्ति भूखा हो या भरपेट भोजन कर तृप्त हो चुका हो, जैसे शर्करा इन दोनों के लिये मीठी ही रहती है, इसी तरह से व्यक्ति ज्ञानी हो या अज्ञानी, वीरशैव मत सबके लिये सुखकर है।।१३।। विषयों के उपभोग में कोई भय नहीं है, ऐसा मानकर यदि वह उनमें अनुरक्त होता है और अपने आचार-विचार का परित्याग कर देता है, तो ऐसा व्यक्ति चिरकाल तक रौरव नरक में निवास करता है।।१४।। समस्त इन्द्रियों को अपने वश में करके जो सदा ध्यानाभ्यास में लगा रहता है, बिना अपेक्षा के जो कुछ प्राप्त होता है, उससे सन्तुष्ट रहता है और केवल आत्मचिन्तन में लगा रहता है, भगवान् में जिसकी एकान्त-भक्ति स्थिर हो गई है, जो सर्वत्र उन्हीं को देखता है, सर्वत्र अहन्ता की भावना के कारण

---

१. क्तः स्वो-ख. ङ.।

इत्यादिशासनोपेतः सत्क्रमात् कालमन्वहम् ।
स्थितस्य दैवयोगेन यद्यबाधं जनुष्मताम् ।।१७।।
क्वचिदेव भवेच्चित्तं निशामय[1] महेश्वरि ।
यदि पीडापरो मूढः स पतेन्नात्र संशयः ।।१८।।
यथा कथञ्चिद् यो वीरशैवः संचितपुण्यतः ।
यदा कदा वा भवति तदा सोऽहं न संशयः ।।१९।।
विना ममानुग्रहेण प्रवेशो लभ्यते नृभिः ।
न शैवमात्रे देवेशि वीरशैवमते [2]किमु ।।२०।।
तत्सर्वकर्मविलयः सर्वपुण्यफलोदयः ।
वीरशैवव्रतं तेन लभ्यते देवि नान्यथा ।।२१।।
अनाद्यादिषु भेदेषु यत्र यत्र स्खलेद् व्रते ।
कृपया मम कल्याणि वीरशैवेन शुद्ध्यति ।।२२।।

जिसको अखण्ड शान्ति मिल गई है, जो सभी प्राणियों पर दया करता है, शास्त्रों के द्वारा उपदिष्ट समस्त नियमों का जो पालन करता है, शास्त्र में उपदिष्ट क्रम से कर्म करता हुआ जो प्रतिदिन कालयापन करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है। दैवयोग से वह जब तक जीवित रहता है, किसी भी प्राणी को हानि नहीं पहुँचाता।।१५-१७।। हे महेश्वरि ! ऐसे व्यक्ति का चित्त चिरकाल के लिये विश्रान्ति-लाभ कर लेता है, वह कभी बहिर्मुख नहीं होता। ऐसे साधु पुरुष को जो मूढबुद्धि पीड़ा पहुँचाता है, वह अवश्य ही पतित हो जाता है।।१८।। अपने संचित पुण्य के प्रभाव से जिस किसी भी उपाय का सहारा लेकर जो वीरशैव इस स्थिति को जब कभी भी प्राप्त कर लेता है, तो वह निःसन्देह शिवस्वरूप हो जाता है।।१९।। हे देवेशि ! मेरे अनुग्रह के बिना मनुष्यों को सामान्यतः शैवमत में भी प्रवेश नहीं मिलता, फिर वीरशैव मत के विषय में तो कहना ही क्या है? अर्थात् उसमें तो प्रवेश सुतरां मिलता ही नहीं।।२०।। हे देवि ! जब किसी व्यक्ति के सारे असत् कर्मों का नाश हो जाता है और सभी पुण्य कर्मों के फल का उदय होता है, तब जाकर वह वीरशैव मत में प्रवेश पाता है, अन्यथा नहीं।।२१।। हे कल्याणि ! अनादिशैव, आदिशैव आदि विभिन्न शैव मतों के व्रत का पालने करने में यदि कोई स्खलित हो जाता है, तो मेरी कृपा होने पर वह वीरशैव मत में प्रवेश पाकर शुद्ध हो जाता है।।२२।।

---

१. विश्रमाय-कटी.। २. नु किम्-क. ग. घ. ङ.।

वीरशैवेन वर्ज्या विषयाः

[1]वीरशैवमतं प्राप्य यो बुद्ध्या विषयातुरः ।
श्वानयोनिशतं गत्वा चाण्डालो भुवि जायते ।। २३।।
वीरशैवमतं प्राप्य यः कुर्यात् प्राणिहिंसनम् ।
कर्मणा मनसा वाचा स वसेद् रौरवे चिरम् ।। २४।।
वीरशैवव्रतं प्राप्य यः कुर्यात् परपीडनम् ।
भोगार्थं संग्रहं मद्यं मांसं स्त्रीं च कलञ्जनम् ।। २५।।
स्वर्णस्तेयं दिवानिद्रां सर्वदैकान्नभोजनम् ।
प्राकृतैः सह सङ्गं च सङ्गत्यागं च लिङ्गिनाम् ।। २६।।
स कोटिजन्मसु [2]श्वा वै चाण्डालो भुवि जायते ।
वाहनं जनसङ्गं च स्त्रीकथालौल्य[3]मेव च ।। २७।।
अनादरं तथाऽऽलस्यं वीरशैवो न कारयेत् ।

वीरशैवलक्षणम्

यः पश्यत्यन्धवद्रूपं शब्दविद् बधिरोपमः ।। २८।।

वीरशैव मत को स्वीकार करने के बाद भी जिसकी बुद्धि विषयों की तरफ आकृष्ट होती है, तो ऐसा मनुष्य सैकड़ों बार श्वान योनि में जन्म लेकर इस पृथ्वी पर चांडाल के घर जन्म लेता है।।२३।। वीरशैव मत को प्राप्त कर जो व्यक्ति कर्म से, मन से और वाणी से प्राणियों की हिंसा करता है, तो वह चिरकाल तक रौरव नरक में निवास करता है।।२४।। वीरशैव मत में दीक्षित होने के बाद भी जो दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है, भोग के लिये द्रव्य का संग्रह करता है; मद्य, मांस, स्त्री, कलंजन आदि का सेवन करता है, सुवर्ण की चोरी, दिन में निद्रा, सदा अकेला भोजन करता है, मूर्खों की संगति करता है और इष्टलिंगधारी का साथ छोड़ देता है, वह करोड़ों बार श्वान योनि में जन्म लेकर इस पृथ्वी पर चांडाल के घर जन्म लेता है।।२५-२७।। वीरशैव को चाहिये कि वह सभी तरह के वाहनों का अपने लिये उपयोग न करे, उसे जनसंपर्क से दूर रहना चाहिये, उसे स्त्रियों के साथ बातचीत नहीं करनी चाहिये और न उनकी तरफ देखना ही चाहिये, उसे किसी का अनादर नहीं करना चाहिये और उसे कभी आलस्य भी नहीं करना चाहिये।।२७-२८।।

---

१. २५, २३, २४ इत्येते श्लोकाः २३, २४, २५ श्लोकत्वेन स्थापिताः-ग. घ.। २. श्वानश्वा- ख. ग. घ. ङ.। ३. लोक्य-क.।

काष्ठवद् दृष्टदेहो यो वीरशैवः स उच्यते ।
न बुद्ध्या चिन्तयेदर्थं वीरशैवव्रते सकृत् ।। २९।।
संप्राप्य दुःखवाराशिं शनैर्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ।
न यस्यानीश्वरे चित्तं यस्य चक्षुर्न दूरगम् ।। ३०।।
न प्राणिपीडनपरो वीरशैवः स उच्यते ।
मर्म विज्ञाय शास्त्रस्य यो बुद्ध्या विषयातुरः ।। ३१।।
तस्य नास्त्येव नास्त्येव मत्पदप्राप्तिरीश्वरि ।
लब्धे निधौ दरिद्रस्य गोपनं तस्य जीवनम् ।। ३२।।
आस्था भक्तिश्च तात्पर्यं वीरशैवस्तथा यदि ।
तिष्ठेद् गुरूक्तमार्गेण सोऽनायासेन निर्वृतिम् ।। ३३।।
याति मत्कृपया नो चेद् दुःखेनायाति निर्वृतिम् ।

हठाद् वीरशैवमते प्रवेशनिषेधः

न हठात् प्रविशेद् वीरशैवव्रतमहाम्बुधौ ।। ३४।।

स्त्री आदि के रूप के दर्शन में जो अन्धा हो जाता है, शब्द सुनने में जो वहिरा हो जाता है और देह को काष्ठ के समान देखता है, वही वास्तव में वीरशैवं कहलाता है।।२८-२९।। वीरशैव मत को एक बार स्वीकार कर लेने के बाद फिर उसे अपनी बुद्धि को अर्थ की चिन्ता से दूर रखना चाहिये। ऐसा व्यक्ति दुःखसागर में डूब जाने के उपरान्त भी शीघ्र ही मुक्त हो जाता है, यह ध्रुव सत्य है।।२९-३०।। जिसका चित्त नास्तिकता से रहित है, जिसकी दृष्टि दूर की वस्तु को नहीं देखती, अर्थात् जो पास की वस्तु को देखकर[1] चलता है, जो कभी किसी प्राणी को पीड़ा नहीं पहुँचाता, उसे ही वीरशैव कहते हैं।।३०-३१।। हे ईश्वरि ! शास्त्रों का मर्म जान लेने के उपरान्त भी जिसकी बुद्धि विषयों की ओर आकृष्ट होती है, उसको शिवपद की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती, कभी नहीं हो सकती।।३१-३२।। दरिद्र को खजाना मिल जाने पर जैसे वह जीवनपर्यन्त उसकी रक्षा करता है, उसी तात्पर्य से अपने मत के प्रति जिसकी आस्था और भक्ति है, वही वीरशैव कहलाता है। जो व्यक्ति गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से चलता है, वह मेरी कृपा से शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त कर लेता है और ऐसा न करने पर वह दुःखसागर से कभी मुक्त नहीं हो सकता।।३२-३४।।

हठपूर्वक किसी व्यक्ति को इस वीरशैव व्रतरूपी महासमुद्र में प्रवेश नहीं करना चाहिये।।३४।। यदि कोई बुद्धिमान् व्यक्ति बिना साधन के, बिना आयास के, सुख

---

1. "दृष्टिपूतं न्यसेत् पादम्" (६.४६) इत्यादि मनुस्मृति के वचन में इसी का विधान है।

धीमान् विना साधनेन आयाससुखकामनः[१] ।
हठाद्यत् प्रविशेद् दैवादप्रमत्तस्ततो भवेत् ।। ३५।।
यद्यस्थिरेन्द्रियग्रामः स पतेन्नात्र संशयः ।
यथा मतेषु सर्वेषु तुरीयत्वेन शस्यते ।। ३६।।
[२]संन्यास इत्ययं देवि वीरशैवस्तथाश्रमः ।
किन्तु तत्र विशेषं तु[३] वक्ष्यामि शृणु पार्वति ।। ३७।।
संन्यासस्यान्यधर्मस्य वीरशैवमतस्य च ।

अलिङ्गिसंन्यासिवीरशैवजङ्गमयोः साम्यवैषम्ये

खट्वारोहं दिवानिद्रां ताम्बूलाभ्यङ्गविग्रहान्[४] ।। ३८।।
सुवर्णं शुक्लवासश्चाप्यलिङ्गी वर्जयेद् यतिः ।
एकत्र वासमेकान्नं[५] रसवर्जनसङ्गमम् ।।
समाजमुत्सवं लोकं त्वलिङ्गी वर्जयेद् यतिः ।। ३९।।
द्विरन्नमैच्छिकं क्षौरं लोहपात्रेषु भोजनम् ।
यथैच्छिकजलस्नानमलिङ्गी वर्जयेद् यतिः ।। ४०।।

की कामना से हठपूर्वक इस मत में प्रवेश करता है, तो उसे सदा सावधान रहना चाहिये। यदि वह अपनी चंचल इन्द्रियों को नियन्त्रित नहीं रख सकता, तो वह निःसन्देह पतित हो जाता है।।३५-३६।। हे देवि ! जैसे सभी मतों में चतुर्थ आश्रम के रूप में संन्यासाश्रम सर्वत्र प्रशंसित है, उसी तरह की स्थिति इस वीरशैव नामक आश्रम की भी है।।३६-३७।। हे पार्वति ! किन्तु संन्यासाश्रम की अपेक्षा वीरशैव मत की जो विशेषता है, उसे मैं बताऊँगा। तुम उसे सावधानी से सुनो।।३७-३८।।

खाट पर चढ़ना, दिन में सोना, तांबूल (पान) खाना, शरीर की मालिश करना, सुवर्ण और सफेद वस्त्र धारण करना अलिंगी यति के लिये वर्जित है।।३८-३९।। एक जगह लगातार रहना, एक अन्न का भोजन, स्वादिष्ट भोजन, स्त्री-संगम, समाज में जाना, उत्सव करना, मनुष्यों से सम्पर्क रखना, अलिंगी यति के लिये वर्जित है।।३९।। दिन में दो बार भोजन करना, अपनी इच्छा के अनुसार क्षौर करवाना, लोहे के पात्र में भोजन करना, अपनी इच्छा के अनुसार जिस किसी भी जल से स्नान करना अलिंगी यति के लिये वर्जित है।।४०।। चन्द्र और सूर्य के राहु से ग्रस्त रहते हुए अस्त हो

---

१. मतः-ख.। २. श्लोकोऽयं नास्ति-ग. घ. ङ.। ३. ते-ख.। ४. द्यञ्जनं तथा-ख.। ५. काह्नं-ख।

ग्रस्तयोरस्तगतयो राहुणा शशिसूर्ययोः।
शक्तो भैक्षमहोरात्रमलिङ्गी वर्जयेद् यतिः ।। ४१।।
अमृत्तिकादिनियममस्पृष्ट्वा त्ववगाहनम्।
अपूर्वापरकर्माङ्गमलिङ्गी वर्जयेद् यतिः ।। ४२।।
उपानहमनड्वाहं स्वयंपाकं सुगन्धिकम्।
अकरक्षालनं भुक्त्वा चालिङ्गी वर्जयेद् यतिः ।। ४३।।
[१]पुष्पिण्या वापि गर्भिण्या सूतक्याऽन्नमशुद्धया।
भक्त्याऽपि दत्तं कृच्छ्रेऽपि ह्यलिङ्गी वर्जयेद् यतिः ।। ४४।।
अलिङ्गिनो यतेर्देवि बहु क्लेशं भवेत् सदा।
[२]निवृत्तिर्वीरशैवस्य लिङ्गिनो लिङ्गतः सुखम्।। ४५।।

जाने पर समर्थ अलिंगी यति को दिन-रात भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिये।।४१।। बिना मृत्तिका के ही हाथ-पैर आदि की शुद्धि मान लेना, बिना स्पर्शास्पर्श दोष के स्नान न करना, [1]पूर्वापर कर्मांगों का परित्याग— ये सब अलिंगी यति के लिये वर्जित हैं।।४२।। जूता पहनना, बैलगाड़ी पर चढ़ना, स्वयं भोजन बनाना, सुगन्धित द्रव्य-लेपन और भोजन के बाद हाथ न धोना— ये सब भी अलिंगी यति के लिये वर्जित है।।४३।। रजस्वला, गर्भिणी और सूतकी स्त्री— ये सब अशुद्ध मानी जाती हैं। इनके द्वारा भक्तिपूर्वक दिये गये अन्न को आपत्तिकाल में भी अलिंगी यति ग्रहण न करे।।।४४।। हे देवि ! इस तरह से अलिंगी यति (संन्यासी) को ऊपर निर्दिष्ट धर्मों का पालन करने में सदा बहुत क्लेश होता है। इसके विपरीत इष्टलिंगधारी वीरशैव तो निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करता हुआ केवल इष्टलिंग की आराधना में ही सुख का अनुसरण करता है। इसका अभिप्राय यह है कि वर्णाश्रमधर्म का पालन करने वाले संन्यासी का जीवन बहुत कष्ट से भरा हुआ रहता है। उसकी अपेक्षा वीरशैव जंगम के लिये इन सब धर्मों का पालन आवश्यक नहीं मांना गया है। इष्टलिंग की उपासना पर ही वहाँ अधिक बल दिया गया है।।४५।।

---

१. "पुष्पिया........निवृत्ति........अलिङ्गिनो.........भक्त्या" इत्ययं पङ्क्तीनां क्रमः-ग. घ.।
२. वृत्तिश्च-ग. घ.।

1. यज्ञोपवीत, विवाह आदि मुख्य संस्कारों (कर्मों) को करने से पहले जो नान्दीश्राद्ध, ग्रहशान्ति आदि और अन्त में आवाहित देवों का विसर्जन आदि किये जाते हैं, इन्हीं को पूर्वापर कर्मांग कहा जाता है।

वीरशैवमतवैशिष्ट्यम्

न कायक्लेशसहनं न व्रतादावुपोषणम् ।
न द्वन्द्वसहनं भद्रे वीरशैवस्य लिङ्गिनः ।। ४६ ।।
बद्धातुरस्य तु सदा नास्त्येव मम रूपता ।
सर्वसाधारणमिदमनायासो विशिष्यते ।। ४७ ।।
अस्नातो[१] वापि शुद्धो वा खट्वायामुपविश्य वा ।
पूजायां मम लिङ्गस्य मामेवैति न संशयः ।। ४८ ।।
तिर्यगादिषु योषित्सु भूत्वा मृत्वा सहस्रशः ।
अनुष्ठायार्हतादीनि यत्र सञ्चितपुण्यतः ।। ४९ ।।
भवेन्मत्कृपया देवि एकस्मिन् जन्मनि द्विजः ।
अधीत्य वेदान् वेदान्तं लब्ध्वा तत्त्वं गुरोर्मुखात् ।। ५० ।।
संत्यक्तविषयस्नेहः सर्वभूतदयापरः ।
संन्यस्य संश्रयेद्योगं येन मामेव याति सः ।। ५१ ।।

हे कल्याणि ! वीरशैव मत के अनुसार इष्टलिंगधारी के लिये तप के नाम पर शारीरिक कष्ट करने की, व्रत और उपवास रखने की और शीत-ताप आदि द्वन्द्वों को सहने की जरूरत नहीं है।।४६।। कर्मबन्धन में पड़े हुए परेशान व्यक्ति को कभी भी मेरी सारूप्य-पदवी प्राप्त नहीं हो सकती। यह बात सभी पर समान रूप से लागू होती है, किन्तु वीरशैव मत की विशेषता यह है कि यहाँ सब कुछ अनायास सहज भाव से मिल जाता है।।४७।। वीरशैव बिना स्नान किये अथवा शुद्ध होकर, खाट पर बैठकर भी इष्टलिंग की उपासना करता है, तो भी वह निःसन्देह मुझे ही प्राप्त करता है।।४८।। हे देवि ! हजारों बार तिर्यक् (पशु-पक्षी आदि) योनि में जन्म और मृत्यु प्राप्त कर व्यक्ति जैन आदि मतों का पालन कर कुछ पुण्य संचित करता है और अन्ततः मेरी कृपा होने पर वह ब्राह्मण योनि में जन्म लेकर गुरुमुख से वेद और वेदान्त का अध्ययन कर तत्त्वज्ञान की ओर अग्रसर होता है।।४९-५०।। ऐसा व्यक्ति विषयों के प्रति अपने अनुराग को छोड़कर सभी प्राणियों पर दयाभाव रखता हुआ संन्यास ग्रहण कर योग का अभ्यास करता है। इससे भी वह व्यक्ति मुझ शिव को प्राप्त कर लेता है।।५१।।

---

१. अस्नात्वा-क, ग, घ, ङ ।

निष्पन्नयोगश्चरमे [1]भवेल्लिङ्गिजनेष्वथ ।
तत्पक्वफलसारांशवीरशैवमतं श्रयेत् ।।५२।।
तावदुन्नतमागत्य पदं शैवमतं मम ।
तत्र सर्वोन्नतं वीरशैवव्रतमनुत्तमम् ।।५३।।
वीरशैवव्रतवतो व्यवधानं ममापि च ।
एतावदेव देहान्ते चैका यवनिका यदा ।।५४।।
[2]शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं [१]वेगं स याति लघु मां शिवे ।।५५।।
यश्चाशक्तः शिवे सोढुं वीरशैवमतं गतः ।
निग्रही करणानां तु स कृच्छ्रेणोपशाम्यति ।।५६।।
दैवोपलब्धसुखभुक् शिवपूजापरायणः ।
वीरशैवपदं प्राप्य सुखेनोपैति निर्वृतिम् ।।५७।।

योगाभ्यास के सहारे जब वह चरम (अन्तिम) जन्म प्राप्त करता है, तब वह लिंगी इष्टलिंगधारी जनों के कुल में पैदा होता है और तब पके हुए फल के सार भाग के समान सभी मतों में सारभूत वीरशैव मत में प्रवेश पाता है।।५२।। साधक क्रमशः उन्नति करता हुआ, शैवमत की विभिन्न सीढ़ियों को पार करता हुआ, अन्ततः सर्वोत्तम सबसे ऊपर स्थित वीरशैव व्रत को ग्रहण करता है।।५३।। वीरशैव व्रत का पालन करने वाले साधक के और मेरे बीच में एक यवनिका (पर्दा) के जितना ही व्यवधान रहता है। मृत्यु के बाद तो यह यवनिका (आवरण) भी हट जाती है, अर्थात् वह शिवस्वरूप हो जाता है।।५४।। हे शिवे ! जो शिवयोगी इस शरीर के त्याग से पहले ही काम और क्रोध के वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है, वह शीघ्र मुझे प्राप्त कर लेता है।।५५।। हे शिवे ! वीरशैव मत की दीक्षा लेकर भी जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकता, उसे शान्ति बड़ी कठिनाई से मिलती है।।५६।। भाग्य से उपलब्ध सुख का भोग करते हुए शिवपूजा में लगा रहने वाला व्यक्ति वीरशैव मत में दीक्षित होकर आराम से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।।५७।।

---

१. योगं–क.।

1. इसी अभिप्राय के वचन भगवद्गीता (६.४१) में भी मिलते हैं।

2. भगवद्गीता (५.२३) से तुलना कीजिये।

वीरशैवजङ्गमलक्षणम्

त्रिकालं भस्मना स्नानं शक्तितो लिङ्गपूजनम् ।
भैक्ष्यं च शिवभक्तेषु वीरशैवस्य लक्षणम् ।।५८।।
[१]स्मरणं पूजनं ध्यानं तत्कथा स्तोत्रमन्वहम् ।
शङ्करस्य ममेशस्य वीरशैवस्य लक्षणम् ।।५९।।
पात्रमेकं तु भिक्षायाः कन्थैका कृष्णकम्बलः ।
दण्डो ध्वनिः शिवे भक्तिर्वीरशैवस्य लक्षणम् ।।६०।।
चूलिका पात्रदण्डौ च सकन्थः कृष्णकम्बलः ।
मुद्रैषा वीरशैवस्य वीरशैवस्य लक्षणम् ।।६१।।
मौनमेकान्तवासश्च मच्छास्त्रस्यावलोकनम् ।
विरक्तिर्विषयग्रामे वीरशैवस्य लक्षणम् ।।६२।।
शान्तिर्निष्ठा भूतदया चित्तवृत्तिनिरोधनम् ।
सर्वत्रेश्वरतादात्म्यं वीरशैवस्य लक्षणम् ।।६३।।

तीनों सन्ध्याओं में भस्म से स्नान करना, अपनी शक्ति के अनुसार इष्टलिंग का पूजन करना, शिवभक्त गृहस्थों के यहाँ से भिक्षा प्राप्त करना। वीरशैव शिवयोगी के ये ही मुख्य लक्षण हैं।।५८।। सबके ईश्वरस्वरूप मुझ शिव का स्मरण, पूजन और ध्यान करना, कथा सुनना, स्तोत्रपाठ करना वीरशैव का लक्षण है।।५९।। भिक्षा के लिये एक पात्र, एक कन्था, काला कम्बल और दण्ड धारण करना, कण्ठ से शिव-नाम का उच्चारण करते हुए भिक्षा माँगना— ये सब वीरशैव के लक्षण हैं।।६०।। चूलिका नामक पात्र, दण्ड, कन्था के साथ कृष्ण कम्बल ये चार वीरशैवों की मुद्राएँ हैं। वीरशैव योगी इनको सदा धारण करता है।।६१।। मौन धारण क़रना, एकान्तवास, शिवशास्त्र का अवलोकन और विषयों से विरक्ति— ये सब वीरशैव के लक्षण हैं।।६२।। शान्ति, निष्ठा (दृढ़ भक्ति), भूतदया, चित्त की वृत्तियों का निरोध और सर्वत्र ईश्वरभाव को देखना वीरशैव का लक्षण है।।६३।।

---

१. श्लोकोऽयं नास्ति-ग. घ. ङ.।

निष्ठामहिमा

नैव रक्षन्ति विषया न भोगा न च बान्धवाः ।
नैव संपत्तिदारिद्र्चे निष्ठैका सति शङ्करे ।। ६४ ।।
गुरुशुश्रूषणं शास्त्रचिन्तनं तदनुष्ठिभि(तिः) ।
शान्तिरेकान्तवासश्च भक्तिर्देवि शिवे मयि ।। ६५ ।।
पूजनं सर्वदा लिङ्गे वीरशैवोपसर्पणम् ।
मत्पदप्राप्तये चैतत् सोपानपथमुच्यते ।। ६६ ।।
अरण्ये सन्ति पत्राणि नद्यां स्वादूदकानि च ।
सन्ति हस्तौ च पादौ च मल्लिङ्गं निरुपद्रवम् ।। ६७ ।।
नोद्यमो [१]नापि सेवा वा नायासो नार्थसंक्षयः ।
आराध्य सुखमीशं मां धीमानेति शिवं पदम् ।। ६८ ।।

वीरशैवमतमहिमा

लब्ध्वाऽपि मूढः पुण्येन वीरशैवमतं मम ।
न साधयेत् सुखं यस्तु कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ।। ६९ ।।

साधक की रक्षा विषय नहीं करते, भोग, बन्धु-बान्धव भी नहीं करते, सम्पत्ति और दारिद्र्च की भी उसमें कोई भूमिका नहीं है, केवल भगवान् की दृढ़ भक्ति ही भक्त की रक्षा कर सकती है।।६४।। हे देवि ! गुरु की सेवा, शास्त्र का चिन्तन और तद्नुसार आचरण, शान्ति और एकान्तवास— इन्हीं से शिव के प्रति भक्ति दृढ़ होती है।।६५।। इष्टलिंग की सदा पूजा करना और वीरशैव योगी की आराधना— ये शिवपद की प्राप्ति के लिंये मुख्य दो सोपानमार्ग हैं।।६६।। वन में भी पत्र-पुष्प-फल आदि मिल जाते हैं, नदियों में स्वादिष्ट जल मिल जाता है, भक्त के पास उसके हाथ-पैर हैं ही, इस तरह इष्टलिंग की आराधना में कहीं कोई विघ्न नहीं आ सकता।।६७।। शिव की आराधना के लिये कोई विशेष उद्योग अथवा सेवा की आवश्यकता नहीं पड़ती, न अधिक श्रम की अपेक्षा है और न धन ही अधिक खर्च करना पड़ता है। सुखपूर्वक शिव की आराधना कर बुद्धिमान् व्यक्ति शिवपद को अनायास प्राप्त कर लेता है।।६८।।

जो मूढ व्यक्ति पूर्व जन्मों के पुण्य से वीरशैव मत में दीक्षित हो जाने के बाद भी अपने जन्म को सार्थक नहीं करता, उससे बढ़कर असावधान दूसरा कौन हो सकता है।।६९।। वीरशैव मत का आश्रय ले लेने के बाद भी जो व्यक्ति अन्य उपायों

---

१. नान्य-ख., नास्य-ग. घ. ङ.।

वीरशैवमतं प्राप्य योऽन्यथा सुखमिच्छति ।
स सन्त्यज्य गुडं मूढो लेलिहेत् पर्णमीश्वरि ।। ७० ।।
वीरशैवमतस्थो य आकाङ्क्षेत् क्षणिकं सुखम् ।
आरुह्य पट्टभद्रेभं प्रविशेज्जलनिर्गमम् ।। ७१ ।।
प्राप्तवीरमतं त्यक्त्वा यथेच्छेद् यः पदं मम ।
स गृहीत्वा शुनः पुच्छं तर्तुमिच्छति सागरम् ।। ७२ ।।
पुण्यैकलभ्यमाश्रित्य वीरशैवमतं मम ।
यो वन्ध्यं दिवसं कुर्यात् कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ।। ७३ ।।
करस्थिते ज्वलद्दीपे वीरशैवाभिधे सति ।
कुमार्गेण[१] व्रजेद् यस्तु सोऽन्धो निर्गतलोचनः ।। ७४ ।।
वीरशैवव्रत[२]स्वच्छवज्रनावमधिष्ठितः ।
सुखं तरेद् भवाम्भोधिं भक्तिनाविकचोदितः ।। ७५ ।।

से शान्ति चाहता है, उसकी स्थिति वैसी ही होती है, जैसे कि कोई गुड़ को छोड़कर उस पत्ते को चाटे, जिस पर कि गुड़ रखा है।।७०।। वीरशैव मत में स्थित व्यक्ति यदि क्षणिक सुख की इच्छा रखता है, तो उसका यह कार्य उसी तरह का है, जैसे कि कोई सजाये हाथी पर बैठकर गन्दी नाली में जाना चाहता हो।।७१।। वीरशैव मत में दीक्षित होने के उपरान्त भी जो मूढ़ व्यक्ति इसको छोड़कर अन्य साधनों से मुझे प्राप्त करना चाहता है, उसकी वही गति होती है, जैसी कि कुत्ते की पूँछ पकड़ कर सागर को पार करने वाले की होती है।।७२।। मात्र पुण्य कर्म से उपलब्ध होने वाले मेरे वीरशैव मत को स्वीकार करने के बाद भी जो व्यक्ति व्यर्थ दिनों को गँवाता है, उससे बढ़कर अज्ञानी दूसरा कौन हो सकता है।।७३।। हाथ में वीरशैव नाम के दीपक के रहते हुए भी जो व्यक्ति कुमार्ग का अनुसरण करता है, उसे आँखों के रहते हुए भी अन्धा ही माना जायगा।।७४।। जो व्यक्ति वीरशैव मत में निर्दिष्ट व्रत के पालन से उत्पन्न दृढ़ संकल्परूपी वज्र के समान मजबूत नौका पर बैठ गया है, वह भक्तिरूपी नाविक की सहायता से सुखपूर्वक भवसागर को पार कर लेता है।।७५।।

१. पथेन–ख. ग. घ. ङ.। २. स्थश्च–ख.।

वीरशैवव्रतस्थेन सावधानेन भाव्यम्

प्राप्यापि तादृशीं नावमालस्येनैव वायुना ।
प्रतिकूलेन दुःखाब्धौ पात्यते निहतः स हि ।।७६।।
[१]अभक्तेनाविवेकेनादृढवैराग्यगौरवात् ।
अधैर्यस्तम्भिता नौका पातयेद् भग्नसाधना ।।७७।।
कामलोभादिसहिताश्चोरा हि विषया यतः ।
ज्ञानरत्नापहाराय यतन्ते सततं शिवे ।।७८।।
अशक्तो[२]ऽसहनो मूढो द्वन्द्वं[३] दुःखस्य लक्षणम् ।
चिरं विसहते क्लेशं मधुमग्नेव मक्षिका ।।७९।।
अवर्जनीयोऽप्राप्यापि भोक्तुं प्राप्यापि दुःखदः ।
एषश्चोभयथा शत्रुर्विषयः सुखनाशकः ।।८०।।
[४]एतज्ज्ञात्वा मलं स्पृष्ट्वा विषयं क्षालयेत् सुधीः ।
जलेन वीरशैवेन व्रतेनैव शुचिर्भवेत् ।।८१।।

इस प्रकार की मजबूत नौका को पाकर भी जो व्यक्ति आलस्यरूपी प्रतिकूल वायु में फँस जाता है, तो वह मारा जाता है, पुनः संसार-सागर में डूबता-उतराता रहता है।।७६।। बिना भक्ति के, बिना विवेक के और बिना वैराग्यरूपी गौरव के धैर्यविहीन व्यक्ति के द्वारा चलाई गई नौका साधनों के क्षीण हो जाने से उस पर चढ़े व्यक्ति को डुबा देती है।।७७।। हे शिवे ! मनुष्य के मन में बैठे हुए काम, क्रोध आदि विकार और विषयवासना चोरों की तरह ज्ञानरूपी रत्न को चुराने के जिसे सदा प्रयत्नशील रहते हैं।।७८।। इन विकारों और विषयों पर विजय पाने में असमर्थ मूढ़ व्यक्ति सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों का निशाना बन जाता है। वह मधु की रक्षा में निमग्न मक्षिका के समान चिरकाल तक दुःख भोगता रहता है।।७९।। विषय-सुख को सामने देखकर कोई उसे छोड़ना नहीं चाहता। इसका उपयोग करने पर भी वह दुःखदायक ही होता है। इस तरह से भोग और परित्याग, इन दोनों ही स्थितियों में यह विषय सुख का नाश करने वाला ही है।।८०।। इस विषय को पूरी तरह से समझ कर बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह वीरशैव व्रतरूपी निर्मल जल से इस विषयरूपी मल को रगड़-रगड़ कर धो डाले, तभी उसक चित्त निर्मल होगा।।८१।। हे शिवे ! प्रज्वलित अग्नि जैसे

---

१. श्लोकोऽयं नास्ति-क.। २. क्तः स हतो-क.। ३. द्वन्द्वदुः-क. ख.। ४. तदज्ञात्वा-क. ग.।

[1]यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुते शिवे ।
तथैव निर्दहेद् बन्धं वीरशैवव्रतानलः ॥८२॥
वीरशैवव्रतमहावज्रपञ्जरमध्यगः ।
तिष्ठेदनामये नित्यं सुखं हंस इवाद्रिजे ॥८३॥

शैवमतेषु सोपानक्रमः

तिष्ठेदनादिभेदेषु यदीच्छा विषयेष्वथ ।
भुञ्जन् समुचितान् भोगान् पूजयेल्लिङ्गमुक्तवत् ॥८४॥
अर्चयेदतिथीन् भक्त्या साधयेत् कर्म चोदितम् ।
यद्यादिः स्वार्चयेल्लिङ्गं मनुस्थः श्रवणीभवेत् ॥८५॥
विशेदथ महाशैवे मननाद्युक्तसाधनः ।
योगयुक्ताधिकारी सन् योगशैवमतं [१]व्रजेत् ॥८६॥
ईषणत्रयनिर्मुक्तस्त्यक्तरागो जितेन्द्रियः ।
योगशैवमतं प्राप्य सोऽधिकार्ययमीश्वरि ॥८७॥

सारी इन्धन को जला डालती है, उसी तरह से वीरशैव व्रतरूपी यह अग्नि इस संसार-बन्धन को जला डालती है।।८२।। हे अद्रिजे ! रत्नजटित सुवर्ण के पिजड़े में जैसे हंस सुखपूर्वक निर्भय होकर निवास करता है, उसी तरह से वीरशैव व्रतरूपी महान् वज्रपंजर का सहारा लेने वाला शिवयोगी सदा सुखपूर्वक अनायास शिवपद में निवास करता है।।८३।।

यदि किसी शिवभक्त की विषयोपभोग की इच्छा पूरी नहीं हुई है, तो अनादि आदि शैवभेदों में से किसी एक में रहकर उसे समुचित भोगों को भोगते हुए उक्त प्रकार से शिवलिंग की पूजा करनी चाहिये।।८४।। उसे भक्तिपूर्वक अतिथियों की पूजा करनी चाहिये और शास्त्रविहित कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये। आदिशैव दीक्षा-सम्पन्न व्यक्ति लिंगपूजा, मन्त्रजाप और शास्त्रश्रवण करे।।८५।। इसके बाद मनन आदि साधनों के सहारे उसे महाशैव मत में प्रवेश करना चाहिये। योगाभ्यास का अधिकार प्राप्त कर वह योगशैव मत में प्रवेश पा सकता है।।८६।। हे ईश्वरि ! तीनों प्रकार की एषणा (पुत्र, वित्त, लोक) से निर्मुक्त, वैराग्य-सम्पन्न, जितेन्द्रिय व्यक्ति योगशैव मत की दीक्षा पाने का अधिकारी माना जाता है।।८७।। ऐसा व्यक्ति गुरुमुख से शास्त्र का

---

१. भजेत्-ङ.।

1. भगवद्गीता (४.३७) से तुलना कीजिये।

ज्ञात्वा गुरुमुखाच्छास्त्रं धृतकाषायदण्डकः।
प्रव्रजेद् गृहमुत्सृज्य शिखी मुण्ड्यपि वा जटी ।।८८।।
योगशैवमते[१] वीरं भक्त्या नत्वा समाश्रयेत्।
ततोऽधिकारं संप्राप्य व्रतं पाशुपतं श्रयेत् ।।८९।।

अवधूताख्यो वीरशैवः

तदेव ज्ञानशैवाख्यं ततो वीरव्रतं चरेत्।
कथितो योऽवधूताख्यो वीरशैवः स ईश्वरि ।।९०।।
नातोऽधिकं मतं किञ्चिन्नास्ति मत्तः परं सुखम्।
वीरशैवव्रतं नाम नावधूतव्रतात् परम् ।।९१।।
शक्यते साधितुं प्राप्य तत एवं व्रतं चरेत्।
नैव शुद्धिर्न चाशुद्धिर्नैव [२]वन्द्यैकवन्द्यता ।।९२।।
न पूज्यपूजकविधिर्न शिष्यो न गुरुः शिवे।
न माता न पिता भार्या न चाण्डालो न भूसुरः ।।९३।।

अध्ययन कर, काषाय वस्त्र और दण्ड धारण कर गृहस्थाश्रम को छोड़कर शिखी, मुंडी अथवा जटी के रूप में प्रव्रजित हो जाय।।८७।। इस प्रकार योगशैव मत की आराधना पूरी कर लेने के बाद साधक भक्तिभाव से प्रणाम कर वीरशैव मत के गुरु की उपासना करे। उससे अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद पाशुपत व्रत का पालन करे।।८९।।

हे ईश्वरि ! यह पाशुपत मत ही ज्ञानशैव कहलाता है। इसके बाद वीरव्रत स्वीकार करना चाहिये। अवधूत मत के नाम से जो शास्त्रों में वर्णित है, उसे ही वीरशैव कहा जाता है।।९०।। इससे बढ़कर कोई मत नहीं है और शिवपद की प्राप्ति से बढ़कर कोई श्रेष्ठ सुख नहीं है। यह वीरशैव व्रत अवधूत व्रत से किसी भी रूप में पृथक् नहीं किया जा सकता। यहाँ तक पहुँच जाने के बाद साधक इस अवधूत व्रत का आगे बताई गई पद्धति से पालन करे।।९१-९२।। न यहाँ कोई शुद्धि है, न अशुद्धि; न यहाँ कोई पूजन करने वाला है और न पूज्य; न यहाँ कोई वन्दनीय है, न वन्दन करने वाला; न कोई शिष्य है, न गुरु। माता, पिता, भार्या, चाण्डाल, ब्राह्मण आदि व्यवहारों की भी यहाँ कोई स्थिति नहीं है।।९२-९३।। गाय, कुत्ता, हाथी, गधा आदि का भी

---

१. मती–क.। २. वन्द्यक–ग. ङ.।

न गौर्न शुनको हस्ती गर्दभो वापि भेदतः ।
नोत्तमं मध्यमं नीचं न न्यूनमधिकं समम् ।। ९४ ।।
वीरशैवावधूतस्य सममेवाखिलं शिवे ।
अखण्डसच्चिदानन्दं देहदृष्टान्तवर्जितम् ।। ९५ ।।
[1]निर्लेपमखिलाधारमसङ्गं सर्वकारणम् ।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यमव्ययं द्वैतवर्जितम् ।।
सर्वदृक् सर्वभुक् सर्वमसर्वं सर्वतोमुखम् ।। ९६ ।।
तदेकमच्युतं प्रज्ञमप्रज्ञं प्रज्ञयोदितम् ।
[2]ज्ञातृ ज्ञानं ज्ञानगम्यं ब्रह्म शैवपदं मम ।। ९७ ।।
तन्मयं भावयेत् सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।
अनन्तसागरारूढसुखनौगर्भगं सुखम् ।। ९८ ।।
पुनरावृत्तिरहितम् अनामयमविक्रियम् ।
शैवं मम पदं प्राप्य शिवः सोऽहमहं शिवे ।। ९९ ।।

कोई भेद नहीं है। इसी तरह से उत्तम, मध्यम, नीच, न्यून, अधिक, समान आदि भेदों की भी यहाँ कोई स्थिति नहीं है।।९४।। हे शिवे ! वीरशैवों में अवधूत व्रत का पालन करने वाले के लिये यह सारा जगत् एक-सा है। उसके लिये यह सब अखंड, सत्-चित्-आनन्द स्वरूप और देह-दृष्टान्त से रहित है।।९५।। निर्लेप, समस्त जगत् का आधार, असंग, समस्त जगत् का कारणस्वरूप, अप्रतर्क्य, अनिर्देश्य, अव्यय, द्वैतभाव से रहित, सबको देखने वाला, सबका भोक्ता, सर्व और असर्व तथा सर्वतोमुख तत्त्व के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता नहीं है।।९६।। वही एक अच्युत तत्त्व है, जो कि ज्ञानी है और अज्ञानी; तथा अपनी ही प्रज्ञा से जाना जाता है। वही ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय भी है। यह ब्रह्मपद मेरे शिवपद से किसी भी रूप में भिन्न नहीं है।।९७।। इस सारे स्थावर-जंगमात्मक जगत् की ब्रह्म के रूप में ही, शिव के रूप में ही भावना करनी चाहिये। ऐसी भावना करने वाले अनन्त जन्मरूपी सागर की लहरों से पीड़ित मानव के लिये यह वीरशैव मत नौका के समान सुखदायी है।।९८।। हे शिवे ! पुनर्जन्म से रहित, आरोग्यकर, विकाररहित मेरे इस शिवपद को प्राप्त कर वह मैं हो जाता हूँ, सब कुछ शिवमय हो जाता है।।९९।। उस भावितात्मा वीरशैव अवधूत के लिये यहाँ

---

१. पङ्क्त्योर्विपर्यस्तः क्रमः-ग. घ. ङ.। २. ज्ञानज्ञेयं ज्ञातृगम्यं-ख. ग. घ. ङ.।

न क्रमो न विधिर्दोषनिषेधौ भावितात्मनः ।
वीरशैवावधूतस्य सोऽहमेव शिवः स्वयम् ।। १०० ।।
न पुण्यं च न वै पापं नाधमा गतिरुत्तमा[1] ।
स्वयमेवाखिलं देवि वीरशैवः शिवो ह्यहम् ।। १०१ ।।
इति ते कथितं देवि संक्षेपेण मया क्वचित् ।
माहात्म्यं वीरशैवस्य किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।। १०२ ।।

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे शिवाद्वैतसिद्धान्ते
नवमः पटलः समाप्तः[2] ।।९।।

कोई क्रम नहीं है; विधि, प्रायश्चित्त और निषेध की भी कोई स्थिति नहीं है। वह तो मुझ शिव से अभिन्न हो जाता है, स्वयं ही शिव हो जाता है।।१००।। हे देवि ! यहाँ पुण्य और पाप की भी कोई सत्ता नहीं बची रहती, अधम अथवा उत्तम गति की कोई चर्चा नहीं होती। ऐसा वीरशैव तो स्वयं ही सब कुछ बन जाता है, मुझ शिव से वह अभिन्न हो जाता है।।१०१।। हे देवि ! इस तरह से संक्षेप में मैंने वीरशैव की महिमा का कुछ अंश तुम्हें सुनाया है। अब आगे तुम पुनः क्या सुनना चाहती हो।।१०२।।

इस तरह से शिवाद्वैतसिद्धान्त के प्रतिपादक पारमेश्वर तन्त्र का
नवां पटल समाप्त हुआ।।९।।

---

१. रन्तिमा–क. ग. घ. ङ.। २. 'समाप्तः' नास्ति–ग. घ. ङ.।

दशमः पटलः

शिवयोगविधानम्

श्रीदेव्युवाच

योगिहृत्पद्मवासाय योगिवेद्यस्वरूपिणे ।
ब्रह्मतत्त्वप्रकाशाय शिवाय शिव ते नमः ॥१॥

अनादिशैवादिमतचतुष्टये विधिस्वरूपम्

अनादिशैवनिष्ठस्य स्वोक्ताचारो विधिः सदा ।
संकल्प्योद्दिश्य च फलं शक्त्या जङ्गमपूजनम् ॥२॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यथोक्तं गुरुशास्त्रतः ।
आचारे त्रिविधं कर्म यथेच्छं सुखभुग् भवेत् ॥३॥
आदिशैवमतस्थश्च यावन्नित्यं समाचरेत् ।
यदि शक्त्या चरेदन्यं नित्यबुद्ध्या तथा चरेत् ॥४॥
अनुशैवमतस्थश्च[1] नित्यमेवं[2] समाचरेत् ।
त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं काम्यनैमित्तिकानि च ॥५॥

देवी का प्रश्न

हे शिव ! योगियों के हृदय-कमल में निवास करने वाले, योगियों के द्वारा ही जानने योग्य स्वरूप वाले, ब्रह्म तत्त्व को प्रकाशित करने वाले, सबका कल्याण करने वाले आपको मैं प्रणाम करती हूँ।।१।।

अनादिशैव मत में निष्ठा वाले के लिये स्वयं उपदिष्ट विधि का ही सदा पालन करना चाहिये। वह फल का उल्लेख करते हुए संकल्प करे और अपनी शक्ति के अनुसार जंगम की पूजा करे।।२।। गुरु और शास्त्र द्वारा बताई गई विधि के अनुसार नित्य, नैमित्तिक और काम्य इन त्रिविध कर्मों का आचरण करने से वह अभिलषित सुखभोग का भागी बनता है।।३।। आदिशैव मत का साधक केवल नित्य कर्म का ही आचरण करता है। यदि शक्ति के अनुसार अन्य कर्मों को भी करता है, तो वह उनमें नित्य कर्म की बुद्धि रखकर ही उनका आचरण करे।।४।। अनुशैव मत में स्थित व्यक्ति भी इसी तरह से नित्य कर्म का ही आचरण करे। यदि उसे काम्य और नैमित्तिक कर्म करना है, तो वह फल की आसक्ति के बिना उनका आचरण करे।।५।। महाशैव व्रत

१. श्चेन्नि–क. ख. ङ.। २. मेव–घ.।

यथाशक्त्या चरेन्नित्यं त्यक्त्वा शक्यं स्मरेच्छिवम् ।
सर्वं लिङ्गमयं ध्यायेन्महाशैवव्रती[1] जगत् ।। ६ ।।

योगशैवादिमतविषयकः प्रश्नः

[2]इत्येतदधिकारोऽपि सोपानावलिरीरिता ।
एतादृशाधिकारी सन् योगशैवं व्रजेदिति ।। ७ ।।
निरूपितं महादेव भगवन् भवता प्रभो ।
स्वरूपं योगशैवस्य ज्ञातुमिच्छास्ति मे हृदि ।। ८ ।।
यन्नाम ज्ञानशैवं च[3] क्व भेदो ज्ञानयोगयोः ।
याभ्यां समन्वितो वीरशैवव्रतफलं लभेत् ।। ९ ।।
एतत्सर्वं सविस्तारं ब्रूहि शङ्कर तत्त्वतः ।
वद त्वत्प्रियशिष्याहं प्रियोऽसि त्वं गुरुर्मम ।। १० ।।

ईश्वर उवाच

समाधानारम्भः

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं [4]धर्म्यं ससुखं कर्तुमव्ययम् ।। ११ ।।

का पालन करने वाला अपनी शक्ति के अनुसार नित्य कर्म का आचरण करे। वह प्रधानतः शिवस्मरण करे और सब कुछ शिवलिंगमय है, ऐसा ध्यान करे।।६।।

इन सब मतों का अधिकार क्रमशः सोपान की पंक्ति के जैसा मिलता है। क्रमशः महाशैव मत तक आरूढ़ हुआ व्यक्ति योगशैव मत में प्रविष्ट होवे।।७।। हे महादेव ! हे सबके स्वामी भगवन् ! यह सब जो आपने बताया, वह मेरी समझ में आ गया। अब मेरे हृदय में योगशैव का स्वरूप विशेष रूप से जानने की इच्छा है।।८।। यह ज्ञानशैव क्या है? उस ज्ञान और योग का भेद क्या है, जिनसे मुक्त होकर साधक वीरशैव व्रत के फल को प्राप्त करता है।।९।। हे शंकर ! ये सब बातें विस्तारपूर्वक इनके तात्त्विक स्वरूप को समझाते हुए मुझे बताइये, क्योंकि मैं आपकी प्रिय शिष्या हूँ और आप मेरे प्रिय गुरु हैं।।१०।।

ईश्वर का उत्तर

हे देवि ! तुम सुनो, मैं इसके उत्तम रहस्य को तुम्हें बताऊँगा। यह प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय है, इस अव्यय धर्म का आचरण सुखपूर्वक किया जा सकता है।।११।। इस

---

१. 'शैवव्रती जगत्' नास्ति–ग. घ.। २. श्लोकयोः (७–८) विपर्यस्तः पाठः–ग. घ.। ३. तत्–ख. ग. घ. ङ.। ४. धर्मं–क. ख. ग.।

नेदं पूर्वं मया क्वापि कथितं त्विदमद्भुतम् ।
त्वयि स्नेहेन वक्ष्यामि श्रुत्वा धारय गोपय ।। १२ ।।

द्विविधो योगशैवः

शैवभेदस्य यद्योगपूर्वत्वं योगपाठ[१]वत् ।
स चापि द्विविधो योगः साकारश्च निराकृतिः ।। १३ ।।
निराकृतिर्निराकारो ध्यातृध्येयविवर्जितः ।
ज्ञानज्ञेयज्ञातृभेदप्रत्ययत्रयवर्जितः ।। १४ ।।
न तत्र चन्द्रमाः सूर्यो नक्षत्राणि दिशोऽनलः ।
विद्युद्वाताम्बुधरणीमेरुब्रह्माण्डसंज्ञकाः ।। १५ ।।
यदखण्डं परं ज्ञानं यदेकं स्वच्छमव्ययम् ।
यदव्यक्तं मनोऽतीतं तदेकं ब्रह्म केवलम् ।। १६ ।।
तद्भावनाधिकारी यो ज्ञानयोगान्वितः शिवे ।
वीरशैवावधूतोऽपि स एव कथितः शिवे ।। १७ ।।

अद्भुत धर्म का इससे पहले मैंने कहीं वर्णन नहीं किया है। तुम्हारे स्नेह के कारण यह बता रहा हूँ। इसे सुनकर तुम अपने मन में ही गुप्त रखो।।१२।।

योगशैव मत में योग की प्रधानता है। योग की पद्धति से इसके साकार और निराकार नामक दो भेद होते हैं।।१३।। निराकार योग उसे कहते हैं, जिसमें किसी आकृति को आलंबन नहीं बनाया जाता, ध्याता और ध्येय का भेद यहाँ नहीं रहता। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता की त्रिपुटी से बनने वाले भेद से भी यह रहित है।।१४।। इस निराकार स्थिति में चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, दिशा, अग्नि, विद्युत्, पवन, जल, पृथ्वी, मेरुपर्वत और ब्रह्माण्ड की भी कोई स्थिति नहीं रहती।।१५।। यह निराकार लक्ष्य, अखण्ड, श्रेष्ठ, ज्ञानमय, एकाकी, स्वच्छ, अव्यय, अव्यक्त और मन से अतीत है। इसी को केवल ब्रह्म तत्त्व के रूप में जाना जाता है।।१६।। हे शिवे ! जो साधक ज्ञान और योग दोनों से युक्त है, वही इस निराकार तत्त्व की भावना करने में समर्थ हो सकता है। हे देवि ! ऐसा ही मनुष्य वीरशैव मत में अवधूत कहलाता है।।१७।। ऐसा व्यक्ति जब कभी बहिर्मुख

---

१. पात–घ. ङ.।

बहिर्गतेऽपि तच्चित्ते [१]स्वात्मा भावं विना क्वचित् ।
तत्तादात्म्यात्मभावेन　ज्ञानशैवव्रती　भवेत् ।। १८ ।।
न्यूनाधिकारिणस्तत्र　सर्वैक्यज्ञानकर्मणि ।
विविक्तं देशमाश्रित्य ध्यानमेव सदाऽभ्यसेत् ।। १९ ।।

योगासननिरूपणम्

[1]शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
[२]तारक्षवं वा मार्गं वा चर्मास्तीर्य तथोपरि ।। २० ।।
आस्तीर्य कम्बलं कृष्णं वस्त्रं काषायमास्तरेत् ।
अभ्यसेदासनं　चादावुपविश्य　यथासुखम् ।। २१ ।।
आसने तु जिते देवि जितो देहोऽपि च स्वतः ।
पार्ष्णिपाणिद्वयो भूत्वा नासाग्रे गतलोचनः ।। २२ ।।

ध्यानपद्धतिः

आतिष्ठेत् स्थाणुवत् स्वस्थो यथा दीपो निवातगः ।
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम् ।। २३ ।।

सा प्रतीत होता हो, तो भी उस स्थिति में अपनी आत्मा के साथ बहिर्मुख चित्तवृत्ति का कोई सम्बन्ध न रहने के कारण वह ज्ञानशैव व्रती अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है।।१८।। इस निराकार योग में, सबकी एकता में, ज्ञानकर्म की अभिन्नता में जिसका अधिकार अभी न्यून है, उसको चाहिये कि वह एकान्त स्थान में बैठकर सदा साकार स्वरूप का ध्यान करे।।१९।।

पवित्र भूमि पर अपना स्थिर आसन स्थापित कर उसके ऊपर तेंदुआ (तरक्षु) के अथवा हरिण (मृग) के चर्म को आसन के रूप में बिछावे।।२०।। फिर उसके ऊपर काला कंबल और काषाय रंग का वस्त्र बिछावे। उसके ऊपर पहले बैठकर सुखपूर्वक आसन का अभ्यास करे।।२१।। हे देवि ! आसन पर विजय प्राप्त हो जाने पर देह पर अपने आप विजय प्राप्त हो जाती है। तब वह साधक अपने टखनों के नीचे हाथ रखकर अपनी नासिका के अग्र भाग में आँखों को स्थिर कर दे।।२२।।

इस अवस्था में योगी अपने शरीर, सिर और ग्रीवा को सीधा तान कर बिना हिले-डुले उसी प्रकार स्थिर हो जाय, जैसे कि कोई स्थाणु (वृक्ष का तना) खड़ा हो, अथवा पवन-रहित स्थान पर जैसे दीपक की लौ बिना हिले-डुले निरन्तर जल रही हो।।२३।।

---

१. स्वात्मभावं-कटि.। २. तरक्षुवं-क. ग. घ.।

1. इस प्रकरण की भ. गी. (६.११-१३) से तुलना कीजिये।

हृत्पुण्डरीके नाभ्यां वा स्वाधिष्ठानेऽपि मूलके ।
विशुद्धौ चापि चाज्ञायां सहस्रारेऽपि वा शिवे ।। २४ ।।
ब्रह्मरन्ध्रे शिखाग्रे वा द्वादशान्ते चिदात्मनि ।
एतदन्यतमस्थाने ध्यायेन्मां परमेश्वरम् ।। २५ ।।

दिव्यसिंहासनभावना

दिव्यसिंहासनं तत्र कर्णिकामध्यभागतः ।
मण्डपं च चतुःस्तम्भं वितानावलिशोभितम् ।। २६ ।।
भावयित्वा तु परितः कल्पवृक्षवनावलिम् ।
परितस्तस्य संभाव्यं भावयेत् क्षीरसागरम् ।। २७ ।।
द्वीपं मणिमयं ध्यायेत् तन्मध्ये मणिमण्डपम् ।
मुक्ताप्रवालशोभाढ्यं चतुर्द्वारसमन्वितम् ।। २८ ।।
सर्वतो दीपिकारेखातोरणाद्यैरलङ्कृतम् ।
सर्वशृङ्गारसम्पूर्णं मनसैवं[१] विभावयेत् ।। २९ ।।

हे शिवे ! इसके बाद वह योगी हृदय–पुण्डरीक, नाभि, स्वाधिष्ठान, मूलाधार, विशुद्धि, आज्ञा, सहस्रार, ब्रह्मरन्ध्र, शिखाग्र, [1]द्वादशान्त (पश्चिम शिखा) अथवा चिदात्मा में से किसी एक स्थान में मुझ परमेश्वर का ध्यान करे।।२४–२५।।

ऊपर बताये गये स्थानों में से किसी एक स्थान की भावना कर वह साधक विचारे कि उस स्थान पर चार स्तंभ वाला मण्डप बना हुआ है, वह मण्डप वन्दनवार से सजा हुआ है और उस स्थान की बीच की कर्णिका में दिव्य सिंहासन रखा हुआ है।।२६।। वह भावना करे कि उस मण्डप के चारों तरफ कल्पवृक्ष की पंक्तियाँ लगी हुई हैं और उस कल्पवृक्ष के वन के चारों ओर क्षीरसागर लहरा रहा है।।२७।। इस क्षीरसागर के मध्य में वह मणिमय द्वीप का और उसके बीच में मणिमय मण्डप का ध्यान करे कि वह मुक्ता और प्रवाल से सुशोभित है और चार द्वार इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं।।२८।। यह मण्डप दीपकों की पंक्तियों और तोरण आदि से अलंकृत है। शृंगार की सारी सामग्री से यह समृद्ध है, साधक अपने मन में ऐसा विचार करे।।२९।। उस मण्डप के मध्य

---

१. सैव–ग. घ. ङ.।

1. द्वादशान्त के विशेष विवरण के लिये विज्ञानभैरव भाषानुवाद का उपोद्घात (पृ. ३४) देखिये।

मध्ये वज्रमये पीठे पद्ममष्टदलं लिखेत् ।
वृत्तं कलास्त्र[१]वृत्तान्ते भावयेद् भूपुरत्रयम् ।।३०।।
षट्कोणमध्ये विलिखेत् त्रिकोणं तस्य मध्यतः ।
केसरान् विलिखेदष्टपत्रं मध्ये तु षोडश ।।३१।।
बिन्दूपरि महादेवि दिव्यसिंहासनं स्मरेत् ।
नवरत्नमयं रम्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।।३२।।
नवसोपानसंयुक्तं सर्वदेवमयं शिवे ।
सर्वशक्तिमयं सर्वमन्त्रयन्त्रमयं परम् ।।३३।।

सोमशिवध्यानम्

तत्र मां ससुखासीनमुमया सहितं शिवम् ।
चतुर्भुजमुदाराङ्गं चन्द्रशेखरमव्ययम् ।।३४।।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं नागाभरणभूषितम् ।
कुठारैणाभयवरपाणिपङ्कजमीश्वरम् ।।३५।।

में स्थित वज्रमय पीठ पर अष्टदल कमल लिखे। इस अष्टदल को वृत्त, अर्थात् गोल रेखा से घेर कर षोडशदल कमल की रचना करे और उसे भी गोल रेखा से घेर कर [1]भूपुर के निर्माण के लिये तीन चतुरस्र रेखायें खींचे।।३०।। षट्कोण के बीच में त्रिकोण लिखे और त्रिकोण के बीच में षोडश केसर युक्त षोडशदल तथा मध्य में अष्टपत्र पद्म बनावे।।३१।। हे महादेवि ! मध्यस्थित बिन्दु के ऊपर दिव्य सिंहासन का स्मरण करे, जो कि नौ रत्नों से सुशोभित, रमणीय, करोड़ों सूर्यों के समान शोभा वाला हो।।३२।। हे शिवे ! वह सिंहासन नौ सोपानों (सीढ़ियों) से सुशोभित हो। ऐसे सिंहासन पर सभी देवता और शक्तियाँ निवास करती हैं। यह श्रेष्ठ सिंहासन सभी मन्त्रों और यन्त्रों का निवास-स्थान है।।३३।।

उस सिंहासन पर उमा के साथ सुखपूर्वक विराजमान, सबका कल्याण करने वाले, चार भुजा वाले, सुन्दर शरीर वाले, ललाट पर चन्द्रमा को धारण करने वाले, अव्यय धाम, सारे शरीर पर भस्म रमाये, नाग के अलंकार से सुशोभित, अपने चार हाथों

---

१. प्रवृ–क., ग्रवृ–ख.।

1. नगर आदि को जैसे परकोटे से घेर दिया जाता है, उसी तरह से यन्त्र को घेरने के लिये जो चतुरस्र रेखायें खींची जाती हैं, उन्हीं को भूपुर कहा जाता है। संहार-क्रम की पूजा भूपुर से ही प्रारम्भ होती है।

मन्दस्मितं त्रिनयनमीशानं कृत्तिवाससम् ।
प्रसन्नवदनाम्भोजं सर्वालङ्कारशोभितम् ।। ३६ ।।

आवरणदेवताभावनम्

एवं ध्यायेच्चिरं योग्यावरणानि ततो यजेत्[1] ।
सर्वत्र मूलमन्त्रेण सहतारेण मन्त्रवित् ।। ३७ ।।
पुरतो नन्दिनं ध्यायेद् दक्षिणे गणनायकम् ।
तत्पश्चिमे महावीरभद्रमुत्तरतो गुहम् ।। ३८ ।।
चतुर्दिक्षु त्रिकोणस्य प्रादक्षिण्येन शाङ्करि ।
यजेदारभ्य च स्वाग्रं नन्द्यादीनां चतुष्टयम् ।। ३९ ।।
अथ षट्कोणकोणेषु प्रादक्षिण्येन भावयेत् ।
षडामोदादिकान् षट्सु वाहनायुधसंयुतान् ।। ४० ।।
आमोदं च प्रमोदं च सुमुखं दुर्मुखं तथा ।
अविघ्नं विघ्नकर्तारं कोणाग्रेष्वङ्गषट्ककम्[2] ।। ४१ ।।

में कुठार, हरिण, अभयमुद्रा एवं वरदमुद्रा को धारण करने वाले, सबके ईश्वर (स्वामी), मन्द मुसकान वाले, तीन नेत्रों वाले, ईशान, व्याघ्रचर्म धारण करने वाले, प्रसन्नवदन, सभी प्रकार के अलंकारों से सुशोभित मुझ शिव का ध्यान करे।।३४-३६।।

चिरकाल तक मेरा ध्यान कर लेने के बाद मन्त्रवेत्ता शिवभक्त आवरण देवताओं का यजन करे। यह यजन प्रणव के साथ मूल मन्त्र से किया जाता है।।३७।। मेरे सिंहासन की पूर्व दिशा में नन्दी का, दक्षिण में गणनायक गणपति का, पश्चिम में महावीरभद्र का और उत्तर में गुह (कार्तिकेय स्कन्द) का ध्यान करे।।३८।। हे शांकरि ! त्रिकोण की चारों दिशाओं में प्रदक्षिणा क्रम से अपने संम्मुख पूर्व दिशा मानकर उक्त चारों नन्दी आदि देवताओं का ध्यान किया जाता है।।३९।। इसके बाद षट्कोण के छः कोणों में प्रदक्षिणा क्रम से वाहन और आयुधों से संयुक्त छः आमोद आदि देवताओं का ध्यान करे।।४०।। इनके नाम हैं— आमोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, अविघ्न और विघ्नकर्ता। कोणों के अग्र भाग में सर्वज्ञता आदि के नाम से प्रसिद्ध शिव के छः अंगों का ध्यान करे।।४१।।

---

१. जयेत्-क. ख. ग.। २. गम्-घ.।

भवं पशुपतिं रुद्रं शिवं शर्वं त्रियम्बकम् ।
त्रिनेत्रं पञ्चवदनं पत्रेष्वष्टसु पूजयेत् ।।४२।।
वृषध्वजं वृषारूढं जटिलं चन्द्रशेखरम् ।
कपर्दिनं कालकण्ठं पिनाकिनमुमापतिम् ।।४३।।
भूतेशं शङ्करं स्थाणुं भाललोचनमीश्वरम् ।
प्रमथं प्रमथाधीशं परमेश्वरमीश्वरि ।।४४।।
भावयेत् केसरेष्वेतान् षोडशेष्वपि षोडश ।
अथ षोडशपत्रेषु [1]शक्तीः षोडश भावयेत् ।।४५।।
ईशानी शाङ्करी रौद्री कालकण्ठी कपालिनी ।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पिङ्गलेडा सुषुम्निका ।।४६।।
राका कुहूः सिनीवाली भूतधात्री गिरीन्द्रजा ।
या सा हैमवतीशानी वाहनायुधसंयुता ।।४७।।
असिताङ्गं [2]गुरुं चण्डं क्रोधमुन्मत्तभैरवम् ।
कपालिनं भीषणाख्यं संहाराभिधभैरवम् ।।४८।।
यजेत् प्रथमरेखायां भावयेदथ मध्यमे ।
ब्राह्मीं माहेश्वरीं रौद्रीं हृल्लेखां गगनाभिधाम् ।।४९।।

इसके बाद अष्टदल कमल में भव, पशुपति, रुद्र, शिव, शर्व, त्रियम्बक, त्रिनेत्र और पंचवदन नामक आठ देवताओं का ध्यान करे।।४२।। हे ईश्वरि ! इसके बाद सोलह केसरों में वृषध्वज, वृषारूढ़, जटिल, चन्द्रशेखर, कपर्दी, कालकण्ठ, पिनाकी, उमापति, भूतेश, शंकर, स्थाणु, भाललोचन, ईश्वर, प्रमथ, प्रमथाधीश और परमेश्वर— इन सोलह देवताओं का ध्यान करे।।४३-४५।। अब षोडश पत्रों में सोलह शक्तियों की भावना करे। इनके नाम हैं— ईशानी, शांकरी, रौद्री, कालकण्ठी, कपालिनी, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पिंगला, इडा, सुषुम्ना, राका, कुहू, सिनीवाली, भूतधात्री, गिरीन्द्रजा और हैमवती। इनका ध्यान वाहन और आयुधों के साथ करना चाहिये।।४५-४७।। असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण और संहार नाम के आठ भैरवों की भूपुर की प्रथम रेखा में भावना करनी चाहिये। इसके बाद मध्यम रेखा में ब्राह्मी, माहेश्वरी, रौद्री, हृल्लेखा, गगना,

---

१. शक्ति–क. ख. ङ.। २. 'रुरुं' इति पाठेन भाव्यम्।

करालिनीं महोच्छुष्मां यजेज्ज्वालामुखीमपि ।
उमा भवानी रुद्राणी शर्वाणी सर्वमङ्गला ।।५०।।
[1]शिवेश्वरी च कौमारी गौरी चेति क्रमाद्यजेत् ।
एतास्तृतीयरेखायां मन्त्रस्योभयपार्श्वयोः ।।५१।।
शङ्खपद्मनिधिद्वन्द्व[2]मिन्द्रादीन् परितो [3]यजेत् ।
चतुरस्रा[4]न्त्यरेखायां वाहनायुधसंयुतान् ।।५२।।

ध्यानफलम्

उपवेशनमारभ्य यावत् पूजाविसर्जनम् ।
तावद् ध्यायीत मनसा सर्वं संसाधयेद्धृदि ।।५३।।
एवमभ्यासनिरतः सर्वसङ्गविवर्जितः ।
ध्यात्वा मामीशमीशानि देहान्ते प्रविशेन्मयि ।।५४।।

योगाष्टाङ्गानि

भक्तिर्वैराग्यमभ्यासो[5] ध्यानमेकान्तसेवनम् ।
भिक्षाटनं लिङ्गपूजा स्मरणं सततं मम ।।५५।।

करालिनी, महोच्छुष्मा और ज्वालामुखी नाम की आठ देवियों की भावना करे।।४८-५०।। उमा, भवानी, रुद्राणी, सर्वमंगला, शिवा, ईश्वरी, कौमारी और गौरी— इन आठ देवियों की भूपुर की तृतीय रेखा में क्रमशः भावना करनी चाहिये।।५०-५१।। प्रस्तुत यन्त्र के दोनों बाजुओं में शंख और पद्म नामक निधियों का ध्यान व पूजन करे। चतुरस्र की तीन रेखाओं के बाहर चारों तरफ वाहनों और आयुधों के साथ इन्द्र आदि लोकपालों का ध्यान-पूजन करे।।५१-५२।।

पूजा के लिये बैठने से लेकर विसर्जन पर्यन्त मन में भगवान् शिव का और इन आवरण देवताओं का हृदय से ध्यान करने वाला साधक सब कुछ प्राप्त कर लेता है।।५३।। हे ईशानि ! इस प्रकार के अभ्यास में लगा हुआ, सभी प्रकार की आसक्ति से रहित साधक मेरा ध्यान करता हुआ देहपात के बाद शिव में प्रविष्ट हो जाता है।।५४।।

भक्ति, वैराग्य, अभ्यास, ध्यान, एकान्तसेवन, भिक्षाटन, लिंगपूजा और मेरा सतत स्मरण— योगशैव मत का अनुसरण करने वाले इष्टलिंगी के लिये ये आठ योग के

---

१. विश्वे-घ.। २. द्वन्द्व-क. ख. ग.। ३. जयेत्-क.। ४. रस्त्रं स्त्रि-क.। ५. मनसो-ग. घ. ङ.।

एतानि योगाष्टाङ्गानि योगशैवस्य लिङ्गिनः ।
एतदङ्गसमोपेतो योगशैव उदाहृतः ॥५६॥

ध्यानशैवलक्षणम्

इत्थं संसिद्धयोगः सन् वर्तेतात्मपरायणः ।
सर्वं मदात्मकं ध्यायेद् यदि चित्तं बहिर्गतम् ॥५७॥
दृष्टं श्रुतं च संस्पृष्टमाघ्रातं स्वादितं कृतम् ।
सर्वं शिवात्मकं ध्यायेद् ध्यानशैवः स उच्यते ॥५८॥

वीरशैवलक्षणम्

योगध्यानद्वये[1] भक्त्या योऽतीतः सर्वनिस्पृहः ।
शिवोऽहंभावनाधीरो वीरशैव उदाहृतः ॥५९॥
वीरशैवमतं प्राप्य जगदेतच्चराचरम् ।
सर्वं शिवमयं ध्यायेच्छिवोऽहमिति भावयेत् ॥६०॥

अंग हैं। इन आठों योगांगों का पालन करने वाला योगशैव कहलाता है।।५५-५६।।

इस प्रकार इन सभी योगांगों के सिद्ध हो जाने पर योगी आत्मनिष्ठ हो जाय, अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से पराङ्मुख कर आत्मपरायण बना दे। यदि उसका चित्त बहिर्मुख होकर विषयों की ओर आकृष्ट होता है, तब यह सब कुछ शिवमय ही है, ऐसा ध्यान करे।।५७।। देखी गई, सुनी गई, छुई गई, सूंघी और चखी गई सब वस्तुएं, अर्थात् बाह्य इन्द्रियों के विषय— ये सब शिवमय हैं, ऐसा ध्यान करने वाला योगी ध्यानशैव कहलाता है।।५८।।

जो साधक योग और ध्यान दोनों का भक्तिपूर्वक अभ्यास करता है, सांसारिक वासनाओं से जो मुक्त हो गया है, सभी प्रकार की इच्छाएं जिसकी समाप्त हो गई हैं और जो धैर्यपूर्वक मैं ही शिव हूँ, इस भावना के अभ्यास में लगा है, वही वीरशैव कहलाता है।।५९।। वीरशैव मत को स्वीकार करने के बाद शिवभक्त यह सारा चराचर (स्थावर-जंगम) जगत् शिवमय है, ऐसा ध्यान करे और भावना करे कि मैं ही शिव हूँ।।६०।। ऐसा वीरशैव सत्यरूपी पुष्प से, क्षमारूपी पुष्प से, इन्द्रयनिग्रह रूपी पुष्प

---

१. द्वयो–क. ख. ग.।

सत्यपुष्पं क्षमापुष्पं [१]सत्यमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदयापुष्पं भावनापुष्पमुत्तमम् ।। ६१ ।।
सत्यपुष्पं क्षमापुष्पं वस्तुषूच्चावचेष्वपि ।
अनन्यपीडनं पुष्पं परोपकृतिमुत्तमाम् ।। ६२ ।।
[1]सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु दुर्जनेषु जनेष्वपि ।। ६३ ।।
स्वमते विमते मूढे परारावुपकर्तरि ।
सर्वत्र भावयेदेकं वीरशैवमते शिवे ।। ६४ ।।
यः पूजयेन्मामीशानि पुष्पैरेतैरतन्द्रितः ।
सर्वदा सर्वदा शम्भुं वीरशैवः स उच्यते ।। ६५ ।।
रागद्वेषविमुक्तानां[२] लिङ्गिनां वीरशैविनाम् ।
अभितः शिवकैवल्यं करस्थं विदितात्मनाम् ।। ६६ ।।

से, सभी प्राणियों पर दया करने रूपी पुष्प से और उत्तम भावनारूपी पुष्प से भगवान् की आराधना करता है।।६१।। सत्यपुष्प और क्षमापुष्प के साथ सर्वत्र ऊँच-नीच की भावना को छोड़कर समतापुष्प को स्वीकार करने वाला, दूसरे को पीड़ा न पहुँचाने के सत्य को स्वीकार करने वाला और उत्तम परोपकार रूपी सत्य को स्वीकार करने वाला।।६२।। सुहृत्, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, अकारण द्वेष करने वाला, अकारण स्नेह करने वाला, बन्धु, साधु, पापी, दुर्जन— इन सबमें समान दृष्टि रखने वाला।।६३।। हे शिवे ! अपने मत का हो या अन्य मत का हो, परम द्वेष करने वाला हो या उपकार करने वाला हो, सर्वत्र एक भगवान् शिव की भावना करने वाला ही वीरशैव मत का योग्य अधिकारी है।।६४।। हे ईशानि ! जो शिवभक्त ऊपर बताये गये पुष्पों से निरालस्य भाव से मेरी पूजा करता है, सदा केवल शंभु की ही आराधना करता है, वह वीरशैव कहलाता है।।६५।। राग और द्वेष से रहित होकर इष्टलिंग की उपासना में लगे हुए आत्मवेत्ता वीरशैवों के चारों तरफ शिवसायुज्य मंडराता रहता है, वह शिवसायुज्य तो उनके हाथ में ही रहता है।।६६।।

---

१. 'सत्य.....क्षमापुष्पं' नास्ति–ख. ग. घ. ङ.। २. वियु–ग. घ. ङ.।

1. भगवद्गीता (६.९) से तुलना कीजिये। सुहृत् और मित्र यद्यपि पर्यायवाची शब्द हैं, तथापि इनके सूक्ष्म अन्तर को सभी टीकाकारों ने यहाँ स्पष्ट किया है।

वीरशैवयोगिनः पर्यायनामानि

अवधूतश्च संन्यासी योगी पाशुपतः शिवः ।
लिङ्गी वीरो वीरशैवो महामाहेश्वरो यतिः ॥६७॥
पर्यायनामान्येतानि वीरशैवस्य योगिनः[1] ।
नान्यदस्ति ततस्तस्य विना तादात्म्यभावनाम् ॥६८॥

वीरशैवस्य नियमाः

नागारं कुरुते क्वापि न द्वेषं नान्यपीडनम् ।
यदि(दी)च्छेन्मम सायुज्यं वीरशैवो महेश्वरि ॥६९॥
न वीरशैवादधिकफलदं मतमस्ति हि ।
यद्यस्तीह तदा कश्चिदधिको मत्परः शिवे ॥७०॥
यः कुर्याद् वीरशैवस्थः पीडनं प्राणिनां भुवि ।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतो नरकमश्नुते ॥७१॥

वीरशैवस्य षडङ्गानि

शमो दमस्तितिक्षोपरतिश्रद्धासमाधयः ।
षडङ्गानि महादेवि वीरशैवस्य लिङ्गिनः ॥७२॥

अवधूत, संन्यासी, योगी, पाशुपत, शिव, लिंगी, वीर, वीरशैव, महामाहेश्वर और यति— ये सब वीरशैव योगी के पर्यायवाची शब्द हैं। ईश्वर के साथ तादात्म्य-भावना का अभ्यास करने के सिवाय इनका कोई दूसरा कार्य नहीं है।।६७-६८।।

हे महेश्वरि ! वीरशैव मत का अनुसरण करने वाला व्यक्ति यदि शिवसायुज्य पदवी को चाहता है, तो वह कहीं भी अपना घर न बनावे, दूसरे के साथ द्वेष न करे और न किसी को पीड़ा पहुँचावे।।६९।। हे शिवे ! वीरशैव मत की अपेक्षा अधिक फल देने वाला यहाँ कोई अन्य मत नहीं है। ऐसा तो तब होता, जब कि कोई अन्य देवता मुझसे श्रेष्ठ होता। भाव यह है कि जैसे शिव से बढ़कर कोई देवता नहीं है, उसी तरह से वीरशैव मत से भी श्रेष्ठ दूसरा कोई मत नहीं है।।७०।। वीरशैव मत में स्थित व्यक्ति इस पृथ्वी पर किसी भी प्राणी को यदि पीड़ा पहुँचाता है, वह अपने जीवन काल में चाण्डाल माना जाता है और मरने पर नरक भोगता है।।७१।।

हे महादेवि ! वीरशैव मत का पालन करने वाले इष्टलिंगधारी के शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा, और समाधि (समाधान)— ये छः अंग माने जाते हैं।।७२।।

---

१. लिङ्गिनः–ग. घ. ङ.।

यद्येकेनापि चैतेषां विहीनो हीन एव सः ।
अङ्गलोपे भवेद् व्यङ्गी तेनाधो निपतेद् ध्रुवम् ।। ७३ ।।
यथा मनुष्यः सर्वाङ्गसंयुक्तोऽङ्गीति कथ्यते ।
यद्यन्यथा भवेद् व्यङ्गी तथैवायं न संशयः ।। ७४ ।।

दयामाहात्म्यम्

न पुष्पाहरणायासो न [१]तद्द्वारान्यपीडनम् ।
भावेनैव परं कर्म दयैका वीरशैविनः ।। ७५ ।।
दया भूतेषु तस्यैकं साधनं प्राप्तये मम ।
तदेकं नरकप्राप्ते[२]र्लिङ्गिनः परपीडनम् ।। ७६ ।।
जगत्सर्वमहं देवि यच्च किञ्चिच्चराचरम् ।
मच्छरीरमिदं विद्धि नामरूपक्रियात्मकम् ।। ७७ ।।

यदि कोई वीरशैव इन छः अंगों में से किसी एक भी अंग से रहित है, तो वह हीन कोटि का माना जाता है, जैसे कि कोई व्यक्ति हाथ-पैर आदि के न रहने पर हीनांग माना जाता है। ऐसा व्यक्ति निश्चय ही अधोगति पाता है।।७३।। सभी अंगों से संयुक्त व्यक्ति जैसे सर्वांगपूर्ण अंगी कहलाता है, अन्यथा किसी एक अंग के न रहने पर वह व्यंगी (अपंग) कहलाता है, उसी तरह यहाँ भी समझना चाहिये, इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिये।।७४।।

वीरशैव धर्म का अनुसरण करने वाले को पुष्प आदि पूजासामग्री को जुटाने के लिये कोई परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं है और न उसके द्वारा दूसरे को पीड़ा ही पहुँचाई जाती है। उसके लिये तो सर्वत्र शिवभावना और दया ही श्रेष्ठ कर्म है।।७५।। उस वीरशैव के लिये मेरी प्राप्ति का एक ही साधन है— सभी प्राणियों पर दयाभाव रखना। इसी तरह से दूसरों को पीड़ा पहुँचाना, उसके लिये नरकप्राप्ति का एकमात्र साधन है।।७६।। हे देवि ! इस जगत् में जो भी कुछ चराचर वस्तु है, वह सब मैं हूँ। यहाँ नाम, रूप और क्रिया से सम्पन्न जो कुछ भी है, वह सब मेरा ही शरीर है, ऐसा तुम जानो।।७७।। इस तरह शिवस्वरूप होने पर भी जो कोई मेरा भक्त किसी

---

१. तद्वादा–क.। २. प्राप्तिर्लि–क.।

तद्भूत्वा मम यो भक्तः[1] कुर्याद् द्वेषमपि क्वचित् ।
मम द्वेषी न सन्देहस्तन्मां सर्वत्र भावयेत् ।। ७८ ।।
स्वशरीरे यथा देवि सपादतलमस्तके ।
तथैवैकत्वमध्यासः सर्वत्रैवं विभावयेत् ।। ७९ ।।
वीरशैवमतस्थस्य यावती भेदभावना ।
भूतेषु भावनाऽस्तीव मत्प्राप्तिस्तस्य सुन्दरि ।। ८० ।।
किमत्र बहुना तत्र शृणु चोर्ध्वं विनिश्चितम् ।
वक्तव्यं ग्रन्थविस्तारैः सर्वसिद्धान्तमीश्वरि ।। ८१ ।।

पञ्चाक्षरजपमाहात्म्यम्

हृदि यस्य तनौ लिङ्गं मनो मयि मनुर्मम ।
शैवः पञ्चाक्षरः पुण्यः स जिह्वाग्रे महेश्वरि ।। ८२ ।।
तत्र वक्ष्ये गिरिसुते सारात्सारतरं तव ।
गोपनीयं प्रयत्नेन वद भक्ताय योगिने ।। ८३ ।।

के प्रति द्वेषभाव रखता है, वह निःसन्देह मेरे साथ द्वेष करता है। ऐसे व्यक्ति को सर्वत्र मेरी ही भावना करनी चाहिये।।७८।। हे देवि ! जैसे सामान्य मनुष्य को पैर से लेकर सिर तक अपने पूरे शरीर में स्वत्व का बोध होता है, उसी तरह से सर्वत्र एकता के बोध का अभ्यास वीरशैव को करना चाहिये।।७९।। हे सुन्दरि ! वीरशैव मत में स्थित व्यक्ति को चाहिये कि उसके चित्त में जितनी भी भेद-वासनाएं हैं, उन्हें सभी भूतों के प्रति ऐक्य-भावना में बदल दे। उसे अवश्य ही शिवपद प्राप्त होगा।।८०।। हे ईश्वरि ! इस विषय में बहुत कहने का कोई प्रयोजन नहीं है। सभी सिद्धान्तों में पहले ही इस विषय के शास्त्रों में विस्तार से पर्याप्त कहा जा चुका है।।८१।।

हे महेश्वरि ! जिस वीरशैव के प्राण में और शरीर पर इष्टलिंग विराजमान है, जिसके मन में मेरा मन्त्र और स्वरूप विराजमान है और जिसकी जिह्वा पर पुण्यदायी शैव पंचाक्षर मन्त्र सुशोभित है, वह धन्य है।।८२।। हे गिरिसुते ! अब तुम्हें मैं सार से सारतर तत्त्व को समझाऊंगा। इसको प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये और भक्त योगी को ही बताना चाहिये।।८३।। वीरशैव भोग और मोक्ष को देने वाले पंचाक्षर

---

१. भक्तानां–ख.।

जपेत् पञ्चाक्षरं शैवं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।
सर्वधर्मान् परित्यज्य शैवं पञ्चाक्षरं जपेत् ॥८४॥
तिष्ठन् भुञ्जन् स्वपन् गच्छन् जाग्रन्नपि हसन्नपि ।
उपविशन् प्रबुद्ध्यन् वा शैवं पञ्चाक्षरं जपेत् ॥८५॥
स्वस्थः परवशो वापि [१]क्षुतप्रस्खलनादिषु ।
व्याजेनाखिलभेदेन शैवं पञ्चाक्षरं जपेत् ॥८६॥
शान्तो वा कुपितो वाऽपि शुद्धो वाऽशुद्ध एव वा ।
[२]विधिनापि विना वाऽपि शैवं पञ्चाक्षरं जपेत् ॥८७॥
सर्ववेदेषु सर्वत्र सर्वकालेषु सर्वशः ।
सर्वदा सर्वदं[३] देवि शैवं पञ्चाक्षरं जपेत् ॥८८॥
न कैलासाद् वरो लोको न दैवं शङ्करात् परम् ।
न वीरशैवाच्च मतं नास्ति मुक्तिपरं सुखम् ॥८९॥

शिवमन्त्र का जप करे। वह सारे अन्य धर्मों को छोड़कर केवल शैव पंचाक्षर मन्त्र का जप करे।।८४।। वह खड़ा हो, भोजन कर रहा हो, सो रहा हो, चल रहा हो, जगा हुआ हो, हंस रहा हो, वैठा हुआ हो अथवा अभी जग रहा हो— इन सभी अवस्थाओं में वह शैव पंचाक्षर मन्त्र का जप करे।।८५।। वह स्वतन्त्र हो या परतन्त्र, उसे छींक आ रही हो अथवा वह फिसल कर गिर पड़ने वाला हो, इस तरह की सभी विपरीत स्थितियों में भी उन्हीं के बहाने शैव पंचाक्षर मन्त्र का जप करे।।८६।। वह शान्त हो या क्रुद्ध, शुद्ध हो या अशुद्ध— सभी स्थितियों में विधिपूर्वक अथवा बिना विधि के भी सदा शैव पंचाक्षर मन्त्र का जप करे।।८७।। हे देवि ! सभी वेदों में यह बताया गया है कि सव जगह, सभी कालों में, पूरे मनोभाव से एकाग्र होकर सब कुछ देने वाले इस शैव पंचाक्षर मन्त्र का निरन्तर जप करे।।८८।। कैलास से श्रेष्ठ कोई लोक (स्थान) नहीं है, शंकर से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है, वीरशैव से बढ़कर कोई मत नहीं है और मुक्ति से वढ़कर कोई सुख नहीं है।।८९।। ज्ञान से श्रेष्ठ कोई मित्र नहीं है,

---

१. 'क्षुत....वापि' इत्यस्य स्थाने—"शान्तो वा कुपितो वापि क्षुभितप्रस्खलादिषु। व्याजेनाखिलभेदेन शैवं पञ्चाक्षरं जपेत्।।" इत्येवं विपरिणतः पाठः ८८ तमश्लोकानन्तरं स्थापितः—ग. घ.। २. विधिनाऽविधिना—घ. ङ.। ३. सर्वदा—घ. ङ.।

नास्ति ज्ञानात् परं मित्रं न भक्तेः साधनं परम् ।
न शैवादधिको मर्त्यो [१]मन्त्रः पञ्चाक्षरः परः ।।९०।।
स्मरेत् स्मरणरूपेण स्तोत्ररूपेण संस्तुवेत् ।
प्रजपेन्मन्त्ररूपेण शैवं पञ्चाक्षरं मनुम् ।।९१।।
यदि(दी)च्छेन्मम सायुज्यमनायासेन सुन्दरि ।
न विस्मरेत् सदा मन्त्रं मम पञ्चाक्षरं परम् ।।९२।।
आलस्येनापि शाठ्येन परिहासेन मायया ।
स्मरेत वा स्वभावेन शैवं पञ्चाक्षरं परम् ।।९३।।
स्वप्नेऽपि वा स्मृते मन्त्रे सुखे दुःखे रतादिषु ।
सकृत् पञ्चाक्षरे वापि सोऽहमेव न संशयः ।।९४।।
किं पुनर्भक्तितो यस्तु जपेन्मन्त्रोत्तमोत्तमम् ।
शैवं पञ्चाक्षरं दिव्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।।९५।।

भक्ति से बढ़कर कोई मुक्ति का साधन नहीं है, शैवमत को स्वीकार करने वाले मनुष्य से अन्य कोई श्रेष्ठ नहीं है और पंचाक्षर मन्त्र से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है।।९०।। स्मरण करना हो तो इसी का स्मरण करे, स्तुति करना हो तो इसी से स्तुति करे, जप करना हो तो इसी शैव पंचाक्षर मन्त्र से जप करे।।९१।। हे सुन्दरि ! यदि कोई शिवभक्त अनायास, बिना परिश्रम के मेरी सायुज्य-पदवी को चाहता है, तो उसे चाहिये कि वह कभी भी मेरे पंचाक्षर मन्त्र को न भूले।।९२।। आलस्य में पड़ा हुआ, धूर्ततावश, परिहास-वश, दूसरों को धोखा देने के लिये भी अथवा अपने सौम्य स्वभाववश व्यक्ति को चाहिये कि वह किसी भी दशा में शैव पंचाक्षर मन्त्र का जप करे।।९३।। स्वप्नावस्था में, सुख की अथवा दुःख की स्थिति में, सुरत (मैथुन) की अवस्था में भी जो एक बार भी शैव पंचाक्षर मन्त्र का स्मरण करता है, वह निःसन्देह शिवस्वरूप ही है।।९४।। फिर उसके विषय में तो कहना ही क्या है, जो सभी मन्त्रों में उत्तमोत्तम इस शैव पंचाक्षर मन्त्र का भक्तिभावपूर्वक जप करता है, अर्थात् उसको तो शिवस्वरूप की प्राप्ति अवश्य ही होगी। यह दिव्य पंचाक्षर मन्त्र भोग और मोक्ष, दोनों को देने वाला है।।९५।।

---

१. मन्त्रं पञ्चाक्षरं जपेत्-घ.।

स्मरणात् कीर्तनाद् ध्यानाज्जपादभिनुतेरपि ।
मननात् पूजनाद् भावाद् भोगस्वर्गापवर्गदम् ॥ ९६ ॥
[१]शिवं पञ्चाक्षरं जप्त्वा लिङ्गपूजां करोति यः ।
सोऽपि मानुषदेहस्थः शिव एव न संशयः ॥ ९७ ॥
यस्तु लिङ्गार्चनं कृत्वा जपेत् पञ्चाक्षरं मनुम् ।
दिने दिने सहस्रं तु सोऽहमेव धरात्मजे ॥ ९८ ॥
पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ९९ ॥
प्रोक्तं मया महादेवि शिवयोगस्य लक्षणम् ।
तद्ध्यानं तद्विधानं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १०० ॥

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे शिवाद्वैतसिद्धान्ते दीक्षा-प्रकरणे शिवयोगविधाननिरूपणं नाम दशमः पटलः समाप्तः[२] ॥१०॥

इस शैव पंचाक्षर मन्त्र के स्मरण से, कीर्तन से, ध्यान से, जप से, नमन से, मनन से, पूजन से और भावना करने से भी ऐहिक भोग, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।।९६।। शैव पंचाक्षर मन्त्र का जप करके जो शिवभक्त इष्टलिंग की पूजा करता है, वह निःसन्देह मनुष्य के शरीर में साक्षात् शिव ही स्थित है।।९७।। हे धरात्मजे ! जो शिवभक्त इष्टलिंग की पूजा करने के बाद प्रतिदिन एक हजार बार पंचाक्षर मन्त्र का जप करता है, वह साक्षात् शिवमय बन जाता है।।९८।। इस शैव पंचाक्षर मन्त्र की महिमा का वर्णन मैं नहीं कर सकता। इतना निश्चित है कि इसका जप करने वाल निःसन्देह ब्रह्महत्या जैसे महापातकों से भी मुक्त हो जाता है।।९९।। हे महादेवि ! इस तरह से मैंने तुमको शिवयोग का लक्षण, उसके ध्यान का प्रकार और उसकी सारी विधि कह सुनाई है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहती हो।।१००।।

इस प्रकार शिवाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक इस पारमेश्वर तन्त्र के दीक्षा प्रकरण का शिवयोग विधि का निरूपक यह दसवाँ पटल समाप्त हुआ।।१०।।

१. शिव–ग. घ. ङ.। २. 'समाप्तः' नास्ति–क. ख. ङ.।

एकादशः पटलः

पञ्चाक्षरीजपानुष्ठाननिरूपणम्

श्रीदेव्युवाच

परमेश्वर सर्वज्ञ शुद्धज्ञानमहोदधे।
पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि शङ्कर।।१।।
पञ्चाक्षरविधानं च जपध्यानादिषु प्रभो।
कथयस्वाभिधेयं च तेन मन्त्रेण कृत्स्नशः।।२।।
देवताश्च ऋषिश्छन्दस्तन्मे वद महेश्वर।

ईश्वर उवाच

तत्समाधानम्

पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि।
न शक्यं विस्तराद् वक्तुं तस्मात् संक्षेपतः शृणु।।३।।

षडक्षरः पञ्चाक्षरश्च मन्त्रः

वेदे च वेदशीर्षे चाप्युभयत्र षडक्षरः।
मन्त्रः स्थितः सदा मुख्यो लोके पञ्चाक्षरः स्मृतः।।४।।

देवी का प्रश्न

हे परमेश्वर, सर्वज्ञ, शुद्ध ज्ञान के महासागर, शंकर ! अब मैं पंचाक्षर मन्त्र के माहात्म्य को सुनना चाहती हूँ।।१।। हे प्रभो ! पंचाक्षर मन्त्र के जप और ध्यान का प्रकार क्या है और उस मन्त्र का अभिधेय क्या है, उस मन्त्र के देवता, ऋषि और छन्द कौन-कौन से हैं, ये सारी बातें आप मुझे पूरी तरह से बताइये।।२।।

ईश्वर का उत्तर

पंचाक्षर मन्त्र के माहात्म्य का विस्तार से वर्णन तो करोड़ों कल्पों में भी संभव नहीं हो सकता, इसलिये मैं उसका संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ, तुम उसे सुनो।।३।।

वेद में और वेद के शीर्ष भाग उपनिषद् में दोनों ही स्थलों पर प्रणवयुक्त होने से षडक्षर मन्त्र मुख्य माना जाता है और लोक में प्रणवरहित पंचाक्षर मन्त्र ही मुख्य माना गया है।।४।। यहाँ 'ॐ नमः शिवाय' इस षडक्षर मन्त्र से सभी प्रकार की सिद्धियाँ

इहों नमः शिवायेति मन्त्रेणानेन सिद्धयः ।
हंसो लभ्यः सदा सर्वैः परमेशप्रभावतः ॥५॥
सर्वमन्त्राधिकश्चायमोङ्काराद्यः षडक्षरः ।
सर्वेषां शिवभक्तानामशेषार्थप्रदायकः[1] ॥६॥
तदल्पं वेदसाराख्यं भुक्तिदं च विमुक्तिदम् ।
आज्ञासिद्धमसंदिग्धं वाक्यमेतच्छिवात्मकम् ॥७॥
नानासिद्धियुतं दिव्यं लोकचित्तेषु रञ्जनम् ।
सुनिश्चितार्थगम्भीरं वाक्यं तत्पारमेश्वरम् ॥८॥
मन्त्रः सुखमुखोच्चार्यश्चाशेषार्थप्रसाधकः ।
तदल्पं वेदसाराख्यं भुक्तिदं च विमुक्तिदम् ॥९॥

प्रणवमाहात्म्यम्

तद् बीजं सर्वविद्यानां मन्त्रमाद्यं षडक्षरम् ।
अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद्वटबीजवत् ॥१०॥

प्राप्त होती हैं। परमेश्वर की विशेष कृपा होने पर इससे सभी प्राणियों को सभी स्थितियों में हंसरूपी परमेश्वर का ज्ञान हो जाता है।।५।। ॐकार जिसके प्रारंभ में है, ऐसा यह षडक्षर मन्त्र सभी मन्त्रों में श्रेष्ठ है। यह सभी प्रकार के शिवभक्तों के समस्त मनोरथों को पूरा करने में समर्थ है।।६।। यह अल्प अक्षरों वाला, वेदों का सारभूत मन्त्र भोग और मोक्ष दोनों को देने वाला है। यह शिव की आज्ञा से स्वतः सिद्ध है और यह शिवस्वरूप वाक्य (मन्त्र) असंदिग्ध रूप से फल देने वाला है।।७।। नाना प्रकार की सिद्धियों से सम्पन्न, दिव्य देवता स्वरूप, लोकचित्त को प्रसन्न कर देने वाला, सुनिश्चित और गंभीर अर्थ से युक्त यह षडक्षर मन्त्र साक्षात् शिव के द्वारा उच्चरित वाक्य है।।८।। इस मन्त्र का उच्चारण मुख से सब कोई सुखपूर्वक कर सकते हैं और यह मनुष्य के सभी प्रयोजनों को पूरा करने वाला है। यह छोटा सा वेद का सार स्वरूप मन्त्र भुक्ति और मुक्ति— दोनों को देने वाला है।।९।।

यह षडक्षर मन्त्र सबसे पहला मन्त्र है, सभी विद्याओं का यह बीजस्वरूप है, अर्थात् सारी विद्याएं इसीसे उत्पन्न होती हैं। वट वृक्ष के बीज के समान यह अतिसूक्ष्म होता हुआ भी महान् फल का प्रदाता है।।१०।। सत्त्व, रज और तम— इन तीनों गुणों

---

१. प्रसाधकः–कटि. ङ.।

अहं गुणत्रयातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत् प्रभुः ।
ओमित्येकाक्षरे मन्त्रे स्थितः सर्वगतोऽस्म्यहम् ।। ११।।
प्रणवोऽप्यधिकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः ।
ग्राहिका भक्तिरुद्दिष्टा प्रणवाभ्याससंभवा ।। १२।।
शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवादियरः स्मृतः ।
शम्भोः प्रणववाच्यस्य भावनात् तज्जपादपि ।। १३।।
या सिद्धिश्च परा प्राप्या भवत्येव न संशयः ।
तस्मादेकाक्षरं देवमाहुरागमवादिनः ।। १४।।
वाच्यवाचकयोरैक्यं मन्यमाना मनस्विनः ।
ज्ञायते योगिभिर्ध्याने[1] बोधानन्दाव्ययाद्वयः ।। १५।।

षडक्षरमन्त्रमाहात्म्यम्

ईशानाद्यानि सूक्ष्माणि ब्रह्माण्येकाक्षराणि तु ।
[2]मन्त्रे नमः शिवायेति संस्थितानि यथाक्रमम् ।। १६।।

से परे विद्यमान मैं सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सबका स्वामी शिव ॐकार नामक एक अक्षर वाले मन्त्र में स्थित रहता हुआ भी सर्वत्र विद्यमान हूँ।।११।। भगवान् शिव की अपेक्षा भी यह उसकी प्रणवरूपी कला अधिक श्रेष्ठ है। प्रणव के अभ्यास से उत्पन्न हुई भक्ति ही उसके स्वरूप को ग्रहण करने में समर्थ मानी गई है।।१२।। शिव, रुद्र आदि शब्दों की अपेक्षा भी उसका यह प्रणव रूपी नाम सर्वश्रेष्ठ है। प्रणव के द्वारा बोधित होने वाले भगवान् शिव की भावना करने से तथा प्रणव का जप करने से भी निःसन्देह श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होती है।।१३-१४।। इसीलिये आगमवेत्ता मनस्वीगण इस एक अक्षर वाले दिव्य मन्त्र को वाच्य और वाचक की अभिन्नता के आधार पर साक्षात् शिव ही मानते हैं। योगीजन ध्यानावस्था में बोध, आनन्द, अव्यय और अद्वय तत्त्व के रूप में इसे जानते हैं।।१४-१५।।

ईशान आदि पंचब्रह्म मन्त्र सूक्ष्म रूप में एक अक्षर का स्वरूप धारण कर 'नमः शिवाय' इस पंचाक्षर मन्त्र में क्रमशः स्थित हैं।।१६।। पंचब्रह्म मन्त्रस्वरूप यह शिव

१. नैर्वो–घ.। २. मन्त्रो–क. ग. घ.।

मन्त्रस्त्वक्षरतः सूक्ष्मः पञ्चब्रह्मतनुः शिवः ।
वाच्यवाचकभावेन स्थितः साक्षात् स्वभावतः ।।१७।।
वाच्यः शिवः प्रमेयत्वान्मन्त्रस्तद्वाचकः स्मृतः ।
वाच्यवाचकभावोऽयमनादिः संस्थितस्तयोः[१] ।।१८।।
तत्राधिपेन मन्त्राणां सर्वज्ञेन मया शिवे ।
प्रणीतममलं वाक्यं न तेन सदृशं भवेत् ।।१९।।
साङ्गानि वेदशास्त्राणि संस्थितानि षडक्षरे ।
न तेन सदृशं तस्मान्मन्त्रमस्त्यपरं क्वचित् ।।२०।।
सप्तकोटिमहामन्त्रैरुपमन्त्रैरनेकशः ।
मन्त्रः षडक्षरोऽभिन्नं सूत्रं वृत्त्यात्मनो[२] यथा ।।२१।।
शिवज्ञानानि यावन्ति विद्यास्थानानि यानि च ।
षडक्षरस्य सूत्रस्य तानि भाष्यं समासतः ।।२२।।

इन मन्त्राक्षरों में सूक्ष्म रूप से वाच्य (अर्थ) और वाचक (शब्द) भाव से साक्षात् अपने स्वभाव के साथ विद्यमान है।।१७।। शिव प्रमेय है, अतः वह वाच्य है और वाचक मन्त्र प्रमाण है, अर्थात् मन्त्र की आराधना से ही शिव का ज्ञान हो सकता है। इस तरह इनमें यह वाच्यवाचकभाव सम्बन्ध अनादि काल से स्वतः सिद्ध है।।१८।। हे शिवे ! सभी मन्त्रों के स्वामी, सर्वज्ञ शिव के रूप में मैंने ही षडक्षर अथवा पंचाक्षर मन्त्ररूपी पवित्र वाक्य की रचना की है। अतः इसके समान अन्य कोई मन्त्र नहीं हो सकता।।१९।। अपने अंगों के साथ सारे वेदशास्त्र इस षडक्षर मन्त्र में विद्यमान हैं, अतः इसके बराबर अन्य कोई मन्त्र कहीं भी नहीं है।।२०।। सात करोड़ महामन्त्र और अन्य अनेक उपमन्त्रों में यह षडक्षर मन्त्र उसी तरह से अभिन्न रूप में स्थित है, जैसे कि सूत्र वृत्त्यात्मक होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जैसे सूत्र-ग्रन्थ के बिना वृत्ति-ग्रन्थ की रचना नहीं हो सकती, वृत्ति-ग्रन्थ में सूत्र अनुस्यूत हैं, उसी तरह से सारे मन्त्रों और उपमन्त्रों में षडक्षर मन्त्र जुड़ा हुआ है।।२१।। जितने भी शिवज्ञान के प्रतिपादक आगम हैं और जितने भी [1]विद्यास्थान हैं, वे सब षडक्षर मन्त्ररूपी सूत्र-ग्रन्थ के भाष्य हैं, संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त है।।२२।। जिसके हृदय में षडक्षर मन्त्र स्थित है, उस शिवभक्त

---

१. तः स्वयम्–क.। २. त्मकं–क.।

1. "चत्वारो वेदाः, शीक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति षडङ्गानि, पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राण्यायुर्वेदधनुर्वेदगान्धर्वार्थशास्त्राश्चत्वार ऋग्वेदाद्युपवेदाश्चेत्यष्टादश विद्यास्थानानि" (वेदान्तसूत्र-श्रीकण्ठभाष्य, १.१.३)। इनका विशेष विवरण वहीं (पृ. २१६–२१७ जंगमवाड़ी संस्करण) देखिये।

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैर्वा बहुविस्तरैः ।
यस्योंनमः शिवायेति मन्त्रोऽयं हृदि संस्थितः ।। २३।।
[१]तेनाधीतं श्रुतं देवि तेनाचारः सुनिष्ठितः ।
येनोंनमः शिवायेति मन्त्राभ्यासः स्थिरीकृतः ।। २४।।
नमस्कारादिसंयुक्तं शिवायेत्यक्षरत्रयम् ।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम् ।। २५।।
अन्त्यजो वाऽधमो वापि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा ।
पञ्चाक्षरजपे निष्ठो मुच्यते पाशबन्धनात् ।। २६।।
तस्मात् षडक्षरो मन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
षडक्षरमयं देवं मां तु यो जपते भुवि ।। २७।।
तस्य मुक्तिः करस्था स्याद् वीरशैवरतस्य च ।

पञ्चाक्षरमन्त्रोद्धारः

शैवाश्रमवतां पुंसां लिङ्गिनां वीरशैविनाम् ।। २८।।
मम पञ्चाक्षरो मन्त्रः कल्पवृक्षो धरात्मजे ।
अस्याः परमविद्यायाः स्वरूपमतिशोभनम् ।। २९।।

के लिये अनेक मन्त्रों की और बहुत विस्तार वाले शास्त्रों की क्या आवश्यकता है।।२३।। हे देवि ! जिन्होंने अपने मन में षडक्षर मन्त्र का अभ्यास स्थिर कर लिया है, उन्होंने सब कुछ पढ़ लिया और सुन लिया है, उन्होंने आचार का भी भली-भाँति पालन कर लिया है।।२४।। 'नमः' पद से संयुक्त 'शिवाय' ये तीन अक्षर, अर्थात् पंचाक्षर मन्त्र जिसकी जिह्वा पर सदा विराजमान है, उसका जन्म सफल हो गया माना जाता है।।२५।। अन्त्यज हो या अधम, मूर्ख हो अथवा पंडित— जो कोई भी व्यक्ति पंचाक्षर मन्त्र के जप में निष्ठापूर्वक लगा है, वह संसार के पाशबन्धन से मुक्त हो जाता है। इस तरह से यह षडक्षर मन्त्र सभी सिद्धियों को देने वाला है।।२६-२७।। जो व्यक्ति इस पृथ्वीतल पर षडक्षर मन्त्र के रूप में विद्यमान मुझ शिव का जप करता है, वीरशैव धर्म का पालन करने वाले उस व्यक्ति के हाथ में मुक्ति स्थित है।।२७-२८।।

हे धरात्मजे ! शैवाश्रम में प्रविष्ट इष्टलिंगधारी वीरशैवों के लिये मेरा पंचाक्षर मन्त्र कल्पवृक्ष के समान अभीष्ट फल देने वाला है।।२८-२९।। इस परम विद्या का स्वरूप

---

१. ततो–ग. घ. ङ.।

श‍ृणुष्व कथयिष्यामि गुह्यं तत्पापनाशनम् ।

पञ्चाक्षरी विद्या

आदौ नमः प्रयोक्तव्यः शिवायेति ततः परम् ।। ३० ।।
एषा पञ्चाक्षरी विद्या प्रणवाद्या षडक्षरी ।
स(यः) शब्दस्तस्य सर्वस्य बीजभूता[1] समासतः ।। ३१ ।।
सर्वज्ञस्याज्ञया सिद्धा तत्स्वरूपार्थवाचकी ।
तप्तचामीकरप्रख्या पीनोन्नतपयोधरा ।। ३२ ।।
चतुर्भुजा त्रिनयना बालेन्दुकृतशेखरा ।
पद्मोत्पलधरा सौम्या वरदाभयपाणिका ।। ३३ ।।
सर्वलक्षणसंपूर्णा सर्वाभरणभूषिता ।
सितपद्मासनासीना नीलकुन्तलमूर्धजा ।। ३४ ।।

पञ्चाक्षरीविद्याया वर्णबीजनिरूपणम्

अस्याः पञ्चविधा वर्णाः प्रस्फुरद्रश्मिमण्डलाः ।
त्वत्स्वरूपं हि देवेशि मत्स्वरूपं नमः स्वयम् ।। ३५ ।।

अत्यन्त सुन्दर है। इसके पापनाशकारी गुह्य स्वरूप को मैं बताता हूँ, उसे तुम सुनो।

पहले 'नमः' पद का प्रयोग करना चाहिये और बाद में 'शिवाय' पद जोड़ना चाहिये।।२९-३०।। यह पंचाक्षरी विद्या का उद्धार क्रम है। इसके साथ प्रारंभ में प्रणव को जोड़ देने से यह षडक्षरी विद्या हो जाती है। यह शब्दमयी विद्या संक्षेप में सारे वाङ्मय की जननी है, अर्थात् सारी शब्दात्मक सृष्टि इसी से होती है।।३१।। सर्वज्ञ शिव की आज्ञा से सिद्ध यह विद्या उसके स्वरूप को अपने अर्थ के रूप में प्रकट करती है। यह तपे हुए सुवर्ण के समान कान्ति वाली, पीन और उन्नत पयोधर वाली, चार भुजा और तीन नयनों वाली, बाल चन्द्रमा को अपने ललाट पर धारण करने वाली, पद्म और उत्पल धारण करने वाली, सौम्य स्वरूप वाली, वरद और अभय मुद्रा से युक्त हाथों वाली, सभी लक्षणों से परिपूर्ण, सभी अलंकारों से सुशोभित श्वेत पद्म पर विराजमान और नील केशकलाप वाली है।।३२-३४।।

हे देवेशि ! इस विद्या के पाँच वर्णों से प्रकाश की किरणें फूटती रहती हैं। ये सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं। इनमें से 'नमः' से मेरा स्वरूप प्रकट होता है।।३५।।

---

१. भूतः समागतः–ख. ग. घ.।

पीतः कृष्णस्तथा धूम्रः स्वर्णाभो रक्त एव च ।
पृथक् प्रयोज्या यद्येते बिन्दुनादसमन्विताः ।। ३६।।
अर्धचन्द्राकृतिर्बिन्दुर्नादो दीपशिखाकृतिः ।
बीजं द्वितीयं बीजेषु मन्त्रस्यास्य वरानने ।। ३७।।
दीर्घपूर्वं तुरीयं स्यात् पञ्चमं शक्तिमादिशेत् ।

ऋषि–छन्दो–देवतानिरूपणम्

वामदेवो नाम ऋषिः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम् ।। ३८।।
देवता शिव एवास्य मनोर्गिरिसुतेऽस्म्यहम् ।
गौतमोऽत्रिर्महादेवि विश्वामित्रस्तथाङ्गिराः ।। ३९।।
भारद्वाजश्च वर्णानां ऋषयः क्रमशः स्मृताः ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च छन्दांसि बृहती विराट् ।। ४०।।

वर्णानामधीशाः स्थानानि च

शिवो रुद्रो महादेव ईश्वरः परमेश्वरः ।
तेषामधीशा वर्णानां क्रमेणैते शिवादयः ।। ४१।।

इन पाँच मन्त्राक्षरों का वर्ण पीला, काला, धूम्र, स्वर्ण–सदृश और लाल है। यदि इनका अलग–अलग प्रयोग करना हो, तो इनमें से प्रत्येक के साथ बिन्दु और नाद का भी संयोजन करना पड़ता है।।३६।। हे वरानने ! बिन्दु का स्वरूप अर्धचन्द्र की आकृति का और नाद का स्वरूप दीपशिखा की आकृति का होता है। इस मन्त्र के बीजों में दूसरे बीज का उद्धार इस प्रकार किया जाता है— इसके चौथे वर्ण को दीर्घपूर्व(वाँ) और पाँचवें(यँ) को शक्ति मानना चाहिये।।३७–३८।।

हे गिरिपुत्रि ! इस मन्त्र के वामदेव नाम के ऋषि और छन्द पंक्ति है। इस मन्त्र का देवता मैं शिव ही स्वयं हूँ।।३८–३९।। हे महादेवि ! इस मन्त्र के नकार आदि पाँच वर्णों के क्रमशः गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, अंगिरा और भारद्वाज— ये पाँच ऋषि हैं।।३९–४०।। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती और विराट्— ये पाँच छन्द क्रमशः नकार आदि पाँच वर्णों के हैं।

शिव, रुद्र, महादेव, ईश्वर और परमेश्वर ये पाँच क्रमशः उन्हीं वर्णों के अधिपति देवता हैं।।४०–४१।। पंचाक्षरी विद्या के नकार आदि पाँच अक्षरों के क्रमशः

शिवस्य पञ्चवक्त्राणि तेषां स्थानान्यनुक्रमात् ।
पूर्वादि चोर्ध्वपर्यन्तं नकारादि यथाक्रमम् ।। ४२ ।।
उदात्तः प्रथमो वर्णो द्वितीयश्च चतुर्थकः ।
पञ्चमः स्वरितश्चैव मध्यमो निगदः शिवे ।। ४३ ।।

मनोः पर्यायनामानि

[1]मूलं विद्या [१]शिवः शैवं सूत्रं पञ्चाक्षरं तथा ।
षडक्षरं च तस्याहुर्नामानि मुनयो मनोः ।। ४४ ।।

षडङ्गानि

हृदयं मूलविद्येयं नकारः शङ्करः शिरः ।
शिखा मकारः कवचं शिकारो [२]वापि दृक्त्रयम् ।। ४५ ।।
यकारोऽस्त्रं नमः स्वाहा [३]वषड् वौषट् फडित्यपि ।
षड्भिर्वर्णैः षडङ्गानि कुर्यान्मन्त्रस्य पार्वति ।। ४६ ।।

भगवान् शिव के पाँच वक्त्र ही (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और ऊर्ध्व वक्त्र पर्यन्त) इनके स्थान हैं।।४२।। हे शिवे ! इस पंचाक्षरी मन्त्र का प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ वर्ण उदात्त है, पंचम वर्ण स्वरित और तृतीय वर्ण निगद, अर्थात् अनुदात्त है।।४३।।

मूल, विद्या, शिव, शैवसूत्र, पंचाक्षर, षडक्षर— ये सब मुनिगणों के कथनानुसार उस मूलविद्या के ही पर्याय नाम हैं।।४४।।

यहाँ मूल विद्या हृदयस्थानीय है, शंकरस्वरूप नकार शिरःस्थानीय, मकार शिखा, शिकार कवच, वकार नेत्रत्रय तथा यकार अस्त्रस्थानीय है। हे पार्वति ! नमः, स्वाहा, वषट्, हुँ, वौषट् और फट्— इन छः वर्णों से मन्त्र के छः अंगों की कल्पना करनी चाहिये।।४५-४६।।

---

१. शिवम्–क. ख.। २. वाक्पदत्रयम्–ग. घ. ङ.। ३. "वषड् हुं च यथाक्रमम्। वौषट् फडिति देवेशि [2]पल्लवाः षट् प्रकीर्तिताः।।" इति पाठः–ख.।

1. सिद्धान्तशिखामणि (८.३) से तुलना कीजिये।

2. पल्लवोद्धरणं तूक्तं ग्रन्थान्तरे— स्रष्टुर्विंशतिकं बीजं पञ्चविंशतिकं ततः। द्व्यक्षरं सविसर्गं च हृन्मन्त्रे पल्लवं स्मृतम्।। 'नमः' इति। प्राणस्य सप्तमं ह्यापो द्वितीयस्वरयुक् क्रमात्। खे द्वितीयस्वरं तद्वच्छिरोमन्त्रस्य पल्लवम्।। 'स्वाहा' इति। पार्थिवान्ताक्षरं यस्य तृतीयं चाक्षरं ततः। दशान्तव्यञ्जनं तद्वच्छिखामन्त्रस्य पल्लवम्।। 'वषट्' इति। चतुर्थान्तं स्वरं बिन्दुनादौ च गगनाक्षरे। युञ्जीयात् कवचं मन्त्रं पल्लवं परिकीर्तितम्।। 'हुं' इति। बीजद्वये शिखायाश्च पल्लवे पूर्वमक्षरम्। चतुर्दशस्वरोपेतं नेत्रमन्त्रस्य पल्लवम्।। 'वौषट् इति। एकविंशतिवर्णान्तं दशान्तव्यञ्जनं तथा। एतदायुधमन्त्रस्य पल्लवं चेति कीर्तितम्।। 'फट्' इति। नमोऽन्तं हृदयं विद्यात् स्वाहान्तं शिरसो भवेत्। वषडन्तं शिखा ज्ञेयं हुकारं कवचस्य तु।। वौषड् नेत्रत्रयान्तं स्यात् फट्कारं चास्त्रमन्त्रतः।। इति शुद्धाख्यतन्त्रे। लैङ्गेऽपि षडशीतितमाध्याये।

मन्त्रवर्णन्यासप्रकारः

मन्त्रवर्णादिकान् न्यस्येत् पञ्चमूर्तीर्यथाक्रमम् ।
तर्जनीमध्ययोरन्त्यानामिकाङ्गुष्ठके पुनः ।। ४७।।
ताः स्युस्तत्पुरुषाघोरसद्योवामेशसंज्ञकाः ।
वक्त्रहृत्पादगुह्येषु निजमूर्धनि ताः पुनः ।। ४८।।
प्राग्याम्यवरुणोदीच्यमध्यचक्रेषु पञ्चसु ।
मन्त्राग्राणि न्यसेत् पश्चाज्जातियुक्तानि षट् क्रमात् ।। ४९।।
कुर्वीत गोलकन्यासं[1] रक्षायै तदनन्तरम् ।
हृदि वक्त्रांसयोरूर्वोः कण्ठे नाभौ द्विपार्श्वयोः ।।५०।।
पृष्ठे हृदि ततो मूर्ध्नि वदने नेत्रयोर्न्यसेत् ।
दोषोः संधिषु साग्रेषु विन्यसेत् तदनन्तरम् ।।५१।।

मन्त्र के पाँच वर्णों के साथ शिव की पंचब्रह्म मूर्तियों का यथाक्रम तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा और अंगुष्ठ में न्यास करे।।४७।। शिव की पंचब्रह्म मूर्तियों के नाम तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान हैं। अपने मुँह, हृदय, पाद, गुह्य और सिर पर इनका न्यास किया जाता है।।४८।। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और ऊर्ध्व— इन पाँच दिशाओं में प्रणवरहित मन्त्र के पाँच अक्षरों का तथा समष्टि और व्यष्टि के रूप में प्रणव सहित छः अक्षरों का क्रमशः विन्यास किया जाता है।।४९।। इसके बाद आत्मरक्षा के लिये साधक गोलक न्यास करे। हृदय, मुख, अंस (कन्धा), ऊरु, कण्ठ, नाभि, दोनों पार्श्वों में।।५०।। पृष्ठ, हृदय, मस्तक, मुख और दोनों नेत्रों में तथा इसके बाद दोनों भुजाओं, कोहनियों और कलाइयों पर षडक्षर विद्या का न्यास करे।।५१।।

---

1. प्रणवं हृदयं विद्यान्नकारः शिर उच्यते। शिखा मकार आख्यातः शिकारः कवचं तथा।। वाकारो नेत्रमस्त्रं तु यकारः परिकीर्तितः।। इति सूक्ष्मतन्त्रेऽपि तृतीयपटलेऽयमुक्तो गोलकन्यासः। सूक्ष्मागम (वाराणसी-संस्करण) के परिशिष्ट भाग (पृ. १५५) में इसका लक्षण भिन्न प्रकार से दिया गया है। ॐ नं तत्पुरुषाय नम इति तर्जन्याम्, ॐ मं अघोराय नम इति मध्यमायाम्, ॐ शिं सद्योजाताय नम इति कनिष्ठायाम्, ॐ वां वामदेवाय नम इत्यनामिकायाम्, ॐ यं ईशानाय नम इत्यङ्गुष्ठयोः— इत्यङ्गुलिन्यासः। पुनस्ता एव वक्त्रादिस्थानेषु प्रोक्तपञ्चवक्त्रेषु च तद्वदेव न्यस्य षडङ्गानि न्यसेत्। ततो हृदादिस्थानेषु न्यासाः कर्तव्याः। न्यासादिविधिस्तु सम्यगुक्तो लैङ्गे, शैवे वायवीयसंहितायामपि।

शिरोवदनहृत्कुक्षिसोरुपादद्वये शिवे ।
[१]हृदि वक्त्राम्बुजे कण्ठे[२] मृगाभयवरेष्टदाः[३] ।।५२।।
वक्त्रांसहृत्सु पादोरुजठरेषु क्रमान्न्यसेत् ।
मूलमन्त्रेषु[४] मन्त्रार्णान्[५] यथावद् देवि विन्यसेत् ।।५३।।
मूर्ध्नि फालोदरांसेषु[६] हृदये तान् पुनर्न्यसेत् ।
पश्चादनेन मन्त्रेण कुर्वीत व्यापकं सुधीः ।।५४।।
नमोऽस्तु स्थाणुभूताय ज्योतिर्लिङ्गामृतात्मने ।
चतुर्मूर्तिवपुश्छायाभासिताङ्गाय शम्भवे ।।५५।।
एवं न्यस्तशरीरोऽसौ चिन्तयेन्मां महेश्वरि ।

अथ ध्यानम्

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ।।५६।।

हे शिवे ! सिर, वदन, हृदय, कुक्षि, ऊरु और दोनों पैरों पर हृदय और वदन कमल पर टंक, मृग, अभय और इष्ट वर देने वाली मुद्राओं का विन्यास करे।।५२।। हे देवि ! मुख, अंस (कन्धा), हृदय, पाद, ऊरु और उदर पर क्रमशः मूल मन्त्र के छः वर्णों का यथावत् विन्यास करे।।५३।। सिर, ललाट, उदर, गुदा, लिंग और हृदय— इन स्थानों में पुनः मूल मन्त्र के अक्षरों का विन्यास करे। फिर आगे बताये मन्त्र से विद्वान् साधक व्यापक न्यास करे।।५४।। [1]स्थाणु स्वरूप, अमृतात्मक ज्योतिर्लिंगस्वरूप, चतुर्मूर्ति के छायामय शरीर वाले अपने शरीर पर भस्म लगाये हुए भगवान् शिव को मैं प्रणाम करता हूँ।।५५।। हे महेश्वरि ! इस प्रकार अपने शरीर को मन्त्र-न्यास से पवित्र करने के बाद साधक मुझ शिव का आगे के श्लोक से चिन्तन (ध्यान) करे।

चाँदी के पर्वत के समान शरीर वाले, चन्द्रकला को ललाट पर आभूषण के रूप में धारण किये हुए, रत्न के आभूषणों को धारण करने से उज्जल प्रभामय अंग वाले;

---

१. पङ्क्तिद्वयं नास्ति–ग. घ.। २. टङ्के–क. ग. घ.। ३. दे–कटि. ख.। ४. मन्त्रस्य–ग. घ. ङ.। ५. न्त्राणां–ग. घ.। ६. राङ्गेषु–क. ख.।

1. स्थाणु शिव का एक नाम है। इसके विशेष विवरण के लिये 'कूर्मपुराण : धर्म-दर्शन", पृ. ३७० देखिये।

एवं ध्यायेन्महादेवि प्रसन्नविमलाशयः ।
देव्याश्च मूलमन्त्रोऽयं किञ्चिद्भेदः[१] समन्वयात् ।।५७।।
तत्रास्य पञ्चमो वर्णो द्वादशस्वरभूषितः ।

पूजाजपहोमादिविधानम्

तस्मादनेन मन्त्रेण मनोवाक्कायभेदतः ।।५८।।
आवयोरर्चनं कार्यं जपहोमादिकं प्रिये ।
यथाश्रद्धं यथाप्रज्ञं यथाकालं यथास्मृति ।।५९।।
यथाशक्ति तु संपाद्य यथायोग्यं यथारति ।
यदा कदाऽपि वा भक्त्या यत्र कुत्रापि वा कृता ।।६०।।
[२]येन केनापि वा देवि पूजा मुक्तिं हि नेष्यति ।
सदा सक्तेन मनसा यत्कृतं परमेष्ठिनः ।।६१।।

परशु, मृग, वरदमुद्रा और अभयमुद्रा से सम्पन्न चार हाथ वाले, कमल पर आसीन, चारों तरफ खड़े देवताओं के द्वारा संस्तुत, व्याघ्रचर्म धारण किये हुए, विश्व के आदिकारण, सारे विश्व के द्वारा वन्दित, समस्त भय को दूर करने वाले, पाँच मुख और तीन नेत्र वाले महेश का नित्य ध्यान करे।।५६।। हे महादेवि ! प्रसन्न और स्वच्छ चित्त वाला साधक इस ध्यान-श्लोक में वर्णित भगवान् शिव के स्वरूप का ध्यान करे। इस मूल मन्त्र में थोड़ा सा भेद करने पर यह देवीं का भी मन्त्र बन जाता है। देवी के मन्त्र में पाँचवां वर्ण बारहवें स्वर से युक्त हो जाता है, अर्थात् उस स्थिति में 'शिवाय' के स्थान पर 'शिवायै' यह मन्त्र का स्वरूप हो जाता है।।५७-५८।।

अतः इस मन्त्र से साधक मन, वाणी और शरीर से हम दोनों (शिव और पार्वती) की पूजा करे, इनका जप करे और इनसे हवन करे।।५८-५९।। अपनी श्रद्धा के अनुसार, अपनी बुद्धि के अनुसार, कालानुरूप, अपनी स्मृति के अनुसार, अपनी शक्ति के अनुसार, अपनी रुचि के अनुसार हम दोनों की पूजा जो साधक जब कभी भी जहाँ कहीं भी, जैसे तैसे भी, जिस किसी वस्तु से भक्तिपूर्वक करता है, तो हे देवि ! वह पूजा उसे मुक्तिमार्ग की ओर ले जायगी।।५९-६१।। सदा निष्ठा से, श्रद्धा-भक्ति से

---

१. भेदं-क. ग. घ.। २. येनेति श्लोकः श्लोकद्वयानन्तरं स्थापितः-ग. घ.।

यत्प्रियं च शिवस्यैव क्रमेण व्युत्क्रमेण वा ।
तथापि शिवभक्ता ये नात्यन्तविवशा नराः ।।६२।।
तेषामर्थो(र्थे) मया देवि नियमः परिकल्पितः ।

तन्त्रसंग्रहणम्

तत्रादौ संप्रवक्ष्यामि तन्त्रसंग्रहणं शुभम् ।।६३।।
यद्विना निष्फलं जाप्यं येन वा सफलं भवेत् ।
[1]आज्ञाहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाभक्तिविवर्जितम् ।।६४।।
आजप्तं दक्षिणाहीनं सदाजप्तं[2] च निष्फलम् ।
आज्ञासिद्धं क्रियासिद्धं श्रद्धासिद्धं क्रियात्मकम् ।।६५।।
तथैव दक्षिणासिद्धं जपसिद्धं महत्फलम् ।

मन्त्रग्रहणार्थं गुरुसेवनम्

तस्माद् गुरुमुपागम्य तोषयेत् तं प्रयत्नतः ।।६६।।
वाचा च मनसा चैव कायेन द्रविणेन च ।
आचार्यं पूजयेच्छिष्यः सर्वदा देवि यत्नतः ।।६७।।

भरे मन से की गई परमेश्वर की पूजा ही परमेश्वर को अत्यन्त प्रिय है, भले ही वह शास्त्र में बताये क्रम से की गई हो अथवा विना क्रम के ही की गई हो।।६१-६२।। हे देवि ! जो शिवभक्त मनुष्य बहुत पराधीन नहीं है, उन्हीं के लिये मैंने नियमों का विधान किया है।।६२-६३।।

अतः विस्तार से शास्त्रों में वर्णित शुभ नियमों को मैं यहाँ संक्षेप में बता रहा हूँ, जिनके पालन न करने से साधक के सारे अनुष्ठान निष्फल और करने से सफल होते हैं।।६३-६४।। ज्ञानहीन, क्रियाहीन, श्रद्धा और भक्ति से रहित, दक्षिणा से रहित जप यदि बार-बार किया जाता है, सदा किया जाता है, तब भी वह निष्फल ही रहता है। इसके विपरीत आज्ञासिद्ध, क्रियासिद्ध, श्रद्धासिद्ध, विधिपूर्वक किया गया और दक्षिणासिद्ध जप महान् फल को देने वाला है।।६४-६६।।

इसलिये मन्त्र की प्राप्ति के लिये गुरु के पास जाकर उसको सभी प्रकार के प्रयत्नों से सन्तुष्ट करना चाहिये। हे देवि ! शिष्य को चाहिये कि वह वाणी से, मन से, शरीर से और धन से आचार्य की प्रयत्नपूर्वक पूजा करे।।६६-६७।। हाथी, घोड़ा, रथ, रत्न,

---

१. ज्ञान-क.। २. सत्यं-ग. घ.।

हस्त्यश्वरथरत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च ।
वासांसि धनधान्यानि रत्नानि विविधानि च ।।६८।।
सर्वांस्तद्गुरवे दद्याद् भक्त्या च विभवे सति ।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ।।६९।।
तस्मान्निवेदयेद् देवि स्वात्मानं सपरिच्छदम् ।
एवं संपूज्य विधिवद् यथाशक्ति त्ववञ्चयन् ।।७०।।

षडध्वशुद्धिः

[१]साधयेत गुरोर्मन्त्रं ज्ञानं देवि क्रमेण तु ।
षडध्वशुद्धमार्गः सन् कुर्यादात्मजिगीषया ।।७१।।
ज्ञात्वा गुरुमुखात् सम्यगज्ञानार्णवमुत्तरेत् ।
कला तत्त्वाध्वभुवनं वर्णं पदमतः परम् ।।७२।।
मन्त्रं चेति समासेन षडध्वानः प्रकीर्तिताः ।

गुरुणा मन्त्रोपदेशः कर्तव्यः

देवि तुष्टो गुरुः शिष्यं पूजकं वत्सरोषितम् ।
अभिषिच्य स्वलङ्कृत्य दद्यान्मन्त्रं शिवात्मकम् ।।७३।।

क्षेत्र (खेत), घर, वस्त्र, धन-धान्य, विविध रत्न— ये सब अपने वैभव (समृद्धि) के अनुसार गुरु को भक्तिपूर्वक दे। यदि शिष्य सिद्धि प्राप्त करना चाहता है, तो उसे यहाँ कंजूसी नहीं करनी चाहिये।।६८-६९।। हे देवि ! सिद्धि प्राप्त करने के लिये, गुरु की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये शिष्य को सारे वैभव के साथ अपने को भी गुरु के लिये समर्पित कर देना चाहिये। बिना वंचना किये अपनी शक्ति के अनुसार विधिपूर्वक गुरु की पूजा करनी चाहिये।।७०।।

हे देवि ! वह शिष्य गुरुप्रदत्त मन्त्र और ज्ञान को क्रमशः धारण करे। उसे आत्मस्वरूप के ज्ञान के लिये गुरुमुख से षडध्व-शुद्धि की प्रक्रिया को सीखना चाहिये। तभी वह अज्ञानरूपी सागर के पार पहुँच सकता है।।७१-७२।। कला, तत्त्व, भुवन, वर्ण, पद और मन्त्र— संक्षेप में ये ही षडध्व के नाम से शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं।।७२-७३।।

हे देवि ! शिष्य की एक वर्ष पर्यन्त की गई सेवा से सन्तुष्ट गुरु शिष्य का अभिषेक

---

१. धारयेत् तं-कटि. ख.।

यो मन्त्रमेनमधिगम्य गुरोर्मुखाब्जात्
कृत्वा षडध्वपरिशोधनपूर्वचर्यः ।
ध्यात्वा जपत्यनुदिनं विषयेष्वसक्त-
स्तस्याचिरेण परितुष्यति चन्द्रमौलिः ।। ७४ ।।

मन्त्रपुरश्चर्या

सोऽभिषेकं गुरोर्लब्ध्वा मन्त्रदीक्षां च गौरवीम् ।
संकल्प्य प्रजपेद् देवि पुरश्चरणपूर्वकम् ।। ७५ ।।
एकाग्रेण शिवं ध्यात्वा चेतसा विजितेन्द्रियः ।
यावज्जीवं जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ।। ७६ ।।
अनश्नन् तत्परो [१]भूत्वा स याति परमां गतिम् ।
जपेदक्षरलक्षं वै चतुर्गुणितमादरात् ।। ७७ ।।
नक्ताशीः संयतमनाः पौरश्चरणिको मतः ।
तत्पुरश्चरणं कृत्वा नित्यजापी भवेन्नरः ।। ७८ ।।

कर उसे अलंकार पहना कर शिवात्मक मन्त्र का उपदेश करे।।७३-७४।। जो शिष्य गुरु के मुखकमल से मन्त्र को प्राप्त कर, षडध्व की शुद्धि आदि चर्याओं को पूरा कर शिव का ध्यान करता हुआ उस मन्त्र का बिना विषयों में आसक्त हुए प्रतिदिन जप करता है, उसके ऊपर चन्द्रमौलि शिव शीघ्र ही सन्तुष्ट हो जाते हैं।।७४।।

हे देवि ! वह शिष्य गुरु से अभिषेक और गुरुतर मन्त्रदीक्षा प्राप्त कर संकल्पपूर्वक मन्त्र का पुरश्चरण करने के बाद मन्त्र का जप करे।।७५।। एकाग्र चित्त से शिव का ध्यान कर अपने मन के द्वारा इन्द्रियों को वश में करके जीवन पर्यन्त वह १००८ बार उस मन्त्र का जप करे।।७६।। भोजन करने से पहले सावधानी से जो ऐसा करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है। जो व्यक्ति मन्त्र के प्रत्येक अक्षर की चार लाख आवृत्ति करता है, रात्रि में भोजन कर संयत भाव से रहता है, [1]पुरश्चरण विधि से उसका मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इस पुरश्चरण को पूरा कर जो मनुष्य उसका नित्य जप करता

---

१. भुक्त्वा–क., जप्त्वा–कटि. ख.।

1. पुरश्चरण का संक्षिप्त स्वरूप सूक्ष्मागम (३.४५-४८) में बताया गया है। इसका विस्तार चन्द्रज्ञानागम की प्रस्तावना (पृ. १६-१७) में देखिये।

तस्य नास्ति समो लोके स सिद्धः सिद्धिदो भवेत् ।

जपविधिप्रकारोपदेशः

स्नानं कृत्वा शुचौ देशे लब्ध्वा रुचिरमासनम् ।। ७९।।
शिवभक्त्या शिवं ध्यात्वा स्वगुरोः सन्निधौ हृदि ।
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा मौनी चैकाग्रमानसः ।। ८०।।
विशोद्ध्य पञ्चतत्त्वानि [1]दहनाप्लावनादिभिः ।
मन्त्रन्यासादिकं कृत्वा [१]सकलीकृतविग्रहः ।। ८१।।
आवयोर्विग्रहं ध्यायेत् प्राणापानौ नियम्य च ।
विद्यास्थानं परं रूपमृषिश्छन्दस्तु दैवतम् ।। ८२।।
बीजं शक्तिं तथा वाच्यं स्मृत्वा पञ्चाक्षरं जपेत् ।

त्रिविधो जपः

[2]उत्तमं मानसं जप्यमुपांशुं मध्यमं विदुः ।। ८३।।

है, उसके बराबर इस लोक में कोई नहीं है, उसका मन्त्र सिद्ध हो जाता है, वह दूसरों को भी सिद्धि देने में समर्थ हो जाता है।।७७-७९।।

स्नान करने के बाद पवित्र स्थल पर अपना मनोनुकूल आसन बिछा कर शिव का भक्तिभावपूर्वक ध्यान कर अपने गुरु की सन्निधि में उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख बैठकर मौन धारण कर एकाग्र चित्त से [1]दहन, आप्लावन आदि के द्वारा अपने शरीर में स्थित पंचतत्त्वों का शोधन कर तथा मन्त्रन्यास आदि के द्वारा अपने देह का सकलीकरण कर, अर्थात् उसे देवमय बनाकर प्राण और अपान, अर्थात् प्राणायाम के द्वारा अपने श्वास-प्रश्वास का निरोध कर हमारे दोनों के विग्रह का ध्यान करे।।७९-८२।। विद्या की उत्पत्ति के स्थान पर रूप का, ऋषि, देवता और छन्द का; बीज, शक्ति और मन्त्र के वाच्यस्वरूप का ध्यान कर पंचाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये।।८२-८३।।

---

१. संकुली-क. ख.।

1. प्रायः सभी तन्त्रागम-ग्रन्थों में भूतशुद्धि के प्रकरण में प्राणायाम के द्वारा शोष, दाह और आप्लावन की प्रक्रिया का विवरण मिलता है। सकलीकरण से भी यह प्रक्रिया संबद्ध है। चन्द्रज्ञानागम (पृ. ७८, टि. ३) देखिये।

2. यह पूरा प्रकरण आनुपूर्वी से चन्द्रज्ञानागम (१.८.५६-७६) में भी देखा जा सकता है।

अधमं वाचिकं प्राहुरागमार्थविशारदाः ।
उत्तमं रुद्रदैवत्यं मध्यमं विष्णुदैवतम् ।।८४।।
अधमं ब्रह्मदैवत्यं देव्याहुरनुपूर्वशः ।
यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ।।८५।।
मन्त्रमुच्चारयेद् वाचा वाचिकोऽयं जपः स्मृतः ।
जिह्वामात्रपरिस्पन्दमीषदुच्चरितं शिवे ।।८६।।
अपरैरश्रुतं किञ्चिच्छ्रुतं[१] चोपांशुरुच्यते ।
धिया यदक्षरश्रेणिं वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ।।८७।।
शब्दार्थचिन्तनं देवि कथ्यते मानसो जपः ।
वाचिकं चैवमेकं स्यादुपांशुः शतमुच्यते ।।८८।।
साहस्रो मानसः प्रोक्तः सगर्भस्तच्छताधिकः ।

सगर्भो जपः

कुम्भकेन समायुक्तः सगर्भो जप उच्यते ।।८९।।

मानस जप उत्तम, उपांशु मध्यम और वाणी के द्वारा उच्चरित जप अधम है, ऐसा आगम शास्त्र का अनुसरण करने वाले विद्वानों का कहना है।।८३-८४।। हे देवि ! रुद्र देवता वाले मन्त्र उत्तम, विष्णु देवता वाले मध्यम और ब्रह्मा के मन्त्र अधम हैं, यह क्रम सभी शास्त्रों में वर्णित है।।८४-८५।। उच्च, नीच और स्वरित स्वरों के साथ मन्त्र के शब्दों का, उसके पदों और अक्षरों का वाणी के द्वारा जब स्पष्ट उच्चारण किया जाता है, तो वह वाचिक जप कहलाता है।।८५-८६।। हे शिवे ! जिस जप में जिह्वा का स्पन्दनमात्र होता है, बहुत धीरे से जिसका उच्चारण किया जाता है, दूसरों के द्वारा जो सुना नहीं जा सकता या थोड़ा-बहुत सुनाई पड़ता है, ऐसा जप उपांशु कहलाता है।।८६-८७।। हे देवि ! शब्दार्थ का मन में चिन्तन करते हुए मन से ही मन्त्राक्षरों की जो आवृत्ति की जाती है, उसे मानस जप कहते हैं।।८७-८८।। वाचिक जप का फल एक गुना ही रहता है, उससे सौ गुना उपांशु जप का, हजार गुना फल मानस जप का और सगर्भ जप का फल उससे भी सौ गुना बढ़ कर है।।८८-८९।।

कुंभक प्राणायाम के साथ किया गया जप सगर्भ कहलाता है। पूरक और

---

१. च्चिन्ता वो-क., च्छुतं वो-घ.।

आद्यन्तयोरगर्भोऽपि प्राणायामः प्रशस्यते ।
चत्वारिंशत्समावृत्तिः प्राणानायम्य संस्मरेत् ।।९०।।
मन्त्रं मन्त्रार्थविद्धीमान् शक्तः शक्तिमतो जपेत् ।
अगर्भं वा सगर्भं वा सगर्भस्तत्र शिष्यते ।।९१।।

सध्यानो जपः

सगर्भादपि साहस्रः सध्यानो जप उच्यते ।
एषु पञ्चविधेष्वेकः कर्तव्यः शक्तितो जपः ।।९२।।

जपमाला

अङ्गुल्या जपसंख्यानामेकमेकमुदाहृतम् ।
रेखयाऽष्टगुणं विन्द्यात् पुत्रजीवैर्दशाधिकम् ।।९३।।
शतं स्याच्छङ्खमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम् ।
स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ।।९४।।
पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते ।
कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुणितं भवेत् ।।९५।।

रेचक प्राणायाम के साथ किया गया जप अगर्भ कहलाता है। यह जप भी प्रशंसनीय है। प्राणों का नियमन कर मन्त्र की चालीस आवृत्ति करनी चाहिये।।८९-९०।। मन्त्र और मन्त्रार्थ का जानकार विद्वान् अपनी शक्ति के अनुसार शक्तिमान् शिव के मन्त्र का जप करे। अगर्भ अथवा सगर्भ जप किया जा सकता है, किन्तु सगर्भ जप श्रेष्ठ माना जाता है।।९१।।

सगर्भ जप से भी हजार गुना श्रेष्ठ सध्यान जप कहा जाता है। ऊपर बताये पाँच जपों में से कोई भी एक जप शक्ति के अनुसार करना चाहिये।।९२।।

अंगुलि पर जप करने से एक बार के जप का एक ही फल मिलता है। अंगुलिरेखा पर जप करने से आठ गुना और पुत्रजीव की माला पर किया गया जप दस गुना फल देता है।।९३।। शंखमणि पर किया गया जप सौ गुना, प्रवाल मणि पर हजार गुना, स्फटिक माला पर दस हजार गुना और मोती की माला पर लाख गुना फल मिलता है।।९४।। कमलाक्ष की माला पर दस लाख गुना, सौवर्ण मणि की माला से कोटिगुणित तथा कुशग्रन्थि और रुद्राक्षमाला पर किया गया जप अनन्तगुणित फल को देने वाला है।।९५।।

त्रिंशदक्षैःकृता माला धनदा जपकर्मणि ।
सप्तविंशतिसंख्याकैरक्षैः पुष्टिप्रदा शिवे ।। ९६।।
पञ्चविंशतिसंख्याकैः कृता मुक्तिं प्रयच्छति ।
अक्षैस्तु पञ्चदशभिरभिचारफलप्रदा ।। ९७।।

जपेऽङ्गुलीनां विनियोगः

अङ्गुष्ठं मोक्षदं विन्द्यात् तर्जनी शत्रुनाशनी ।
मध्यमा धनदा शान्तिं कुरुतेऽनामिकाजपात् ।। ९८।।
कनिष्ठा रक्षिणी प्रोक्ता पुत्रदा च विशेषतः ।
अङ्गुष्ठेन जपं जप्यं[1] सहान्याङ्गुलिभिः सदा ।। ९९।।
अङ्गुष्ठरहितं जप्यं कृतं तद्फलं भवेत् ।

गोष्ठादिजपे फलवैशिष्ट्यम्

[2]जप्याद् गृहे समफलं गोष्ठे शतगुणं विदुः ।। १००।।
पुण्यारण्ये तथाऽऽरामे सहस्रगुणमुच्यते ।
अयुतं पर्वते देवि नद्यां लक्षमुदाहृतम् ।। १०१।।

हे शिवे ! जप करते समय तीस रुद्राक्ष मणियों की माला धन देने वाली और २७ मणियों की माला धन-धान्य की पुष्टि करने वाली है।।९६।। पचीस रुद्राक्ष मणियों से बनाई गई माला मुक्ति को देने वाली है। इसी तरह से अभिचार कर्म की सिद्धि के लिये पन्द्रह रुद्राक्ष मणियों की माला बनाई जाती है।।९७।।

अंगूठे की सहायता से किया गया जप मोक्ष को देने वाला है। जप कर्म में तर्जनी का उपयोग शत्रुनाशकारी, मध्यमा का धनप्रद और अनामिका का शान्ति को देने वाला है।।९८।। कनिष्ठा अंगुलि से किया गया जप रक्षा करने वाला और विशेष कर पुत्र को देने वाला है। जप करते समय अंगूठे की सहायता से अन्य अभीष्ट अंगुलियों का उपयोग करना चाहिये। बिना अंगूठे के किया गया जप निष्फल हो जाता है।।९९-१००।।

अपने घर में जप करने से उसकी संख्या के बराबर ही फल मिलता है। गोशाला में जप करने का सौ गुना फल होता है और पवित्र वन तथा उद्यान में जप करने से हजार गुना। हे देवि ! पर्वत पर दस हजार गुना और नदी तट पर जप करने से लाख गुना फल मिलता है।।१००-१०१।। हे देवि ! देवालय में जप करने पर कोटिगुणित

---

१. जाप्यं-ग. घ. ङ.। २. जाप्यं गृहे-ख. ग. घ.।

कोटिं देवालये देवि अनन्तं शिवसंनिधौ ।
सूर्यस्याग्नेर्गुरोरिन्दोर्दीपस्य च जलस्य च ।। १०२।।
लिङ्गस्य च गवां चैव संनिधौ शस्यते जपः ।

पञ्चाक्षरीजपमाहात्म्यम्

पुमान् सदाचाररतो जपेत् पञ्चाक्षरीमिमाम् ।। १०३।।
अस्मिन् सिद्धे महामन्त्रे [1]सर्वे सिद्धा गिरीन्द्रजे ।
यो जनः कीर्तयेद् भक्त्या शृणुयाद्वा समाहितः ।। १०४।।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति मम सन्निधिम् ।

संख्याभेदेन फलभेदः

द्विसहस्रं जपेद् रोगान्मुच्यते नात्र संशयः ।। १०५।।
त्रिसहस्रं जपेन्मन्त्री[2] दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
[3]सहस्रवृद्ध्या प्रजपेत् सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।। १०६।।
आज्यान्वितैस्तिलैः शुद्धैर्जुहुयाल्लक्षमादरात् ।
उत्पातजनितान् क्लेशान् नाशयेत् पर्वतात्मजे ।। १०७।।

और शिव की सन्निधि में अनन्तगुणित फल मिलता है। सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, इष्टलिंग और गाय की साक्षी में जप करना अच्छा माना जाता है।।१०२-१०३।।

हे गिरीन्द्रपुत्रि ! सदाचार का पालन करता हुआ शिवभक्त इस पंचाक्षरी मन्त्र का जप करे। इस महामन्त्र के सिद्ध हो जाने से अन्य सभी मन्त्र अपने आप सिद्ध हो जाते हैं।।१०३-१०४।। जो मनुष्य भक्तिभाव से इस पंचाक्षरी विद्या का कीर्तन करता है अथवा सावधानी से इसको सुनता है, तो वह सभी पापों से मुक्त होकर शिव की सन्निधि प्राप्त कर लेता है।।१०४-१०५।।

इस पंचाक्षरी विद्या का दो हजार बार जप करने से मनुष्य रोगों से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। तीन हजार बार जप करने वाले को दीर्घ आयु प्राप्त होती है। इसमें एक सहस्र की वृद्धि से, अर्थात् चार हजार बार जप करने वाले की सभी कामनाएं पूरी हो जाती हैं।।१०५-१०६।। हे पर्वतपुत्रि ! घृतमिश्रित शुद्ध तिलों की एक लाख बार आदर के साथ मन्त्रोच्चारपूर्वक आहुति देने पर सभी प्रकार की दैविक और भौतिक आपदाओं का और आध्यात्मिक क्लेशों का नाश हो जाता है।।१०७।। हे पार्वति ! एक कोटि संख्या में जप करने वाला मनुष्य साक्षात् शिव हो जाता है।

---

१. सर्वाः-क.। २. मन्त्रं-क.। ३. पङ्क्तिरियं टिप्पण्यां स्थापिता-ख.।

शतलक्षं जपेत् साक्षाच्छिवो भवति मानवः ।
किमत्र बहुनोक्तेन मम रूपं स पार्वति ।।१०८।।

पञ्चाक्षरीजपेन शिवपुरप्राप्तिः

पञ्चाक्षरीं नियमवानपि यो जपेत
तस्मिन् समाहितमनाः शुचिरात्मवश्यः ।
क्षेत्रे शिवस्य परमे भुवि पर्वते वा
गच्छेत् स शङ्करपुरं शिवसंनिकाशः ।।१०९।।
इति ते कथितं देवि मनोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
मम पञ्चाक्षरस्यैवं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।११०।।

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे [1]शिवाद्वैतसिद्धान्ते दीक्षाप्रकरणे पञ्चाक्षरीजपानुष्ठानस्वरूपनिरूपणं नाम एकादशः पटलः समाप्तः[2] ।।११।।

अधिक कहने से क्या लाभ है, इतना ही कहना पर्याप्त है कि वह साक्षात् मेरा ही स्वरूप हो जाता है।।१०८।।

जो मनुष्य सभी आवश्यक नियमों का पालन करता हुआ, समाहित चित्त से, शरीर को भी पवित्र बनाकर अपने सारे इन्द्रियजाल को वश में करके इस पंचाक्षरी मन्त्र का जप करता है, शिव के पवित्र क्षेत्र, पवित्र भूमि अथवा पर्वत पर निवास करता है, तो वह शिवस्वरूप होकर शंकर की नगरी कैलास में निवास करता है।।१०९।। हे देवि ! इस तरह से मैंने तुमको मन्त्र की और मेरे पंचाक्षर मन्त्र की उत्तम महिमा का वर्णन कर दिया है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहती हो।।११०।।

इस प्रकार शिवाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक पारमेश्वर तन्त्र के दीक्षाप्रकरण का पंचाक्षरी जप के अनुष्ठान के स्वरूप का निरूपक यह ग्यारहवां पटल समाप्त हुआ।।११।।

---

१. 'शिवा........रणे' नास्ति–ग. ङ.। २. 'समाप्तः' नास्ति–क. ख. ङ.।

द्वादशः पटलः

[1]ज्ञानयोगस्वरूपनिरूपणम्

[१]श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव महेश मृड शङ्कर ।
ज्ञानयोगस्य माहात्म्यं वद मे करुणाकर ॥१॥

ईश्वर उवाच

ज्ञानयोगयोः परस्परापेक्षा

चर्याचर्या च सततमहिंसा ज्ञानसंग्रहः ।
सत्यमस्तेयमास्तिक्यं श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रहः ॥२॥
अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
ज्ञा(दा)नमीश्वरभावश्च यजनं याजनं शिवे ॥३॥
अन्तर्यागो बहिर्यागः सततं ज्ञानशीलता ।
य एवं वर्तते योगी ज्ञानयोगस्य सिद्धये ॥४॥
अचिरादेव विज्ञानं लब्ध्वा योगं च विन्दति ।
[२]दग्ध्वं देहमिमं ज्ञानी क्षणाज्ज्ञानाग्निना व्ययेत् ॥५॥

देवी का प्रश्न

हे देवदेव, महादेव, महेश, सबको सुख देने वाले, सब पर करुणा करने वाले शंकर! आप मुझे ज्ञानयोग की महिमा बताइये।।१।।

शिव का उत्तर

हे पार्वति ! जो योगी सदा सदाचार के पालन में निरत रहता है, अहिंसा व्रत का पालन करता है, सदा ज्ञानार्जन में लगा रहता है, सत्य, अस्तेय आदि का पालन करता है, आस्तिक्य बुद्धि और श्रद्धा से संपन्न है, इन्द्रिय को वश में रखता है, अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन आदि में लगा रहता है, ज्ञानार्जन और ईश्वरभक्ति को ही जो यजन-याजन मानता है, मानस पूजा और बाह्य पूजा में जो सदा लगा रहता है, सतत ज्ञान का अभ्यास करता है, ऐसा योगी ज्ञानयोग की सिद्धि के लिये शीघ्र ही विज्ञानसम्पन्न हो योग की उच्च स्थिति को प्राप्त करता है। तब वह ज्ञानी ज्ञानाग्नि से इस भौतिक देह को एक क्षण में ही भस्म कर देने की सामर्थ्य से सम्पन्न हो जाता है।।२-५।। मेरे अनुग्रह से

१. 'श्रीदेव्युवाच' नास्ति-ग. घ.। २. दग्ध्वा-घ. ङ.।
1. "ज्ञानयोगादिकमुक्तं शैवे वायवीयसंहितायामुत्तरभागे एकादशाध्याये" इति ख. टिप्पणी (पृ. १८८)।

मम प्रसादाद् योगज्ञः कर्मबन्धं प्रहास्यति ।
पुण्यापुण्यात्मकं[1] कर्म मुक्तेस्तत्प्रतिबन्धकम् ॥ ६ ॥
तस्माद्योगं [2]ततो योगी पुण्यापुण्ये विवर्जयेत् ।
फलकामनया कर्म करणं प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥
न कर्ममात्रकरणं तस्मात् कर्मफलं त्यजेत् ।
प्रथमं कर्मयोगेन बहिः सम्पूज्य शङ्करम् ॥ ८ ॥
ज्ञानयज्ञरतो [3]देवि [4]तस्माद्योगं समभ्यसेत् ।
विदिते शिवसात्म्यैककर्मणा[5] ज्ञानयोगिनः ॥ ९ ॥
न यजन्ति शिवं युक्ताः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ।
[6]नित्यमुक्तो महादेवि भक्तिमान् यः समाहितः ॥ १० ॥
ज्ञानयोगरतो योगी मम सायुज्यमाप्नुयात् ।
[7]अथ नीरक्तचित्ता ये वर्णिनः शिवमाश्रिताः ॥ ११ ॥

ऐसा योगी अपने सारे कर्मबन्धन को काट डालता है। पुण्य हो या अपुण्य, सभी प्रकार के कर्म मुक्ति के लिये प्रतिबन्धक ही माने जाते हैं।।६।। इसलिये योगी को चाहिये कि ज्ञान की प्राप्ति के बाद पुण्य और अपुण्य के साथ वह योग का भी परित्याग कर दे। फल की कामना से किया गया कर्म ही फलोन्मुख होता है, बिना कामना का कर्म करण नहीं बन सकता, इसलिये फल की कामना को छोड़ देना चाहिये।।७-८।। हे देवि! पहले कर्मयोग द्वारा शंकर की बाह्य पूजा करके ज्ञानयोग की प्राप्ति के लिये इसके बाद योगाभ्यास करे।।८-९।। ज्ञानयोग के अभ्यास से जिन योगियों को शिव के साथ अपनी समानता का बोध हो जाता है, उनके लिये मिट्टी, पत्थर और सोना एक सा हो जाता है, उनके लिये शिव की बाह्य पूजा का कोई अर्थ नहीं रहता।।९-१० ।। हे महादेवि! जो योगी समाहित चित्त हो ईश्वर-भक्ति में निरत हो जाता है, वह सदा मुक्तिदशा में ही विचरण करता है। ऐसा ज्ञानयोगी मेरी सायुज्य पदवी को प्राप्त कर लेता है।।१०-११।। वर्णाश्रमधर्म का पालन करने वाले जिन व्यक्तियों का चित्त वैराग्यसम्पन्न नहीं हुआ है, ऐसे व्यक्ति यदि शिव की उपासना करना चाहते हैं, तो वे ज्ञान, चर्या (सेवा=भक्ति) अथवा कर्मयोग का सहारा लें। अभी उनमें इतनी ही योग्यता है।।११-१२।।

---

१. ण्यकृतं-ख.। २. न्नियोगतो-ख.। ३. योगी-ग. घ.। ४. मम सायुज्यमाप्नुयात्-ग. घ.। ५. कर्मणि-क.। ६. नित्यं युक्तो-ख. ङ.। ७. अथापि-ख., अथावि-ग. घ. ङ.।

ज्ञानचर्याक्रिया एव तस्मिन् कुर्युस्तदर्हता ।

त्रिधा पञ्चधा च यजनम्

बाह्यमाभ्यन्तरं चैव बाह्याभ्यन्तरमेव च ।। १२ ।।
[1]वाङ्मनःकायभेदेन त्रिधा तद्भजनं विदुः ।
तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं चेत्यनुपूर्वशः ।। १३ ।।
पञ्चधा कथितं रुद्रे तदेव कथितं पुनः ।
अन्यात्मविदितं बाह्यं बाह्यमभ्यर्चनादिकम् ।। १४ ।।
तदेव तु [१]स्वसंवेद्यं न मनोमात्रमुच्यते ।
शिवनामरता वाणी सा या वाणी निगद्यते ।। १५ ।।
लिङ्गैस्तच्छासनोद्दिष्टैस्त्रिपुण्ड्रादिभिरङ्कितः ।
शिवोपचारनिरतः कायः कायो न चेतरः ।। १६ ।।
समर्चा कर्म विज्ञेयं बाह्यं यागादि नोच्यते ।
शिवार्थे[२] देहसंशोषस्तपः कृच्छ्रादि [३]नो मतम् ।। १७ ।।
जपः पञ्चाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव च ।
रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न चान्याध्ययनादिकम् ।। १८ ।।

बाह्य, आभ्यन्तर और बाह्याभ्यन्तर के भेद से भजन तीन प्रकार का होता है। वाणी, मन, और शरीर के भेद से भी यह तीन प्रकार का होता है। हे रुद्राणि! तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान के भेद से यह शिवाराधन पुनः पांच प्रकार का होता है। बाह्य भजन (पूजा=आराधना) वह है, जिसको कि दूसरा व्यक्ति भी जान सकता है। आभ्यन्तर आराधन केवल स्वसंवेद्य होता है।।१२-१५।। शिवनाम के जप में लगी रहने वाली वाणी को ही यहां वाणी कहा गया है। शिवशास्त्र में उपदिष्ट त्रिपुण्ड्र आदि चिह्नों से अंकित और शिव की आराधना में लगा रहने वाला शरीर ही शरीर है, अन्य नहीं।।१५-१६।। इष्टलिंग पूजन को ही यहां कर्म कहा गया है, बाह्य यज्ञ-याग आदि नहीं। शिव की आराधना में शरीर को सुखा देना ही तप है, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि का आचरण नहीं।।१७।। पंचाक्षर मन्त्र का, प्रवण (ॐकार) का और रुद्राध्याय का अभ्यास (बार-बार आवृत्ति) ही यहां जप कहा जाता है, वेदाध्ययन आदि नहीं।।१८।। भगवान् शिव का चिन्तन ही यहां ध्यान है, आत्मा

---

१. सुसं-क. ख.। २. शिवार्थं-ख.। ३. नामकम्-क.।

1. सिद्धान्तशिखामणि (९.२१-२४) से तुलना कीजिये।

ध्यानं च शिवचिन्ता स्यादात्माद्यर्थं समाधयः ।
शिवागमार्थविज्ञानं ज्ञानं [१]नान्यार्थवेदनम् ।।१९।।
बाह्ये चाभ्यन्तरे वाऽत्र यदि स्यान्मनसो रतिः ।
प्राग्वासनावशादेव शिवे निष्ठां समाचरेत् ।।२०।।

बाह्यादाभ्यन्तरं श्रेष्ठम्

बाह्यादाभ्यन्तरं श्रेष्ठं भवेच्छतगुणाधिकम् ।
असङ्कटत्वाद् दुष्टानां दोषाणामप्यसम्भवात् ।।२१।।
शौचमाभ्यन्तरं कुर्यान्न बाह्यं शौचमुच्यते ।
ततः शौचविमुक्तात्मा शुचिरप्यशुचिर्यतः ।।२२।।
बाह्यमाभ्यन्तरं चैव भजनं भावपूर्वकम् ।
न भावरहितं ग्राह्यं विप्रलम्भैककारणम् ।।२३।।
कृतकृत्यस्य तृप्तस्य शिवस्य परमेष्ठिनः ।
न कैः किं क्रियते कर्म भावमात्रं हि गृह्यते ।।२४।।

के साक्षात्कार के निये समाधि लगाना नहीं। शिवागमों के अर्थ को भली-भांति जानना ही ज्ञान है, अन्य वस्तु को जानना नहीं।।१९।। पूर्व जन्म की वासना के अनुरूप ही मनुष्य की बाह्य अथवा आन्तर उपासना में रुचि जगती है, तदनुसार ही उसको शिव की आराधना करनी चाहिये।।२०।।

बाह्य आराधन की अपेक्षा आन्तर (मानस) आराधन सौ गुना फल देने वाला है, क्योंकि इसमें दुष्ट जन कोई संकट खड़ा नहीं कर सकते और इसमें किसी दोष (त्रुटि) की संभावना भी नहीं रहती।।२१।। व्यक्ति को बाह्य शौच की अपेक्षा आभ्यन्तर (मानसिक) शौच (पवित्रता) का ही पालन करना चाहिये, क्योंकि मन की पवित्रता के बिना किया गया बाह्य शौच अपवित्र ही माना जाता है।।२२।। बाह्य और आभ्यन्तर, दोनों प्रकार का भजन भाव (श्रद्धा) पूर्वक होना चाहिये। श्रद्धा-भक्ति से रहित भजन को भगवान् ग्रहण नहीं करते। वह केवल अपने को और दूसरों को भी भुलावे में डालने का मात्र कारण बनता है।।२३।। भगवान् शिव तो कृतकृत्य हैं, परिपूर्ण तृप्ति से सम्पन्न हैं, सबके स्वामी है। उनको कौन क्या कर रहा है, इससे कोई प्रयोजन नहीं है, वे तो केवल भावना के भूखे हैं।।२४।।

---

१. चान्या-क. ग. घ. ङ.।

शिवधर्माधिकारिणां लक्षणानि

अष्टधा लक्षणं प्राहुः शिवधर्माधिकारिणाम्।
येन ज्ञेया नरैरन्यैर्नरा विश्व[१]विचक्षणाः ॥ २५ ॥
शिवभक्तेषु वात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम्।
स्वयमभ्यर्चनं चैव तदर्थं चाङ्गचेष्टनम् ॥ २६ ॥
तत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्राङ्गविक्रिया।
शिवानुस्मरणं नित्यं सर्वथा तदकैतवम् ॥ २७ ॥
एतदष्टगुणं चिह्नं यस्मिन् म्लेच्छेऽपि दृश्यते।
[२]स शिवेन्द्रो यतिः श्रीमान् स शुचिः स च पण्डितः ॥ २८ ॥

भक्तिलक्षणं तस्या भेदा महिमा च

[३]सहानुभावा या सेवा सा भक्तिरिति कथ्यते।
सा पुनर्भिद्यते[४] त्रेधा मनोवाक्कायभेदतः ॥ २९ ॥
परां भक्तिं समभ्येत्य शिवधर्मरतो नरः।
परया च तया भक्त्या प्रसादं लभते नरः ॥ ३० ॥

शिवधर्म के अधिकारी पुरुषों के आठ लक्षण होते हैं, जिनसे अन्य सामान्य मनुष्य इन विश्व-विलक्षण पुरुषों को जान पाते हैं।।२५।। शिवभक्तों के प्रति वात्सल्यभाव रखना, उनके द्वारा की गई पूजा का अनुमोदन करना, स्वयं शिवपूजन करना, और उसके लिये बिना आलस्य के सतत सचेष्ट रहना।।२६।। शिवकथा के श्रवण में भक्ति, कथा-श्रवण के अवसर पर वाणी, नेत्र आदि में भावविभोरता के चिह्न प्रकट होना, नित्य शिव का स्मरण करना और छल-कपट से सदा दूर रहना।।२७।। ये आठ चिह्न जिस किसी भी मनुष्य में रहते हैं, चाहे वह भले ही म्लेच्छ हो, वह श्रेष्ठ शिवभक्त, यति, पवित्र, पंडित और श्रीसम्पन्न माना जाता है।।२८।।

भावना से भरी हुई सेवा ही भक्ति कहलाती है। मन, वाणी और शरीर के भेद से यह तीन प्रकार की होती है।।२९।। शिवधर्म के पालन में लगा हुआ मनुष्य श्रेष्ठ भक्ति को प्राप्त कर लेता है और इस श्रेष्ठ भक्ति के सहारे वह शिव के प्रसाद को प्राप्त करता है।।३०।। देवता हो या मनुष्य, पशु हो अथवा पक्षी, कीट हो या कृमि, ये सभी

---

१. विल-कटि. ग. घ. ङ.। २. पङ्क्तिरेषा नास्ति-ग. घ.। ३. पङ्क्तिरेषा नास्ति-ग. घ.। ४. वीक्ष्यते-ग. घ. ङ.।

देवो वा मानवो वाऽपि पशुर्वा विहगोऽपि वा ।
कीटो वाऽपि क्रिमिर्वाऽपि मुच्यते [१]मत्प्रसादतः ।। ३१ ।।
गर्भस्थो जायमानो वा बालो वा तरुणोऽपि वा ।
वृद्धो वा म्रियमाणो वा स्वर्गस्थो वाऽपि नारकी ।। ३२ ।।
पतितोऽपतितो वाऽपि पण्डितो मूढ एव च ।
प्रसन्ने मयि देवेशि मुच्यते भवबन्धनात् ।। ३३ ।।
अथ ये मानवा लोके स्वेच्छया धृतविग्रहाः ।
भावातिशयसम्पन्नाः पूर्वसंस्कारसंयुताः ।। ३४ ।।
विरक्ता वाऽनुरक्ता वा स्त्रियादिविषयेष्वपि ।
पापैर्न ते विलिप्यन्ते पद्मपत्रमिवाम्भसा ।। ३५ ।।
तेषां शिवात्मविज्ञानं विशुद्धानां शिवात्मनाम् ।
तत्प्रसादविमुक्तानां दुःखमाश्रय[२]लक्षणम् ।। ३६ ।।

शिवयोगिनां चर्या महिमा च

नास्ति कृत्यमकृत्यं च समाधिर्वा परायणम् ।
न विधिर्न निषेधश्च मम साम्यः स चाद्रिजे ।। ३७ ।।

मेरे प्रसाद (अनुग्रह) से मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।।३१।। हे देवेशि! गर्भ में स्थित हो अथवा सद्यःप्रसूत शिशु हो, बालक हो या तरुण हो, वृद्ध हो या मरणोन्मुख हो, स्वर्ग में रह रहा हो अथवा नरक में, पतित हो या पवित्र, पंडित हो या मूर्ख— ये सभी शिव के प्रसाद को पा लेने पर संसार के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।।३२-३३।। इसके अतिरिक्त भी जो मनुष्य अपनी इच्छा से शरीर को धारण किये हुए हैं, उच्च भावना से परिपूर्ण हैं, पूर्व जन्म के सुसंस्कारों से सम्पन्न हैं, ऐसे व्यक्ति यदि स्त्री आदि विषयों में अनुरक्त हों या विरक्त, वे उसी प्रकार पापों से लिप्त नहीं होते, जैसे कि कमलपत्र जल में रहते हुए भी जल से लिप्त नहीं होता।।३४-३५।। ऐसे विशुद्ध शिवयोगियों को अपनी शिवस्वरूपता का ज्ञान हो जाता है। इसके विपरीत शिवप्रसाद से वंचित मनुष्यों को केवल दुःख ही भोगना पड़ता है।।३६।।

हे अद्रिजे ! ऐसे शिवयोगी के लिये करणीय अथवा अकरणीय कुछ भी नहीं रहता। उसमें समाधिस्थ होने अथवा कर्मपरायण रहने पर भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। विधि और निषेध से वह ऊपर उठ जाता है। वह तो शिवसाम्य को प्राप्त कर लेता है।।३७।।

---

१. तत्–ग. घ.। २. श्रम–ग. घ. ङ.।

यथैव परिपूर्णस्य साध्यं मम न विद्यते ।
तथैव कृतकृत्यानां तेषामपि न संशयः ।। ३८ ।।
शिवभक्तहितार्थं ये[1] मानुषं भावमाश्रिताः ।
रुद्रलोकात् परिभ्रष्टास्ते रुद्रा नात्र संशयः ।। ३९ ।।
[2]शिवानुशासनं यद्वद् ब्रह्मादीनां प्रवर्तकम् ।
[3]तथेतरेषां सर्वेषां तन्नियोगः प्रवर्तकः ।। ४० ।।
यथा वह्निसमावेशादयो भवति केवलम् ।
तथैव शिवसान्निध्यान्न ते केवलमानुषाः ।। ४१ ।।
[4]तपस्तपादिसाधर्म्यं रुद्रधर्मवपुर्धरान् ।
प्राकृतानिव मन्वानो नावजानीत पण्डितः ।। ४२ ।।
अवज्ञानं कृतं तेषां नरैर्वा मूढमानसैः ।
आयुः श्रियं कुलं शीलं हत्वा निरयमावहेत् ।। ४३ ।।
[5]ब्रह्मविष्णुमहेन्द्राणामपि तूलायते पदम् ।
शिवादन्यदपेक्षाणामुत्तमानां महात्मनाम् ।। ४४ ।।

जैसे परिपूर्ण स्वभाव से सम्पन्न मेरे लिये कुछ कर्तव्य-कर्म नहीं रहता, उसी तरह से कृतकृत्य शिवयोगी के लिये भी निःसन्देह कोई कर्म करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।।३८।। ऐसे व्यक्ति तो शिवभक्तों के कल्याण के लिये मनुष्य शरीर को धारण करते हैं। वे रुद्रलोक से आये शिव ही हैं, इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है।।३९।। जैसे ब्रह्मा, विष्णु आदि शिव के शासन के अनुसार अपने अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं, उसी तरह अन्य सभी प्राणियों को भी मेरी आज्ञा का पालन करना पड़ता है।।४०।। जैसे अग्नि के संपर्क से लोहा केवल अग्निस्वरूप दिखाई पड़ता है, उसी तरह से शिव के सांनिध्य में आकर शिवयोगी शिवस्वरूप हो जाता है।।४१।। ऐसे शिवयोगियों को, जो कि मनुष्य का रूप धारण किये हुए साक्षात् रुद्र ही हैं, केवल हाथ-पैर आदि की समानता के आधार पर साधारण मनुष्य जानकर समझदार व्यक्ति को उनका अनादर नहीं करना चाहिये।।४२।। मूढ मन के व्यक्ति यदि उनका अपमान करते हैं, तो यह अपमान आयु, लक्ष्मी, कुल और शील का नाश कर उन्हें नरक का भागी बना देता है।।४३।। शिवपद के सिवाय जिनको अन्य कुछ अपेक्षित नहीं है, ऐसे उत्तम महात्माओं के लिये ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि के

१. ते-ग. घ. ङ.। २. श्लोकयोः (४०-४१) विपर्यस्तः पाठः-ग. घ.। ३. तदे-ग. घ. ङ.। ४. हस्तपादादिसाधर्म्याद् रुद्रान् मर्त्यवपुर्धरान्-ख.। ५. श्लोकयोः (४४-४५) विपर्यस्तः पाठः-ग. घ.।

शिवज्ञानवतां पुंसां मोक्षस्तस्य कराम्बुजे ।
सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः सोऽधमोऽपि च ।। ४५ ।।
ततो दयाऽन्यत्र कार्या मोक्षमार्गबहिष्कृते ।

चतुष्पथः शिवधर्मः

[1]ज्ञानं क्रिया च चर्या च योगश्चेति [१]धरात्मजे ।। ४६ ।।
चतुष्पथः समाख्यातः शिवधर्मः सनातनः ।
पशुपाशपतिज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते ।। ४७ ।।
षडध्वशुद्धिर्विधिना गुर्वादीनां क्रियोच्यते ।
वीरशैवप्रयुक्तस्य शिवेन विहितस्य च ।। ४८ ।।
लिङ्गार्चादेः स्वधर्मस्य चर्या चर्येति कथ्यते ।
तदुक्तेनैव मार्गेण शिवसुस्थितचेतसः ।। ४९ ।।
वृत्त्यन्तरनिरोधोऽयं स योग इति कथ्यते ।
अश्वमेधशताच्छ्रेष्ठं देवि चित्तप्रसादतः ।। ५० ।।
मुक्तिदं च तदाप्येतदशक्तं विषयैषिभिः ।
विजितेन्द्रियवर्गस्य यमेन नियमेन च ।। ५१ ।।

पद तुच्छ से प्रतीत होते हैं। मुक्ति इस तरह के शिवज्ञान सम्पन्न महानुभावों के हाथ में रहती है।।४४-४५।। इस तरह से शिवज्ञान का अभाव ही यहां सबसे बड़ी हानि है, यही सबसे बड़ा दोष है। यही मनुष्य को मोह में डालता है, उसे अधम बना देता है। मोक्ष-मार्ग से बहिष्कृत ऐसे व्यक्ति के प्रति कभी दयाभाव नहीं दिखाना चाहिये।।४५-४६।।

हे पार्वति! ज्ञानपद, क्रियापद, चर्यापद और योगपद— इस प्रकार के चार मार्ग वाला यह सनातन शिवमार्ग उपदिष्ट है।।४६-४७।। यहां पशु, पाश और पति का ज्ञान ही ज्ञान के नाम से प्रतिपादित है। गुरु आदि के द्वारा विधिपूर्वक की गई षडध्वशुद्धि ही क्रिया कहलाती है। वीरशैवों के द्वारा आचरित और शिव के द्वारा विहित इष्टलिंगपूजन आदि शैव धर्म का पालन ही चर्या कहलाती है। गुरु आदि के द्वारा प्रदर्शित मार्ग से शिव में मन को एकाग्र करके चित्त की अन्य वृत्तियों का जो निरोध किया जाता है, उसे ही योग कहते हैं।।४७-५०।। यह योग सौ अश्वमेध यागों से भी बढ़कर है, क्योंकि इससे चित्त निर्मल हो जाता है और यह मुक्ति को भी देने वाला है। तो भी विषय-लोलुप व्यक्तियों के लिये इसका अनुष्ठान अशक्य है।।५०-५१।। यम और नियम के अभ्यास से इन्द्रियवर्ग

---

१. नगा-ख.।

1. शिवपुराण वायवीयसंहिता (२.१०.३०-३३) से तुलनीय।

सर्वपापहरो योगो विरक्तस्यैव[1] कथ्यते।
वैराग्याज्जायते ज्ञानं ज्ञानाद् योगः प्रवर्तते ॥५२॥
योगज्ञः पतितो वाऽपि मुच्यते नात्र संशयः।
शिवज्ञानं समासाद्य परं शिवमथाश्नुते ॥५३॥

शिवधर्माचरणमावश्यकम्

यश्चातीव शिवे भक्तो विषयोपरतोऽपि सन्।
शिवधर्मान्न कुर्याद् यः स दोषेणैव लिप्यते ॥५४॥
अर्चयेदम्बिकानाथं सर्वगं सर्वहेतुना।
मम धर्मरतो देवि! श्रेयसे[2] [3]चेत्कृतोद्यमः ॥५५॥

पञ्चाक्षरमनुमाहात्म्यम्

पञ्चाक्षरमनुं नित्यं भावयेच्छिववाचकम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं प्रणवं च परं शिवम् ॥५६॥
पञ्चाक्षरमयीं विद्यां जपन्नेकाग्रमानसः।
प्रणवं जापयामास शङ्करं सम्यगर्चयेत् ॥५७॥

को जीत लेने वाले विरक्त व्यक्ति को ही सभी पापों का नाश करने वाला योग सिद्ध हो पाता है। वैराग्य से ज्ञान की और ज्ञान से योग की प्रवृत्ति होती है।।५१-५२।। योग का ज्ञाता भले ही पतित हो, वह निःसन्देह मुक्त हो जाता है। वह शिवज्ञान को प्राप्त कर परम शिव को प्राप्त कर लेता है।।५३।।

यदि कोई मनुष्य शिव के प्रति भक्ति रहते हुए भी, विषयों से विरक्ति रहते हुए भी, शिवधर्मों का पालन नहीं करता, वह अवश्य ही विविध दोषों से आक्रान्त हो जाता है।।५४।। हे देवि! यदि कोई मनुष्य अपना कल्याण चाहता है, तो उसे सभी प्रकार से शिवधर्मों का पालन करते हुए सर्वत्र व्याप्त पार्वतीपति भगवान् शिव की सभी प्रकार से आराधना करनी चाहिये।।५५।।

उसे शिव के वाचक पंचाक्षर मन्त्र की नित्य भावना करनी चाहिये और भुक्ति एवं मुक्ति के प्रदाता दिव्य प्रणव की परम शिव के स्वरूप में उपासना करनी चाहिये।।५६।। एकाग्र मन से पंचाक्षरमयी विद्या का जप करते हुए और प्रणव का जप करते हुए वह शिव की भलीभाति पूजा करे।।५७।। हे महेश्वरि! ऐसा करने वाला हजारों अश्वमेध यज्ञों

---

१. शैव–ग. घ.। २. श्रेयसि–ग. घ. ङ.। ३. तत्–ख.।

सोऽश्वमेधसहस्रस्य साधिकस्य महेश्वरि ।
लभते सुमहत्पुण्यं ज्ञानं शाङ्करमच्युतम्[१] ।।५८।।
यो यस्मिन् रुद्रसरसि स्नात्वा पञ्चाक्षरं जपेत् ।
सोऽपि पुण्यं महल्लब्ध्वा भ्रष्टा[२]चारोऽपि लिङ्गवान् ।।५९।।
शिवभावं समाश्रित्य शिवयोगमथाचरेत् ।

पति-पशु-पाशनिरूपणम्

[1]ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः ।।६०।।
पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारपरिवर्तिनः ।
तेषां पतित्वाद् देवेशि ह्यहं पशुपतिः स्मृतः ।।६१।।
मलमायादिभिः पाशैर्बध्नाति स पशून् पतिः ।
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः ।।६२।।
चतुर्विंशतितत्त्वानि माया कर्म गुणा अपि ।
विषया इति कथ्यन्ते पाशा जीवनिबन्धनात् ।।६३।।

के करने से मिलने वाले पुण्य की अपेक्षा अधिक फल प्राप्त करता है और साथ ही उसे अव्यय शिवज्ञान की प्राप्ति भी होती है।।५८।। जिस किसी भी रुद्रसरोवर में स्नान कर जो पंचाक्षर मन्त्र का जप करता है, वह भी महान् पुण्य का भागी होता है। भ्रष्ट आचरण वाला होते हुए भी वह लिंगस्वरूप हो जाता है। अतः शिवभाव में स्थित होकर ही व्यक्ति शिवयोग का अभ्यास करे।।५९-६०।।

ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सभी जीव उस देवों के देव त्रिशूलधारी भगवान् महादेव के पशु कहलाते हैं। ये सब निरन्तर संसार में आते जाते रहते हैं। हे देवेशि! इन सबका पति होने से मैं पशुपति कहलाता हूँ।।६०-६१।। वह पति उन पशुओं को मल, माया आदि पाशों से बांधता है। भक्तिभाव से भलीभांति उपासना करने वालों को वही मुक्त भी कर देता है।।६२।। सांख्यदर्शन में परिगणित २४ जड़ तत्त्व, माया, कर्म और तीनों गुण—ये सभी विषय कहलाते हैं। जीवों को ये बन्धन में डालने वाले हैं, अतः इनको पाश भी कहा जाता है।।६३।। हे महेश्वरि! ब्रह्मा से लेकर स्तंब (क्षुद्र तृण) पर्यन्त सभी पशुओं को इन

---

१. मुच्यते-ग. घ.। २. कारो-क. ख.।

1. चन्द्रज्ञानागम (१.१.१०-१३) और कूर्मपुराण (२.१-११अ.) स्थित ईश्वरगीता के ६-७ अध्यायों से तुलना कीजिये।

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् पशून् बद्ध्वा महेश्वरि ।
पाशैरेतैः पतिश्चाहं(यं) कार्यं कारयति स्वकम् ।। ६४ ।।
इन्द्रियाण्यपि तस्यैव मदाज्ञावशगानि तु ।
कारयन्ति नरं कार्यं वशं च स्वेच्छया पशून् ।। ६५ ।।

पाशच्छेदार्थं वीरशैवदीक्षा ग्राह्या

तस्मात् पशुपतिं मां तु ज्ञात्वा लिङ्गार्चकः शिवे ।
छित्वा पाशानविद्योत्थान् परं निर्वाणमृच्छति ।। ६६ ।।
भुक्तिमुक्तिप्रदो देवि पशुत्वविनिवर्तकः ।
पूजनीयः सदा चाहं यथाश्रद्धं यथाविधि ।। ६७ ।।
यः कुर्यादान्तिकीं दीक्षामादेहान्तमनाकुलः ।
वीरशैवं प्रकुर्वीत स वै नैष्ठिक उच्यते ।। ६८ ।।
[1]सोऽत्याश्रमी च विज्ञेयो महामाहेश्वरः शिवः ।
स एव [१]तपतां श्रेष्ठः स एव हि महाव्रती ।। ६९ ।।
न तेन सदृशः कश्चित् कृतकृत्यो मुमुक्षुषु ।
आदेहान्तमियं दीक्षा महापातकनाशनी ।। ७० ।।

पाशों से बांध कर यह पशुपति उनसे अपना कार्य करवाता रहता है।।६४।। इन पशुओं की सारी इन्द्रियां भी उस पशुपति की आज्ञा के अनुसार ही प्रवृत्त होती हैं। ये पशुओं को अपने वश में करके उनसे अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करवाती रहती हैं।।६५।।

हे शिवे! इस लिये जो व्यक्ति मुझे पशुपति जानकर शिवलिंग की पूजा करता है, तो वह अविद्या से उत्पन्न हुए सारे पाशों को काट कर परम निर्वाण, श्रेष्ठ निःश्रेयस को प्राप्त करता है।।६६।। हे देवि! मैं भोग और मोक्ष को देने वाला और जीव के पशुभाव को दूर करने वाला हूँ। इसलिये अपनी श्रद्धा के अनुसार विधिपूर्वक मेरी सदा पूजा करनी चाहिये।।६७।। जो साधक देहपात पर्यन्त बिना व्याकुलता दिखलाये संसार-सागर के पार पहुंचा देने वाली वीरशैव दीक्षा ग्रहण कर तदनुसार शिव की आराधना करता है, वही नैष्ठिक कहलाता है।।६८।। वह वीरशैव दीक्षा प्राप्त नैष्ठिक शिवयोगी ही अत्याश्रमी, महामाहेश्वर और महाव्रती कहलाता है। वही तपस्वियों में श्रेष्ठ है और वह साक्षात् शिव ही है।।६९।। मुमुक्षु जनों में उसके बराबर अन्य कोई कृतार्थ नहीं है। जीवनपर्यन्त पाली गई यह दीक्षा सभी महापातकों का नाश करने वाली है।।७०।। शिव को अपनी आत्मा समर्पित कर जो

---

१. यतिनां–ख., यततां–ङ.।

1. अत्याश्रमी शब्द का विवरण 'शिवपुराण : धर्म-दर्शन' (पृ. ३३७) में देखिये।

कृतकृत्यश्च निष्कामो यश्चरेद् वीरशैवगः ।
शिवार्पितात्मा सततं न तेन सदृशः क्वचित् ।।७१।।
यः पश्येद् वीरशैवस्थं ब्रह्महत्यादिसम्भवैः ।
पापैर्विमुच्यते सद्यो मुच्यते च भवार्णवात् ।।७२।।
शिवाग्नेर्यत्परं वीर्यं तद्वीर्यं वीरशैविनः ।
तस्मात् सर्वेषु कालेषु वीर्यवान् शिवमर्चयेत् ।।७३।।
वेद एव द्विजातीनां स्त्रीणां च स्वपतिर्यथा ।
संन्यासिनां ज्ञानमेव शैवानां वीरशैवकम् ।।७४।।

शिवात् परतरो नास्ति

यथा सर्वेषु देवेषु ह्यधिको मेघवाहनः ।
तस्यासीदधिको ब्रह्मा स तस्मादधिको हरिः ।।७५।।
विष्ण्वादीनां च सर्वेषामधिकोऽहं परः शिवे ।
मत्तः परतरो नास्ति मन्मतं तु तथैव हि ।।७६।।

जीवेषु श्रेष्ठतातारतम्यम्

क्रिमिकीटपतङ्गेभ्यः पशवः प्रज्ञयाधिकाः ।
पशुभ्योऽपि नराः श्रेष्ठास्तेषु श्रेष्ठा द्विजातयः ।।७७।।

वीरशैव सदा के लिये कृतार्थ हो गया है, जिसको अब किसी फल की आकांक्षा नहीं है, उसके बराबर दूसरा कोई नहीं है।।७१।। इस प्रकार वीरशैव धर्म के अनुष्ठान में जो दृढता से स्थित है, उसको आदर से देखने वाला व्यक्ति भी ब्रह्महत्या आदि से उत्पन्न पापों से तत्काल मुक्त हो इस संसार-सागर को तत्काल पार कर लेता है।।७२।। शिवाग्नि में जो श्रेष्ठ सामर्थ्य है, वही सामर्थ्य वीरशैव धर्म का पालन करने वाले में भी है। इस तरह की सामर्थ्य से सम्पन्न साधक को सदा सभी कालों में शिव की पूजा करनी चाहिये।।७३।। द्विजातियों का जैसे वेद आश्रय है, जैसे स्त्रियों का पति और संन्यासियों का ज्ञान आश्रय है, उसी तरह से सभी प्रकार के शैवों का आश्रय वीरशैव धर्म है।।७४।।

जैसे सभी देवताओं में मेघवाहन इन्द्र श्रेष्ठ है, उससे भी श्रेष्ठ ब्रह्मा और उनसे भी श्रेष्ठ विष्णु हैं। हे शिवे! इन सब विष्णु आदि देवताओं में मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ। मुझसे बढ़कर कोई नहीं है, उसी तरह से वीरशैव मत से बढ़कर भी.अन्य कोई मत नहीं है।।७५-७६।।

द्विजातिष्वधिका[1] विप्रा विप्रेषु [2]कृतबुद्धयः ।
[2]कृतबुद्धिषु कर्तारस्तेभ्यः संन्यासिनोऽधिकाः ॥७८॥
तेषु विज्ञानिनः श्रेष्ठास्तेषु शङ्करपूजकाः ।
तेषु श्रेष्ठा महादेवि मम लिङ्गाङ्गसङ्गिनः ॥७९॥
लिङ्गाङ्गसङ्गिष्वधिका मम योगरता नराः ।
तेषु श्रेष्ठा महावीरशैवदीक्षापरा नराः ॥८०॥
तेषामप्यधिको नास्ति त्रिषु लोकेषु शैलजे ।
मत्तः परतरं नास्ति मन्मतं तु तथैव हि ॥८१॥
अहमेव हि देवेशि वीरमाहेश्वरो नरः ।

नामस्मरणमहिमा

शिवो महेश्वरः शम्भुः पिनाकी च पितामहः ॥८२॥
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेत्यमुं मनुम् ।
जपेन्नियमवान् नित्यं यो नरः संयतेन्द्रियः ॥८३॥

कृमि, कीट आदि क्षुद्र जीवों की अपेक्षा पशुओं में बुद्धि (चेतना) अधिक होती है। इन पशुओं की अपेक्षा मनुष्य श्रेष्ठ हैं और इनमें भी द्विजाति श्रेष्ठ है। द्विजातियों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है और उन ब्राह्मणों में भी शास्त्र का अध्ययन करने वाले श्रेष्ठ हैं। इनकी अपेक्षा भी अधीत शास्त्र को अपने जीवन में उतारने वाले श्रेष्ठ हैं और संन्यासी इनसे भी श्रेष्ठ हैं।।७७-७८।। हे महादेवि! इन संन्यासियों में भी ज्ञानी श्रेष्ठ हैं और इन ज्ञानियों की अपेक्षा भी शंकर की आराधना करने वाले श्रेष्ठ हैं। इन शिवपूजकों में भी इष्टलिंगधारी वीरशैव श्रेष्ठ हैं।।७९।। इन इष्टलिंगधारियों की अपेक्षा भी शिवयोग के अभ्यास में लगे हुए योगी श्रेष्ठ हैं और इनकी अपेक्षा भी वे मनुष्य श्रेष्ठ हैं, जो कि महान् वीरशैव दीक्षा से सम्पन्न हैं।।८०।। हे शैलपुत्रि! इनसे बढ़कर तीनों लोकों में अन्य कोई नहीं है। जैसे मुझसे बढकर यहां अन्य कोई नहीं है, उसी तरह से वीरशैव मत से बढकर भी कोई अन्य मत नहीं है। हे देवेशि! वीरमाहेश्वर मनुष्य न होकर साक्षात् शिव ही है।।८१-८२।।

शिव, महेश्वर, शंभु, पिनाकी, पितामह, संसारवैद्य, सर्वज्ञ, परमात्मा— इन सब नामों को मन्त्र की तरह जो संयतचित्त मनुष्य नियमपूर्वक नित्य जपता है, वह सदा मेरे नामों का

---

१. धिको विप्रो–क. ख.। २. क्रतु–क. ख. ङ.।

स एवाहं महादेवि मन्नामस्मरणात् सदा।
शिवः शम्भुः शिवः शम्भुः शिवः शम्भुः शिवः[१] शिवः ॥८४॥
इति व्याहरतो नित्यं दिनान्यायान्तु यान्तु मे।
इमं मनुं वदेद् देवि मम लिङ्गाङ्गसङ्गिनः ॥८५॥

श्रद्धयैव भक्तिः प्रजायते

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तव स्नेहाद् वरानने।
न कर्मणा न तपसा न जपैर्न समाधिभिः ॥८६॥
न दानेन न चान्येन वश्योऽहं श्रद्धया विना।
यस्य श्रद्धास्ति देवेशि येन केनापि हेतुना ॥८७॥
तस्य वश्यो ह्यहं देवि योगिनां वीरशैविनाम्।
वन्द्यः स्पृश्यश्च दृश्यश्च पूज्यः सम्भाव्य एव च ॥८८॥
साध्या तस्मात् सदा श्रद्धा तस्य वश्यो भवाम्यहम्।
श्रद्धा मम मतस्थस्य मयि भक्तिः प्रजायते ॥८९॥

स्मरण करने से मद्रूप (शिवस्वरूप) हो जाता है।।८२-८४।। शिव-शंभु, शिव-शंभु, शिव-शंभु, शिव-शिव— इस तरह से सदा शिवनाम का स्मरण करते रहते हुए ही मेरे लिये सारे दिन आते रहें और बीतते रहें। हे देवि! इष्टलिंगधारी को इस मन्त्र का जप सदा करते रहना चाहिये।।८४-८५।।

हे देवि! सुनो, हे वरानने! तुम्हारे ऊपर स्नेह होने के कारण यह बात मै तुम्हें बता रहा हूँ कि नाना प्रकार के यज्ञ-याग आदि कर्मों से, तपस्या से, मन्त्रजप से, समाधि का अभ्यास करने से, दान करने से अथवा बिना श्रद्धा के किये गये इसी तरह के अन्य उपायों से मैं वश में नहीं होता।।८६-८७।। हे देवेशि! जिसके मन में जिस किसी भी उपाय से श्रद्धा उत्पन्न हो गई है, उसी के वश में मैं रहता हूँ। अतः हे देवि! वीरशैव योगियों को चाहिये कि वे सदा मेरी ही वन्दना करें, मुझे ही छूने और देखने का प्रयत्न करें, मेरी ही पूजा करें और मेरे प्रति आदरभाव दिखावें।।८७-८८।। श्रद्धा की इस महिमा को देखते हुए यत्नपूर्वक उसकी प्राप्ति के लिये ही लग जाना चाहिये। मैं श्रद्धायुक्त मनुष्य के ही वश में रहता हूँ। मेरे मत के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होने पर उस व्यक्ति के मन में शिव की भक्ति जाग उठती है। ऐसे भक्तिसम्पन्न व्यक्ति की ही मेरे प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो सकती

१. सदाशिवः—ग. घ.।

तस्यैव भवति श्रद्धा मयि नान्यस्य कस्यचित् ।
आम्नायसिद्धो निखिलो धर्म आश्रमिणामिह ॥९०॥
ब्रह्मणा कल्पितः पूर्वं तन्ममाज्ञापुरःसरः ।
स तु पैतामहो धर्मो बहुभिश्च [१]क्रियान्वितः[२] ॥९१॥
कर्मणा महता श्रद्धां प्राप्य शैवीं सुदुर्लभाम् ।
माहेश्वराः [३]प्रपद्यन्ते देवि मां भक्तिसंयुताः ॥९२॥

भक्तिमतामेवात्राधिकारः

तेषां सुखेन मार्गेण धर्मकामार्थमुक्तये ।
मयि भक्तिमतामेव लिङ्गिनां वीरशैविनाम् ॥९३॥
अधिकारो न चान्येषामित्याज्ञा मामकी दृढा ।
हृदये सततं शम्भुं सर्वकारणकारणम् ॥९४॥
ध्यात्वा भावविधानेन पूजयेन्मां महेश्वरि ।
भक्तिं सुनिश्चयां कृत्वा मयि चानन्यभावतः ॥९५॥

है, अन्य किसी व्यक्ति की नहीं।।८९-९०।। आश्रमधर्म का पालन करने वालों के लिये ब्रह्मा ने मेरी आज्ञा के अनुसार आम्नायसिद्ध (वेदों में प्रतिपादित) धर्म का प्राचीन काल में उपदेश किया था। पितामह ब्रह्मा के द्वारा उपदिष्ट उस धर्म में कर्मकाण्ड का बहुत विस्तार है।।९०-९१।। उन महान् कर्मों के आचरण से शिव के प्रति अत्यन्त दुर्लभ श्रद्धा उत्पन्न होती है। हे देवि! भक्तिभाव से युक्त ऐसे ही माहेश्वर योगी मेरी शरण में आते हैं।।९२।।

इस प्रकार के शिव में भक्ति रखने वाले लिंगी वीरशैवों का ही इस सुगम मार्ग से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थों की सिद्धि का अधिकार है, अन्य किसी का नहीं, यह मेरी वज्र-कठोर आज्ञा है।।९३-९४।। हे महेश्वरि! इस लिये सभी कारणों के भी कारण मुझ शिव का हृदय में निरन्तर ध्यान करते हुए भक्तिभावपूर्वक पूजा करनी चाहिये।।९४-९५।। मुझ शिव में अनन्यभावना के आधार पर भक्तिभाव को दृढ करने वाला

---

१. विना क्रिया-ख.। २. इतः परम्—"बहिःकर्मपरो यद्वानतीव फलभागिनः" इत्यधिकः पाठः-ख.। ३. प्रवक्ष्यन्ते-क.।

सर्वावस्थोऽपि मुच्येत यद्यपि ब्रह्मभावनात् ।

सदाचारोपदेशः

सामान्यमपि वक्ष्यामि सदाचारं तु शैविनाम् ॥९६॥
येन सर्वे प्रपद्यन्ते भक्तिमव्यभिचारिणीम् ।
त्रिकालं भस्मना स्नानं लिङ्गार्चनमनुत्तमम् ॥९७॥
[१]जपमीश्वरचिन्ता च दया सर्वत्र सर्वदा ।
सत्यं सन्तोषमास्तिक्यमहिंसा सर्वजन्तुषु ॥९८॥
ह्रीः श्रद्धाऽध्ययनं योगः सदा पञ्चाक्षरीजपः ।
व्याख्यानं शिवशास्त्रस्य श्रवणं च तपः क्षमा ॥९९॥
निषिद्धं वर्जनीयं च भस्मरुद्राक्षधारणम् ।
सोमवारा[२]र्चनं देवि प्रदोषे च विशेषतः ॥१००॥
असंत्यागः क्रियाणां च श्राद्धान्नस्य विवर्जनम् ।
तथा पर्युषितान्नं च [1]गणिकान्नं[३] विशेषतः ॥१०१॥

शिवभक्त [2]ब्रह्मभावना के बल से जिस किसी भी अवस्था में रहता हुआ मुक्त हो जाता है।।९५-९६।।

अब मैं शैवों के सामान्य सदाचारों का उल्लेख करूँगा, जिनके पालन से सभी कोई शिव से कभी जुदा न होने वाली भक्तिदशा को प्राप्त कर सकेंगे।।९६-९७।। तीनों सन्ध्याओं में भस्म से स्नान करना, इष्टलिंग की शास्त्रविहित उत्तम पूजा करना, जप करना, ईश्वर का ध्यान करना, सभी जीवों पर सदा दयाभाव रखना, सत्य, सन्तोष, आस्तिक्य, सभी प्राणियों की अहिंसा, लज्जाभाव, श्रद्धा, अध्ययन, योगाभ्यास, सदा पंचाक्षर मन्त्र का जप, शिवशास्त्र का व्याख्यान करना, श्रवण करना, तप, क्षमा, शास्त्र में निषिद्ध वस्तु का त्याग, भस्म और रुद्राक्ष का धारण, सोमवार के दिन और विशेष कर प्रदोष के दिन शिव का पूजन करना, शास्त्रविहित कर्मों का कभी त्याग न करना, श्राद्ध के अन्न का परित्याग करना, विशेष कर

---

१. दान-ख.। २. वारेऽर्चनं-ख.। ३. गणकान्नं-ग. घ.।

1. "गणिकाशब्दस्यार्थः-स्वगोत्रे रमते यस्तु स विप्रो गण उच्यते। गर्भपातनशीला या सा नारी गणिका स्मृता।।" ग. घ. ङ. पुस्तकेषुः श्लोकोऽयं १०१ श्लोकानन्तरं मूले स्थापितः। टिप्पणी में दिये गये श्लोक के आधार पर अपने गोत्र में विवाह करने वाले ब्राह्मण को गणक और गर्भपात कराने वाली स्त्री को गणिका वताया गया है।

2. कूर्म (१.१.८०), गरुड (१.४९.१८-१९), विष्णु (६.७.४८-५१) आदि पुराणों मे त्रिविध भावनाओं के अन्तर्गत ब्रह्मभावना भी वर्णित है। शिवभावना को ही यहाँ ब्रह्मभावना कहा गया है। विशेष विवरण के लिये डॉ. करुणा एस. त्रिवेदी का ग्रन्थ "कूर्मपुराण : धर्म और दर्शन" (पृ. २०५-२०८) देखिये।

मद्यस्य मद्यगन्धस्य नैवेद्यस्य च वर्जनम् ।
सामान्यः सर्ववर्णानां विशेषो वीरशैविनाम् ।। १०२ ।।

वीरशैविनां विशेषः सदाचारः

क्षमा शान्तिश्च सन्तोषः सत्यमस्तेयमेव च ।
ब्रह्मचर्यं मम ज्ञानं वैराग्यं भस्मसेवनम् ।। १०३ ।।
सर्वसङ्गनिवृत्तिश्च दशैतानि विशेषतः ।
सर्वं लिङ्गमयं ध्यायेज्जगदेतच्चराचरम् ।। १०४ ।।
कथितं तु मया देवि वीरमाहेश्वरागमम् ।
पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं सविधानं सविस्तरम् ।। १०५ ।।
कर्मयोगं[1] ज्ञानचर्या ज्ञानयोगं[2] मम प्रिये ।
चर्याचर्या[3] मया प्रोक्ता किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।। १०६ ।।

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे ज्ञानयोगस्वरूपनिरूपणं नाम
द्वादशः पटलः समाप्तः[4] ।।१२।।

वासी अन्न और गणिका के अन्न का परिवर्जन करना, मद्य का, मद्य की गन्ध का और उसके नैवेद्य का परित्याग करना— ये सब सभी वर्णों के मनुष्यों के लिये सामान्य नियम हैं। वीरशैव धर्म का पालन करने वालों के लिये विशेष नियम आगे बताये जा रहे हैं।।९७-१०२।।

क्षमा, शान्ति, सन्तोष, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन, शिवज्ञान, वैराग्य, भस्म-धारण और सभी प्रकार की आसक्ति का त्याग— ये दस धर्म विशेष रूप से पालनीय है। इन सामान्य और विशेष धर्मों का पालन करते हुए शिवभक्त इस सारे स्थावर-जंगम जगत् की लिंग के रूप में ही भावना करे कि यह सब कुछ लिंगतत्त्व से ही उत्पन्न हुआ है।।१०३-१०४।। हे देवि! इस तरह से मैंने तुमको वीर माहेश्वर आगम के अनुसार पंचाक्षर मन्त्र का विधानपूर्वक विस्तार से माहात्म्य कह सुनाया है।।१०५।। हे प्रिये! इसके साथ ही कर्म, योग, ज्ञानचर्या और मेरी प्रियचर्या को भी मैंने तुम्हें सुना दिया है। अब इसके बाद तुम और क्या सुनना चाहती हो।।१०६।।

इस प्रकार पारमेश्वर तन्त्र का यह ज्ञानयोग के स्वरूप का निरूपण
करने वाला बारहवाँ पटल समाप्त हुआ।।१२।।

१-२. योगो-ख.। ३. चर्यं मया प्रोक्तं-ग. ङ.। ४. 'समाप्तः' नास्ति-क. ख.।

त्रयोदशः पटलः

करपङ्कजपूजाविधानम्

[1]देव्युवाच

करुणामृतकल्लोलकटाक्ष गणनायक ।
कैवल्यकलनाधार नमस्ते गिरिधन्विने[2] ॥१॥
कथितं च रहस्यं तद् वीरशैवाभिधं मतम् ।
श्रुतं चाधिगतं देव[3] मतभेदं सविस्तरम् ॥२॥
तत्तद्बलानुसारेण मतभेदा निरूपिताः ।
सर्वदा सर्वयत्नेन नित्यं लिङ्गार्चनं त्विति ॥३॥
तस्य लिङ्गस्य भगवन् पूजादिषु निरन्तरम् ।
स्थानभेदान्ममाचक्ष्व करपीठादिलक्षणान् ॥४॥
तारतम्येन वा किं नु फलं तत्तत्स्थलादिषु ।
यदि तर्हि समं किं वा विशेषस्तत्र कथ्यताम् ॥५॥

देवी का प्रश्न

हे गणनायक! आपके कटाक्ष करुणामृत की वर्षा करने वाले हैं, कैवल्यप्राप्ति की इच्छा करने वालों के आप आधार हैं। हे गिरिधन्विन्! मै आपको प्रणाम करती हूँ।।१।। हे देव! आपके द्वारा प्रतिपादित वीरशैव मत के रहस्य को मैंने सावधानी से सुना और गुना है। विभिन्न शैवमतों के स्वरूप को भी मैंने विस्तार से सुना है।।२।। उन भक्तों के बल की परीक्षा कर आपने उनके लिये तदनुरूप मतों का निरूपण किया है और सबके लिये यह सरल उपाय बताया है कि सदा सभी तरह से शिवभक्त नित्य लिंग की पूजा करे।।३।। हे भगवन्! उस लिंग की निरन्तर पूजा करते रहने के लिये अब आप करपीठ आदि स्थानों का वर्णन मेरे लिये कीजिये।।४।। उस-उस स्थान पर शिवपूजा करने से तरतमभाव से फल में क्या अन्तर आता है? इन सबका समान ही फल है या इनमें परस्पर कुछ विशेषता है? यह आप मुझे बताइये।।५।।

---

१. 'देव्युवाच' नास्ति-ग.। २. धन्वने-क. ग. घ.। ३. चैव-ग.।

ईश्वर उवाच

शृणु नान्यमना देवि रहस्यार्थमनाकुलम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन यत्स्नेहेनेर्यते त्वयि ॥६॥

विविधेषु पीठेषु पाणिपीठस्य वैशिष्ट्यम्

बहूनि सन्ति पीठानि लिङ्गस्याराधने मम ।
तारतम्येन सर्वाणि फलदानि न संशयः ॥७॥
भक्तस्य सकलं पीठं मज्ज्ञस्य[1] मम योगिनः ।
पाणिपीठं महल्लिङ्गं जगदेतच्चराचरम् ॥८॥
आरूढस्यैतदुचितं वीरशैवस्य लिङ्गिनः ।
अथारुरुक्षोरीशानि हृदयं पीठमुच्यते ॥९॥
अथोच्यते बहिःपीठं[2] ततो न्यूनाधिकारिणः ।
लिङ्गस्य नित्यपूजायां करपङ्कजमादितः ॥१०॥

शिव का उत्तर

हे देवि! दूसरी तरफ बिना मन लगाये मेरे द्वारा कही जा रही असंदिग्ध रहस्यमयी वार्ता को तुम सावधानी से सुनो। तुम्हारे प्रति स्नेह होने के कारण यह मैं प्रयत्नपूर्वक गोपनीय विषय भी तुम्हें बता रहा हूँ।।६।।

लिंग की आराधना के लिये अनेक प्रकार के पीठ शास्त्रों में वर्णित हैं। तरतमभाव से ये सभी निःसंशय फलद माने गये हैं।।७।। शिवलिंग की आराधना के लिये सभी स्थान उपयुक्त हैं, किन्तु मुझ योगीश्वर को जानने वाले वीरशैव भक्तों के लिये पाणिपीठ सर्वोत्तम है, क्योंकि यह सारा चराचर जगत् इस महान् लिंग का ही विस्तार है।।८।। महान् लिंग की यह भावनात्मक पूजा इष्टलिंगधारी उस वीरशैव के लिये है, जो कि योग की उच्च भूमिका में पहुंच गया है। हे ईशानि! जो योगी अभी अभ्यास में लगा हुआ है, उसके लिये हृदय-पीठ उत्तम माना गया है।।९।। इससे भी न्यून कोटि के अधिकारी के लिये बहिःपीठ शास्त्रों में वर्णित है। प्रारंभिक अवस्था में इष्टलिंग की नित्य पूजा के लिये करपीठ ही श्रेष्ठ माना जाता है।।१०।। हे देवेशि! अपने बायें हाथ को ही कमल मानकर उस

---

१. यज्ञस्य-क. ख.। २. घ. पुस्तकेऽस्य पटलस्य प्रथमपत्राभावादितः पाठारम्भः।

स्ववामहस्तं देवेशि विभाव्य कमलाकृतिम् ।
लिङ्गं तत्कर्णिकामध्ये प्रतिष्ठाप्यार्चयेत् सदा ॥११॥
तदेतत् करपीठाख्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
ततोऽन्यद् दारुजं शैलं लोहं मार्तिकमेव वा ॥१२॥
अजिनं कम्बलं वासः पर्णं भूमितृणादिकम् ।
यत्र संस्थाप्यते लिङ्गं तत्पीठं तत्र भावयेत् ॥१३॥
दारुपीठं दरिद्राय शैलं पुत्रधनाप्तये ।
लौहं सर्वार्थसंसिद्ध्यै मार्तिकं ज्ञाननाशनम् ॥१४॥
अजिनं व्याधिपीडायै कम्बलो दुःखसिद्धये ।
वासः सर्वफलप्राप्त्यै पर्णं स्वर्णफलाप्तये ॥१५॥
भूमिः सर्वार्थनाशाय तृणं [१]विप्लवकारणम् ।
तत्र सर्वोत्तमं देवि पीठार्थं करपङ्कजम् ॥१६॥

पाणिपीठस्वरूपनिरूपणम्

तत्स्वरूपं विशेषेण ह्याकर्णय वदामि ते ।
स्ववामहस्तं कमलं ध्यात्वा पञ्चदलं शुभम् ॥१७॥

हस्तरूपी कमल की कर्णिका (मध्य भाग) में इष्टलिंग की स्थापना कर उसकी सदा पूजा करनी चाहिये।।११।। करपीठ के नाम से यह प्रसिद्ध है। यह चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को देने वाला है। इसके अतिरिक्त काष्ठ, प्रस्तर, लोह और मिट्टी का बना भी पीठ शास्त्रों में विहित है।।१२।। अजिन (चर्म), कम्बल, वस्त्र, पत्र, भूमि, तृण आदि पर जहां भी लिंग स्थापित किया जाय, वहां उस स्थान की पीठ के रूप में भावना करनी चाहिये।।१३।। काष्ठ का पीठ दरिद्रता को देता है, प्रस्तर (पत्थर) का पीठ पुत्र और धन की प्राप्ति कराता है, लोहपीठ से सभी प्रकार की सिद्धियां मिलती हैं और मृत्तिका पीठ ज्ञान का नाशक है।।१४।। चर्मपीठ व्याधि और पीड़ा को देने वाला, कंबलपीठ दुःख को देने वाला, वस्त्रपीठ सभी प्रकार के फलों को देने वाला और पर्णपीठ सुवर्ण की प्राप्ति कराने वाला है।।१५।। भूमिपीठ सभी प्रयोजनों का नाशक और तृणपीठ नाना प्रकार के उपद्रवों का कारण बनता है। इस प्रकार हे देवि! इन सभी पीठों में करकमलरूपी पीठ ही सर्वोत्तम है।।१६।।

उस करपीठ का स्वरूप मैं तुम्हें विशेष रूप से बता रहा हूँ, उसे तुम सावधानी से सुनो! अपने बांये हाथ को ही मंगलमय पंचदल कमल मानना चाहिये। उसी प्रकार

---

१. विविध-ग. घ., वै व्याधि-ङ.।

पञ्चाङ्गुलीः पञ्चदलं कर्णी करतलं तथा ।
रेखा हस्तगताः सर्वा ध्यायेत् कमलकेसरान् ।।१८।।

पञ्चाङ्गुलीषु पञ्चब्रह्मपञ्चाग्निभावनम्

पञ्चाङ्गुलीषु देवेशि पञ्चब्रह्मानुवाककैः ।
पञ्चब्रह्मात्मनो ध्यायेत् कर्णिकायां गिरीन्द्रजाम् ।।१९।।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं प्रादक्षिण्येन सुन्दरि ।
गार्हपत्यं दक्षिणाग्निं मध्यमाहवनीयकम् ।।२०।।
सभ्याऽऽवसथ्यौ क्रमशः पञ्चाग्नीन् भावयेत् सुधीः ।
शिवस्य पञ्चवक्त्राणि ध्यायेत् पञ्चाङ्गुलीः शिवे ।।२१।।

दिक्षु विदिक्षु च देवतादिभावनम्

आरभ्य पूर्वमिन्द्रादीन् ध्यायेदष्टसु दिक्ष्वपि ।
दुर्गां महेश्वरीं चण्डीं भद्रकालीमिति क्रमात् ।।२२।।
प्राणा(गा)दिषु चतुर्दिक्षु प्रादक्षिण्येन भावयेत् ।
गणेशं बटुकं वीरभद्रं चण्डं तथार्चयेत् ।।२३।।

हथेली को करकमल की कर्णिका तथा हाथ की रेखाओं की कमल की केसरों के रूप में भावना करे।।१७-१८।।

हे देवेशि! हाथ की पांच अंगुलियों में पंचब्रह्मानुवाक के पांच मन्त्रों से शिव के ईशान आदि पांच स्वरूपों का ध्यान करे और कर्णिका (करतल) में भगवती पार्वती की भावना करे।।१९।। हे सुन्दरि! अंगुष्ठ से लेकर कनिष्ठा पर्यन्त अंगुलियों में क्रमशः गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य नामक पांच अग्नियों की विद्वान् मनुष्य प्रदक्षिणा क्रम से भावना करे। यहां आहवनीय की स्थिति मध्य में रहती है। हे शिवे! इन्हीं पांच अंगुलियों में शिव के ईशान आदि पांच मुखों का भी ध्यान किया जाता है।।२०-२१।।

पूर्व दिशा से प्रारंभ कर आठ दिशाओं में इन्द्र आदि आठ लोकपालों का ध्यान करे। दुर्गा, महेश्वरी, चण्डी और भद्रकाली का क्रमशः पूर्व आदि चार दिशाओं में ध्यान करे। इसी प्रकार से गणेश, बटुक, वीरभद्र और चण्ड की भी पूजा करे।।२२-२३।। प्रमथगणों

नन्दीशं रिटिनं भृङ्गिं तुण्डिं प्रमथनायकम् ।
अग्नीशासुरवातेषु विदिक्षु च विभावयेत् ॥ २४ ॥
अन्तरे द्वादशादित्यान् ग्रहान्नव पयोनिधीन् ।
श्रीशैलमुख्यांश्च गिरीन् क्षेत्रं काश्यादिकं तथा ॥ २५ ॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः कल्पवृक्षादिकांस्तरून् ।
चिन्तामणिं कामधेनुं नक्षत्राणि दिशो दश ॥ २६ ॥
ऋग्यजुःसामवेदांश्चाथर्वणं च पुराणकम् ।
सेतिहासं चिन्तयेद् यद् वेदं पञ्चममुत्तमम् ॥ २७ ॥
मीमांसाद्वितयं तर्कं सांख्ययोगौ विशेषकम् ।
धर्मशास्त्राणि सञ्चिन्त्य तन्मध्ये लिङ्गमर्चयेत् ॥ २८ ॥
आरभ्य कूर्परं यावन्मणिबन्धं कुलेश्वरि ।
नालं तत्पाणिपद्मस्य पञ्चवक्त्रस्य भावयेत् ॥ २९ ॥

करपङ्कजपूजामहिमा

सर्ववेदात्मकं पद्मं सर्वक्षेत्रमयं शुभम् ।
सर्वसौभाग्यजनकं यत्पीठं करपङ्कजम् ॥ ३० ॥

के नन्दीश, रिटी, भृंगी और तुण्डी नाम के चार नायक हैं। इनमें से नन्दीश की आग्नेय कोण में, रिटी की ईशान, भृंगी की नैर्ऋत्य और तुण्डी की वायव्य कोण में भावना करनी चाहिये।।२४।। इन्हीं के बीच में बारह आदित्यों की, नौ ग्रहों की, सात समुद्रों की और श्रीशैल आदि प्रमुख पर्वतों की, काशी आदि क्षेत्रों की, गंगा आदि सभी नदियों की, कल्पवृक्ष आदि देववृक्षों की, चिन्तामणि और कामधेनु की, नक्षत्रों की, दसों दिशाओं की, ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेद के साथ पुराण-इतिहास की, पंचम उत्तम वेद महाभारत की, पूर्व और उत्तर मीमांसा की, तर्कशास्त्र, सांख्य-योग और वैशेषिक दर्शन की तथा धर्मशास्त्रों की भावना कर इन सबके बीच में इष्टलिंग की आराधना करे।।२५-२८।। हे कुलेश्वरि! कोहनी से लेकर कलाई तक के हाथ के भाग की, उस पांच मुख वाले करकमल की नाल के रूप में भावना करे।।२९।।

इस कमल में सभी वेद और सभी पवित्र क्षेत्र निवास करते हैं। करपीठ के नाम से प्रसिद्ध यह कमल सभी प्रकार के सौभाग्य को देने वाला है।।३०।। इस करपीठ रूपी कमल

यन्न्यूनमतिरिक्तं वा पूजाया(यां) मम योगिनः ।
करपङ्कजपूजायां तत्सर्वं साङ्गमेव हि ।। ३१ ।।

करपङ्कजपूजाक्रमः

उद्धृत्य सज्जिकाद्द्वारात् करपङ्कजमध्यगम् ।
लिङ्गं कृत्वाऽर्चयेल्लिङ्गी दक्षिणेन च पाणिना ।। ३२ ।।
आदौ विभाव्य कमलं पाणिपञ्चदलं शिवे ।
पूर्वोक्तलक्षणं योगी मध्ये मूलं जपेच्छतम् ।। ३३ ।।
सहस्रं वा यथाशक्ति तत्र सिंहासनं स्मरेत् ।
तत्र मां हि सुखासीनमभिध्यायेत् त्वया सह ।। ३४ ।।
ध्यानावाहनमारभ्य यावल्लिङ्गविसर्जनम् ।
तावत् करस्थितं कुर्यात् करपद्मार्चने विधिः ।। ३५ ।।
अभिषेके च पूजायां यावद्भक्ति यथाबलम् ।
यावद्विसर्जनं लिङ्गं निवसेत् करपङ्कजे ।। ३६ ।।
प्रदक्षिणनमस्कारौ मनस्येवाचरेत् सुधीः ।
नोत्तिष्ठेन्न क्वचिद् गच्छेद्यावल्लिङ्गविसर्जनम् ।। ३७ ।।

में की गई मुझ योगीश्वर की पूजा में न्यूनता अथवा अतिरिक्तता (कमी या अधिकता) का कोई दोष नहीं लगता।।३१।।

सज्जिका के द्वार से बाहर निकाल कर इष्टलिंग को करकमल के बीच में रखना चाहिये और तब दाहिने हाथ से उसकी पूजा करनी चाहिये।।३२।। हे शिवे! पांच दल वाले करकमल का स्वरूप ऊपर विस्तार से बताया गया है। तदनुसार उसकी भावना कर शिवयोगी सौ बार अथवा हजार बार अपनी शक्ति के अनुसार मूल मन्त्र का जप करते हुए करपीठ में सिंहासन की भावना करे और उस सिंहासन पर पार्वती के साथ सुखपूर्वक विराजमान भगवान् शिव का ध्यान करे।।३३-३४।। ध्यान और आवाहन से लेकर विसर्जन पर्यन्त उस इष्टलिंग को करपीठ पर ही रखना चाहिये, करकमल रूपी पीठ पर इष्टलिंग के पूजन की यही विधि है।।३५।। साधक अपनी भक्ति और शक्ति के अनुसार इष्टलिंग का अभिषेक अथवा पूजन करते समय विसर्जन पर्यन्त इष्टलिंग को करपीठ पर ही रखे।।३६।। विद्वान् साधक को चाहिये कि वह प्रदक्षिणा और नमस्कार मानसिक रूप में ही करे। जब तक पूजा पूरी नहीं हो जाती, तब तक वह न जो अपने स्थान से उठे और न कहीं अन्यत्र ही जाय।।३७।। पूजा के पूरा हो जाने पर पूजक इष्टलिंग को वापस

निक्षिप्य सज्जिकामध्ये बद्ध्वा साररमर्गलम् ।
विधाय वसनग्रन्थिं जप्त्वा मूलशतं पुनः ।। ३८ ।।

करपङ्कजपूजानियमाः

न भवेद् यावदेतावन्नोत्तिष्ठेत् तावदीश्वरि ।
श्रीगुरावागते वापि दह्यमानेऽपि वा गृहे ।। ३९ ।।
यद्युत्तिष्ठेच्छिवे मध्ये धृत्वा लिङ्गं करे मम ।
स द्रोही मम विज्ञेयो गुरुद्रोही न संशयः ।। ४० ।।
तस्माद् विजनमाश्रित्य निराकुलमनाः सदा ।
यथा सम्भावितं[1] भक्त्या ह्यर्चेल्लिङ्गं कराम्बुजे ।। ४१ ।।
विभावयेदधः कूर्ममष्टदिक्ष्वष्टदिग्गजान् ।
मध्ये शेषं महाहीन्द्रं सहस्रफणिमण्डलम् ।। ४२ ।।
लिङ्गं विश्वात्मकं ध्यायेदादिमध्यान्तवर्जितम् ।
भक्तीच्छावशतो भक्तपाणिपङ्कजसंस्थितम् ।। ४३ ।।

सज्जिका में रखकर अर्गला से उसके द्वार को बन्द कर दे और शिवदोरक से उसको वस्त्र में बांध कर मूल मन्त्र का सौ बार जप करे।।३८।।

हे ईश्वरि! जब तक इष्टलिंग की पूजा का यहां तक का विधान पूरा नहीं हो जाता, तब तक पूजक को उस स्थान से अपने गुरुदेव के आने पर भी अथवा घर में आग लग जाने पर भी उठना नहीं चाहिये।।३९।। हे शिवे! यदि कोई इष्टलिंग को हाथ में लिये हुए पूजा के बीच में ही उठ जाता है, वह निःसन्देह शिव और गुरु दोनों का द्रोही माना जाता है।।४०।। इसलिये साधक को चाहिये कि वह एकान्त स्थान में शान्त मन से अपनी शक्ति के अनुसार भक्ति के साथ करपीठ पर इष्टलिंग का पूजन करे।।४१।। उसे करपीठ के नीचे कूर्म की आठ दिशाओं में आठ दिग्गजों की और मध्य में हजार फणाओं से अलंकृत नागराज शेष भगवान् की भावना करनी चाहिये।।४२।। यह लिंगतत्त्व सारे विश्व में व्याप्त है, यह आदि, मध्य और अन्त से रहित है, साधक की भक्ति को देखकर यह भक्त के करपीठ पर आकर विराजमान हो गया है, ऐसी उस समय भावना करनी चाहिये।।४३।।

---

१. विता-क. ख. ङ.।

अभिषेकक्रमः

सहस्रघटतोयेन त्वष्टोत्तरशतेन वा ।
चतुष्षष्टिघटेनापि यदि द्वात्रिंशता घटैः ॥४४॥
चतुर्विंशतिभिर्वापि द्व्यष्टद्वादशभिस्तु वा ।
अष्टभिः पञ्चभिर्द्वाभ्यामेकेनापि घटेन वा ॥४५॥
सहस्रघटतोयेन शतमष्टघटैः परम्[1] ।
चुलुकोदकमात्रं वा लिङ्गस्योपरि निक्षिपेत् ॥४६॥
यावच्छक्ति यथाभक्ति गन्धवच्छुद्धतोयतः ।
शोधितेनातिशीतेन लिङ्गं [2]समभिषेचयेत् ॥४७॥

अभिषेकपात्राणि

शङ्खेन खड्गपात्रेण स्वर्णशुक्तिकयापि वा ।
अपि लौहेन पात्रेण पर्णेनान्येन केनचित् ॥४८॥
सर्वाभावे महादेवि दक्षिणेनैव पाणिना ।
अभिषिञ्चेद् यथाशक्ति स्वेष्टपात्रं विभावयन् ॥४९॥
सहस्रप्रसृतिर्देवि सहस्रघटसंमिता ।
मम लिङ्गाभिषेकार्थे पुनर्भावनयाऽब्धयः ॥५०॥

हजार घड़ों के जल से, १०८ घड़ों के जल से, ६४ घड़ों के जल से, ३२ घड़ों के जल से, २४ घड़ों के जल से, १६ घड़ों के जल से , १२ घड़ों के जल से अथवा आठ, पांच, दो और केवल एक घट के जल से इष्टलिंग का अभिषेक किया जा सकता है।।४४-४५।। हजार घड़ों के जल से अथवा एक सौ आठ घड़ों के जल से भी अभिषेक होता है और चुल्लू भर पानी से भी इष्टलिंग का अभिषेक किया जा सकता है।।४६।। पूजक को चाहिये कि वह अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार सुगन्धित, शोधित, शीतल और शुद्ध जल से इष्टलिंग का अभिषेक करे।।४७।।

यह अभिषेक शंख से, गैंडे के सींग से बने पात्र से, स्वर्णजटित सीप से अथवा लोह-निर्मित पात्र से, पत्र से अथवा अन्य किसी अभीष्ट साधन से किया जाता है।।४८।। हे महादेवि! किसी भी पात्र के उपलब्ध न होने पर अपने दाहिने हाथ से ही अभीष्ट पात्र का स्मरण करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार अभिषेक करना चाहिये।।४९।। हे देवि! इष्टलिंग के अभिषेक के लिये दिया गया हजार अंजलि जल हजार घड़े के जल के बराबर है। सच्ची भावना से किया गया अभिषेक सात समुद्रों के जल से भी बढ़ कर है।।५०।।

---

१. करम्-घ. ङ.। २. 'मभिषेचयेत्' इत्यतः परं पटलसमाप्तिपर्यन्तो भागो नास्ति-घ.।

यावतीः पयसां भक्तः स्वर्पयेत् प्रसृतीर्मम ।
तावदब्धिसहस्रौघैरभिषिक्तोऽस्म्यहं शिवे ॥५१॥

अभिषेकार्हं जलम्

सर्वदेवात्मकं तोयं सर्वतीर्थमयं शुभम् ।
तेनाभिषिच्य मां भक्त्या को वाहं न[१] भवेच्छिवे ॥५२॥
शीतलं लघु सद्गन्धं शतधा वस्त्रशोधितम् ।
तेनाभिषिच्य मां भक्त्या न शिवस्तत्र को भवेत् ॥५३॥
भूमिष्ठमुद्धृतात् पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् ।
ततस्तु सारसं तीर्थं महानद्यास्ततोऽधिकम् ॥५४॥
ततो गङ्गाजलं पुण्यं गङ्गासागरसङ्गजम् ।
तत्र लब्धेन पयसाऽभिषिञ्चेन्मां प्रयत्नतः ॥५५॥

अभिषेकानन्तरपूजाक्रमः

ध्यानं च द्रोणविल्वं च विशेषः करपङ्कजम् ।
घण्टानादं च शङ्खं च प्रतिक्षिप्याम्यहं सदा ॥५६॥

हे शिवे! मेरा भक्त जल की जितनी अंजलियां श्रद्धाभक्तिपूर्वक अर्पित करता है, उतने ही हजार समुद्रों के जल से मैं अपने को अभिषिक्त हुआ मानता हूँ।।५१।।

हे शिवे! जल में सभी देवता और तीर्थ निवास करते हैं। इस कल्याणकारी जल से भक्तिपूर्वक मेरा अभिषेक करके कौन व्यक्ति शिव नहीं हो जाता? अर्थात् सभी कोई शिवस्वरूप हो जाते हैं।।५२।। शीतल, सुपाच्य, सुगन्धित और सौ बार वस्त्र से छाने गये जल से भक्तिपूर्वक मेरा अभिषेक करने वाला शिवस्वरूप हो जाता है।।५३।। पात्र में रखे गये जल की अपेक्षा कुए आदि से तत्काल निकाला गया जल श्रेष्ठ है। इसकी भी अपेक्षा झरने का जल और उससे भी अधिक पवित्र जल तीर्थ सरोवर का, तदपेक्षया महानदी का जल श्रेष्ठ है।।५४।। महानदी की अपेक्षा गंगाजल और गंगाजल की अपेक्षा गंगासागर के संगम का जल अधिक पुण्यदायक है। वहां से जल लाकर प्रयत्नपूर्वक मेरा अभिषेक करना चाहिये।।५५।।

ध्यान से, द्रोणपुष्प, विल्वपत्र, करपंकज, घण्टानाद और शंखध्वनि इन सब पूजा के उपचारों से मैं सदा प्रसन्न होता हूँ ।।५६।। [1]दशांग से बनी धूप और कर्पूर का दीपक

---

१. स-क. ख.।

1. दशांग धूप का विवरण मकुटागम (१.४.२९-३०) में देखिये। कपूर, अगुरु, कक्कोल, जातीफल, लवंग, जटामांसी, सिंही, मुस्ता और चन्दन में घृत मिलाने से यह सुवासित दशांग धूप तैयार होती है।

दशाङ्गधूपं कर्पूरं दीपं यत्नेन चार्पयेत् ।
जपस्तोत्रप्रणामादि पाणिलिङ्गः[१] समाचरेत् ॥५७॥

नियमपालनमावश्यकम्

एवं हि नियमो[२] देवि यदिच्छा पाणिपङ्कजे ।
पूजां कर्तुं न चोत्तिष्ठेद् यावल्लिङ्गविसर्जनम् ॥५८॥
[३]तत्रानुपाधेर्निश्चित्य पूजयेत् पाणिपङ्कजे ।
यद्यन्यत्र समुत्तिष्ठेद् यथा विघ्नस्तथा[४] शिवे ॥५९॥
निरन्तरायमासाद्य शेषं तत्र समापयेत् ।
अन्यथा व्रतभङ्गः स्याद् रौरवं नरकं व्रजेत् ॥६०॥
आरभ्य पूजां लिङ्गस्यासमाप्तेरुपवेशने ।
अशक्त उत्थितो मध्ये रौरवं नरकं व्रजेत् ॥६१॥
सर्वसामग्र्यभावेऽपि विनिक्षिप्य करे मम ।
लिङ्गं वामे दक्षिणेनाभिषिञ्चेद् भक्तितोऽम्भसा ॥६२॥

मुझे यत्नपूर्वक अर्पित करना चाहिये। करपीठ पर इष्टलिंग की पूजा करने वाला शिवभक्त मुझे जप, स्तोत्र और प्रणाम आदि भी निवेदित करे।।५७।।

करकमल पर इष्टलिंग की पूजा करने की जिसकी इच्छा है, उसको इस तरह नित्य नियमों का पालन करना चाहिये और विसर्जन पर्यन्त पूजा पूरी न होने तक उठना नहीं चाहिये।।५८।। हे शिवे! कोई उपाधि (विघ्न) उपस्थित नहीं होगी, ऐसा निश्चय कर लेने के बाद ही करपीठ पर इष्टलिंग का पूजन प्रारंभ करना चाहिये। अर्थात् निर्विघ्न स्थान और समय का निश्चय करके ही करकमल पर इष्टलिंग की पूजा प्रारंभ करनी चाहिये। अन्य मतों में लिंगपूजा करते समय विघ्न उपस्थित होने पर पूजक उठ सकता है, किन्तु विघ्न के दूर होने के साथ ही शेष पूजा पूरी करनी चाहिये। ऐसा न करने पर व्रतभंग का दोष लगता है और वह रौरव नरक में जाता है।।५९-६०।। इष्टलिंग की पूजा आरंभ करके उसे बिना समाप्त किये बैठने में असमर्थ होकर पूजक यदि बीच में ही उठ खड़ा होता है, तो वह भी रौरव नरक में जाता है।।६१।। पूजा की सामग्री न रहने पर भी पूजक को चाहिये कि वह इष्टलिंग को बांये हाथ पर रखकर दाहिने हाथ से केवल जल से ही भक्तिपूर्वक मेरा अभिषेक कर दे।।६२।। यदि व्यक्ति समर्थ है, तो उसे व्रत लेकर एक वर्ष

---

१. लिङ्गं विसर्जनम्-ग.। २. नित्यनियमो-क.। ३. पङ्क्तिरेषा नास्ति-ग.। ४. स्तदा-ग. ङ.।

शक्तस्तु नियमं कृत्वा वर्षमेकं त्रिकालतः ।
नित्यमुक्तप्रकारेणाभिषिञ्चेत् पाणिनाम्भसा ।। ६३ ।।
विभाव्य घटसाहस्रं सहस्रप्रसृतीरपि ।
[1]अधःशायी ब्रह्मचारी यः स्वप्ने मां विलोकयेत् ।। ६४ ।।

करपीठार्चनस्यानन्तगुणितं फलम्

सज्जिकायाः शतगुणमपनीत[2]कपाटकम् ।
तत्सहस्रगुणं भूमौ वस्त्रपीठादिषु क्रमात् ।। ६५ ।।
ततः शतगुणं प्रोक्तं पट्टवस्त्रेऽर्चयेन्मम ।
तत्सहस्रगुणं स्वर्णपीठे मणिमये तथा ।। ६६ ।।
अनन्तगुणितं पाणिपङ्कजे मम पूजनम् ।
ज्ञात्वा गुरुमुखात् सम्यक् पाणिपद्मे समर्चयेत् ।। ६७ ।।
यद्यन्यथा प्रमादः स्यादायुष्यस्य क्षयो भवेत् ।
नाङ्गीकरोति तत्पूजां सर्वकृत् परमेश्वरः ।। ६८ ।।

पर्यन्त तीनों सन्ध्याओं में नित्य ऊपर बताई गई पद्धति से वाम करपीठ पर इष्टलिंग रख कर दाहिने हाथ से जलाभिषेक करना चाहिये।।६३।। इसी जल में वह हजार घड़ों के अथवा हजार अंजुलियों के जल की भावना कर ले। ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए भूमि पर सोने वाला ऐसा व्यक्ति स्वप्न में मेरा दर्शन करता है।।६४।।

सज्जिका का कपाट खोलकर उसमें पूजा करने से सौ गुना फल मिलता है। उससे हजार गुना फल भूमि पर वस्त्र, पीठ आदि बिछाकर पूजा करने से, उससे भी सौ गुना फल पट्टवस्त्र पर, उससे हजार गुना फल मणिमय स्वर्णपीठ पर और करपीठ पर इष्टलिंग की पूजा का अनन्तगुणित फल मिलता है। इसलिये करपीठ पर इष्टलिंग के पूजन की विधि को गुरुमुख से भलीभांति जानकर पूजा करे।।६५-६७।। करपीठ पर इष्टलिंग की पूजा के विधान को गुरुमुख से समझे बिना की गई पूजा में यदि कोई भूल हो जाती है, तो इससे पूजक की आयु क्षीण होजाती है। सब कुछ करने में समर्थ परमेश्वर उसके द्वारा की गई पूजा को स्वीकार नहीं करते।।६८।।

---

१. अथाकार्यी-क.। २. कवा-कटि. ग. ङ.।

पूजाक्रमो गुरुमुखाज्ज्ञातव्यः

प्रवृत्तिमपि धर्मेऽर्थे निवृत्तिमितरस्य च ।
ज्ञात्वा गुरुमुखात् सम्यग् यथाशास्त्रमथाचरेत् ।। ६९ ।।
यथा योग्यमुमे लिङ्गं यथा पञ्चाक्षरीमनुः ।
यथैव श्रीगुरोर्नाम तथैव करपङ्कजम् ।। ७० ।।
स्वरूपं करपद्मस्य ज्ञात्वा गुरुमुखात् सुधीः ।
अभिषेकपरो नित्यमहमेव स ईश्वरि ।। ७१ ।।
यदा जन्मशतान्ते तु जानाति करपङ्कजम् ।
तदेव चरमं विद्धि यथा मन्त्रस्तथा करः ।। ७२ ।।

करपीठं सर्वदेवमयं सर्वक्षेत्रमयं च

सन्निधावप्रयत्नेन स्वदेहे वर्तते करः ।
सर्वदेवमयं पीठं सर्वक्षेत्रमयं परम् ।। ७३ ।।
करपङ्कजपीठस्य मध्ये काशी सदान्विता ।
अङ्गुष्ठमूलेऽयोध्याख्याऽवन्तिका तर्जनीमुखे ।। ७४ ।।

कुछ लोग धर्म और अर्थ के लिये प्रवृत्ति मार्ग का सहारा लेते हैं। अन्य ऐसे भी हैं, जिनकी मोक्ष की प्राप्ति के लिये निवृत्ति मार्ग में रुचि रहती है। इनको अपनी रुचि के अनुसार गुरुमुख से तदनुरूप विधान जानकर शास्त्रविहित पद्धति से इष्टलिंग की उपासना करनी चाहिये।।६९।। हे उमे! जैसे लिंगपूजा में इष्टलिंग की पूजा सर्वश्रेष्ठ है, मन्त्रों में पंचाक्षरी मन्त्र और नामों में श्रीगुरु का नाम सर्वश्रेष्ठ है, उसी तरह से पीठों में करपीठ सर्वश्रेष्ठ है।।७०।। हे ईश्वरि! करपंकज का स्वरूप गुरुमुख से जानकर विद्वान् व्यक्ति जब नित्य उस पर इष्टलिंग का अभिषेक करता है, तो वह शिवस्वरूप हो जाता है।।७१।। अनेक जन्मों के उपरान्त जब शिवभक्त करपंकज की महिमा को जान लेता है, तो वही उसका चरम (अन्तिम) जन्म माना जाता है। करकमल की सामर्थ्य मन्त्र के समान ही है।।७२।।

यह करपीठ बिना आयास के अपने शरीर में विद्यमान है। शरीर के सर्वदेवमय और सर्वक्षेत्रमय होने से यह करपीठ भी सभी देवों और क्षेत्रों की आश्रय-स्थली है।।७३।। इस करपंकज के बीच में काशी सदा विराजमान रहती है। अंगुष्ठ के मूल में [1]अयोध्या नगरी और तर्जनी के मूल में उज्जयिनी विद्यमान है।।७४।। मध्यमा के मूल में मथुरा,

---

1. "अयोध्या मथुरा माया" इत्यादि प्रसिद्ध श्लोक में वर्णित सात पुरियों का यहाँ उल्लेख है।

मथुरा मध्यमामूले मायाख्याऽनामिकामुखे ।
काञ्ची कनिष्ठिकामूले द्वारका मणिबन्धके ॥७५॥
अङ्गुष्ठमध्ये गोकर्णं तर्जनीमध्यमे शिवे ।
रामेश्वरं मध्यमध्ये श्रीशैलः पर्वतोत्तमः ॥७६॥
अविशोऽनामिकामध्ये कनिष्ठामध्यमे तथा ।
वर्तते हि सदा कालहस्तिक्षेत्रं महत्तरम् ॥७७॥
सप्तकोटीश्वरं पाणौ विरूपाक्षं तु पृष्ठतः ।
गङ्गा च यमुना कृष्णा कावेर्यङ्गुलिमध्यतः ॥७८॥
ब्रह्मेशं पञ्चलिङ्गेशं मार्कण्डेशं चिदम्बरम् ।
महाकालेश्वरं पञ्चस्वङ्गुल्यग्रेषु[१] भावयेत् ॥७९॥
सर्वमन्त्रमयं पुण्यं सर्वपीठमयं परम् ।
पवित्राणां पवित्रं तत् पाणिपङ्कजमर्चनम् ॥८०॥

पाणिपङ्कजार्चनमाहात्म्यम्

यथा मन्त्रेषु सर्वेषु मम पञ्चाक्षरः परः ।
यथा सर्वेषु देवेषु ब्रह्मादिष्वहमीश्वरः ॥८१॥

अनामिका के मूल में मायापुरी (हरिद्वार) और कनिष्ठा के मूल में कांची तथा मणिबन्ध पर द्वारिका नगरी स्थित है। इस प्रकार इस करपंकज में सातों पवित्र पुरियां विद्यमान हैं।।७५।। हे शिवे! अंगुष्ठ के बीच में गोकर्ण तीर्थ, तर्जनी के मध्य में रामेश्वर, मध्यमा के मध्य में पर्वतश्रेष्ठ श्रीशैल, अनामिका के मध्य में [1]अविश और कनिष्ठा के मध्य में कालहस्ती नामक महान् पवित्र क्षेत्र विद्यमान है।।७६-७७।। हथेली पर सप्तकोटीश्वर तीर्थ और हाथ की पीठ पर विरूपाक्ष नामक पवित्र तीर्थ है। गंगा, यमुना, कृष्णा और कावेरी— इन चार अतिपवित्र नदियों की स्थिति अंगुलियों के बीच में है।।७८।। पाँचों अंगुलियों के अग्र भाग में ब्रह्मेश, पंचलिंगेश, मार्कण्डेश, चिदम्बर और महाकालेश्वर की भावना करे।।७९।। इस तरह से करकमल पर की गई इष्टलिंग की पूजा सभी मन्त्रों से, सभी पवित्र पीठों से समन्वित है, अर्थात् यहाँ पूजन करने से सभी मन्त्रों के जप का और पवित्र पीठों (तीर्थों और क्षेत्रों) में की गई पूजा का फल अपने आप मिल जाता है। इस प्रकार करपंकज पर की गई पूजा सभी पवित्र पदार्थों के बीच में अत्यन्त पवित्र है।।८०।।

जैसे सभी प्रकार के मन्त्रों में शिव-पंचाक्षर मन्त्र सर्वश्रेष्ठ है, उसी तरह से ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि सभी देवताओं में मैं ही सबका स्वामी हूँ।।८१।। जैसे यज्ञ, याग आदि सभी

---

१. ल्यग्रे च-क. ख.।

1. अविश तीर्थ का परिचय अपेक्षित है।

यथा क्रियासु सर्वासु मम पूजा गरीयसी ।
यथालापनसङ्घेषु श्रीगुरोर्नाम मङ्गलम् ॥८२॥
यथा देवेषु सर्वेषु भक्तिर्मयि परा शिवे ।
तथा मत्पूजने श्रेष्ठं पीठेषु करपङ्कजम् ॥८३॥
यथा पुष्पेषु द्रोणं च पत्रजातेषु विल्वजम् ।
तिलाक्षता द्रव्यजाते यथा दूर्वास्तृणात्मसु ॥८४॥
पूजोपकरणे देवि शक्ताशक्तसमं सुखम् ।
सर्वसामग्र्यभावेऽपि सर्वदं करपङ्कजम् ॥८५॥
कोटिकोटिघटैस्तोयैः पात्रस्थमभिषेचयेत् ।
करस्थं बिन्दुमात्रेण सममेव फलं द्वयोः ॥८६॥
[1]सम्पन्नः [2]स्वर्णकुम्भेनाभिषिञ्चेच्छतसंख्यया ।
अन्यश्चुलुकतोयेन सममेव फलं द्वयोः ॥८७॥
यन्न्यूनमतिरेकं यज्ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
[3]साङ्गमेव हि तत्सर्वं पूजनात् करपङ्कजे ॥८८॥

प्रकार के कर्मकाण्डों में मेरी पूजा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, जैसे बुलाये जाने वाले नामों में श्रीगुरु का नाम परम मंगल देने वाला है।।८२।। हे शिवे ! जैसे अन्य सभी देवताओं के प्रति की गई भक्ति की अपेक्षा मेरे प्रति प्रदर्शित भक्ति सर्वश्रेष्ठ है, उसी तरह से मेरी पूजा के योग्य ऊपर प्रदर्शित सभी पीठों में यह करपीठ ही सर्वश्रेष्ठ है।।८३।। जैसे पुष्पों में द्रोणपुष्प, पत्रों में विल्वपत्र, पूजाद्रव्यों में तिल और अक्षत तथा तृणों में दूर्वा सर्वश्रेष्ठ है।।८४।। हे देवि ! पूजा की सामग्री को जुटाने में समर्थ हो या असमर्थ, सभी को करपंकज समान सुख देने वाला है, सभी प्रकार की सामग्री के न रहने पर भी करपंकज पर इष्टलिंग की पूजा से सब कुछ मिल जाता है।।८५।। करोड़ों-करोड़ घड़ों के जल से पात्र में स्थित लिंग का अभिषेक करे और करपंकज पर स्थित इष्टलिंग पर जल की मात्र एक बूँद डाल दे, इन दोनों का समान ही फल होता है।।८६।। सम्पन्न व्यक्ति सुवर्ण के कुंभ से सौ बार इष्टलिंग का अभिषेक करे और दूसरा गरीब आदमी केवल एक चुल्लू जल से अभिषेक करे, इन दोनों का समान ही फल होता है।।८७।। पूजा में यदि कोई कमी रह जाती है अथवा आवश्यकता से अधिक पूजासामग्री का विनियोग हो जाता है; जान बूझ कर अथवा अज्ञानवश कोई अपराध हो जाता है, तो वह सब दोष करपंकज पर पूजा करने पर दूर हो जाता है, वह सब उसकी सांगता सिद्धि में ही सहायक होता है।।८८।। उस स्थिति में

---

१. श्लोकयोः (८७-८८) विपर्यस्तः पाठः-ग. ङ.। २. सर्व-क. ख. ग.। ३. पङ्क्तिरेषा नास्ति-ग. ङ.।

न तत्र न्यूनता काचिन्न प्रायश्चित्तकल्पना ।
सकलं [१]साङ्गमेवं हि पूजनात् करपङ्कजे ।।८९।।
अनुत्थानं महादेवि पूजामध्ये तु लिङ्गिनः ।
यावल्लिङ्गं समुद्वासेत् करपीठविधिस्त्वयम् ।।९०।।
साङ्गं सर्वार्चनाशक्तावभिषेकादिकं क्वचित् ।
यथाशक्त्यर्चने चापि ह्यर्चयेत् करपङ्कजे ।।९१।।
सर्वसाधारणं चैतत् पूजनं करपङ्कजे ।
न कश्चित्तत्र दोषोऽस्ति लिङ्गसंस्थापनेऽर्चने ।।९२।।
न पाणिपीठसदृशो[२] मेरुः कैलास एव वा ।
शिवलिङ्गस्य पूजायां कृच्छ्रादपि भवेच्छिवे ।।९३।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन लिङ्गसंस्थापनेऽर्चने ।
सर्वदेवमयं पाणिपद्मं सर्वोत्तमोत्तमम् ।।९४।।
सहस्रनामभिः पूजां शतमष्टोत्तरं तु वा ।
एकं वाप्यर्पयेत् पुष्पं सर्वदा करपङ्कजे ।।९५।।

न्यूनता आदि दोषों का परिहार अपने आप हो जाता है, उसके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता। करपंकज पर पूजा करने मात्र से सब कुछ सांगोपांग सम्पन्न हो जाता है।।८९।। हे महादेवि ! करपीठ पर पूजन की मुख्य विधि यही है कि जब तक आवाहन से लेकर विसर्जन पर्यन्त पूजा पूरी नहीं हो जाती, तब तक इष्टलिंगी को पूजा के बीच में उठना नहीं चाहिये।।९०।। सांगोपांग विस्तार से समस्त पूजा और अभिषेक करने में यदि कोई कहीं असमर्थ है, तो उसे यथाशक्ति पूजा करने के लिये करपंकज पर ही इष्टलिंग की उपासना करनी चाहिये।।९१।। करपंकज पर की गई यह इष्टलिंग की पूजा सभी साधारण पुरुषों के लिये भी विहित है। यहाँ लिंग को स्थापित कर उसकी पूजा करने में कोई भी दोष नहीं है।।९२।। हे शिवे ! शिवलिंग की पूजा में पाणिपीठ की बराबरी मेरुपर्वत और कैलास भी बड़ी कठिनाई से कर पावेंगे, अर्थात् करपीठ मेरुपर्वत और कैलास से भी श्रेष्ठ है।।९३।। इसलिये साधक को चाहिये कि वह सभी प्रकार के प्रयत्न कर इष्टलिंग की स्थापना और पूजा के लिये सर्वदेवमय, अत एव अन्य सब पीठों में सर्वोत्तम पाणिपीठ को ही स्वीकार करे।।९४।। इस करपंकज पर सहस्र नाम का, एक सौ आठ नाम का अथवा केवल एक ही नाम का उच्चारण कर उतनी संख्या के पुष्प चढ़ाकर इष्टलिंग की पूजा कर सकता है।।९५।। बायें हाथ की मंगलमय कोमल हथेली पर स्वच्छ वस्त्र

---

१. सगुणं धर्म्यमर्चनात्-कटि.। २. सदृशं-क. ग.।

आस्तीर्य विमलं वस्त्रं मृदुपाणितले शुभे ।
वामे दक्षिणहस्तेन पूजयेत् पत्रपुष्पकैः ।।९६।।
ताभ्यामेव हि पाणिभ्यां धत्ते शूलं कपालकम् ।
यत्र कण्ठे धृतं लिङ्गं तत्र स्यादतिकालिमा ।।९७।।
तादृङ्महिमसम्पन्नमुदितं करपङ्कजम् ।
रहस्यमपि देवेशि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।९८।।

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे शिवाद्वैतसिद्धान्ते करपङ्कजविधानं नाम त्रयोदशः पटलः समाप्तः[1] ।।१३।।

बिछा कर उस पर इष्टलिंग को स्थापित कर दाहिने हाथ से उस पर पत्र-पुष्प चढ़ाकर पूजन करना चाहिये।।९६।। इस तरह अपने दोनों हाथों से इष्टलिंग की पूजा करने वाले शिवयोगी के ये दोनों हाथ शिव के ही हाथ हो जाते हैं, जिनमें कि भगवान् शिव त्रिशूल और कपाल धारण करते हैं। शिवयोगी के पूजा के बाद गले में इष्टलिंग धारण करने से कण्ठ में उसकी जो छाया पड़ जाती है, इससे वह साक्षात् नीलकण्ठ शिव का प्रतिरूप ही बन जाता है। इस तरह से यह शिवयोगी साक्षात् शिवस्वरूप ही हो जाता है।।९७।। हे देवेशि ! इस पाणिपीठ की ऐसी महनीय महिमा शास्त्रों में कही गई है। इससे संबद्ध सारी बातें मैंने तुमको बता दी है, अव इसके आगे पुनः तुम क्या सुनना चाहती हो।।९८।।

इस प्रकार शिवाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक पारमेश्वर तन्त्र का करपंकज के विधान को बताने वाला यह तेरहवाँ पटल समाप्त हुआ।।१३।।

---

१. 'समाप्तः' नास्ति-क. ख. ङ.।

चतुर्दशः पटलः

अष्टबन्धलिङ्गलक्षणं गुरूपासाक्रमश्च

श्रीदेव्युवाच

विज्ञानघन विज्ञानमय विज्ञानकारण ।
नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं शम्भवे शशिमौलये ।।१।।
सरहस्यं च पूजादौ कथितं करपङ्कजम् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि लिङ्गलक्षणमीश्वर ।।२।।
सखण्डलिङ्गे किं पुण्यं पूजायां यदखण्डके ।
सखण्डे शिथिले मध्ये किं वा कार्यं हि लिङ्गिना ।।३।।
एतत्सर्वं [1]ममाचक्ष्व सविस्तरमुमापते ।
यच्छ्रुत्वा जायते तस्य मतिस्त्वयि महेश्वरे ।।४।।

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
रहस्यमपि गोप्यं वा वक्ष्ये स्नेहवशेन ते ।।५।।

देवी का प्रश्न

हे विज्ञानघन, विज्ञानमय, विज्ञानकारण ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ। सबका कल्याण करने वाले, ललाट पर चन्द्रमा को धारण करने वाले आप मेरे गुरु हैं।।१।। हे ईश्वर ! करपंकज पर पूरे रहस्य के साथ पूजा का विधान आपने बता दिया है। अब मैं आपसे लिंग का लक्षण सुनना चाहती हूँ।।२।। सखंड लिंग की और अखंड लिंग की पूजा से क्या फल मिलता है। सखंड लिंग यदि बीच में से शिथिल हो जाय, तो उस अवस्था में लिंगधारी को क्या करना चाहिये।।३।। हे उमापते ! ये सब बातें आप मुझे विस्तार से समझाइये, जिससे कि सामान्य मनुष्य की बुद्धि भगवान् शिव के प्रति आकृष्ट हो।।४।।

ईश्वर का उत्तर

हे देवि ! तुम सावधानी से सुनो। रहस्य की अत्यन्त गोपनीय बात को भी तुम जो पूँछ रही हो, उसे मैं स्नेहवश तुम्हें बताऊँगा।।५।।

---

१. समा-क.।

लिङ्गस्य सखण्डाखण्डादयो भेदाः

लिङ्गं तद् द्विविधं प्रोक्तमखण्डं च सखण्डकम् ।
सखण्डं द्विविधं ज्ञेयं[1] सखण्डाखण्डभेदतः ।। ६ ।।
अखण्डमाद्यं यल्लिङ्गमखण्डाकारमण्डलम् ।
आद्यन्तरहितं शून्यं निराकारमनामयम् ।। ७ ।।
आरूढस्य हि तल्लिङ्गं चिदानन्दघनं महत् ।
सखण्डमारुरुक्षोस्तु यदीशो हृदि दैवतम् ।। ८ ।।
सखण्डं बाह्यलिङ्गं स्याच्छिलादि द्विविधं मतम् ।
पूर्वोक्तलक्षणं लिङ्गं सखण्डाखण्डभेदतः ।। ९ ।।
पाणिपीठं च लिङ्गं च[2] यदेकं तदखण्डकम् ।
पाणिपीठाच्च[3] लिङ्गाच्च यद्भिन्नं तत्सखण्डकम् ।। १० ।।
सर्वाण्येतानि लिङ्गानि तारतम्यार्थदानि हि ।
अधिकारानुसारेण भक्तिरेका विशिष्यते ।। ११ ।।

अखंड और सखंड के भेद से लिंग दो प्रकार का है। सखंड लिंग भी सखंड और अखंड के भेद से दो प्रकार का होता है।।६।। पहला जो अखंड लिंग है, वह अखंड आकार वाला, आदि और अन्त से रहित, शून्यस्वरूप, निराकार और निर्विकार है।।७।। यह चिदानन्दस्वरूप महान् अखंड लिंग अध्यात्म की उच्च कोटि में प्रविष्ट योगी के लिये है। अभी अभ्यासरत योगी को सखंड लिंग की उपासना करनी चाहिये। वह हृदय स्थित भगवान् शिव का ध्यान करे।।८।। शिला आदि से निर्मित बाह्य लिंग सखण्ड और अखण्ड के भेद से दो प्रकार का है। पूर्व में बताये गये लक्षणों से युक्त लिंग सखंडाखंड कहलाता है।।९।। पाणिपीठ पर जिस इष्टलिंग की पूजा की जाती है, वह अखण्ड कहलाता है। पाणिपीठ पर स्थापित इष्टलिंग से भिन्न स्थावर लिंग सखंड है।।१०।। ये सभी लिंग तारतम्य से फल देने वाले हैं। यद्यपि अधिकार के अनुसार ही फल मिलता है, किन्तु इसमें भक्ति की ही विशेषता मानी जाती है।।११।।

---

१. देवि-ख. ग. घ. ङ.। २. हि-क.। ३. पीठं च लिङ्गं च-ग. घ. ङ.।

इष्टलिङ्गप्रमाणधारणादिकम्

यावान् हि पाणिपीठस्य भागश्चोर्ध्वमधश्च सः ।
आयामश्चापि विस्तार औन्नत्यं तावदेव हि ॥१२॥
[१]यावानुपरि विस्तार आयामश्चापि तादृशः ।
तावत्प्रमाणेन सोमसूत्रं स्यात् तावदेव हि ॥१३॥
यावत्पीठोर्ध्वभागं तद्विस्तारायाममानतः ।
लिङ्गं च तावदेव स्याद्विस्तारायाममानतः ॥१४॥
यावदन्तर्गतं त्यक्त्वा पीठादुपरि तद्भवेत् ।
अर्धार्धमन्तरे स्थाप्य अष्टबन्धार्थमीश्वरि ॥१५॥
आदौ विधायाष्टबन्धं संस्कृत्यैवाथ दीक्षयेत् ।
लौकिकस्यैव लिङ्गस्य पाणिपीठस्य चोभयोः ॥१६॥
तादृशे विगते लिङ्गे दैवाद्वा मानुषादपि ।
प्रमादाद्वा विपत्त्या वा पुनरन्यच्च धारयेत् ॥१७॥

इष्टलिंग के पीठ के ऊपर और नीचे जितना भाग है, उतनी ही उसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई होनी चाहिये। इसी तरह से ऊपर जितना विस्तार है, उतना ही आयाम होता है। इन सबको नाप कर उतने ही प्रमाण का सोमसूत्र (पंचसूत्र लिंग) बनाना चाहिये।।१२-१३।। जितना पीठ का ऊर्ध्व भाग है, उतने ही विस्तार और आयाम के प्रमाण से लिंग का विस्तार और आयाम का प्रमाण निर्धारित करना चाहिये।।१४।। हे ईश्वरि ! बाण के एक चौथाई भाग को पीठ में स्थापित करके [1]अष्टबन्ध से पीठ और बाण को जोड़ देना चाहिये।।१५।। इस प्रकार अष्टबन्ध का विधान पूरा कर लिंग का संस्कार कर शिष्य को दीक्षा देनी चाहिये। यह संस्कार लौकिक (स्थावर) लिंग और पाणिपीठ (इष्टलिंग) दोनों का होता है।।१६।। इस तरह से संस्कृत लिंग के दुर्दैववश नष्ट हो जाने पर, मनुष्य द्वारा चुरा लिये जाने पर अथवा अपने प्रमादवश या किसी विपत्ति के आ जाने से नष्ट हो जाने पर दूसरा लिंग धारण कर ले।।१७।। हे कुलेश्वरि ! दीक्षा के उपरान्त

१. श्लोकयोः (१३-१४) विपर्यस्तः पाठः-ग. घ.।

1. अष्टबन्ध के राल आदि चिकने द्रव्यों का विवरण वीरशैवाचारप्रदीपिका, पृ. १४-१५ पर देखिये।

दीक्षामुखेन गुरुणा बद्धलिङ्गः कुलेश्वरि ।
यदि क्षणमलिङ्गः स्याद् रौरवे नरके वसेत् ।।१८।।
लिङ्गद्वयं नैव धार्यं न पूज्यं लिङ्गयुग्मकम् ।
दिनैकं बहु [1]नैवार्च्यमेकलिङ्गमहं यतः ।।१९।।
लिङ्गे[2] च पाणिपीठे च द्वयोरप्येकभावनम् ।
एकलिङ्गमयीं कुर्यादेकोऽहं शङ्करो यतः ।।२०।।
षट्सूत्रमानके[3] पीठे त्रिसूत्रपरिसंमितम् ।
सन्धाय लिङ्गदार्ढ्याय ह्यष्टबन्धं समाचरेत् ।।२१।।
पञ्चबन्धं त्रिबन्धं वा दृढयेद् येन केन वा ।
द्रव्येण स्नेहयुक्तेन शैथिल्ये पुनराचरेत् ।।२२।।

लिङ्गादिनाशे प्रायश्चित्तम्

लिङ्गनाशे भवेदन्यत् पीठनाशे तथैव हि ।
शैथिल्ये चाष्टबन्धस्य यथापूर्वं समाचरेत् ।।२३।।
लिङ्गनाशे भवेद् दीक्षा चैकरात्र[4]विधानतः ।
पीठनाशे तु लिङ्गस्य सद्यो दीक्षा विधीयते ।।२४।।

गुरु द्वारा इष्टलिंग के बाँध देने के बाद यदि कोई एक क्षण के लिये भी बिना इष्टलिंग के रहता है, तो वह रौरव नरक में जाता है।।१८।। दो इष्टलिंग कभी धारण न करे और न दो इष्टलिंगों की एक साथ पूजा ही करे, क्योंकि मैं एक ही हूँ, अतः एक दिन में अनेक लिंगों का अर्चन भी न करे।।१९।। लिंग और पाणिपीठ— इन दोनों में भी एकता की ही भावना करे। मैं शंकर एक ही हूँ, अतः लिंग और पीठ की एक ही रूप में पूजा करे।।२०।। छः सूत्र प्रमाण के अथवा तीन सूत्र प्रमाण के लिंग को उसी प्रमाण के पीठ के साथ जोड़ने के लिये, उसकी दृढ़ता के लिये अष्टबन्ध का प्रयोग करे।।२१।। पाँच बन्ध या तीन बन्ध बाँधकर उसे जिस किसी भी स्नेहयुक्त द्रव्य से जोड़ देना चाहिये। उसके शिथिल हो जाने पर पुनः इसी विधि से उसे मजबूत कर ले।।२२।।

लिंग के या पीठ के नष्ट हो जाने पर अन्य लिंग या पीठ बनावे और अष्टबन्ध के शिथिल हो जाने पर पुनः उसे मजबूत कर ले।।२३।। लिंग के नष्ट हो जाने पर एक रात्रि के विधान से पुनः दीक्षा ले और यदि केवल पीठ नष्ट हुआ है, तो तत्काल दीक्षा ली जाती है।।२४।। अष्टबन्ध के शिथिल होने पर होम, दीक्षा और आवश्यक दैनिक कार्य

---

१. नैर्वाच्य-क.। २. लिङ्गं च पाणिपीठं-ग. घ.। ३. यन् कश्चित्-क.। ४. रात्री-क.।

शैथिल्ये त्वष्टबन्धस्य होमदीक्षामथाह्निकम् ।
शतमष्टोत्तरं शक्त्या भोजयेच्छिवयोगिनः ॥ २५ ॥
जपेद् द्वादशसाहस्रं मम पञ्चाक्षरं मनुम् ।
अन्यथा विपदं याति रौरवं [१]चाधिगच्छति ॥ २६ ॥
लिङ्गनाशे भवेल्लिङ्गं पीठं पीठस्य नाशने ।
अष्टबन्धेऽष्टबन्धः स्याद् यन्नष्टं तत्पुनश्चरेत् ॥ २७ ॥
लिङ्गाष्टबन्धपीठानामेका दीक्षा विधीयते ।
[२]सज्जीवस्त्रगुणानां तु सद्यस्तत्पुनराचरेत् ॥ २८ ॥
होमश्च दक्षिणादानं भोजनं शिवयोगिनाम् ।
जपश्च सममेव स्यादष्टबन्धादिकत्रये ॥ २९ ॥
जपो दानं यथाशक्ति भोजनं शिवयोगिनाम् ।
सममेव महादेवि सज्जादित्रयनाशने ॥ ३० ॥
शृणु तत्र विशेषं ते प्रवक्ष्यामि महेश्वरि ।
जप्त्वाऽर्चेन्मन्मनुं लिङ्गमशक्तः सर्वकर्मणि ॥ ३१ ॥

सम्पन्न करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार एक सौ आठ शिवयोगियों (जंगमों) को भोजन करावे।।२५।। बारह हजार बार शिव-पंचाक्षर मन्त्र का जप करे। ऐसा न करने वाला विपत्ति में पड़ जाता है और उसे रौरव नरक मिलता है।।२६।। लिंग के नष्ट होने पर लिंग का, पीठ के नष्ट होने पर पीठ का और अष्टबन्ध के नष्ट होने पर अष्टबन्ध का निर्माण कराना चाहिये।।२७।। लिंग, अष्टबन्ध और पीठ के नष्ट होने पर पुनः एक बार दीक्षा लेनी पड़ती है। सज्जिका, वस्त्र और गुण के नष्ट होने पर तत्काल उनको पुनः बना लेना चाहिये।।२८।। होम, दक्षिणा, दान, शिवयोगियों का भोजन और जप ये सब इष्टलिंग, अष्टबन्ध और पीठ के लिये समान संख्या में किये जाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि लिंग या पीठ के खण्डित होने पर अथवा अष्टबन्ध के शिथिल होने पर इनमें से किसी का भी नवीनीकरण करते समय जप, होम, दान और जंगम भोजन की संख्या समान रखनी चाहिये।।२९।। हे महादेवि ! इसी तरह से सज्जिका, वस्त्र और गुण का परिवर्तन करते समय जप, दान और शिवयोगियों को यथाशक्ति भोजन कराना— ये सब समान हैं।।३०।। हे महेश्वरि ! सुनो ! तुम्हें मैं एक विशेष बात बताऊँगा। यदि कोई पूरी पूजा करने में असमर्थ है, तो वह शिव-पंचाक्षर मन्त्र का जप करके केवल इष्टलिंग का अर्चन कर ले।।३१।।

---

१. नरकं व्रजेत्-ख.। २. सज्ज-ख.।

यद्यकालेऽष्टबन्धस्य दैवाच्छैथिल्यमागतम् ।
सद्यः सम्बन्धयेल्लिङ्गं येन केनापि वस्तुना ।। ३२ ।।
शनैः सम्पादयेदष्टबन्धनाय दृढाय तु ।
नोपेक्षां तत्र कुर्वीत विमुखोऽहं मतस्ततः ।। ३३ ।।
अप्रमत्तः सदा तिष्ठेल्लिङ्गसंरक्षणे सुधीः ।
यथा प्राणे यथा देहे नष्टेऽन्यत् पुनराचरेत् ।। ३४ ।।
एकदेशविभिन्ने तु यदि प्रथमलिङ्गकम् ।
यावच्छिष्टं हि तत्तावद्यावत्तावच्चरेच्छिवे ।। ३५ ।।
द्वितीयादिषु लिङ्गेषु वैकल्याच्चान्यदाचरेत् ।
लिङ्गिनां शिवभक्तानां सद्योदीक्षां च भोजनम् ।। ३६ ।।

पात्रलक्षणम्

पात्रनाशे भवेत्पात्रं यन्नष्टं तत्पुनश्चरेत् ।
वक्ष्ये शृणु महादेवि प्रसङ्गात् पात्रलक्षणम् ।। ३७ ।।

यदि अष्टबन्ध में दुर्भाग्यवश असमय में कोई शिथिलता आ गई है, तो जिस किसी भी वस्तु से लिंग को तत्काल जोड़ लेना चाहिये।।३२।। अष्टबन्ध को मजबूत करने के लिये तत्काल प्रयत्न करना चाहिये। इसमें उपेक्षा उचित नहीं है, क्योंकि मैं ऐसी स्थिति में उससे विमुख हो जाता हूँ।।३३।। विद्वान् मनुष्य को चाहिये कि वह इष्टलिंग की रक्षा में सदा सावधान रहे, जैसे कि वह अपने प्राण और शरीर की रक्षा में रहता है। उसके नष्ट हो जाने पर दूसरा.इष्टलिंग धारण करना चाहिये।।३४।। हे शिवे ! प्रथम बार धारण किये गये इष्टलिंग के किसी भाग के टूट जाने पर उसे बचे हुए भाग से जोड़ कर जब तक बन पड़े उसे ही पहने रहे।।३५।। दूसरी-तीसरी बार धारण किये गये इष्टलिंग में यदि ऐसा दोष आता है, तो इस स्थिति में उस विकलता के परिहार के लिये नया इष्टलिंग ही धारण करे। साथ ही शिवभक्त वीरशैव को तत्काल नयी दीक्षा ग्रहण कर शिवयोगियों को भोजन कराना चाहिये।।३६।।

पात्र के नष्ट होने पर दूसरा पात्र ग्रहण करे। जो पात्र नष्ट हुआ है, उसके स्थान पर उसी पात्र को ग्रहण करे। हे महादेवि ! प्रसंगवश अब मैं तुम्हें पात्रों का लक्षण बताऊँगा।।३७।। यह पात्र सुवर्ण, रजत, कांसा, तांबा अथवा पीतल से बना हुआ; लकड़ी,

सौवर्णं राजतं कांस्यं ताम्रं पैत्तलकं तु वा ।
दारुजं मृन्मयं शैलं पर्णजं नारिकेलजम् ।। ३८ ।।
अभिन्नं विपुलं श्लक्ष्णं वर्तुलं नवमुज्ज्वलम् ।
निर्मलं पङ्करहितं सुगन्धि लघु शोभितम् ।। ३९ ।।
एतादृशानि पात्राणि नव सप्तापि पञ्च वा ।
अथवा त्रीणि कुर्वीत नैकं न समसंख्यया ।। ४० ।।
दरिद्रोऽपि न कुर्वीत न सीसं नायसं त्रपु ।
अपात्रबहुपात्राणि वर्जयेच्छिवपूजने ।। ४१ ।।
[१]शङ्खपात्रं सुरम्यं च [२]खड्गपात्रं विशेषतः ।
[३]मृत्तिकानारिकेलादिपात्रं स्याच्छिवपूजने ।। ४२ ।।
सङ्कल्प्य साधिकं पात्रं न निमित्तं विना तथा ।
चालयेत् पूजने काले न स्कन्नं कारयेज्जलम् ।। ४३ ।।
सम्भवे सति सौवर्णं पात्रं स्यादुत्तमोत्तमम् ।
अभावे राजतं ताम्रं[४] मृत्पर्णादि तु शक्तितः ।। ४४ ।।

मिट्टी अथवा पत्थर का बना हुआ, पलाश आदि के पत्तों से अथवा नारियल से बना हुआ होना चाहिये।।३८।। यह पात्र बिना टूटा हुआ, विशाल, चिकना, गोल, नया, उज्ज्वल, निर्मल, पंकरहित (धूल आदि से न सना हुआ), सुगन्धित, हलका और सुन्दर होना चाहिये।।३९।। वीरशैव को इस तरह के नौ, सात, पांच अथवा तीन पात्र पूजा के लिये लेने चाहिये। एक पात्र अथवा समसंख्या के पात्र न ले।।४०।। दरिद्र व्यक्ति को भी सीसे, लोहे अथवा जस्ते के पात्र नहीं लेने चाहिये। शिवपूजन में अयोग्य पात्र और अनेक पात्र वर्ज्य हैं।।४१।। शंख-पात्र और गैंडे के सींग से बना सुन्दर पात्र विशेष रूप से ग्राह्य है। शिवपूजन में मिट्टी और नारियल का पात्र भी ग्राह्य होता है।।४२।। संकल्पपूर्वक पूजा में साधिकार ग्रहण किये गये पात्र को पूजा करते समय हिलानां नहीं चाहिये और न उसमें का जल ही नीचे गिराना चाहिये।।४३।। संभव हो तो पूजा के लिये सुवर्णपात्र ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उसके अभाव में चाँदी, तांबा, मिट्टी, पर्ण आदि का पात्र अपनी शक्ति के अनुसार ग्राह्य है।।४४।। हे देवि ! शिव की पूजा में नारियल का पात्र सभी के लिये समान

---

१. कमठीखर्परं रम्यं-कटि.। २. पद्म-घ.। ३. शुक्तिका-कटि.। ४. लोहं-घ. ङ.।

सर्वसाधारणं देवि नारिकेलं शिवार्चने ।
आयुर्यशोबलकरम् अपमृत्युनिवारकम् ॥ ४५ ॥

शिवपात्रलक्षणम्

सम्यक् संक्षालयेन्नित्यं नान्यत् कर्मणि योजयेत् ।
विनैव पूजां लिङ्गस्य शिवपात्रं तदुच्यते ॥ ४६ ॥

पात्रेषु तीर्थावाहनम्

पात्रेषु सागरान् सप्त गङ्गां गोदावरीं नदीम् ।
कृष्णां वेणीं तुङ्गभद्रां कावेरीं च पिनाकिनीम् ॥ ४७ ॥
ताम्रपर्णीं तथा रेवां यच्च पुष्करिणीत्रयम् ।
मणिकर्णिकां धनुष्कोटिं भावयेत् पात्रमध्यगाम् ॥ ४८ ॥
न भूमौ प्रक्षिपेत् पात्रं न च रिक्तं कदाचन ।
नान्योन्यं ताडयित्वा तु जनयेद् ध्वनिमीश्वरि ॥ ४९ ॥

पात्राधारवर्णनम्

संसाधयेत् प्रयत्नेन पात्राधारमथो[१] भुवि ।
आधाराणि सुयोग्यानि पात्रनिक्षेपणाय हि ॥ ५० ॥

रूप से ग्राह्य है। यह आयु, यश और बल को वढ़ाने वाला तथा अपमृत्यु का निवारक है।।४५।।

जिस पात्र को प्रतिदिन साफ किया जाता है, लिंग की पूजा के सिवाय अन्य किसी कार्य में जिसका कभी उपयोग नहीं किया जाता, उसे ही शिवपात्र कहते हैं।।४६।।

पूजा करते समय सात समुद्रों की; गंगा, गोदावरी, कृष्णा, तुंगभद्रा, कावेरी, पिनाकिनी, ताम्रपर्णी, रेवा (नर्मदा) जैसी पवित्र नदियों की; [1]तीन पुष्करिणियों की, मणिकर्णिका और धनुष्कोटि तीर्थ की उन पात्रों में स्थित जल में भावना करनी चाहिये।।४७-४८।। हे ईश्वरि ! पूजापात्र को कभी जमीन पर न रखे, उसे कभी खाली न रखे और एक दूसरे से टकरा कर ध्वनि उत्पन्न न करे।।४९।।

इन पात्रों को पृथिवी पर रखने के लिये प्रयत्नपूर्वक समुचित आधार भी बनाना चाहिये। पूजापात्रों को स्थिर रखने के लिये सुयोग्य आधारों की आवश्यकता होती है।।५०।।

---

१. णामासनं-ख.।
1. पुष्करिणियों के परिचय के लिये "धर्मशास्त्र का इतिहास" (भा. ३, पृ. १४५६) देखिये।

अभिषेकाय लिङ्गस्य यदि स्यादुद्धृतोदकम् ।
तदोदकुम्भमवनौ नाधारं निक्षिपेद् विना ॥५१॥

पाणिलिङ्गपूजानियमाः

यद्यन्तरा भवेच्छङ्का पाणिलिङ्गस्य लिङ्गिनः ।
पूजायां देहधर्मस्य शिष्यपाणितले क्षिपेत् ॥५२॥
शिष्याद्यभावे देवेशि सज्जिकायां पुनः क्षिपेत् ।
निर्वर्तयित्वा निर्वर्त्यं सचैलं स्नानमाचरेत् ॥५३॥
पुनः कुर्याद्यथापूर्वं पूजाशेषं मम प्रिये ।
अन्यथा पतितो याति दारुणं नरकार्णवम् ॥५४॥
नाशुचिः पूजयेल्लिङ्गं नाकाले नान्यविन्मनाः ।
नानादरेण हस्ताब्जे पूजायां विधिरुच्यते ॥५५॥
धृतरुद्राक्षभस्माङ्गः शिवनामपरायणः ।
गुरूक्तेन विधानेन प्रयतो लिङ्गमर्चयेत् ॥५६॥

लिंग के अभिषेक के लिये यदि कूप आदि से जल निकाला जा रहा हो, तो उस जलकुंभ को खाली जमीन पर न रख किसी आधार के ऊपर ही रखे।।५१।।

इष्टलिंगधारी अपने पाणिपीठ पर जब लिंग की पूजा कर रहा हो, उस समय यदि उसे मल-मूत्र आदि देहधर्म की बाधा उपस्थित हो, तो वह उस समय इष्टलिंग को [1]शिष्य के पाणिपीठ पर रखकर मल-मूत्र आदि का विसर्जन करे।।५२।। हे देवेशि ! शिष्य आदि के उपस्थित न होने पर इष्टलिंग को पुनः सज्जिका में रख दे और दैहिक कृत्य को पूरा कर सचैल स्नान करे।।५३।। हे प्रिये ! इसके बाद वह पुनः अवशिष्ट पूजा को पूरा करे। ऐसा न करने पर वह पतित हो जाता है, दारुण नरक भोगता है।।५४।। अपवित्र स्थिति में लिंग की पूजा न करे। इसी तरह से असमय में पूजा न करे, मन जब उचटा हुआ हो, तब भी पूजा न करे और बिना आदर के उपेक्षाभाव से भी पूजा न करे। करकमल पर इष्टलिंग की पूजा की यही संक्षिप्त विधि है।।५५।। अपने शरीर पर भस्म और रुद्राक्ष धारण कर शिवनाम का जप करता हुआ शिवभक्त गुरु के द्वारा उपदिष्ट विधि से एकाग्र मन से इष्टलिंग की पूजा करे।।५६।। हे ईश्वरि ! दूसरे कार्य में लगा हुआ, प्रलाप करता हुआ, मन से बेचैन

---

1. वीरशैव आचार में इष्टलिंगधारी के मल-मूत्र के विसर्जन करते समय किसी दूसरे के हाथ में इष्टलिंग को देने की परम्परा नहीं है। वह अपनी नाभि के ऊपर के कण्ठ, वक्षस्थल आदि स्थानों में उसे धारण करता है। अपने शरीर से इष्टलिंग को कभी अलग नहीं करता।

नान्यकार्यपरः क्वापि न प्रलापपरोऽपि वा ।
न व्यग्रो वा न त्वरया पूजयेल्लिङ्गमीश्वरि ।।५७।।
सन्तुष्टमानसः शान्तः शुचिर्माल्याम्बरावृतः ।
सुवासितमुखो भूत्वा पूजयेल्लिङ्गमीश्वरि ।।५८।।

इष्टलिङ्गपूजने दिङ्निर्देशः

सदा पूर्वमुखः पूजां कुर्याल्लिङ्गस्य शाङ्करि ।
आयुः श्रियं यशो वर्चः प्रजां पुष्टिं यदीच्छति ।।५९।।
दक्षिणाभिमुखः कुर्यान्मारणादिषु सुन्दरि[1] ।
कामार्थी पश्चिममुखो ज्ञानार्थी स्यादुदङ्मुखः ।।६०।।
प्रातर्मध्याह्नयोः पूर्वमुखः पूजां समाचरेत् ।
रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद् विधिरेष समर्चने ।।६१।।
व्यत्यस्तं[2] नैव कुर्वीत विनैहिकफलं शिवे ।
यदि स्याज्ज्ञानमोक्षार्थी पूजयेदुत्तराननः ।।६२।।
निस्पृहः सर्वकामेषु मुमुक्षुर्विजितेन्द्रियः ।
उक्तलक्षणवान् ज्ञानी सर्वस्य सर्वदा भवेत् ।।६३।।

व्यक्ति जल्दी-जल्दी में पूजा को न निपटावे।।५७।। हे ईश्वरि ! सन्तुष्ट मन वाला, शान्तस्वभाव, पवित्र, माला और सुन्दर वस्त्र आदि से अलंकृत, सुवासित मुख होकर ही शिवभक्त को लिंग की पूजा करनी चाहिये।।५८।।

हे शांकरि ! यदि शिवभक्त आयु, लक्ष्मी, यश, वर्चस्व, सन्तति और पुष्टि चाहता है, तो वह सदा पूर्वमुख होकर इष्टलिंग की पूजा करे।।५९।। हे शिवे ! दक्षिण दिशा की ओर मुँह कर पूजा करने वाला अपने शत्रु का नाश करता है। कामना की पूर्ति के लिये पश्चिममुख और ज्ञान को चाहने वाला उत्तरमुख हो पूजा करे।।६०।। प्रातःकाल और मध्याह्न वेला में पूर्वमुख तथा सायंकाल तथा रात्रि में उत्तरमुख हो पूजा करे। मेरी (शिव) पूजा की यही सामान्य विधि है।।६१।। हे शिवे ! बिना किसी ऐहिक फल की कामना के इस विधि में उलटफेर नहीं करना चाहिये। ज्ञान की और मोक्ष की कामना वाला व्यक्ति उत्तराभिमुख हो इष्टलिंग की उपासना करे।।६२।। सभी प्रकार की कामनाओं के प्रति जो निस्पृह है, मुमुक्षु है, जितेन्द्रिय है, इन सब लक्षणों से सम्पन्न व्यक्ति के लिये सब कुछ उचित है।।६३।। तेज की कामना वाला आग्नेय दिशा की ओर, शत्रु का नाश चाहने वाला

---

१. मरणं प्राप्नुयाच्छिवे-क.। २. स्तो-ख.।

तेजस्काम्यग्निवदनः प्रजाकामी मरुन्मुखः ।
शत्रुक्षयार्थी ह्यीशाने प्रजार्थी प्रत्यगुत्तरः ।।६४।।
सन्ध्यासु पूर्ववदनो ह्यभिचारककर्मणि ।
अर्चन्निर्ऋतिदिग्वक्त्रः सर्वार्थी सर्वतोमुखः ।।६५।।

गुरुदैवतयोरैक्यभावनम्

इत्यादिनियमोपेतो ह्यास्तिको भक्तिमान् मयि ।
[1]गुरुदैवतयोरेकरूपं प्रत्ययवान् भवेत् ।।६६।।

सद्गुरुस्मरणम्

प्रायश्चित्तेऽपि वैकल्ये निषेधेऽपि विधावपि ।
कार्येऽप्यकार्ये सर्वत्र गुरुरेव हि कारणम् ।।६७।।
सन्निधावपि दूरे वा व्यवधाने समक्षके ।
गुरूक्त एव नियमो यतः सर्वात्मको गुरुः ।।६८।।
ब्रह्मा विष्णुः शिवो रुद्र ईशः शक्तिः पितामहः ।
सूर्यचन्द्राग्निमरुतो गुरुरेव न संशयः ।।६९।।

ईशान दिशा की ओर तथा प्रजा की कामना वाला व्यक्ति वायव्य दिशा की ओर अभिमुख होकर पूजा करे।।६४।। सन्ध्या करते समय पूर्व की ओर, यदि वह अभिचार (शत्रु का मारण, उच्चाटन आदि क्रूर) कर्म करना चाहता है, तो नैर्ऋत्य दिशा की ओर तथा सभी प्रकार की कामनाओं की पूर्ति के लिये सभी दिशाओं की ओर अभिमुख होकर शास्त्रविहित पद्धति से पूजा कर सकता है, अर्थात् अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिये शास्त्र-प्रदर्शित पद्धति से उन-उन दिशाओं में अभिमुख होकर अनुष्ठान करे।।६५।।

इन सब नियमों का पालन करता हुआ, शिव में भक्ति रखने वाला, आस्तिक पुरुष गुरु और देवता की एकरूपता में दृढ़ विश्वास जमावे।।६६।।

किसी दोष के होने पर उसका प्रायश्चित्त बताने में, सभी प्रकार के विधि और निषेध में और क्या कार्य है, क्या अकार्य, इसके निर्णय में केवल गुरु ही एकमात्र शरण है।।६७।। पास में हो या दूर, सामने हो अथवा न हो, सर्वत्र गुरु द्वारा प्रदत्त नियम ही पालनीय हैं, क्योंकि यह गुरु सर्वात्मक है।।६८।। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, रुद्र, ईश्वर, शक्ति, पितामह, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, पवन— ये सब गुरु के ही स्वरूप हैं।।६९।। सोकर उठने पर, सोने के लिये

---

1. "गुरुशिवयोरभेदः शिष्यस्य गुर्वनुवर्तनक्रमश्च सम्यगुदितः शैवे वायवीयसंहितायामुत्तरभागे त्रयोदशाध्याये, लैङ्गेऽपि पूर्वभागे पडशीतितमाध्याये" इति ख. टिप्पणी (पृ. २०५)।

उत्थाने शयने क्वापि प्रस्थाने चोपवेशने ।
निद्रादौ च तदन्ते च स्मरेत् सर्वत्र सद्गुरुम् ।।७०।।
वचनारम्भसमये क्षतप्रस्खलनादिषु ।
विकत्थने च कलहे स्मरेत् सर्वत्र सद्गुरुम् ।।७१।।
सर्वपापविनाशाय सर्वसौख्यविवृद्धये ।
सर्वाभीष्टार्थसिद्ध्यर्थं संस्मरेच्छ्रीगुरुं सदा[1] ।।७२।।
ब्रह्महत्यासहस्राणि गोहत्याकोटिकोटिशः ।
साधितान्यपि धीपूर्वं श्रीगुरोः स्मरणं दहेत् ।।७३।।
दुःस्वप्नेऽपि दुरालापे दुश्चित्ते दुर्भयेऽपि च ।
दुर्निमित्तेऽपि[2] कृच्छ्रे च संस्मरेच्छ्रीगुरुं सदा ।।७४।।
पवित्रं पावनं पुण्यं शुद्धं परममङ्गलम् ।
वेदवेदाङ्ग[3]सारार्थं श्रीगुरोर्नाम संस्मरेत् ।।७५।।
अशास्त्रे वाऽपि शास्त्रे वानाचाराचारयोरपि ।
सर्वदोषविनाशाय श्रीगुरोः स्मरणं परम् ।।७६।।

जाते समय, यात्रा के लिये प्रस्थान करने पर, कहीं बैठते समय, निद्रा के आरंभ और अन्त में—इन सभी स्थितियों में सद्गुरु का स्मरण करे।।७०।। कहीं सभा आदि में बोलते समय, घाव लग जाने पर, कोई गलती हो जाने पर, डींग हांकते समय और कलह करते समय भी सद्गुरु का सदा स्मरण करे।।७१।। सभी प्रकार के पापों के नाश के लिये, सभी प्रकार की सुख-समृद्धि को पाने के लिये तथा सभी मनोरथों की पूर्ति के लिये श्रीगुरु का स्मरण करे।।७२।। हजारों ब्रह्महत्याओं और करोड़ों-करोड़ गोहत्याओं को करने के बाद भी शुद्ध मन से किया गया गुरु का स्मरण इन पापों को जला डालता है।।७३।। बुरे सपने आने पर, व्यर्थ का वाद-विवाद हो जाने पर, चित्त में मलिनता आने पर, अकारण भय के उपस्थित होने पर, बुरे निमित्तों के दिखाई देने पर और भयंकर कष्ट के समय सदा श्रीगुरु का स्मरण करे।।७४।। वेदों और वेदांगों के रहस्य को जानने के लिये पवित्र, पावन, पुण्य, शुद्ध और परम मंगल देने वाले श्रीगुरु के नाम का स्मरण करे।।७५।। अशास्त्रीय अथवा शास्त्रीय कर्म का आचरण करते समय, अनाचार अथवा आचार का पालन करते समय, इनके सभी दोषों के निवारण के लिये श्रीगुरु का स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है।।७६।। विद्या, ज्ञान

१. तथा-क.। २. त्ते च-घ. ङ.। ३. दान्त-ख. ङ., दार्थ-ग. घ.।

विद्याज्ञानविवेकाय सुखभोगार्थसिद्धये ।
जीवन्मुक्त्यर्थलाभाय कुर्यात् संस्मरणं गुरोः ।।७७।।
कृतानां सर्वपापानां मनोवाक्कायकर्मभिः ।
सद्य एव विनाशाय संस्मरेद् गुरुमादरात् ।।७८।।
न विनश्यन्ति पापानि जाग्रदादिकृतान्यपि ।
अनल्पान्यपि चाल्पानि श्रीगुरु[१]स्मरणं विना ।।७९।।
यद्यस्ति मयि सद्भक्तिः साधकस्य च लिङ्गिनः ।
मद्रूपिणमुमे नित्यं संस्मरेच्छ्रीगुरुं सुधीः ।।८०।।
उषसि ब्रह्मसद्रूपं चिद्रूपं परमामृतम् ।
चिदानन्दघनं देवं सर्वदा श्रीगुरुं स्मरेत् ।।८१।।
सर्वेषामपि कार्याणामारम्भे यतमानसः ।
अप्रमत्तः स्मरेन्नित्यं श्रीगुरोर्नाम मङ्गलम् ।।८२।।

सद्गुरुमाहात्म्यम्

गुरुभक्तिविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ।
अनुष्ठिता अपि तथा[२] स्वैरिणीव्रतवच्छिवे ।।८३।।

और विवेक की प्राप्ति के लिये, सुख और भोगरूपी प्रयोजन की सिद्ध के लिये और जीवन्मुक्ति को प्राप्त करने के लिये श्रीगुरु का स्मरण करना चाहिये।।७७।। मन, वचन और शरीर से किये गये सभी तरह के पापों के तत्काल विनाश के लिये आदर के साथ श्रीगुरु का स्मरण करे।।७८।। जाग्रत्, स्वप्न आदि दशाओं में किये गये पाप थोड़े हों या बहुत से, उन सबके नाश के लिये श्रीगुरु के स्मरण के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है।।७९।। इष्टलिंगधारी साधक की यदि मेरे प्रति सच्ची भक्ति है, तो उस बुद्धिमान् व्यक्ति को शिवस्वरूप गुरु का नित्य स्मरण करना चाहिये।।८०।। प्रातःकाल ब्रह्म के सद्रूप, चिद्रूप, परमामृत स्वरूप में तथा चिदानन्दघन देव के रूप में श्रीगुरु का ही सदा स्मरण करे।।८१।। मन को अपने वश में रखने वाला साधक पूरी सावधानी के साथ सभी कार्यों का आरंभ करते समय नित्य श्रीगुरु के मंगलदायक नाम का स्मरण करे।।८२।।

हे शिवे ! गुरु के प्रति भक्ति से रहित व्यक्ति की सारी अनुष्ठित क्रियाएं उसी तरह से निष्फल हो जाती हैं; जैसे कि स्वैरिणी स्त्री के द्वारा किया गया व्रंत निष्फल रहता है।।८३।। हे भद्रे ! बहुत कहने से क्या लाभ है, तुम इतना ही सार रूप में समझो

१. गुरोः-ख.। २. स्पष्टं-ख. ग. घ. ङ.।

बहुना किमनेनाऽऽर्ये सर्वसारमिदं शृणु ।
सर्ववैकल्यसाकल्यपूर्तये परमं वचः ॥८४॥
स्वस्थः परवशो वापि तुष्टो[१] वा दुःखितोऽपि वा ।
सर्वावस्थासु सर्वत्र गतिः सद्गुरुसेवनम् ॥८५॥
अशक्तः पूजने भक्त उक्तलक्षणकर्मणि ।
सर्वसंकल्प[२]सिद्ध्यर्थं ध्यायेद् गुरुपदाम्बुजम् ॥८६॥
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं पूजामूलं गुरोः पदम् ।
ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिर्मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥८७॥
यस्त्वशक्तो मम ध्याने स ध्यायेद् गुरुमीश्वरम् ।
जपे मन्त्रस्य मे देवि श्रीगुरोर्नाम संस्मरेत् ॥८८॥
सर्वमन्त्रमयं दिव्यं सर्वशास्त्रमयं शुभम् ।
सर्ववेदात्मकं पुण्यं श्रीगुरोर्नाम मङ्गलम् ॥८९॥

कि सभी तरह की विकलता को दूर करने और साकल्य की पूर्ति के लिये श्रीगुरु का श्रेष्ठ वचन ही समर्थ है।।८४।। मनुष्य स्वस्थ (स्वतन्त्र) हो या परतन्त्र, दुःखी हो या उसमें किसी कारणवश दुष्टभाव आ गया हो, इन सभी अवस्थाओं में सदा सद्गुरु की सेवा ही श्रेष्ठ गति है।।८५।। ऊपर बताई गई पद्धति से जो भक्त श्रीगुरु की पूजा करने में अपने को अशक्त पाता हो, तो उसे अपने सभी संकल्पों की सिद्धि के लिये श्रीगुरु के चरणकमलों का ध्यान करना चाहिये।।८६।। श्रीगुरु का वाक्य ही सभी मन्त्रों का मूल है, गुरु के चरणों की पूजा से ही सभी पूजाएं पूरी हो जाती हैं, गुरु की मूर्ति के ध्यान में ही सारे ध्यान आ जाते हैं और गुरु की कृपा से ही मुक्ति मिल सकती है।।८७।। हे देवि ! जो व्यक्ति मेरा ध्यान करने में अथवा मेरे मन्त्र का जप करने में असमर्थ है, वह गुरु का ही ध्यान करे और उनके नाम को ही जपे।।८८।। यह श्रीगुरु का नाम सभी मन्त्रों का खजाना है, दिव्य तेज से सम्पन्न है, सभी शास्त्र इसमें निवास करते हैं, यह शुभदायक है, सभी वेदों का यह निवास-स्थान है। पुण्यदायक यह श्रीगुरु का नाम सभी प्रकार के मंगल को देने वाला है।।८९।। हे देवेशि ! पुण्यवान् भक्त पुरुष जब गुरु के स्वरूप का साक्षात् दर्शन करता

---

१. दुष्टो-क.। २. साकल्य-ख. ग. घ. ङ.।

यदा साक्षाद् गुरो रूपं भक्तः पश्यति पुण्यवान् ।
तदेव मम देवेशि साक्षाद् दर्शनमुत्तमम् ।।९०।।
तस्मात् स्वर्गापवर्गेच्छुरिह भोगेच्छुरास्तिकः ।
सर्वदा सर्वयत्नेन गुरुदेवं समाश्रयेत् ।।९१।।
सर्वे वेदाश्च शास्त्राणि पुराणानि च संहिताः ।
स्मृतयो धर्मशास्त्राणि श्रीगुरोर्वचनं परम् ।।९२।।
गुकारोऽन्धन्तमः प्रोक्तं रुकारो भास्करोदयः ।
मोहान्धकारहरणाद् गुरुरित्यभिधीयते ।।९३।।
सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः ।
एक एव महामन्त्रो गुरुरित्यक्षरद्वयम् ।।९४।।
द्वावेव मन्त्रौ देवेशि सर्वेषामपि मुक्तये ।
सर्वक्लेशविनाशाय [१]तौ गुर्विति शिवेति च ।।९५।।
भावयेत् सततं धीमान् जगदेतच्चराचरम् ।
इन्द्रियोपगतं यद्यत् श्रीगुरो रूपमैश्वरम् ।।९६।।

है, यह साक्षात्कार मेरा ही उत्तम दर्शन है।।९०।। इसलिये जो आस्तिक व्यक्ति स्वर्ग अथवा अपवर्ग (मोक्ष) को चाहता है अथवा सांसारिक भोगों का इच्छुक है, तो उसे सदा सभी तरह के प्रयत्नों से गुरुदेव का आश्रय लेना चाहिये।।९१।। सभी वेदादि शास्त्र, पुराण, संहिता, स्मृति और धर्मशास्त्र— ये सभी गुरु के ही उपदेश-वचन हैं।।९२।। घने अन्धकार को 'गु' कहा जाता है, 'रु' का अर्थ सूर्योदय है। शिष्य के मोहरूपी अन्धकार को दूर करने के कारण इनको गुरु कहा जाता है।।९३।। मन्त्रों की संख्या शास्त्रों में सात करोड़ मानी गई है। ये सभी मनुष्य के मन में भ्रम पैदा करने वाले हैं। 'गुरु' यह दो अक्षर वाला महामन्त्र ही एक ऐसा है, जो कि सारे भ्रमों को मिटा देने वाला है।।९४।। हे देवेशि ! 'गुरु' और 'शिव' ये दो ही मन्त्र ऐसे हैं, जो सभी को मुक्ति दिलाने वाले और सारे क्लेशों का नाश करने वाले हैं।।९५।। बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि वह इस सारे चराचर जगत् की, जो कुछ भी उसकी इन्द्रिय का विषय है, उन सबकी सदा ईश्वरस्वरूप श्रीगुरु के रूप में ही भावना करे।।९६।। हे सुव्रते ! श्रीगुरु के दर्शन के लिये की गई यात्रा काशीयात्रा है,

---

१. गुरोरिति-ग. घ. ङ.।

गुरुयात्रा सदा काशीयात्रा तस्य प्रदक्षिणम् ।
भूमिप्रदक्षिणं साक्षात्[1] दर्शनं मम सुव्रते ॥९७॥
इत्येतत् कथितं देवि सर्वसारमनुत्तमम् ।
रहस्यमात्मरक्षार्थं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥९८॥

इति [2]श्रीपारमेश्वरतन्त्रेऽष्टबन्ध[3]लिङ्गलक्षण-गुरुस्वरूपो-पासननिरूपणं नाम चतुर्दशः पटलः ॥१४॥

श्रीगुरु की प्रदक्षिणा भूमि की प्रदक्षिणा के बराबर है और श्रीगुरु का दर्शन शिव के दर्शन के बराबर है।।९७।। हे देवि ! इस तरह से मैंने तुमको समस्त शास्त्रों के उत्तम सार भाग के रहस्य को निकाल कर आत्मरक्षा का यह उत्तम उपाय बताया है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहती हो।।९८।।

इस प्रकार पारमेश्वर तन्त्र का यह अष्टवन्धलिंगलक्षण और गुरुस्वरूप का निरूपण करने वाला चौदहवाँ पटल समाप्त हुआ।।१४।।

---

१. धत्ते-क.। २. श्रीमत्-घ.। ३. बन्धादिनिरू-ख., न धादिगुरु-ग. घ. ङ.।

पञ्चदशः पटलः

वीरशैवभेदनिरूपणम्

[1]श्रीदेव्युवाच

सृष्ट्वा तमेकमात्मानमनेकं कुरुते पुनः ।
एकीकृत्य ग्रसति यस्तस्मै रुद्र नमोऽस्तु ते ॥१॥
सर्वदृक् सर्वकृत् स्वामिन् सर्वात्मन् सर्वपालक ।
शर्व सर्वज्ञ विश्वेश शरण्याय नमो नमः ॥२॥
कृपया मयि वात्सल्यवशेन कथितं प्रभो ।
वीरशैवस्य विस्तारं वैभवं तु सविस्तरम् ॥३॥
इतः परं [2]ममापेक्ष्यमल्पं वा नास्ति [3]त्वन्मते ।
तथापि मम चित्तस्य पर्याप्तिर्नैव जायते ॥४॥
अस्ति चेदुपदेशं मे रहस्यं वा प्रकाशकम् ।
गूढं वा प्रकटं वापि दयां मयि निदर्शय ॥५॥
यदि दास्यस्यनुज्ञां मे पृच्छाम्यात्मगतस्पृहाम् ।
प्रष्टव्यमस्त्येव मम वर्तते हृदि संशयः ॥६॥

देवी का प्रश्न

हे रुद्र ! आप तो अकेले ही हैं, किन्तु उस एक ही रूप से आप अनेक रूप हो जाते हैं और फिर उन अनेक रूपों को अपने एक रूप में ही समेट लेते हैं। आपको मैं प्रणाम करती हूँ।।१।। हे स्वामिन् ! आप सब कुछ देखने वाले, सब कुछ करने वाले, सर्वात्मा, सबके पालक, सबको सुख देने वाले, सर्वज्ञ और विश्वेश हैं। सबके शरण-स्थल आपको मैं बार-बार प्रणाम करती हूँ।।२।। हे प्रभो ! मेरे ऊपर वात्सल्य के कारण कृपा कर आपने वीरशैव मत की महिमा और उसके वैभव को मुझे विस्तार से कहा है।।३।। इसके बाद आपके मत के विषय में जानने को मेरे लिये कुछ भी नहीं बचा है, तो भी इससे मेरे मन को तृप्ति नहीं मिली है।।४।। मेरे कल्याण के लिये यदि कोई रहस्यमय अथवा प्रकाशनीय, गूढ अथवा प्रकट कोई बात बची हो, तो मुझ पर दया कर उसका उपदेश करें।।५।। यदि आप मुझे अनुमति दें, तो मैं अपने मन की बात आपसे पूछूँ। मेरे मन में अभी संशय बना हुआ है। उसके निवारण के लिये मैं पूँछना चाहती हूँ।।६।।

---

१. 'श्री' नास्ति-घ.। २. मया वेद्य-कटि. ख. ग. घ.। ३. मे मतिः-ग. घ., मे मते-ङ.।

ईश्वर उवाच

साधु साध्वि वरारोहे पृच्छ त्वमविशङ्किता ।
तवावाच्यमितः की(किं)रे त्वत्तः किमधिकं मम ॥७॥
यदिच्छसि शिवे श्रोतुमतिगुह्यतमं तु वा ।
तव स्नेहेन वक्ष्यामि श्रुत्वा धारय गोपय ॥८॥

श्रीदेव्युवाच

मतान्तरापेक्षया वीरशैवमतवैशिष्ट्यविषयकः प्रश्नः

सरहस्यमुपादिष्टं वीरशैवाभिधं मतम् ।
अन्यानि चादिशैवादि [१]ह्यनुपूर्वेण मे प्रभो ॥९॥
इयानेव विशेषोऽत्र यदुक्तं पूर्वमध्यमे ।
यद्यस्ति वा विशेषोऽत्र तारतम्येन वा क्वचित् ॥१०॥
अस्ति चेदपि भेदो वा तारतम्येन वा [२]समः ।
तत्र तत्र विशेषो वा को वा वद महेश्वर ॥११॥
अथैषां को नु वाचारो वीरशैवेऽपि नान्यतः ।
वीरशैवेषु वा देव विशेषो मम कथ्यताम् ॥१२॥

शिव का उत्तर

हे वरारोहे ! हे साध्वि ! यह तो बहुत अच्छी बात है। तुम निःशंक होकर प्रश्न करो। तुमको न कहने लायक मेरे पास कोई बात नहीं है और न तुमसे बढ़कर ही कोई मेरे लिये है।।७।। हे शिवे ! अत्यन्त गुह्यतम बात भी यदि तुम सुनना चाहती हो, तो उसे स्नेहवश तुम्हें अवश्य बताऊँगा। सुन कर तुम समझो और गुप्त रखो।।८।।

देवी का प्रश्न

हे प्रभो ! आपने वीरशैव के नाम से प्रसिद्ध मत को और अन्य आदिशैव आदि मतों को आनुपूर्वी से समझा कर मुझे बताया है।।९।। इन मतों के विषय में प्रारंभ में और बीच में आपने जो कुछ बताया है, उतना ही जानना हमारे लिये पर्याप्त है या तारतम्यभाव से इनमें कोई परस्पर विशेषता विद्यमान है।।१०।। हे महेश्वर ! इनमें परस्पर भेद रहते हुए भी तारतम्यभाव से सब समान ही हैं अथवा इनमें परस्पर कुछ विशेषताएं भी विद्यमान हैं, इस विषय को आप मुझे समझा कर बताइये।।११।। हे देव ! वीरशैवों से भिन्न आदिशैव आदि मतों के अनुयायियों का आचार वैसा ही है, या इनसे भिन्न है। यदि इनमें परस्पर कोई भिन्नता है, तो उसे आप मुझे बताइये।।१२।। हे शिव ! वीरशैव आदि विभिन्न मतों

१. ह्यानु-ग. घ. ङ.। २. पुनः-ख.।

वीरशैवविभेदेषु स्थितानामधिकारिणाम् ।
दैवाद्वा बुद्धितो वापि लिङ्गादीनां विनाशने ॥१३॥
पूर्वोक्त एव वामीषां विभेदेषु विशेषतः ।
लिङ्गादिनाशे पीठानां वीराणां वद मे हर ॥१४॥

ईश्वर उवाच

देवीप्रश्नप्रशंसा

साधु [1]साध्वि समीचीनः प्रश्नोऽस्ति भुवनेश्वरि ।
लोकोपकाराय कृतः शृणु वक्ष्यामि कृत्स्नशः ॥१५॥
यदि त्वयात्र देवेशि न कृतः प्रश्न ईदृशः ।
भ्रश्येयुर्वीरशैवस्थाः [2]रहस्याच्चाविवेकतः ॥१६॥
रहस्यं विदितं देवि त्वया परममङ्गले ।
अद्य त्वयोद्धृताः सर्वे वीरशैवमतेश्वराः ॥१७॥
अन्यदैवान्धकूपेषु पतन्ति कुधियः शिवे ।
अज्ञात्वा मन्मते सारं रहस्यं परमार्थतः ॥१८॥

के अनुयायियों की, उन मतों के अधिकारियों की अकस्मात् या बुद्धिपूर्वक लिंग, पीठ, सज्जिका आदि के नष्ट हो जाने की जब स्थिति आती है, तो उस समय पूर्वोक्त नियमों का ही सबको समान रूप से पालन करना है, या इनके लिये अलग-अलग कुछ विशेष विधान हैं, यह आप मुझे समझाकर बताइये।।१३-१४।।

ईश्वर का समाधान

हे भुवनेश्वरि ! साधु साधु। तुम्हारा यह प्रश्न बहुत समीचीन है। इसमें लोकोपकार की भावना छिपी हुई है। मैं पूरी बात तुम्हें बता रहा हूँ, उसे तुम सावधानी से सुनो।।१५।। हे देवेशि ! यदि तुमने ऐसा प्रश्न न किया होता, तो वीरशैव धर्म के अनुयायी अविवेकवश इस विषय के रहस्य को न समझ पाने के कारण पथभ्रष्ट हो जाते।।१६।। हे परम मंगलदायिनि देवि ! यह सारा रहस्य तो तुमको ज्ञात ही है, किन्तु वीरशैव मत के श्रेष्ठ अनुयायियों का उद्धार इस प्रश्न के माध्यम से तुमने कर दिया है।।१७।। हे शिवे ! परमार्थतः शैवमतों के सार रहस्य को न जानने के कारण कुबुद्धि जन अन्धे कुएं के समान अन्य देवताओं का सहारा लेकर संकट में पड़ जाते हैं।।१८।। हे देवि ! अन्धकूप में गिरे हुए

---

१. साधु-क.। २. सरहस्याविवेकतः-कटि. ग. घ. ङ.।

वीरशैवमहाशूलखातेन पतिता अमी ।
देवि त्वत्प्रश्ननिश्रेण्या[१] प्रोद्धृताः सुखमद्यते ॥१९॥

वीरशैवमतरहस्यमजानानाः पतन्ति

यदा जालगतः पक्षी निर्गन्तुं जालसूत्रतः ।
बहिर्द्वारमजानानो म्रियते[२]ऽयं यथा शिवे ॥२०॥
वीरभेदानविज्ञेया(ज्ञाय) हठाद् वीरमहाह्रदे ।
निपत्य दुःखं क्लिश्यन्ति शून्यकूपगता इव ॥२१॥
न साधु बहु सेवन्ते गुरुं मद्रूपिणं शिवे ।
न जानन्ति ततः साधु पृष्ट्वा मतरहस्यकम् ॥२२॥
नाल्पज्ञः [३]पारमन्वेति नाल्पज्ञः सुखमेधते ।
न लज्जेद् गुरुसेवायां नाल्पज्ञश्चाप्यपृच्छतः ॥२३॥
प्राणार्थमानवसुभिर्गुरुशुश्रूषणोत्सुकः ।
साधयेदात्मनोऽभीष्टं गुरोरेव मदात्मनः[४] ॥२४॥

ऐसे प्राणी वीरशैव मतरूप इस महाशूल का सहारा लेकर, तुम्हारे द्वारा किये गये इन प्रश्नों की सीढ़ियों के रूप में सहायता लेकर सुखपूर्वक वहाँ से निकल आवेंगे।।१९।।

हे शिवे ! जाल में फँसा हुआ पक्षी उस जाल के बन्धन से निकल पाने में जब अक्षम हो जाता है, तब बाहर निकल पाने में असमर्थ होकर वह वहीं मृत्यु को प्राप्त करता है।।२०।। जैसे कि अन्धे कुँए में गिरकर व्यक्ति महान् दुःख पाता है, उसी तरह से वीरशैव मत के इन प्रभेदों के स्वरूप को न जानकर इस महाह्रद, अर्थात् वीरशैव धर्मरूपी अगाध सरोवर में प्रवेश करने वाला व्यक्ति भी दुःख का ही भागी होता है।।२१।। हे शिवे ! जो व्यक्ति शिवस्वरूप गुरु की भलीभाँति सेवा नहीं करते, वे अन्य व्यक्तियों से पूंछ-पांछ कर वीरशैव मत के रहस्य को सम्यक् रूप से नहीं जान पाते।।२२।। अल्पज्ञ व्यक्ति पार नहीं पा सकता और न उसे सुख ही मिल पाता है। गुरु की सेवा में किसी प्रकार की लज्जा नहीं करनी चाहिये। गुरु से प्रश्न न करने पर व्यक्ति की अल्पज्ञता कभी दूर नहीं हो पाती।।२३।। प्राण, धन, अभिमान और ऐश्वर्य का भी त्याग कर जो व्यक्ति गुरु की सेवा में उत्सुक है, वह अपने अभीष्ट को अवश्य प्राप्त करता है, क्योंकि वह गुरु मेरा ही स्वरूप है।।२४।। अल्पज्ञानी, दंभी और भ्रष्ट आचरण वाले कुछ लोग अपने आप गुरु बन

---

१. श्रेणि-क.। २. ते यो-क., ते च-ग. घ. ङ.। ३. पर-ख.। ४. त्मकः-क. ख.।

किञ्चिज्ज्ञा दाम्भिका भ्रष्टा [१]गुरुरित्यभिमानित:(नः) ।
वीरशैवं न जानन्ति शठाः पण्डितमानिनः ।। २५ ।।
अन्यस्मै बोधयन्ति स्म सर्वज्ञत्वं परं खलाः ।
नाचरन्ति स्वयं किञ्चिदधस्ते निपतन्ति हि ।। २६ ।।
ततः स[२] सद्गुरुमुखाच्छास्त्रमूलं विचारयेत् ।
न विशेदप्रमत्तोऽथ ह्यन्वीक्ष्यात्मबलाबले ।। २७ ।।

वीरशैवमतवैशिष्टयम्

अथ शृणु महादेवि वीरशैवमते मम ।
विशेषमपि चाचारं यथावत् कथयामि ते ।। २८ ।।
यदुक्तमादिशैवादि वीरशैवान्तमीश्वरि ।
न तत्तथा विशेषोऽत्र भेदषट्केऽपि पूर्वके ।। २९ ।।
वीरशैवे विशेषोऽस्ति सावधानमतिः. शृणु ।
यस्य विज्ञानमात्रेण जायतेऽयं सदाशिवः ।। ३० ।।

त्रिविधा वीरशैवाः

त्रिविधं वीरशैवाख्यमधिकारिविभेदतः ।
कृतं[३] मया पुरा देवि भक्तोद्धरणहेतवे ।। ३१ ।।

बैठते हैं। ऐसे पंडितमानी धूर्त लोग वीरशैव मत को नहीं जान पाते।।२५।। ऐसे दुष्ट व्यक्ति दूसरों के सामने अपने को सर्वज्ञ सिद्ध करना चाहते हैं, किन्तु उनका अपना आचरण शास्त्रों के अनुसार नहीं होता। ऐसे व्यक्तियों का अवश्य ही अधःपतन होता है।।२६।। इसलिये वीरशैव मत में प्रवेश का इच्छुक व्यक्ति शिवस्वरूप गुरु के मुख से शास्त्र-श्रवण कर उस पर विचार करे। अप्रमत्त व्यक्ति अपने बलावल का बिना विचार किये इस मत में प्रवेश न करे।।२७।।

हे महादेवि ! मेरे वीरशैव मत के विषय में अब तुम उसकी विशेषता और आचारों को सुनो। तुम्हें यथार्थतः उनका स्वरूप बता रहा हूँ।।२८।। हे ईश्वरि ! आदिशैव से लेकर वीरशैव पर्यन्त जिन मतों की ऊपर चर्चा की गई है, उनमें पूर्व के छः भेदों में ऐसा कोई विशेष भेद नहीं है।।२९।। किन्तु वीरशैव मत की अपनी कुछ विशेषताएं हैं, उन्हें तुम सावधानी से सुनो, जिनको जानने मात्र से यह जीव सदाशिव स्वरूप हो जाता है।।३०।।

हे देवि ! अधिकारी के भेद के आधार पर मैंने पहले भक्तों के उद्धार के लिये वीरशैव मत के तीन भेद बताये हैं।।३१।। हे ईश्वरि ! ये भेद हैं— सामान्य वीरशैव, उसके बाद

---

१. सेवा-ग. घ. ङ.। २. स मद्-क., सम्यग्-ग. घ. ङ.। ३. कृतो-क. ख. घ. ङ.।

सामान्यं वीरशैवं च विशेषं च ततः परम् ।
निराभारं वीरशैवं न ततोऽधिकमीश्वरि ॥ ३२ ॥
मते फलं विशेषो वा भेदो वा वीरशैवके ।
अत्रोच्यते मया योऽर्थः परमार्थः स वै शिवे ॥ ३३ ॥

सामान्यवीरशैवलक्षणम्

सामान्यं वीरशैवं च तन्न देवि पुरोदितम् ।
आचारश्च विधिर्देवि पूर्वमेवोदितो मया ॥ ३४ ॥
सत्यं भूतदयाऽहिंसा शमो दम उदारता[1] ।
विविक्तापेक्षया भक्तिरद्वन्द्वं मम पूजनम् ॥ ३५ ॥
स्मरणं कीर्तनं ध्यानं मद्भावपरिशीलनम् ।
मद्भक्तेषु परा भक्तिर्मदैकात्म्यममायया ॥ ३६ ॥
[2]गुरोः शुश्रूषणं भक्त्या मतभेदेन सर्वदा ।
त्रिकालमर्चा लिङ्गस्याऽहिंसया भक्ष्यजीवनम् ॥ ३७ ॥
इत्यादीनि पुरोक्तानि [3]पराण्यङ्गानि तस्य तत् ।
सामान्यवीरशैवस्य[4] लिङ्गिनो वीरयोगिनः ॥ ३८ ॥

विशेष वीरशैव और तब इससे भी श्रेष्ठ निराभार वीरशैव।।३२।। हे शिवे ! अन्य मतों की अपेक्षा इस त्रिविध वीरशैव मत में प्राप्त होने वाले फल में और इसकी विशेषता के विषय में जो कुछ मैं यहाँ कह रहा हूँ, वही परमार्थ सत्य है।।३३।।

हे देवि ! सामान्य वीरशैव के विषय में पहले ही बता दिया गया है। हे देवि ! इनका आचार और पूजाविधि भी मैंने पहले ही बता दी है।।३४।। सत्य, भूतदया, अहिंसा, शम, दम, उदारता, एकान्त स्थान में रह कर ईश्वर की भक्ति, भेदबुद्धि का त्याग, शिवपूजन में लगन, स्मरण, कीर्तन, ध्यान, शिवभाव की भावना का अभ्यास, शिवभक्तों के प्रति श्रेष्ठ अनुराग, निश्छल भाव से शिवैकात्म्य की भावना, भक्तिपूर्वक गुरु की सेवा, विभिन्न पक्षों में से अपने द्वारा स्वीकृत काल में इष्टलिंग की पूजा, बिना किसी को हानि पहुँचाये अपने भोजन की व्यवस्था— इस तरह के पहले भी प्रदर्शित सामान्य नियमों का पालन करने वाला इष्टलिंगधारी वीरयोगी सामान्य वीरशैव कहलाता है।।३५-३८।। यह सामान्य

---

१. हताः-घ.। २. श्लोकयो : (३७-३८) विपर्यस्तः पाठः-ग.घ.। ३. पुरा-क.। ४. शैवस्था-क. ख. ङ.।

भिक्षाटनं चैकगृहे भिक्षां वा भक्तितो यदि ।
ददाति प्रार्थयन् भक्तो भुञ्जीयात् तदनुग्रहात् ।। ३९ ।।
ग्रामे वा यदि वारण्ये मनो यत्र प्रसीददति ।
तत्रैव च सुखं ध्यायेन्मद्रूपमपि वा गुरुम् ।। ४० ।।
लिङ्गादिनाशे दैवाद्वा धारयेद् विधिवत् पुनः ।
यथा न व्रतलोपः स्यात्तथा साध्यं मतं मम ।। ४१ ।।
सामान्यवीरशैवस्य मतोऽस्यागत ईश्वरि ।

विशेषवीरशैवलक्षणम्

अथ वक्ष्येऽधिकाराय वीरशैवमतं परम् ।। ४२ ।।
वीरशैवमतस्थस्य ग्रामाद् बहिरवस्थितिः ।
भैक्षार्थं प्रविशेत् ग्रामे ग्रामे निद्रां न चाचरेत् ।। ४३ ।।
न सेवेत स्त्रियं क्वापि न स्त्रीसङ्गिषु सङ्गमम् ।
न ग्रामवार्तां शृण्वीत न सङ्गं प्राकृतं चरेत् ।। ४४ ।।
प्रवेशनेऽपि नात्मानं भिक्षार्थं समये गृहे ।
प्रकाशयेत् स्वयं मौनी शङ्खघण्टादिभिः स्वयम् ।। ४५ ।।

वीरशैव एक ही घर से भिक्षा माँगे अथवा यदि कोई भक्त भक्तिपूर्वक भिक्षा ग्रहण करने के लिये प्रार्थना करता है, तो उस पर अनुग्रह करने की दृष्टि से उसकी भिक्षा ग्रहण करे।।३९।। ग्राम हो या वन, जहाँ भी उसका मन प्रसन्न रहता हो, वहीं वह सूखपूर्वक शिवस्वरूप का अथवा गुरु का ध्यान करे।।४०।। दुर्भाग्यवश इष्टलिंग आदि के नष्ट हो जाने पर विधिपूर्वक उन्हें पुनः धारण कर ले। इसी तरह से अन्य किसी शैवव्रत का लोप न हो, इसके लिये सदा सचेष्ट रहना चाहिये। इस तरह से मेरे मत का पालन अबाध रूप से होता रहता है।।४१।। हे ईश्वरि ! सामान्य वीरशैव मत का यही स्वरूप है।

अब मैं सामान्य वीरशैव की अपेक्षा श्रेष्ठ अधिकार की प्राप्ति के लिये विशेष वीरशैव का स्वरूप बताऊंगा।।४२।। इस विशेष वीरशैव मत में स्थित व्यक्ति को गाँव के बाहर रहना चाहिये। भिक्षा के लिये वह गाँव में आवे। वहाँ कभी सोवे नहीं।।४३।। वह स्त्री का सहवास कभी न करे और स्त्रियों के साथ रहने वालों का भी कभी साथ न करे। गाँवों की गप्प-गोष्ठी कभी न सुने और सामान्य जनों का साथ भी कभी न दे।।४४।। भिक्षा के लिये किसी के गृह में प्रवेश करते समय भी वह स्वयं अपने को प्रकाशित न करे। वह मौन धारण कर शंख, घंटा आदि बजाकर ही अपनी उपस्थिति जतावे।।४५।। भिक्षा के लिये किसी

भिक्षार्थं गृहमाविश्य यदि भिक्षा[1] न लभ्यते ।
न निर्विशेद् विनिर्गत्य द्विवारं तद्गृहे पुनः ।।४६।।
मौनी नियतचेष्टः स्यादतिरोधं जनुष्मताम् ।
नात्मनः क्लेशजननमाचरेद् व्यर्थविश्रमात् ।।४७।।
पूजा ध्यानं मत्स्मरणमनीहा कामलोभिषु[2] ।
व्रतानि वीरशैवस्य सत्यं प्राणिदया शिवे ।।४८।।
लिङ्गादिनाशाद्दैवेन [3]धारयेद् विधितः पुनः ।
यद्यशक्तोऽधिकारस्य तदूर्ध्वं गतधर्मिणः ।।४९।।
भक्तस्य नष्टलिङ्गस्य वीरवीरव्रतात्मनः ।
विभावयेत् स्वकं देहं लिङ्गरूपं मदात्मकम् ।।५०।।
भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्यं संग्रहं नहि लिङ्गिनः ।
मौनी ध्यानपरस्तिष्ठेदेकान्ते निर्जनेऽम्बिके ।।५१।।
विशेषवीरशैवस्थः समाधाय मनो मुनिः ।
प्राप्याधिकारान्निविशेद् वरवीरमते मम ।।५२।।

के घर में प्रवेश करने के बाद यदि भिक्षा नहीं मिलती, तो वहाँ से निकलने के बाद दुबारा भिक्षा के लिये पुनः उसे उसी घर में प्रवेश नहीं करना चाहिये।।४६।। उसे मौन व्रत धारण कर अपनी अन्य सभी चेष्टाओं पर ही नियन्त्रण रखना चाहिये। उसे व्यर्थ के परिश्रम से और अपने को कष्ट में डालने वाले अन्य आग्रहों से भी बचना चाहिये।।४७।। हे शिवे ! शिवपूजा, शिवध्यान और शिवस्मरण में लगा यह वीरशैव सभी प्रकार की इच्छाओं का, काम और लोभ का त्याग करे। सच बोले और प्राणी मात्र पर दयाभाव रखे। विशेष वीरशैव को इन सभी व्रतों का पालन करना चाहिये।।४८।। हे शिवे ! दुर्भाग्य से लिंग आदि के नष्ट हो जाने पर विधिपूर्वक उनको पुनः धारण कर शिव का ध्यान करे। अशक्ति के कारण अपने अधिकार और धर्म के पालन में असमर्थ हुआ वीरशैव इष्टलिंग आदि के नष्ट हो जाने पर वीरशैव व्रत के पालन करने से वीरभाव को प्राप्त अपने शरीर की ही इष्टलिंग रूपी शिव के रूप में भावना करे।।४९-५०।। हे अम्बिके ! यह लिंगी (विशेष वीरशैव) प्रतिदिन भिक्षा माँगे, दूसरे दिन के लिये उसका संग्रह न करे। मौन व्रत धारण कर वह शिवध्यान में तत्पर हो एकान्त, निर्जन स्थान में निवास करे।।५१।। विशेष वीरशैव व्रत का पालन करने वाला यह मुनि अपने मन को समाहित कर आगे का अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद ही उसमें प्रवेश करे।।५२।। हे देवि ! यदि कोई बिना

१. भैक्ष्यं-ख. ग. घ. ङ.। २. लोभता-ख. ग. घ. ङ.। ३. ध्यायेच्च विधितः शिवे-क.।

अन्यथा भ्रंशते देवि दुष्करात्मा[१] मदात्मनः ।
वीरवीरमतस्यास्य भक्तस्य मम शङ्करि ॥५३॥

निराभारिवीरशैवलक्षणम्

अथाधिकारी गच्छेत मतं मम महत्तरम् ।
तुर्यवीरमहाशैवमप्रमत्तो विशेत् तदा ॥५४॥
वन एव वसेन्नित्यमजनग्रामसङ्गतिः ।
न विशेन्नगरं ग्रामं गृहं वा गृहमेधिनाम् ॥५५॥
यदि भक्तः समानीय दद्याद् भैक्ष्यं महेश्वरि ।
न रुचिं नापि वा सौख्यं चिन्तयेन्न हिताहिते ॥५६॥
न पूजामवमानं वा न निन्दामपि संस्तुतिम् ।
निवसेद् ध्याननिरतश्चिन्तयेद् बालको यथा ॥५७॥
न स्त्रीणां वीक्षयेदास्यं न नर्म शृणुयाद्वचः ।
न समाजं[२] जनैरन्यैर्नेच्छासञ्चारमीश्वरि ॥५८॥

अधिकार प्राप्त किये ही आगे बढ़ता है, तो वह अपनी इस दुश्चेष्टा के कारण पतित हो जाता है। हे शांकरि ! इस श्रेष्ठ विशेष वीरशैव मत में प्रवेश का अधिकार मेरे श्रेष्ठ वीरभक्त को ही है।।५३।।

अब यदि साधिकार व्यक्ति मेरे इस महनीय मत की ओर बढ़ना चाहता है, तो वह पूरी सावधानी के साथ इस तुर्यवीर नाम के महाशैव (निराभार वीरशैव) मत में प्रवेश करे।।५४।। उसे सदा वन में ही निवास करना चाहिये, गाँव के मनुष्यों के साथ सम्पर्क नहीं रखना चाहिये। वह नगर, गाँव या गृहस्थ व्यक्तियों के घर में कभी प्रवेश न करे।।५५।। हे महेश्वरि ! यदि कोई भक्त अपनी इच्छा से भिक्षा ले आता है, तो उसमें अधिक रुचि या सुख की या हित-अहित की चिन्ता न करे।।५६।। अपनी पूजा या अपमान की, निन्दा या स्तुति की ओर ध्यान न दे, सदा शिव ध्यान में लगा रहे और [1]बालक के समान आचरण करे।।५७।। हे ईश्वरि ! स्त्रियों का मुँह न देखे, उनके साथ हंसी-मजाक न करे, साधारण मनुष्यों के साथ कभी जमावड़ा न लगावे और न अपनी इच्छा के वशीभूत हो अनावश्यक भ्रमण ही करे।।५८।। यदि नदी जल से इतनी भरी हुई है कि वहाँ पृथ्वी पर पैर नहीं

---

१. रत्वाद्-ग. घ. ङ.। २. समाजे-क. ख.।

1. बाल्येन तिष्ठासेत्, बाल्येनैव हि तिष्ठासेत्— इत्यादि वचन उपनिषदों में भी मिलते हैं।

न तरेदापगां पूर्णां जलेनास्पृष्टभूतलाम् ।
न चर्मपात्रमारोहेत् सहैवालिङ्गिभिस्त्वपि[1] ।।५९।।
गच्छन्नपि पदा नद्यां न तिष्ठेत् स्तनमण्डलम्[2] ।
जले नाश्नीत पाथेयं न कुर्यात् संग्रहं क्वचित् ।।६०।।
शयीत भूतले खट्वां वर्जयेच्छयने शिवे ।
वसीत वासः शिथिलं विवर्णं यद्यदीप्स्यति ।।६१।।
मुण्डी जटी शिखी वापि कीर्णकेशोऽपि वा भवेत् ।
यदि मुण्डी शिखी वा स्यादभ्यङ्गं स्वेच्छया यदि ।।६२।।
जटी यदि न कुर्वीत तैलाभ्यङ्गमपि क्वचित् ।
यदि पूर्वं जटाधारी न पुनः क्षौरमाचरेत् ।।६३।।
शिखी यदि शिवे लिङ्गी कुर्यादभ्यङ्गमैच्छिकम् ।
न चर्मपात्रसंस्पृष्टं तैलं स्पृश्येन्मदात्मकः[3] ।।६४।।
नाङ्गस्योद्वर्तनं कुर्यान्न च ग्रामं विशेदपि ।
न नर्तनादिकं चित्रमीक्षेदेकान्ततो वसेत् ।।६५।।

जम सकते, तो उसे तैर कर पार नहीं करना चाहिये। इसी तरह इस निराभारी वीरशैव को चाहिये कि वह अलिंगी व्यक्तियों के साथ चर्मपात्र (चमड़े से बनी नौका) में कभी न बैठे।।५९।। नदी को यदि पैदल चलकर पार कर रहा है, तो वह अपनी छाती तक पानी आ जाने पर आगे न बढ़े। जल में भोजन न करे और न किसी वस्तु का संग्रह ही करे।।६०।। हे शिवे ! वह जमीन पर सोवे, पलंग आदि का परित्याग करे। शिथिल और विवर्ण वस्त्र को ही वह अपने प्रिय वस्त्र के रूप में ग्रहण करे।।६१।। वह मुण्डित-मस्तक, जटाधारी, शिखाधारी अथवा केस बिखेर कर रह सकता है। मुण्डित-मस्तक वाला अथवा शिखा रखने वाला अपनी इच्छा के अनुसार तेल की मालिश कर सकता है।।६२।। यदि वह जटाधारी है, तो उसे कभी भी तेल नहीं लगाना चाहिये। एक बार पहले जटा रख लेने वाला बाद में कभी क्षौर न करावे।।६३।। हे शिवे ! लिंगी निराभारी वीरशैव यदि शिखा रखे हुए है, तो उसके लिये अभ्यंग ऐच्छिक है। इष्टलिंगधारी निराभारी वीरशैव चर्मपात्र में रखे हुए तेल का कभी स्पर्श न करे।।६४।। वह अपने शरीर पर उबटन न लगावे, गाँव में कभी प्रवेश न करे, नाच-गाना और चित्र आदि न देखे, सदा एकान्त में निवास करे।।६५।।

---

१. स्त्वयि-क. ख.। २. लात्-ग. घ. ङ.। ३. त्मकम्-क.।

तुर्यवीरमताविष्टो निवसेदेवमीश्वरि ।
अन्यथा भ्रंशते भूयोऽप्यन्धः कूपे न संशयः ।।६६।।
न तुर्यवीरशैवस्थः कपटानृतवञ्चनम् ।
दम्भं क्रोधं प्राणिपीडां कुर्यान्नैच्छिककामनाम् ।।६७।।
न संग्रही न भोगेच्छुर्न देहे ममतामपि ।
पूजां जनोद्वेजनं च मनसाऽपी[1]प्सयेत् क्वचित् ।।६८।।
तस्यैवं वर्तमानस्य तुर्यवीरमतार्थिनः ।
यदि दैवेन नश्येत लिङ्गं तस्य विधिं शृणु ।।६९।।

इष्टलिङ्गनाशे निराभारिवर्तनम्

मृगयित्वा पुनः प्राप्तं यदि यत्नेन सर्वशः ।
तदेव हि पुनर्धार्यं तत्रायं क्रम उच्यते ।।७०।।
सहस्रं तुर्यवीरस्य[2] लिङ्गिनो योगिनो मम ।
तथैव हि निराभारवीरशैवान्[3] ममाम्बिके ।।७१।।

हे ईश्वरि ! निराभार वीरशैव मत में प्रविष्ट व्यक्ति इसी तरह से रहे। अन्यथा वह भ्रष्ट हो जाता है और निःसन्देह अन्धे व्यक्ति की तरह कूप में, निरय में गिर पड़ता है।।६६।। निराभार वीरशैव मत में प्रविष्ट व्यक्ति को कपटाचरण, अनृतभाषण, वंचन (ठगी), दंभ (मिथ्याभिमान), क्रोध और प्राणियों की पीड़ा से दूर रहना चाहिये और उसे भाँति-भाँति की इच्छाओं के वश में भी कभी नहीं पड़ना चाहिये।।६७।। वह वस्तुओं का संग्रह न करे, भोग की इच्छा से दूर रहे और अपने देह में ममता न रखे। उसे अपनी पूजा और मनुष्यों के द्वारा पहुँचाई गई पीड़ा में समान भावना रखनी चाहिये।।६८।। इस प्रकार श्रेष्ठ निराभार वीरशैव मत में स्थित व्यक्ति का यदि दुर्भाग्य से इष्टलिंग नष्ट हो जाय, तो उसे क्या करना चाहिये, इसकी विधि मैं बताता हूँ। तुम उसे सुनो।।६९।।

सभी तरह के प्रयत्न से खोजने पर यदि वह लिंग मिल जाता है, तो उसे ही पुनः धारण कर लेना चाहिये। उसका जो क्रम है, उसे यहाँ बताया जा रहा है।।७०।। हे अम्बिके ! तुर्यवीर शैव मत के एक हजार इष्टलिंगधारी शिवयोगियों को,तुर्यावस्था प्राप्त शिवयोगियों के न मिलने पर एक हजार निराभारी वीरशैवों को मेरी प्रीति के लिये षड्रस

---

१. भीप्स-क. ख.। २. वीरस्थ-क. ख. ङ.। ३. शैवं-ख. ग. घ.।

षड्रसैरन्नपानाद्यैर्भोजयेत् प्रीतये मम ।
उपोष्य त्रिदिनं भक्त्या होमं पूर्वोक्तमाचरेत् ॥ ७२॥
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा तत एनं चरेद् विधिम् ।
मृगयित्वापि तल्लिङ्गं लभ्यते न यदीश्वरि ॥ ७३॥
तदालाभं विनिश्चित्य त्यजेद् देहमतन्द्रितः ।
खड्गेनानशनेनापि करीषेण भृगौ गिरेः ॥ ७४॥
प्रायोपवेशनिश्वासरोधनाम्बुनिपातनैः ।
न तदूर्ध्वं क्षणं जीवेद् [१]यदि स्याच्च ह्यलिङ्गकः ॥ ७५॥
न खादेन्न पिबेदीक्षेन्निःश्वासमपि धीमतः ।
न सम्भाषेन्न वा क्लिश्येद् देहमोहेन मूढधीः ॥ ७६॥
ध्यायन् हृदि पदाम्भोजे मद्रूपं स्याद् गुरोः शिवे ।
कारयन्ति तथान्ये ये साहाय्येनापि लिङ्गिनः ॥ ७७॥

भोजन, पान इत्यादि से तृप्त करे और तीन दिन का भक्तिपूर्वक उपवास रख कर पूर्वोक्त पद्धति से हवन करे। गुरु को दक्षिणा देने के साथ इस विधान को पूरा करे।।७१-७३।। हे ईश्वरि ! बहुत खोज करने के बाद भी यदि वह इष्टलिंग नहीं मिलता, तो यह निश्चित हो जाने पर कि अब वह इष्टलिंग नहीं मिलेगा, बिना आलस्य किये अपने शरीर का खड्गप्रहार, अनशन, [1]करीषाग्निप्रवेश अथवा पर्वत से भृगुपतन की विधि से परित्याग कर दे।।७३-७४।। प्रायोपवेशन (अनशन), श्वास-प्रश्वास निरोध अथवा जल में डूब कर भी वह अपने प्राणों का त्याग कर सकता है। इष्टलिंग के नष्ट हो जाने के उपरान्त निराभारी वीरशैव को एक क्षण के लिये भी इष्टलिंग के बिना नहीं रहना चाहिये।।७५।। खाना, पीना, देखना, श्वास-प्रश्वास लेना, विद्वानों के साथ वार्तालाप करना— यह सब उसे छोड़ देना चाहिये। देह के मोह में पड़ कर बुद्धिहीन मुनष्य यदि यह सब करता है, तो बहुत दुःख भोगता है। अतः हृदय में शिवस्वरूप गुरु के चरणों का ध्यान करते हुए उसे अवश्य ही प्राणत्याग कर देना चाहिये।।७६-७७।। इस स्थिति में पड़े हुए निराभारी वीरशैव के

---

१. दलिङ्गी नष्टलिङ्गकः-कटि. ग. घ. ङ.।

1. करीष का अर्थ शुष्क गोमय (उपला) है। प्राणत्याग की इन विविध धार्मिक विधियों का विवरण "धर्मशास्त्र का इतिहास" (भा. ३, पृ. १३३१-३५) में देखिये।

तेऽपि यान्ति सुखाधारं पदं सर्वोत्तमोत्तमम् ।
तथा त्यक्त्वा तनुं तुर्यवीरशैवस्थयोगिनः ॥७८॥
मद्रूपा एव जायन्ते यतः शम्भुरहं शिवः ।

त्यक्तव्रतो भ्रश्यति

तादृशं पदमारुह्य [१]तुर्यं वीरव्रतात्मकम् ॥७९॥
[२]यद्यन्यथाचरेल्लिङ्गी भ्रष्टो भवति सूकरः ।
नेक्षयेत् तं दुराचारं त्यक्तलिङ्गमतव्रतम् ॥८०॥
विनिहन्युर्बलादन्ये ते समीयुः पदं मम ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्भ्रष्टस्य शिवयोगिनः ॥८१॥
रौरवान्नरकाद् घोराद् यावदाभूतसंप्लवः ।

व्रतपालको मोदते

तद्विधानेन सन्त्यज्य शरीरं तुर्यवीरकम् ॥८२॥
मत्स्वरूपमथो प्राप्य मोदते सत्तमः सदा ।
अतो विचार्य यत्नेन तुर्यवीरमतस्थितिम् ॥८३॥

प्राणवियोग में जो सहायता करते हैं, वे भी एकमात्र सुख के आधार सर्वोत्तम पद को प्राप्त करते हैं।।७८।। तुर्य वीरशैव मत में स्थित योगी इस प्रकार से शरीर का त्याग करने के उपरान्त शिवस्वरूप हो जाते हैं, क्योंकि मैं शिव ही सबका कल्याण करने वाला हूँ।।७९।।

निराभारी वीरशैव व्रत का पालन करने की स्थिति तक पहुँच जाने के उपरान्त भी यदि इष्टलिंगधारी अन्यथा आचरण करता है, तो वह भ्रष्ट हो जाता है और सूकर योनि में जन्म लेता है।।७९-८०।। वीरशैव व्रत को एक बार स्वीकार करने के बाद उसका त्याग कर देने वाले दुराचारी व्यक्ति को देखना भी नहीं चाहिये। ऐसे व्यक्ति को जो बलपूर्वक मार डालते हैं, वे शिवपद को प्राप्त करते हैं।।८१।। ऐसे भ्रष्ट शिवयोगी की समस्त प्राणियों के प्रलय हो जाने तक घोर रौरव नरक से फिर वापसी नहीं होती, अर्थात् इस दुःस्थिति से वह वापस कभी नहीं लौटता।।८२।।

अतः निराभार वीरशैव व्रत का पालन करने वाला शिवयोगी ऐसी स्थिति के आने पर विधिपूर्वक अपने प्राणों का विसर्जन कर दे। ऐसा करने वाला उत्तम पुरुष शिवस्वरूप को प्राप्त कर सदा आनन्द-निमग्न रहता है।।८२-८३।। हे देवि ! इसलिये इस तुर्य वीरशैव

---

१. वीरशैव-क.। २. यद-ग. घ.।

शक्तो यो वासयेद् देवि न शक्तोऽन्यत्र[1] संवसेत्।
इदं रहस्यमज्ञात्वा वीरवीरादिषु स्थितिम्[2] ॥८४॥
मोहेन सन्त्यजेद् देहं दुर्मतेः फलमश्नुते।
अविषह्यानि दुःखानि दुर्लभं मत्परं पदम्॥८५॥
न शक्यते जनैर्यातुं देहमोहाभिमानिभिः।
यावद् दुःखमथो[3] भुङ्क्ते तावत्स सुखमाप्नुयात्[4] ॥८६॥
मत्सेवाश्रमपुण्येन शाश्वतं मत्परं सुखम्।
देहं विनश्वरं नित्यं मृत्युवक्त्रगतं बुधः॥८७॥
विज्ञाय तत्स्पृहां त्यक्त्वा[5] विधिमेवमुपाचरेत्।

निराभारिणा पालनीया नियमाः

घ्राणसन्तर्पणं गन्धमुपाजिघ्रन्न कञ्चन॥८८॥
भस्मानुलेपनं भस्मशायी स्याद्विजितेन्द्रियः।
तैलपुष्पान्नपानादि पक्वापक्वं यदिच्छति॥८९॥

मत में स्थिति का प्रयत्नपूर्वक विचार कर यदि शिवयोगी यहाँ के सभी नियमों का पालन करने में समर्थ है, तो उसे स्वीकार करे, अन्यथा अपने लिये उचित अन्य मत को अंगीकार करे।।८४।। इस रहस्य को बिना जाने मनमाने तरीके से वीरशैव मत को स्वीकार करके जो तदनुसार आचरण नहीं करता, वह मोह में फँसा हुआ इस देह का त्याग करने के उपरान्त अपनी दुर्गति का फल भोगता है।।८५।। वह असहनीय दुःखों को भोगता रहता है। उसके लिये मेरा परम पद प्राप्त करना दुर्लभ है, क्योंकि देह पर मोह करने वाले व्यक्ति वहाँ तक नहीं पहुँच नहीं सकते।।८६।। इसके विपरीत देह पर मोह का परित्याग कर देने वाला व्यक्ति तब तक सुखोपभोग करता है, जब तक कि इसके विपरीत आचरण करने वाला दुःख उठाता रहता है। मेरी सेवा करने में जो श्रम होता है, उस श्रम (तप) से उत्पन्न पुण्य से ऐसा व्यक्ति शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।।८७।। यह देह विनश्वर है, सदा मृत्यु के सुख में पड़ा हुआ सा रहता है, ऐसा जान कर विद्वान् व्यक्ति को उसका मोह छोड़ कर सदा शास्त्रविहित विधि का पालन करना चाहिये।।८८।।

सुगन्ध घ्राणेन्द्रिय को तृप्त करने वाली है, यह जानकर जो किसी भी प्रकार की गन्ध को, विषय मात्र को ग्रहण नहीं करता, ऐसा जितेन्द्रिय व्यक्ति भस्म लगाकर भस्म पर ही शयन करे।।८८-८९।। हे प्रिये ! तैल, पुष्प, पक्व अथवा अपक्व अन्न-जल आदि जो

---

१. नैव-ग. घ.। २. स्थितिः-क. ख. ङ.। ३. मिहा-ख. ग. घ.। ४. मोदते-ग. घ.। ५. भक्त्या-ग. घ.।

स्पृशेदलिङ्गिसंस्पृष्टं न पक्वं सुतरां प्रिये ।
चित्ते बहिर्गते लिङ्गपूजायां कालमुत्क्रमेत् ।।९०।।
अन्यथान्तर्गतो ध्यानतत्परः स्यान्ममान्वहम् ।
इतोऽधिको महेशानि विशेषो भेद एव वा ।।९१।।
वीरशैवमते किञ्चिन्नास्ति नास्ति न संशयः ।
भ्रश्येदस्मादवैराग्यस्तुर्यवीरमतात् खलः ।।९२।।
न पूजयेत् पुनः क्वापि [१]प्रायश्चित्तशतैरपि ।
शास्त्रदृष्टिं गुरोर्वाक्यमात्मनो निश्चयं त्वपि ।।९३।।
एकीकृत्य विनिश्चित्य तुर्यवीरमते विशेत् ।
तत्र सिद्धस्य मद्भक्त्या सा मुक्तिरखिलात्मिका ।।९४।।
ततश्च्युतस्य मूढस्य नरकोऽपि स एव हि ।
देहाभिमानमन्यस्य पीडनं देहिनः प्रियम् ।।९५।।

कुछ भी वह चाहता है, यदि वह अलिंगी के द्वारा स्पृष्ट है, तो उसे कभी ग्रहण न करे। पक्व अन्न का तो सुतरां त्याग कर देना चाहिये।।९०।। साधक का चित्त यदि बहिर्मुख है, तो उसे इष्टलिंग की पूजा में अपना समय व्यतीत करना चाहिये और यदि अन्तर्मुख है, तो योगी प्रतिदिन मेरे ध्यान में लगा रहे।।९१।। हे महेशानि ! वीरशैव मत में इससे अधिक भेद या विशेषता दूसरी कोई नहीं है, इसमे सन्देह नहीं करना चाहिये।।९२।। तुर्य वीरशैव मत में स्थित होने पर भी जो दुष्ट व्यक्ति वैराग्य से भ्रष्ट हो जाता है, वह भले ही सैकड़ों प्रायश्चित्त कर ले, तब भी वह पूजा के योग्य नहीं रह जाता।।९३।। [1]शास्त्र में प्रदर्शित विधि का, गुरु के उपदेश-वाक्य का और अपने निश्चय का— इन सब का समन्वय कर उसके आधार पर कोई निश्चय करने के उपरान्त ही वीरशैव मत में प्रवेश करना चाहिये।।९४।। इस मत में प्रवेश करने के बाद शिवभक्ति के सहारे सिद्धपदवी को प्राप्त व्यक्ति को सभी प्रकार की मुक्ति मिल जाती है। अब यदि वह इससे च्युत हो जाता है, तो उस मूढ़ व्यक्ति के लिये वही नरक का भी कारण हो जाता है।।९५।। देह के अभिमान

---

१. "प्रायश्चित्त......विनिश्चित्य" इत्यस्य स्थाने ९५ श्लोकानन्तरम्– "एकीकृत्य विनिश्चित्य प्रायश्चित्त-शतैरपि। शास्त्रदृष्टिं गुरोर्वाक्यमात्मनो निश्चयं त्वपि।।" इत्ययं श्लोकक्रमः–ग. घ.।

1. "किरणायां यदप्युक्तं गुरुतः शास्त्रतः स्वतः" (तन्त्रालोक, ४.४१) इत्यादि स्थलों पर किरणागम आदि के प्रमाण से इसी विषय पर विचार किया जाता है। यह सिद्धान्त बौद्ध तन्त्रों में भी मान्य है।

आत्मनोऽपि परित्यज्य मद्भक्त्या मामुपाव्रजेत् ।
इति ते[1] कथितं देवि सर्वसारमनुत्तमम् ॥
तुर्यवीरमतं सम्यक् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ९६ ॥

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे वीरशैवभेदनिरूपणं नाम पञ्चदशः पटलः ॥ १५ ॥

को और दूसरे को पीड़ा पहुँचाने की प्रवृत्ति को छोड़ देने वाला, सभी प्राणियों को, अपने को भी जो प्रिय है, उसका भी परित्याग कर देने वाला मेरा भक्त शिवभक्ति के सहारे मुझे प्राप्त कर लेता है। हे देवि ! इस तरह से मैंने तुमको तुर्य (निराभार) वीरशैव मत के श्रेष्ठ समस्त सार को भली-भाँति कह सुनाया है। अब आगे पुनः तुम क्या सुनना चाहती हो॥ ९६ ॥

इस तरह से पारमेश्वरतन्त्र का वीरशैव मत के विभिन्न भेदों का निरूपण करने वाला यह पन्द्रहवाँ पटल समाप्त हुआ॥ १५ ॥

---

१. तत्-क.।

षोडशः पटलः

षड्विधलिङ्गनिरूपणम्

श्रीदेव्युवाच

[१]नमस्ते सच्चिदानन्दविज्ञानघनमूर्तये ।
अनावृताय भो शम्भो गुरवे बुद्धिरूपिणे ॥१॥
जय शङ्कर विश्वेश जय शाश्वतविग्रह ।
अनादिनिधनानन्त नमस्ते हर शम्भवे ॥२॥
उक्तं मे सकलं वीरशैवभेदगतं मतम् ।
तदवान्तरभेदश्च कथितो भवतानघ ॥३॥
न तत्र मेऽस्ति वेद्यांशः संशयो वा महेश्वर ।
इतः पृच्छाम्यहं प्रश्नं स्वसन्देहापनुत्तये ॥४॥

पारदादिलिङ्गविषयकः प्रश्नः

पारदादीनि लिङ्गानि तत्प्रमाणं विकल्पकम् ।
तत्प्रमाणेन कथितं लक्षणं लिङ्गमानकम् ॥५॥

देवी का प्रश्न

हे सच्चिदानन्द स्वरूप ! विज्ञान से ओत-प्रोत स्वरूप वाले शम्भो ! आपका स्वरूप अनावृत (प्रकट) है। आप बुद्धिस्वरूप हैं। आपको मैं प्रणाम करती हूँ॥१॥ हे शंकर ! आपकी जय हो। हे विश्वेश ! शाश्वत स्वरूप वाले ! आपकी जय हो। आप अनादि-निधन, अनन्त स्वरूप वाले हैं, सबके कष्ट को दूर करने वाले हैं। हे शंभो ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ॥२॥ आपने मुझे वीरशैवों के भेदों को और उनके मत को विस्तार से समझाया है और हे अनघ ! उनके अवान्तर भेदों को भी आपने मुझे बताया है॥३॥ हे महेश्वर ! अब उस विषय में मेरे लिये न तो जानने को कुछ बचा है और न उंस विषय में कुछ सन्देह ही बाकी है। अब मैं आपको अपने एक अन्य संदेह की निवृत्ति के लिये कुछ पूछना चाहती हूँ॥४॥

पारद आदि से बने लिंगों का प्रमाण क्या है? ये सब समान प्रमाण के हैं? या इनमें कोई वैकल्पिक व्यवस्था है? उनका प्रामाणिक लक्षण शास्त्रों में क्या बताया गया है? और मान के आधार पर इनके कितने भेद हैं॥५॥ हे ईश्वर ! अपनी इच्छा के

१. श्लोकोऽयं नास्ति-ग. घ. ङ.।

यदैच्छिकं प्रमाणं स्यात्तस्य मे कथयेश्वर ।
शैलादिसर्वलिङ्गानामियदेवान्यदस्ति वा ।।६।।
[१]मयि प्रेयानसि श्रीमन् भक्त्या शिष्याऽस्म्यहं तव ।
तत्पृच्छामि प्रवक्तव्यमद्य मे परमेश्वर ।।७।।

ईश्वर उवाच

साधु साध्वसि भो साध्वि साधुरेष त्वया कृतः ।
प्रश्नो लोकोपकाराय कथयामि शृणु प्रिये ।।८।।

षड्विधं लिङ्गम्

स्थिरं चरं स्थिरचरं चरस्थिरमथाम्बिके ।
स्थिरस्थिरं [२]चरचरं षड्विधं लिङ्गलक्षणम् ।।९।।
क्रमेण लक्षणं तेषां वक्ष्यामि शृणु पार्वति ।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते सद्यः शिवयोगी शिवो भवेत् ।।१०।।

स्थिरलिङ्गलक्षणम्

देवालये पाणिपीठे [३]संविधायाष्टबन्धनम् ।
प्रतिष्ठितं शिलालिङ्गं स्थिरलिङ्गं तदुच्यते ।।११।।

अनुसार इनका प्रमाण रखा जा सकता है क्या? शैल (पाषाण) आदि से निर्मित सभी प्रकार के लिंगों का एक सा प्रमाण होता है या इनमें भिन्नता रहती है? यह भी आप मुझे बताइये।।६।। हे श्रीमन् ! हे परमेश्वर ! मेरे ऊपर आपका अपार स्नेह है और मैं आपकी भक्त शिष्या हूँ, इसलिये यह सब मैं आपसे पूछ रही हूँ। अतः आज आप मेरे इन सब प्रश्नों का समाधान कीजिये।।७।।

शिव का उत्तर

हे साध्वि ! साधु साधु। यह तुमने अति सुन्दर प्रश्न किया है। इसमें लोकोपकार की भावना छिपी है। हे प्रिये ! इन प्रश्नों का मैं समाधान कर रहा हूँ। तुम उसे सावधानी से सुनो।।८।।

हे अम्बिके ! लिंग छः प्रकार का होता है— १. स्थिर, २. चर, ३. स्थिरचर, ४. चरस्थिर, ५. स्थिरस्थिरं और ६. चरचर।।९।। हे पार्वति ! आगे क्रमशः मैं इन सबका लक्षण बताऊँगा। उसे तुम सावधानी से सुनो। शिवयोगी इन सबके स्वरूप को जानकर तत्काल मुक्त होकर शिवस्वरूप बन जाता है।।१०।।

देवालय में पाणिपीठ की स्थापना कर उसको अष्टबन्ध संस्कार से सुसंस्कृत कर जिस शिवलिंग की स्थापना की जाती है, वह स्थिर लिंग कहलाता है।।११।।

१. श्लोकोऽयं ८ श्लोकानन्तरं दृश्यते-ग. घ., नायं समुचितः क्रमः। २. स्थिर-घ. ङ.। ३. संनि-ख.।

पूजादर्शनसंसेवाध्यानार्चादिकसाधनम् ।
स्थिरं तत्सर्वभूतानामुत्तमं लिङ्गमीश्वरि ॥१२॥

चरलिङ्गलक्षणम्

अथ यच्चरमन्येषामात्मनां धृतलिङ्गिनाम् ।
पञ्चभिः सह सम्पूज्यमर्काम्बागणपाच्युतैः ॥१३॥
गृहस्थितं भवेत् तेषां [1]स्फाटीमरकतोद्भवम् ।
शिलादिजं ततोऽन्यद्वा प्रमाणं यत्तदेव हि ॥१४॥

स्थिरचरलिङ्गलक्षणम्

लिङ्गं भवेत् स्थिरचरं यन्मद्भक्ततनौ धृतम् ।
इच्छाप्रमाणं तल्लिङ्गं लक्षणं च तदेव हि ॥१५॥
यदनाद्यादिसामान्यज्ञानशैवान्तवर्तिनाम् ।
त्रिभेदवीरसंस्थानां विशेषं वा ततः शृणु ॥१६॥

हे ईश्वरि ! यह स्थिर लिंग सभी प्राणियों के पूजा, दर्शन, सम्यक् सेवा, ध्यान, अर्चन आदि के लिये उपयोगी उत्तम साधन है।।१२।।

दूसरे चर लिंग की उपासना सूर्य, शक्ति, गणपति और विष्णु के साथ की जाती है। वीरशैवों के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति भी इनकी उपासना करते हैं।।१३।। स्फटिक अथवा मरकत का बना हुआ यह शिवलिंग उनके घर में ही रहता है। पाषाण इत्यादि से भी यह बना होता है।। इसका प्रमाण भी उतना ही माना जाता है, जितना कि स्थिर लिंग का ऊपर बताया है।।१४।।

तीसरा स्थिरचर लिंग वह है, जिसको शिवभक्त अपने शरीर पर धारण करता है। इस लिंग का प्रमाण अपनी इच्छा के अनुसार रखा जा सकता है और इसका लक्षण वही है, जो कि स्थिर लिंग का ऊपर बताया गया है।।१५।। अनादिशैव, आदिशैव, सामान्यशैव और ज्ञानशैव पर्यन्त चार प्रकार के शैवों के और तीन प्रकार के ऊपर वर्णित वीरशैवों के लिये निर्धारित लिंगों के विषय में मैं कुछ विशेष वर्णन करूँगा। उसे तुम सावधानी से सुनो।।१६।।

---

१. स्फाटिकं-ग. घ. ङ.।

चरस्थिरलिङ्गलक्षणम्

लिङ्गं सामान्यवीराणां चरस्थिरमनुत्तमम् ।
शरीरमेव यल्लिङ्गं लिङ्गिनां तदुदीरितम् ।।१७।।
यदात्मनि धृतं लिङ्गं यच्छरीरं मदात्मनः ।
न तत्र भेदं कुरुते भक्तो लिङ्गात्मको मम ।।१८।।
यदस्ति लक्षणं देहे यत्प्रमाणं च यादृशम् ।
लिङ्गस्य लक्षणं चापि प्रमाणं च तदेव हि ।।१९।।

चरचरलिङ्गलक्षणम्

यद्वीरवीरशैवाख्ये मते मम विवर्तिनाम् ।
लिङ्गं चरचरं प्रोक्तं यच्च विश्वात्मकं मम ।।२०।।
चराचरमयं विश्वं लिङ्गं विश्वात्मकं मम ।
वीरवीरमताविष्टमिदं लिङ्गं [१]विचिन्तयेत् ।।२१।।
सर्वलिङ्गमयं चैतत् सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम् ।
तस्माल्लिङ्गेऽर्चयेद् वै मां यच्च क्वचन शाश्वतम् ।।२२।।

सामान्य वीरशैवों का उपास्य चरस्थिर नाम का अतिश्रेष्ठ लिंग है। इनके लिये अपना शरीर ही लिंग के रूप में पूजनीय है।।१७।। शरीर पर धारण किया गया इष्टलिंग और इष्टलिंग को धारण करने वाला शरीर ये दोनों ही शिवस्वरूप हैं। इष्टलिंगधारी मेरा भक्त वीरशैव इन दोनों में कोई भेद नहीं मानता।।१८।। भक्त के शरीर पर जिस लक्षण और प्रमाण वाला यह है, उसी लक्षण और प्रमाण वाला यह चरस्थिर लिंग होता है।।१९।।

वीरशैव मत के अनुसार शिव की उपासना करने वालों के लिये चरचर नामक लिंग उपास्य है। मेरा यह लिंग विश्वात्मक है।।२०।। यह विश्व चराचरात्मक है और मेरा यह लिंग विश्वात्मक है। वीरवीरशैव मत में प्रविष्ट शिवभक्त इस लिंग की उपासना करे।।२१।। यह सारा चराचर जगत् लिंगमय है, यह सब कुछ लिंग में प्रतिष्ठित है, अतः इस लिंग में ही मेरी पूजा करे, क्योंकि वहाँ मैं शाश्वत रूप से निवास करता हूँ।।२२।।

---

१. समाचरेत्-घ., समर्चयेत्-ङ.।

प्रपञ्चलिङ्गदेहेषु भेदाभावः

प्रपञ्चलिङ्गदेहेषु न भेदं कुरुते सुधीः ।
वीरवीरमताविष्टो मद्भक्तः परमेश्वरि ।। २३ ।।
जगच्छरीरं लिङ्गस्य जगतो लिङ्गमात्मनः ।
लिङ्गस्य जगतो देहः शरीरं विद्धि मन्मते ।। २४ ।।
तदेकभावनायत्तं सेवेन्मामखिलेश्वरम् ।
जगल्लिङ्गात्मदेहेषु वीरवीरमतस्थितः ।। २५ ।।
तुर्यवीरमतस्थस्य तुर्योऽहं परमेश्वरः ।
लिङ्गमस्मि महेशानि सोऽहंभावेन भावयेत् ।। २६ ।।
अहं सर्वमयं लिङ्गं सर्वात्मा सर्वदृक् शिवः ।
धृतलिङ्गशरीराभ्यां सह तुर्यप्रवर्तिनः ।। २७ ।।
जगद्विलक्षणं मत्तः पश्येन्मम महेश्वरि ।
ममात्मानं हि जगतः सर्वमेकं विभावयेत् ।। २८ ।।

हे परमेश्वरि ! वीरवीरशैव मत में प्रविष्ट हुआ बुद्धिमान् शिवभक्त संसार में, लिंग में और अपने शरीर में किसी प्रकार का भेद नहीं करता।।२३।। यह सारा जगत् लिंग का शरीर है और यह लिंग जगत् की आत्मा है। इसी तरह से मेरे (शैव) मत में यह देह लिंग की और जगत् की आत्मा जानी जाती है।।२४।। इसलिये वीर-वीरशैव मत में स्थित शिवभक्त जगत् में, लिंग में और अपने शरीर में एकत्व की भावना करते हुए वहाँ मुझ समस्त संसार के स्वामी की सेवा करे।।२५।। हे महेशानि ! तुर्य वीरशैव मत में स्थित शिवभक्त के लिये मैं ही तुर्यस्वरूप परमेश्वर हूँ, मैं ही लिंग के रूप में उपास्य हूँ। इसलिये निराभारी वीरशैव को सोऽहंभाव (मैं ही शिव हूँ, इस भाव) से मेरी उपासना करनी चाहिये।।२६।। मैं शिव ही सबकी आत्मा, सबको देखने वाला सर्वमय लिंग हूँ। इष्टलिंग को और भौतिक देह को धारण करने वाले तुर्य शैव (निराभारी वीरशैव) को मैं ही इस उपासना में प्रवृत्त करता हूँ।।२७।। हे महेश्वरि ! निराभारी वीरशैव यह देखे कि यह जगत् मेरा होते हुए भी मुझ से विलक्षण है। इसके साथ ही वह यह भी देखे कि यह जगत् मेरी ही आत्मा (शरीर) है। इस तरह से यह शिवभक्त समस्त जगत् की एकत्व के रूप में भावना करे।।२८।।

निराभारिवर्तनक्रमः

यत्र यत्र मनो याति गोचरीकुरुते च यत् ।
तत्र सर्वत्र तत्सर्वं मद्रूपमुपधारयेत् ।। २९ ।।
न भेदबुलिंद्ध कुर्वीत समाधमगुरुष्वपि ।
स्पर्धासूयातिरस्कारान्न कुत्रापि स्मरेद् ध्रुवम् ।। ३० ।।
न तस्य पात्रनियमः संकल्पार्पणमेव वा ।
न देशकालनियमो नान्यापेक्षास्ति पूजने ।। ३१ ।।
स्वयं न पूजयेत् पुष्पपत्रादिकमथार्चने[१] ।
भक्त्या भक्तोपनीतं यदर्चयेत् तेन मां शिवे ।। ३२ ।।
अभावे पत्रपुष्पादेरर्चयेदात्मनात्मनि ।
आत्मानमखिलात्मानमात्मानं मां महेश्वरि ।। ३३ ।।

निराभारी वीरशैव का मन जहाँ-जहाँ भी जाता है और वहाँ जाकर जिस किसी भी विषय को ग्रहण करता है, वहाँ सभी विषयों में जो कुछ भी गोचर होता है, उसमें [1]शिवस्वरूप की ही भावना करे।।२९।। अपने समान, अपने से अधम और अपने से ज्येष्ठ व्यक्तियों में कभी भी भेदबुद्धि न रखे, उनके साथ [2]स्पर्धा, डाह या तिरस्कार का भाव कहीं भी किसी के साथ कभी भी न रखे।।३०।। तुर्यवीरशैव मत में स्थित शिवभक्त के लिये पूजा के समय पात्र का कोई नियम लागू नहीं होता, संकल्प की या समर्पण की भी कोई आवश्यकता नहीं होती। देश और काल के नियम की या इसी तरह के किसी अन्य शास्त्रीय नियम के पालन की भी उसे आवश्यकता नहीं रहती।।३१।। हे शिवे ! स्वयं पुष्प, पत्र आदि जुटा कर पूजा करने की उसे आवश्यकता नहीं है। यदि कोई भक्त भक्तिपूर्वक उसको पत्र-पुष्प आदि ला देता है, तो अवश्य ही उनसे मेरी पूजा करे।।३२।। हे महेश्वरि ! पत्र-पुष्प आदि के अभाव में भी वह अपने संकल्प से ही अपनी पूजा करे। अपनी आत्मा को वह समस्त आत्माओं से अभिन्न और अपने को मुझ शिव से अभिन्न समझे।।३३।। यदि वह निराभारी पात्रासादनपूर्वक

---

१. 'पुष्पपत्रा......अभावे पत्र' नास्ति-घ.।

1. विज्ञानभैरव (श्लो. ७३, ११३), स्वच्छन्दतन्त्र (४.३१३) आदि में भी सर्वत्र शिवस्वरूप की यह भावना वर्णित है।
2. पहले (पृ. १२९) उद्धृत मातृचेट के श्लोक से और प्रस्तुत आगम के वचन से तुलना कीजिये।

यदि पात्राणि चासाद्य पूजितुं मां समीहते ।
लिङ्गाङ्कितानि पात्राणि पीठं वस्त्रादिकं तथा ।। ३४ ।।
अलिङ्गचिह्नितं पात्रमलिङ्गिस्पृष्टमेव वा ।
अलिङ्गिनोपनीतं यद् वर्जयेन्मम पूजने ।। ३५ ।।
पूजाकाले मम शिवे लिङ्गपूजनमर्चनम् ।
पूजोपकरणं चापि नैवालिङ्गी विलोकयेत् ।। ३६ ।।

लिङ्गलक्षणं प्रमाणं च

विहाय पारदं शालग्रामजं लिङ्गयुग्मकम् ।
तथा स्वयम्भुलिङ्गं च बाणलिङ्गं तथैव च ।। ३७ ।।
रत्नादिनिर्मितं लिङ्गं मृण्मयं तु तथैव च ।
अन्यस्य लक्षणं वक्ष्ये प्रमाणं च शृणु प्रिये ।। ३८ ।।
पञ्चसूत्रप्रमाणेन विमानितमकल्मषम् ।
अभिन्नकान्तिमल्लिङ्गं पूजार्थं मम कल्पयेत् ।। ३९ ।।
यावत्प्रमाणकं पाणिपीठमादौ ससूत्रतः ।
तावदेवोपरि भवेत्तदर्धं मध्यतो भवेत् ।। ४० ।।

मेरी पूजा करना चाहता है, तो उसे सभी प्रकार के पात्र, पीठ और वस्त्र आदि को लिंग की मुद्रा से अंकित कर लेना चाहिये।।३४।। उस निराभारी वीरशैव को चाहिये कि वह जो पात्र लिंग से चिह्नित नहीं है, अलिंगी के द्वारा स्पृष्ट हैं अथवा अलिंगी के द्वारा लाये गये हैं, तो ऐसे पात्रों का पूजा में उपयोग न करे।।३५।। हे शिवे ! निराभारी वीरशैव इस बात का ध्यान रखे कि मेरी पूजा करते समय लिंग की पूजा-अर्चा और पूजा के उपकरणों को कोई भी अलिंगी देख तो नहीं रहा है।।३६।।

पारद और शालिग्राम शिला से निर्मित दोनों प्रकार के लिंगों के तथा स्वयंभू लिंग, बाणलिंग और इसी तरह से रत्न आदि से निर्मित अथवा मृण्मय लिंग के अतिरिक्त अन्य सभी लिंगों के लक्षण और प्रमाण मैं बता रहा हूँ। हे पार्वति ! तुम उसे पूरी सावधानी से सुनो।।३७-३८।। [1]पंचसूत्र-प्रमाण से नाप कर बिना किसी त्रुटि के बनाये गये किसी भी प्रकार की टूट-फूट से रहित समग्र कान्ति से सुशोभित लिंग को मेरी पूजा के लिये उपयोग में लावे।।३९।। पाणिपीठ का जितना प्रमाण है, पहले उसे सूत्र से नाप ले। इसके ऊपर का और नीचे का भाग उतने ही प्रमाण का होगा। ऊँचाई भी उतनी ही

1. पंचसूत्र-प्रमाण इष्टलिंग का सचित्र विवरण वीरशैवाचारप्रदीपिका (पृ. १३) में देखिये।

औन्नत्यं तावदेव स्यादौन्नत्यादर्धमानकम् ।
लिङ्गं च सोमसूत्रं च दैर्घ्याद्वैपुल्यमीश्वरि ।। ४१।।
ज्ञानप्रदं शुक्लवर्णं रक्तवर्णं तु वश्यकम् ।
नीलं शत्रुविनाशाय पीतमिष्टार्थसिद्धये ।। ४२।।
श्यामं सर्वार्थदं प्रोक्तं मम लिङ्गं महत्तरम् ।
देह[1]विश्वात्मलिङ्गानां न प्रमाणं न लक्षणम् ।। ४३।।
सर्वनाशाय दुःखाय लिङ्गमैच्छिकमात्मनि ।
धृतं त्विह परत्रापि ह्यप्रमाणमलक्षणम् ।। ४४।।

मतेऽस्मिन् शक्तस्यैव प्रवेशः

इत्थं विचार्य लिङ्गस्य मतस्य च परस्परम् ।
लक्षणं च प्रमाणं च शक्तश्चेत् प्रविशेन्मम ।। ४५।।

होगी। इसका मध्यभाग इनका आधा रहेगा। ऊँचाई के प्रमाण से लिंग का मान आधा रहेगा और सोमसूत्र का प्रमाण चौड़ाई के प्रमाण से आधा रहेगा। पंचसूत्र लिंग का यही प्रमाण है। अभिप्राय यह है कि बाण (लिंग) का वर्तुल भाग, पीठ की लम्बाई, पीठ के ऊपरी भाग की चौड़ाई और पीठ के निचले माप की चौड़ाई— इन चारों का माप समान होना चाहिये और गोमुख का माप बाण के वर्तुल भाग से आधा रहना चाहिये। यही पंचसूत्र-प्रक्रिया है।।४०-४१।। मेरा शुक्ल वर्ण का लिंग ज्ञानप्रद, रक्त वर्ण का वश्यकर, नील वर्ण का शत्रुविनाशक, पीत वर्ण का इष्ट प्रयोजन की सिद्धि करने वाला और श्याम वर्ण का सभी इच्छाओं को पूरा करने वाला है। इस प्रकार वर्ण-भेद से मेरे इस महान् लिंग की अनन्त महिमा है। यहाँ देह, विश्व और आत्मलिंग का न कोई निश्चित प्रमाण है और न लक्षण ही।।४२-४३।। किन्तु यदि कोई व्यक्ति शास्त्रीय परिमाण और लक्षण से रहित इष्टलिंग को मनमाने तरीके से धारण कर लेता है, तो ऐसा लिंग इस लोक और परलोक दोनों में सर्वनाशकारक और दुःखदायक हो जाता है।।४४।।

लिंग की और मेरे निराभारी वीरशैव मत की आपस की विशेषता को, उनके लक्षण को और प्रमाण को भली-भाँति समझ लेने के बाद यदि वह इसमें अपने को समर्थ समझता है, तभी इस मत में प्रवेश करे।।४५।। यदि इस मत में प्रदर्शित नियमों

१. देहं-क. ग. घ. ङ.।

स तु तेनैव देहेन निविशेन्मयि भक्तिमान् ।
अन्यथा स्वार्थविभ्रष्टो निपतेद् रौरवेऽर्णवे ।। ४६ ।।

निराभारिणा पालनीया नियमाः

न यथेच्छं चरेद् भूमौ न किञ्चित् प्रार्थयेद्धृदि ।
नात्मनिष्ठां [१]त्यजेत् क्वापि प्राणैः कण्ठगतैरपि ।। ४७ ।।
न लोलुपः स्याद्विषये न सेवेद्विषयं क्वचित् ।
न स्त्रियं मनसाऽपीहेन्नावमन्येत कञ्चन ।। ४८ ।।
न जातिभेदमन्वीक्षेन्न तद्द्वेषं समाचरेत् ।
न निन्देन्न [२]स्तुवेत् क्वापि गुणदोषौ तु कुत्रचित् ।। ४९ ।।
अपक्वमपि पक्वं वा नालिङ्गिस्पृष्टमाचरेत् ।
सर्वं लिङ्गिसमानीतमुपकल्प्य तनुस्थितौ ।। ५० ।।
प्रमादालस्यनिद्राभिर्नातिक्रामेदनेहसम् ।
क्षणं वापि प्रमत्तः स्यान्न वीरशिवसम्मतः ।। ५१ ।।

के पालन करने में वह समर्थ होता है, तो ऐसा भक्तिमान् पुरुष इसी देह से मुझमें प्रविष्ट हो जाता है। इसके विपरीत आचरण करने पर वह स्वार्थभ्रष्ट हो रौरव नरक रूपी सागर में गिर पड़ता है।।४६।।

वह निराभारी वीरशैव इस पृथ्वी पर स्वच्छन्द विचरण न करे, मन में किसी भी वस्तु की चाह न रखे और प्राणों के कण्ठ तक आ जाने की स्थिति में भी अपनी निष्ठा का, अंगीकृत नियमों का त्याग न करे।।४७।। विषयलोलुप कभी न बने और न उनका कभी उपभोग ह करे। मन से भी स्त्री का चिन्तन न करे और किसी का कभी भी अपमान न करे।।४८।। जाति के आधार पर मनुष्य में भेददृष्टि न रखे और न इसके आधार पर किसी के प्रति द्वेषभाव ही रखे। गुण और दोष जहाँ कहीं भी दिखाई पड़ता हो, उसकी न तो निन्दा करे और न स्तुति ही करे।।४९।। अलिंगी के द्वारा छुए गये या लाये गये अपक्व अथवा पक्व अन्न को ग्रहण न करे। शरीर की स्थिति के लिये लिंगी मनुष्य के द्वारा लाये गयें अन्न को ही ग्रहण करे।।५०।। वीरशैव मत में प्रविष्ट व्यक्ति प्रमाद, आलस्य और निद्रा में ही सारा दिन व्यतीत न कर दे। एक क्षण के लिये भी उसे असावधान नहीं रहना चाहिये।।५१।।

१. त्यजन्-क. ख.। २. स्तुयात्-ख.।

नाधीयीता[1]न्यशास्त्राणि वैष्णवादीनि सुन्दरि ।
स मन्मतोचितं शास्त्रमवबुध्य गुरोर्मुखात् ।।५२।।
नेहामुत्र फलं काङ्क्षेन्नाहंमतिमुपाश्रयेत् ।
न जुगुप्सां भयं लोभं वीरशैवमते स्थितः ।।५३।।
तत्रापि वीरतुर्यस्थदेहिनामहमेव हि ।
तन्नावमान्यं न द्वेष्यं यदहं सकलं जगत् ।।५४।।
सर्वत्र सर्वदा सर्वमात्मनोऽभेदमाश्रितः ।
वीक्षेन्मनस्यवहितो बहिरेवं व्रती[2] भवेत् ।।५५।।
एकान्ती[3] निवसेन्नित्यमर्चाध्यानसमाधिभिः ।
योगज्ञानानुचिन्ताभिरादरान्मां समर्चयेत् ।।५६।।
न वासं कुरुते ग्रामे न पाषण्डी भवेत् क्वचित् ।
न [4]बह्वाहारमिच्छेत तुर्यवीरव्रतस्थितः ।।५७।।
न क्रोधं न च मात्सर्यं न वैषम्यं न वेदनम् ।
न बहिः कुरुतेऽन्तःस्थं[5] प्राणेषूच्चावचेष्वपि ।।५८।।

हे सुन्दरि ! वैष्णव आदि अन्य शास्त्रों का अध्ययन उसे नहीं करना चाहिये। उसे तो गुरुमुख से मेरे मत से संबद्ध शास्त्रों का अध्ययन कर उनका चिन्तन करना चाहिये।।५२।। वीरशैव मत में स्थित व्यक्ति ऐहिक अथवा पारलौकिक फल की आकांक्षा न रखे, वह अहंकार के वश में कभी न हो और परनिन्दा, भय, लोभ जैसे दुर्गुणों से भी दूर रहे।।५३।। इन वीरशैवों में भी जो निराभारी हैं, उनके शरीर में तो मैं स्वयं ही निवास करता हूँ, अतः इनका तो सदा समान ही होना चाहिये। इनके साथ कोई द्वेष न करे, क्योंकि यह सारा जगत् मेरा ही स्वरूप है।।५४।। सर्वत्र, सर्वदा यह सब मेरी आत्मा में अभिन्न रूप में स्थित है, इस अभेद दृष्टि के द्वारा न केवल मन में, किन्तु बाहर भी समान दृष्टि रखने वाला भक्त शिवव्रती कहलाता है।।५५।। अर्चा, ध्यान, समाधि, योगाभ्यास और शास्त्रचिन्तन करता हुआ शिवभक्त एकान्त स्थान में रहकर आदरपूर्वक मेरी सेवा करे।।५६।। तुर्य वीरशैव मत में स्थित ऐसा शिवभक्त ग्राम में निवास नहीं करता, कभी भी पाखंड नहीं दिखाता और ढेर सारे आहार की भी इच्छा नहीं रखता।।५७।। यह निराभारी वीरशैव क्रोध नहीं करता, किसी से डाह नहीं रखता, किसी को विषम दृष्टि से नहीं देखता। प्राण भलें ही चले जाँय, किन्तु अपने मनोगत भावों को कभी प्रकट नहीं करता।।५८।। देवि ! इस निराभारी

---

१. येता-क., यीते-ग.। २. व्रतो-ग. घ. ङ.। ३. एकान्ते-ग. घ. ङ.। ४. ग्राम्या-क. ख.। ५. न्तस्थः-ख.।

यावानस्त्यभिमानो मे लिङ्गे देहे मते मम ।
तावानेव भवेद् देवि जगत्यपि चराचरे ॥५९॥
सदा लिङ्गी भवेन्मौनी तुर्यवीरव्रतस्थितः ।
न वीक्षयेदतिक्रूरे प्रतिपक्षेऽपि दुर्जने ॥६०॥
[१]इत्थमुक्ताधिकारी यस्तुर्यवीरव्रतं श्रयेत् ।
वसेन्न चान्यथा क्वापि सुख[२]दुःखस्य च क्षयः ॥६१॥

लिङ्गनाशे देहत्यागो विधेयः

एतस्य विधिरुद्दिष्टो तुर्यवीरप्रवर्तिनः ।
लिङ्गनाशे सहैतेन देहत्यागो विवक्षितः[३] ॥६२॥
अज्ञात्वैतन्महाशास्त्ररहस्यं श्रीगुरोर्मुखात् ।
अबोधयित्वा शिष्यं यो भ्रष्टौ तावप्युभौ शिवे ॥६३॥
अनादिशैवमारभ्य वीरवीरमतान्तरे ।
लिङ्गनाशे पुनर्धार्य[४] तुर्यवीरस्त्यजेत् तनुम् ॥६४॥

वीरशैव का इष्टलिंग के प्रति, देह के प्रति और मेरे प्रति जितना अभिमान (लगाव) है, उतना ही उसका इस चराचरात्मक जगत् के प्रति भी रहता है।।५९।। तुर्य वीरशैव व्रत का पालन करने वाला निराभारी सदा इष्टलिंग धारण करे और मौन व्रत का पालन करे। अपना प्रतिपक्षी कितना ही दुर्जन हो, किन्तु उसके प्रति भी वह क्रूर भाव न रखे।।६०।। इस प्रकार के अधिकारों (लक्षणों) से सम्पन्न व्यक्ति ही तुर्य वीरशैव व्रत का आश्रय ले, निराभारी अवस्था में प्रविष्ट हो। निराभारी की चर्या को छोड़कर वह कहीं भी निवास न करे। ऐसा करने से उसके सारे दुःखों का क्षय हो जाता है और उसका जीवन सुखमय बन जाता है।।६१।।

तुर्य वीरशैव व्रत ह स्वीकार करने वाले निराभारी की चर्या का यहाँ वर्णन किया गया है। लिंग के नष्ट हो जाने पर उसके साथ ही उसको अपना शरीर त्याग देना पड़ता है।।६२।। इस महाशास्त्र के रहस्य को गुरुमुख से बिना जाने जो उसका आचरण करता है अथवा अपने ज्ञात शास्त्र को जो शिष्य को नहीं बताता, ये दोनों प्रकार के व्यक्ति अपने मार्ग से भ्रष्ट माने जाते हैं।।६३।। अनादिशैव मत से लेकर वीरवीरशैव मत तक के शैव अनुयायियों के लिये धारित इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर उसके पुनः धारण करने का विधान है, किन्तु तुर्य वीरशैव (निराभारी) को तो ऐसी स्थिति में अपने शरीर का त्याग कर देना चाहिये।।६४।। ऐसी स्थिति में अनादि, वीरशैव आदि अन्य

१. श्लोकयोः (६१-६२) विपर्यस्तः क्रमः-ग. घ.। २. सुखं-क. ख. ग.। ३. विशेषतः-घ.। ४. न धार्यं तु-कटि.।

अन्यः सन्त्यज्य नरके शरीरं निपतेद् ध्रुवम् ।
असन्त्यज्य तुरीयोऽपि प्रपतेन्नरके ध्रुवम् ।। ६५ ।।
अजानन्नीतिबोधाय हन्ति शिष्यं यतो गुरुः ।
शिष्योपेतं निहन्यात् तद्रहस्यं श्रीगुरोर्गुरुम् ।। ६६ ।।
शास्त्रेण गुरुवाक्येन यथावत् सम्प्रवर्तिनौ ।
मम लोके निवसतः स शिष्यः स गुरुः शिवे ।। ६७ ।।

तुर्यवीरो न कञ्चन प्रणमेत्

तादृशं तुर्यवीरस्थं मद्रूपं शिवयोगिनम् ।
प्रणमेयुः परे सर्वे तेष्वयं नैव कञ्चन ।। ६८ ।।
नोत्तिष्ठेन्नापि वन्देत तुर्यवीरव्रतस्थितः ।
यतस्तुरीयः सर्वेभ्यो भक्तो मत्तोऽपि चाधिकः ।। ६९ ।।
विनयाभावतुर्यस्थः प्रणमेन्न परस्परम् ।
गुरुं मामखिलाधीशमन्यं कञ्चन लिङ्गिनम् ।। ७० ।।

मत का अनुयायी यदि शरीर त्याग करता है, तो वह निश्चय ही नरक में जाता है। इसके विपरीत निराभारी वीरशैव यदि शरीर त्याग नहीं करता, तो वह भी निश्चय ही नरक का भागी होता है।।६५।। गुरु स्वयं कुछ न जानते हुए यदि शिष्य को शास्त्र का उपदेश करता है, तो वह शिष्य की हत्या का भागी होता है, अर्थात् वह अयोग्य गुरु एक प्रकार से शिष्य की हत्या ही कर देता है। इसी तरह से अयोग्य शिष्य को प्राप्त हुआ शास्त्रीय रहस्य गुरु के और उसके भी गुरु के नाश का कारण बनता है। इसलिये अयोग्य शिष्य को शास्त्र का उपदेश नहीं देना चाहिये।।६६।। हे शिवे ! शास्त्र में बताई गई पद्धति से और गुरु के उपदेश वाक्यों से नियमानुकूल उपदेश देने वाले और ग्रहण करने वाले गुरु-शिष्य दोनों शिवलोक में निवास करते हैं।।६७।।

इस तरह के शिवस्वरूप तुर्य वीरशैव मत में स्थित निराभारी शिवयोगी को देख कर अन्य सभी वीरशैव मतों के अनुयायी इसको प्रणाम करें, किन्तु यह उनमें से किसी को प्रणाम न करे।।६८।। तुर्य वीरव्रत का पालन करने वाला किसी के आने पर स्वयं न उठे और न उनका अभिवादन ही करे, क्योंकि यह निराभारी वीरशैव भक्त अन्य सभी से श्रेष्ठ है। इतना ही नहीं, वह तो मुझसे भी श्रेष्ठ है।।६९।। विनय से, सारे सांसारिक नियमों से ऊपर उठा हुआ निराभारी वीरशैव परस्पर भी एक-दूसरे को प्रणाम नहीं करते। वे गुरु को, समस्त जगत् के स्वामी मुझ शिव को अथवा अन्य किसी लिंगधारी को भी प्रणाम नहीं करते।।७०।।

[1]न संमन्येत तं मूढस्तुर्यवीरव्रते स्थितः ।
अत ऊर्ध्वगतिभ्रष्टः प्रपतेदथ[2] रौरवे ।।७१।।

निराभारिशुश्रूषा फलदा

यदि भक्तिर्भवेच्छक्तिरर्चयेत् प्रणमेदपि ।
कुर्याच्छुश्रूषणं तस्य स्वयं मुक्तो भवेद् ध्रुवम्[3] ।।७२।।
दर्शनस्पर्शनालापसेवापूजादिभिः प्रिये ।
स्वयं च संस्मरेत् कृच्छ्रं तुर्यवीरस्थलिङ्गिनम्[4] ।।७३।।
जीर्णखर्परकन्थाढ्यमपि पश्येद् दिगम्बरम् ।
यदृच्छया च तुर्यस्थो भक्तो मुच्येत किल्बिषात् ।।७४।।
उदासीनत्वात् तुर्यस्थमनुत्थाया[5]नमन् शठः ।
शतवंशसमोपेतः प्रपतेद् रौरवार्णवे ।।७५।।
य इच्छेन्मम सायुज्यमनायासेन बुद्धिमान् ।
यथाशक्त्यर्चयेत् तुर्यवीरशैवव्रतेश्वरम् ।।७६।।

तुर्य वीरव्रत का पालन करने वाले उस निराभारी शिवयोगी का जो मूढ़ व्यक्ति संमान नहीं करता, वह ऊर्ध्व गति से भ्रष्ट होकर रौरव नरक का भागी होता है।।७१।।

यदि शिवभक्त में उसके प्रति भक्ति है, तो वह अपनी शक्ति के अनुसार उस निराभारी शिवयोगी की पूजा करे, उसे प्रणाम करे और उसकी सेवा करे। ऐसा करने से वह स्वयं भी निश्चय ही मुक्त हो जाता है।।७२।। हे प्रिये ! दर्शन, स्पर्शन, मधुरालाप, सेवा और पूजा से उस निराभारी शिवयोगी को सन्तुष्ट करे। ऐसा करने वाला स्वयं यदि कभी कष्ट में पड़ जाय तो, वह तुर्य वीरव्रत का पालन करने वाले उस निराभारी का स्मरण करे। अभिप्राय यह है कि ऐसा करने से उसका संकट दूर हो जाता है।।७३।। जो शिवभक्त जीर्ण खर्पर और कन्था (फटी गुदड़ी) से युक्त दिगंबर, अपनी इच्छा से आये हुए निराभारी वीरशैव शिवयोगी को देखता है, तो वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।७४।। तुर्यावस्था में स्थित उदासीनभाव से विचरण करने वाले निराभारी शिवयोगी के आने पर जो दुष्ट उसका अभ्युत्थान और नमन नहीं करता, वह अपनी सौ पीढ़ियों के साथ रौरव नरक में गिरता है।।७५।। जो बुद्धिमान् व्यक्ति अनायास मेरी सायुज्य पदवी को प्राप्त करना चाहता है, तो उसे वीरशैव व्रत का पालन करने वाले श्रेष्ठ निराभारी योगी की शक्ति के अनुसार सेवा करनी चाहिये।।७६।। पत्र, पुष्प,

१. नावमन्येत मूढं तं तुर्य-घ. ङ.। २. तेत् पाप-ख. ग. घ. ङ.। ३. भवेन्नरः – ख.। ४. लिङ्गकः- घ. ङ.। ५. त्थाय न-ग. घ.।

पत्रं पुष्पं फलं तोयमन्नपानांशुकादिकम् ।
भक्त्या निवेद्य तुर्यस्थे स्वल्पमक्षयतां व्रजेत् ।। ७७ ।।
निमिषं निमिषार्धं वा यत्रोपविशते क्वचित् ।
तुर्यवीरव्रतो विद्धि तन्ममालयमीश्वरि ।। ७८ ।।
तद्दृष्टिपथगं सर्वमनवद्यं न संशयः ।
अशुद्धमपि तच्छुद्धं यतस्तुर्योऽस्म्यहं शिवः ।। ७९ ।।

निराभारिलक्षणम्

[१]अकिञ्चनत्वं निर्बाधो वासश्च विजने वने ।
मौनं भिक्षाटनं भक्तिः पूजा ध्यानमनुस्मृतिः ।। ८० ।।
अलक्षत्वं यथागारे अन्याहिंसनमादरः ।
विरक्तिः शान्तिदान्ती च कामलोभादिवर्जनम् ।। ८१ ।।
अग्रामावेशनं शक्त्या चासंग्रह उदारता ।
समाधिरासनं निष्ठा समत्वं प्रियविप्रिये ।। ८२ ।।

फल, जल, अन्न, पान, वस्त्र आदि यदि थोड़ी मात्रा में भी तुर्य व्रतधारी योगी को भक्तिपूर्वक समर्पित किये जाते हैं, तो उनका अक्षय फल मिलता है।।७७।। हे ईश्वरि ! ऐसा निराभारी शिवयोगी एक क्षण के लिये या आधे क्षण के लिये भी जहाँ कहीं बैठ जाता है, तो वह स्थल शिवमन्दिर के समान पवित्र हो जाता है।।७८।। जो भी वस्तु उस निराभारी वीरशैव के दृष्टिगोचर हो जाती है, वह सब निःसन्देह निर्दोष हो जाती है, अशुद्ध वस्तु भी शुद्ध हो जाती है, क्योंकि वह तुर्य वीरशैव मेरा ही स्वरूप है।।७९।।

वह निराभारी शिवयोगी अपने को अकिंचन समझता है, किसी को कष्ट नहीं पहुँचाता, मनुष्यरहित वन में निवास करता है, मौन, भिक्षाटन, भक्ति, पूजा, ध्यान और चिन्तन में डूबा रहता है।।८०।। वह अलक्षित रूप में निवास करता है, किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाता, सबका आदर करता है। विरक्ति, शान्ति, दान्ति उसके धर्म हैं। वह काम और लोभ का त्याग कर देता है।।८१।। वह गाँव में प्रवेश नहीं करता, यथाशक्ति संग्रह से दूर रहता है और उसमें उदारता भरी रहती है। समाधि, आसन और दृढ़ निष्ठा से सम्पन्न यह निराभारी प्रिय और अप्रिय के प्रति समान भाव से भरा रहता है।।८२।।

---

१. श्लोके पङ्क्तिविपर्ययः-ग. घ.।

कृच्छ्रेऽप्यधैर्यसन्त्यागमौद्धत्यं नापि सम्पदि ।
इत्यादिलक्षणोपेतं तं निराभारवीरगम् ॥ ८३ ॥
मानावमानयोरेकरूपमालस्यवर्जितम् ।
स्तुतिस्मरणपूजासद्ध्यानादौ मम तत्परम् ॥ ८४ ॥
यदृच्छयोपपन्नेऽपि[1] निरपेक्षमतन्द्रितम् ।
भावयन्तमिदं विश्वमथाभेदेन चात्मना ॥ ८५ ॥

तुर्यवीरार्चनफलम्

तादृशं तुर्यवीरस्थमर्चयित्वा स्वशक्तितः ।
भक्त्या सन्तोष्य मतिमान् मम लोके चिरं वसेत् ॥ ८६ ॥
आगच्छन्तं समालोक्य गृहाणि गृहमेधिनाम् ।
शिवे तद्वंशजाः सर्वे वीरशैवस्थलिङ्गिनम् ॥ ८७ ॥
मुदा नृत्यन्ति गायन्ति वयं धन्यतमा इति ।
यदस्मद्वंशभवनमियादेकोऽर्चयेत् क्वचित् ॥ ८८ ॥

अतिकष्टदायक अवस्था में भी यह धैर्य का परित्याग नहीं करता, आध्यात्मिक और लौकिक सम्पत्ति से सम्पन्न होने पर वह औद्धत्य नहीं दिखाता। ये सब लक्षण जहाँ दिखाई दें, समझ लेना चाहिये कि यह निराभारी वीरशैव है।।८३।। संमान और अपमान के प्रति जिसका समान भाव है, आलस्य को जिसने छोड़ दिया है, भगवत्स्तुति, भगवत्स्मरण, पूजा, ध्यान आदि में जो तत्पर है।।८४।। दैवयोग से अपने आप प्राप्त वस्तु के प्रति भी जो निरपेक्ष है, आलस्य से रहित है और इस विश्व को अपने से अभिन्न मानता हुआ सर्वत्र शिवभाव की भावना करता है।।८५।।

इस तरह से तुर्य वीरशैव व्रत का पालन करने में लगे हुए निराभारी की अपनी शक्ति के अनुसार पूजा करके, भक्तिभाव से उसे सन्तुष्ट करके बुद्धिमान् मनुष्य चिरकाल पर्यन्त शिवलोक में निवास करता है।।८६।। हे शिवे ! गृहस्थों के घर की तरफ वीरशैव मत में स्थित निराभारी शिवयोगी को आते हुए देख कर उनके वंश में उत्पन्न सभी पूर्व पुरुष प्रसन्नता से नाचते-गाते हैं कि हम अति धन्य हैं, हमारे वंश में उत्पन्न हमारी सन्तति के घर पर एक भी कोई शिवयोगी आवे और वहाँ हमारे वंशज उनकी पूजा करें। वह शिवयोगी हमारे वंशजों के घर पर कृपादृष्टि डाले अथवा उसकी चरण-धूलि

---

१. सन्ने च-क. ख. ग.।

करिष्यत्यवलोकं वा पतेत् पादरजोऽङ्गणे ।
इति प्रमुदिता देवि भवन्ति पितरोऽखिलाः ॥८९॥
वीरसामान्यशैवस्थ(स्य) पूजनात्तस्य यत्फलम् ।
यद्यर्चयेदभक्त्या च तुर्यवीरव्रतं समम् ॥९०॥
समुद्धृत्यान्वयशतान् दुःखात् पूर्वापरानपि ।
सर्वक्लेशविनिर्मुक्तो मम लोके महीयते ॥९१॥
यदि भक्त्या विधानेन तुरीयं वीरशैवगम् ।
यथाशक्त्य[१]र्चयेदन्नपानाद्यैरपि सुन्दरि ॥९२॥
प्रत्युत्थानाभिगमनवन्दनप्रियभाषणैः ।
पादसंवाहनैः शान्तिविश्रामैर्व्यजनादिभिः ॥९३॥
शुश्रूषणं तदुक्तार्थकरणं यदमायया ।
आनीय तत्प्रियं दद्यादित्याद्यैर्गृहमेधिनः ॥९४॥
पशुपुत्रसुखायुःश्रीसत्त्वतेजोबलान्विताः ।
भुक्त्वेह सकलान् भोगानन्ते मद्भावनालयाः ॥९५॥

उनके घरों के आँगन में गिरे। हे देवि ! ऐसा विचार कर वे समस्त पितृगण प्रसन्नता से भर उठते हैं।।८७-८९।। सामान्य वीरशैव का भक्तिपूर्वक पूजन करने से जो फल मिलता है, वही फल तुर्य वीरव्रत का पालन करने वाले निराभारी शिवयोगी के बिना भक्ति के पूजन से मिल जाता है।।९०।। निराभारी शिवयोगी के सत्कार से शिवभक्त अपने पूर्व वंश और उत्तर वंश की सौ पीढ़ियों का दुःखसागर से उद्धार कर, स्वयं सभी प्रकार के क्लेशों से मुक्त हो, शिवलोक में पूजनीय बन जाता है।।९१।। हे सुन्दरि ! तुरीय वीरशैव मत में स्थित शिवयोगी की भक्तिभाव से विधानपूर्वक यथाशक्ति अन्न-पान इत्यादि से पूजा करनी चाहिये।।९२।। स्वागत में उठ कर खड़ा होना, अगवानी करना, प्रणाम करना, प्रियभाषण, पादसंवाहन करना, सुखकर विश्रान्ति देना और पंखे से हवा करना।।९३।। उनकी सेवा-शुश्रूषा करना, निष्कपट भाव से उनकी आज्ञा का पालन करना और उनकी प्रिय वस्तु को लाकर देना, इन सब कार्यों को करने वाले गृहस्थ। यहाँ पशु-पुत्र आदि के सुख, दीर्घ आयु, लक्ष्मी, सात्त्विक प्रकृति, तेज और बल से सम्पन्न हो समस्त सांसारिक भोगों को भोग कर अन्त में शिवलोक को प्राप्त करते हैं।।९४-९५।। जो अज्ञ जन तुरीय वीरशैव की निन्दा करते हैं, उनका अपमान

---

१. शक्त्याऽर्च-ग. घ.।

ये निन्दन्त्यवजानन्ति तुरीयं वीरशैवकम् ।
निर्दह्य वंशसाहस्रं पच्यन्ते नरकार्णवे ।। ९६ ।।
सुखेन सुखभोगेच्छा यद्यस्ति गृहमेधिनाम् ।
लिङ्गिनां शिवभक्तानामर्चेयुस्तुर्यवीरगम् ।। ९७ ।।
नष्टे लिङ्गे प्रमादेन तुर्यवीरव्रतस्थितः ।
त्यजेत् तत्क्षणमात्मानं तस्य सा मुक्तिरीरिता ।। ९८ ।।
यद्यन्ये लिङ्गिनो मूढा वीरवीरादिपूर्वकाः[1] ।
इमं विधिमविज्ञाय त्यक्त्वात्मानं पतन्ति ते ।। ९९ ।।
विचार्य स्वगुरोर्वक्त्राद् हिताहितमतन्द्रितः ।
गुरुशास्त्रोक्तविधिना चरन् सुखमुपैति सः ।। १०० ।।

तुर्यवीरव्रतं श्रेष्ठतरम्

सर्वोऽपि नियमो देवि तुर्यवीरव्रतस्य हि ।
सर्वत्यागोऽपि तस्यैव ह्यङ्गत्वमविशेषतः ।। १०१ ।।
किं वर्णितेन[2] बहुना शृणु मे निश्चितं प्रिये ।
सिद्धान्तमत्र वक्ष्यामि सारं मम व्रतोद्भवम् ।। १०२ ।।

करते हैं, वे अपने हजारों पूर्व पुरुषों के पुण्यों को भस्म कर स्वयं भी घोर नरक में गिर कर दुःख भोगते हैं।।९६।। यदि गृहस्थों को बिना कष्ट के सुख भोगने की इच्छा है, तो वे इष्टलिंगधारी शिवभक्तों में श्रेष्ठ तुरीय वीरशैव का पूजन करें।।९७।। प्रमादवश इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर तुरीय वीरव्रत में निष्ठा रखने वाला शिवयोगी तत्क्षण अपने प्राणों का परित्याग कर दे। उसकी यही वास्तविक मुक्ति है।।९८।। यदि सामान्य वीरशैव आदि अन्य इष्टलिंगधारी मूढ़तावश इसकी विधि को बिना जाने तुर्य वीरशैव की तरह देहत्याग करते हैं, तो उनका पतन हो जाता है।।९९।। अतः पूरी सावधानी के साथ अपने गुरु से हित और अहित को जान कर गुरु और शास्त्र के द्वारा उपदिष्ट विधि का पालन करने वाला व्यक्ति सदा सुख पाता है।।१००।।

हे देवि ! तुर्य वीरव्रत का पालन करने वाला जो कुछ करता है, वही उसके लिये नियम है। सर्वस्व का त्याग ही विशेष रूप से उसकी चर्या का अंग है।।१०१।। हे प्रिये ! बहुत अधिक वर्णन करने से क्या लाभ है? मेरा यह निश्चित सिद्धान्त सार रूप में तुमको बता रहा हूँ कि इस वीरव्रत की क्या महिमा है।।१०२।। इस तुर्य वीरव्रत

---

१. पूर्वगाः-क.। २. वर्णिन-क.।

न तुर्यवीरव्रतधर्मतः परं
व्रतं तपोयोगसमाधयोऽपि वा ।
सुखेन मत्प्राप्तय एतदच्युत-
र(म)धोऽधदुःखागतये न चेतरत् ।। १०३ ।।
इति ते कथितं देवि वीरशैवमतान्तरम् ।
अपि गुह्यं तव प्रीत्यै लिंक भूयः श्रोतुमिच्छसि ।। १०४ ।।

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे वीरशैवभेदनिराभारवीर[1]शैवाचार-षड्विधलिङ्गनिरूपणं नाम षोडशः पटलः ।।१६ ।।

का धार्मिक विधि से पालन करने से बढ़ कर कोई अन्य व्रत, तप, योग अथवा समाधि भी नहीं है। इसी से बड़ी आसानी से सुखपूर्वक अच्युत भाव से शिवपद की प्राप्ति हो सकती है। इससे भिन्न अन्य सब उपाय अधोगति को देने वाले और व्यक्ति को दुःखसागर में डुबा देने वाले हैं।।१०३।। हे देवि ! इस तरह से यहाँ वीरशैव तथा अन्य शैव मतों का परिचय अतिगुह्य होते हुए भी तुम्हारी प्रीति के लिये मैंने दे दिया है। अब आगे पुनः तुम क्या सुनना चाहती हो।।१०४।।

इस प्रकार पारमेश्वर तन्त्र का यह वीरशैवों के निराभार आदि भेदों का उनके आचारों का और षड्विध लिंग का निरूपण करने वाला यह सोलहवाँ पटल समाप्त हुआ।।१६।।

---

१. 'वीर' नास्ति-क. ख.।

सप्तदशः पटलः

वीरशैवब्राह्मण्यनिरूपणम्

श्रीदेव्युवाच

सर्वज्ञ सकलाधार कामारे करुणार्णव ।
पाहि शङ्कर पापारे भक्तार्तिभयनाशन ।।१।।
वद[1] लोकोपकाराय वीरशैवे विशेषकम् ।
इतः परतरं लिंक वा चास्ति चेद् ब्रूहि मे विभो[2] ।।२।।

ईश्वर उवाच

साधु साध्वि महाभागे वक्ष्यामि शृणु सुव्रते ।
रहस्यं गोपनीयं हि तव स्नेहेन सुन्दरि ।।३।।

शैवभेदप्रतिपादनम्

शुद्धशैवं मिश्रशैवं मार्गशैवं तृतीयकम् ।
चतुर्थं वीरशैवं च पञ्चमोऽवान्तरस्तथा ।।४।।

देवी का प्रश्न

हे सर्वज्ञ, समस्त जगत् के आधार, कामदेव को भस्म कर देने वाले, समस्त पापों का नाश करने वाले, भक्तों के भय और पीड़ा को दूर करने वाले, करुणा के सागर शंकर ! आप मेरी रक्षा करें।।१।। हे विभो ! वीरशैव मत के विषय में जो कुछ भी विशेष रूप से जानने योग्य कोई विषय यदि इसके बाद भी बचा हो, तो उसे आप मुझे बताइये, जिससे कि सामान्य मनुष्यों का भी कुछ उपकार हो सके।।२।।

ईश्वर का उत्तर

हे महाभाग्यशालिनी, तपस्विनी, साध्वी पार्वति ! तुमने अच्छा प्रश्न किया। हे सुन्दरि ! यह रहस्य गोपनीय है, किन्तु स्नेहवश तुम्हें जो बता रहा हूँ, उसे तुम सावधानी से सुनो।।३।।

शुद्धशैव, मिश्रशैव, तीसरा मार्गशैव, चतुर्थ वीरशैव और पाचवाँ अवान्तर नामक शैव— इन पंचविध शैवों के लक्षण आगे बताये जा रहे हैं।।४।। हे देवि ! आचार

---

१. वन्दे-ग.। २. प्रभो-ख.।

तत्र तत्र विभेदेन जातिभेदेन केनचित् ।
वर्तन्ते लिङ्गिनो देवि जातिकर्मसमाश्रिताः ।।५।।

शुद्धशैवलक्षणम्

ब्राह्मणा वीरशैवस्थाः शिखायज्ञोपवीतिनः ।
लिङ्गरुद्राक्षभस्माङ्का ब्रह्मकर्मसमाश्रिताः ।।६।।
शिवाचाररता नित्यं लिङ्गपूजापरायणाः ।
शिवाराध्याः सदा देवि ममातिप्रियकारिणः ।।७।।
शुद्धशैवाः समाख्याता गृहस्था गृहिणीयुताः ।

मिश्रशैवलक्षणम्

मिश्रशैवा महादेवि क्षत्रिया वैश्यशूद्रजाः ।।८।।
सुशीलाचारसम्पन्नाः शीलवन्तश्च लिङ्गिनः ।
लिङ्गार्चनपरा नित्यमन्नदानपरायणाः ।।९।।
अन्यदेवान् नमस्कृत्य तीर्थयात्रादयस्तथा ।
तत्तत्कुलाचाररता गुरुभक्तिरताः शिवे ।।१०।।

अथवा जातिवाद के कारण ये सब भेद माने जाते हैं। जातिगत कर्मों के अनुसार भी इष्टलिंगधारियों में भेद होते हैं।।५।।

इनमें से वीरशैव ब्राह्मण शिखा और यज्ञोपवीत धारण करते हैं। इष्टलिंग, रुद्राक्ष और भस्म से इनका शरीर सुशोभित रहता है और ये ब्रह्मकर्म के अनुष्ठान में निरत रहते हैं। ये नित्य शिवाचार के पालन में और इष्टलिंग की पूजा में लगे रहते हैं। हे देवि ! ये सदा शिव की आराधना में निरत रहते हैं। इसलिये मुझे ये बहुत प्रिय हैं।।६-७।। हे महादेवि ! ये ही शुद्धशैव कहलाते हैं। ये जब गृहणियों से संयुक्त हो जाते हैं, तो गृहस्थ कहलाते है।

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वंश में उत्पन्न शैव मिश्रशैव कहलाते हैं।।८।। ये मिश्र-शैव सुशील, आचारसंपन्न, शीलसंपन्न, इष्टलिंगधारी, लिंगपूजा में निरत और सदा अन्नदान करते रहते हैं।।९।। हे शिवे ! अन्य देवताओं का भी ये नमन करते हैं, तीर्थयात्रा आदि धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करते हैं, अपने-अपने कुलाचार का पालन करते हैं और गुरु के प्रति भक्तिभाव रखते हैं।।१०।। शूद्र आदि वर्णों के अन्तर्गत वे जिस जाति

शूद्रादिभेदजातीनां जातिकर्मानुवर्तिनः ।
एते वै मिश्रशैवाश्च मिश्रकर्मसमायुताः ॥११॥

मार्गशैवलक्षणम्

मार्गशैवान् प्रवक्ष्यामि समासाच्छृणु पार्वति ।
पुत्रमित्रकलत्रादिसहिता विभवान्विताः ॥१२॥
द्विधैवाराधनपरा राजानो लिङ्गिनः परे ।
रक्षणं सर्ववर्णानां युद्धे शत्रुवधस्तथा ॥१३॥
दुष्टपक्षिमृगाणां च दुष्टानां शासनं नृणाम् ।
अविश्वासश्च सर्वत्र विश्वासः शिवयोगिषु ॥१४॥
स्त्रीसंसर्गादिकालेषु चमूरक्षणमेव च ।
सदा सञ्चारितैश्चारैर्लोकवृत्तान्तवेदनम् ॥१५॥
सदाऽस्त्रभरणं चैव भस्मकञ्चुकधारणम् ।
गजाश्वारोहणं देवि देवब्राह्मणपूजनम् ॥१६॥
दानानि शिवभक्तेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ।
राज्ञां शिवागमस्थानामेष धर्मः सनातनः ॥१७॥

के हैं, तदनुसार अपना जीवन यापन करते हैं। इस तरह से मिश्र कर्म, अर्थात् सभी देवताओं की उपासना करने के कारण ये मिश्रशैव कहलाते हैं।।११।।

हे पार्वति ! अब मैं संक्षेप में मार्गशैवों का वर्णन करूँगा, उसे तुम सुनो ! ये अपने पुत्र, मित्र, कलत्र (पत्नी) आदि के साथ रहते हैं और वैभव-सम्पन्न होते हैं।।१२।। ये दोनों प्रकार की आराधना करते हैं, इष्टलिंग धारण करते हैं। राजाओं का भी इन्हीं में समावेश किया जाता है। सभी वर्णों की रक्षा करना और युद्ध में शत्रु का वध करना इनका कर्तव्य है।।१३।। दुष्ट पक्षी, मृग और दुष्ट मनुष्यों से प्रजा की रक्षा करना, उनका अनुशासन करना, केवल शिवयोगियों के सिवाय अन्य किसी पर विश्वास न करना इनके लिये आवश्यक है।।१४।। स्त्रियों के साथ संसर्ग रखते समय भी अपनी सुरक्षा के लिये सेना की व्यवस्था करना और चारों तरफ भेजे गये जासूसों से सदा लोक-वृत्तान्त को जानना इनके लिये आवश्यक है।।१५।। हे देवि ! ये सदा अस्त्र धारण किये रहते हैं, भस्म लगाते हैं, कंचुक धारण करते हैं, हाथी, घोड़ा आदि की सवारी करते हैं और देवताओं की तथा ब्राह्मणों की पूजा करते हैं।।१६।। शिवभक्तों को और विशेष रूप से ब्राह्मणों को ये दान देते हैं। शिवागमों का अनुसरण करने वाले राजाओं के ये सदा पालनीय धर्म हैं।।१७।। मार्गशैवों में बहुत से शैव भक्त वीरशैव धर्म के अनुसार आचरण

बहवो मार्गशैवाश्च वीरशैवानुवर्तिनः ।
शैवभेदेषु चान्येषु वीरशैवोत्तमोत्तमाः ।।१८।।
तत्रापि बहवो देवि भेदाः सन्ति निशामय ।
केचिद्यजन्त्यन्यदेवं केचिन्नेच्छन्ति पार्वति ।।१९।।
केचिद्विवाहमिच्छन्ति केचिन्नेच्छन्ति शैलजे ।
स्त्रियस्तु लिङ्गधारिण्यः पुरुषा विष्णुसेवकाः ।।२०।।
पुरुषा लिङ्गिनः केचिद्वैष्णव्यस्तु स्त्रियस्तथा ।
तयोरहं [1]गतिश्चैव [2]मत्प्रीतिरुभयोः समा ।।२१।।

अवान्तरादिशैवलक्षणम्

शिरो मुण्डं मुखे मन्त्रः कण्ठे रुद्राक्षधारणम् ।
काषायाम्बरधारी च भस्मोद्धूलनसंयुतः ।।२२।।
लिङ्गपूजा सदा देवि ते चैवान्तरशैविनः ।
अलिङ्गिस्पृष्टमन्नं तु[3] भुञ्जन्ते लिङ्गधारिणः ।।२३।।
जलपानं तु सर्वत्र महाशैवा हि पार्वति ।
लिङ्गार्चनं सदा देवि भस्मरुद्राक्षधारिणः ।।२४।।

करते हैं। अन्य प्रकार के शैवों में वीरशैव ही सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।।१८।। हे देवि ! उनमें भी बहुत से भेद हैं, तुम उनको सुनो। हे पार्वति ! इनमें से कुछ अन्य देवताओं की पूजा करते हैं, अन्य ऐसा नहीं करते।।१९।। हे शैलजे ! इनमें से कुछ लोग विवाह करते हैं, अन्य नहीं करते। इनमें ऐसा भी होता है कि स्त्रियाँ तो इष्टलिंग धारण करती हैं और पुरुष विष्णु के उपासक होते हैं।।२०।। इसके विपरीत ऐसे भी परिवार हैं, जहाँ पुरुष इष्टलिंगधारी और स्त्रियाँ वैष्णव धर्म का अनुवर्तन करती हैं। शिव और विष्णु— इन दोनों के उपासकों का मैं ही उद्धार करता हूँ, क्योंकि दोनों के प्रति मेरी समान प्रीति है।।२१।।

जिनका सिर मुंड़ा हुआ रहता है, मुख से पंचाक्षर मन्त्र का जप करते हैं, कण्ठ में रुद्राक्ष धारण करते हैं, काषाय वस्त्र पहनते हैं और शरीर पर भस्म-लेपन करते हैं। हे देवि ! जो सदा लिंगपूजा करते हैं, ऐसे व्यक्ति अवान्तरशैव कहलाते हैं।।२२-२३।। लिंगधारी होते हुए भी अलिंगी के द्वारा स्पृष्ट अन्न का भी भोजन कर लेते हैं। हे पार्वति ! जो सब किसी का जल ग्रहण कर लेते हैं, वे महाशैव कहलाते हैं।।२३-२४।। हे देवि !

१ गत-क. ख.। २. सत्-कं. ख.। ३. च-घ. ङ.।

षडक्षरजप[1]स्तेषां ह्यनुशैवाः प्रकीर्तिताः ।
नापिता रजका वेश्याः कुलालास्तिलघातकाः ॥ २५ ॥
वैश्याद्याश्चान्त्यजात्यन्तास्ते चैवान्तरशैविनः ।

तुर्य(वीर)शैवलक्षणम्

[2]किमत्र बहुनोक्तेन तुर्यवीरोत्तमोत्तमाः ॥ २६ ॥
विरक्ताश्च विरागाश्च ते सर्वे वीरशैविनः ।
ज्ञानिनः कामरहिता नित्यं भिक्षान्नजीविनः ॥ २७ ॥
ये चरन्ति सदा देवि ते वै चरगणाः स्मृताः ।
विरक्ता ज्ञानसम्पन्नाः सुशीलाचारशीलिनः[3] ॥ २८ ॥
ते विरक्ताः समाख्याता लिङ्गिनः सङ्गवर्जिताः ।

शैवतत्त्ववर्णनम्

अथ वक्ष्यामि गिरिजे शैवतत्त्वानि वै शृणु ॥ २९ ॥
पञ्चभूतानि तन्मात्राः पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च ।
ज्ञानकर्मविभागेन पञ्च पञ्च विभागशः[4] ॥ ३० ॥

जो सदा लिंग की पूजा करते हैं, भस्म और रुद्राक्ष धारण करते हैं, षडक्षर मन्त्र का जप करते हैं, वे अनुशैव कहलाते हैं।।२४-२५।। नापित (नाई), रजक (धोबी), वेश्या, कुलाल (कुम्हार), तेली, वैश्य, शूद्र, अतिशूद्र— ये सब अवान्तर शैव कहलाते हैं।।२५-२६।।

इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है कि शैवों में जो सर्वोत्तम हैं, विरक्त हैं, राग-द्वेष से रहित हैं, उन सबकी वीरशैवों में गणना होती है।।२६-२७।। हे देवि ! ज्ञानी, सभी प्रकार की कामनाओं से वर्जित, सदा भिक्षा से प्राप्त अन्न से जीवन-यापन कर सर्वत्र भ्रमण करने वाले शिवभक्त चरगण. (चरजंगम) कहलाते हैं।।२७-२८।। वैराग्यसम्पन्न, ज्ञानसम्पन्न, सुशील, आचार से समन्वित सभी प्रकार के संग से वर्जित इष्टलिंगधारी विरक्त कहलाते हैं।।२८-२९।।

हे गिरिजे ! अब मैं तुमको शैव आगमों में वर्णित तत्त्वों को बताता हूँ, उन्हें तुम सुनो। हे शिवे ! पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश), गन्ध, रस, रूप,

---

१. जपं तेषां-क. ग. घ. ङ.। २. किमत्रेति पङ्क्तिद्वयं ज्ञानिन इति पङ्क्त्यनन्तरं विद्यते- ग. घ.। ३. शालिनः-क.। ४. गतः-ख.।

त्वगादिधातवः सप्त पञ्च प्राणादिवायवः ।
मनश्चाहङ्कृतिः ख्यातिर्गुणाः प्रकृतिपूरुषाः ।। ३१ ।।
रागोऽविद्या कला चैव नियतिः काल एव च ।
माया च शुद्धविद्या च महेश्वरसदाशिवौ ।। ३२ ।।
शक्तिश्च शिवतत्त्वानि प्रोक्तानि क्रमशः शिवे ।

विरक्तशैवानां दश गुणाः

क्षमा शान्तिश्च सन्तोषः सत्यमस्तेय एव च ।। ३३ ।।
ब्रह्मचर्यं शिवज्ञानं वैराग्यं भस्मसेवनम् ।
सर्व[१]सङ्गनिवृत्तिश्च दशैतानि विशेषतः ।। ३४ ।।
विरक्तानां च सर्वेषां विधिरेष उदाहृतः ।

श्रीदेव्युवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि शिवाश्रमनिषेविणाम् ।
शिवशास्त्रोदितं कर्म नित्यं नैमित्तिकं शिव ।। ३५ ।।

स्पर्श और शब्द नामक पाँच तन्मात्रा, ज्ञान और कर्म के विभाग से पाँच-पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (घ्राण, जिह्वा, नेत्र, श्रोत्र, स्पर्श) और (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ) कर्मेन्द्रियाँ; त्वक्, असृक् (रक्त), मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र नामक सात धातुएं, प्राण आदि पाँच वायु, मन, अहंकार, ख्याति (बुद्धि), त्रिगुण (सत्त्व आदि), प्रकृति, पुरुष, राग, अविद्या, कला, नियति, काल, माया, शुद्धविद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव— ये ही सब ३६ तत्त्व के नाम से आगमों में वर्णित हैं।।२९-३३।।

क्षमा, शान्ति, संतोष, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, शिवज्ञान, वैराग्य, भस्मसेवन और सभी प्रकार की आसक्ति की निवृत्ति— ये दस गुण विशेष रूप से विरक्तों के लिये विधि के रूप में शास्त्रों में वर्णित हैं।।३३-३४।।

देवी का प्रश्न

हे शिव ! हे भगवन् ! मैं शिवाश्रम धर्म का पालन करने वाले शिवभक्तों के लिये शैव शास्त्रों में वर्णित नित्य और नैमित्तिक कर्मों का स्वरूप सुनना चाहती हूँ।।३५।।

---

१. कर्म-ख.।

ईश्वर उवाच

शैवानामाह्निकम्

[1]प्रातरुत्थाय शयनाद् ध्यात्वा देवं सहाम्बया ।। ३६ ।।
विचार्य कार्यं निर्गच्छेद्[१] मठादभ्युदितेऽरुणे ।
अबाधे विजने देशे [२]कुर्यादावश्यकं च तत्[३] ।। ३७ ।।
कृत्वा शौचं विधानेन दन्तधावनमाचरेत् ।
अलाभे दन्तकाष्ठानां जम्बुनिम्बाम्रपल्लवैः ।। ३८ ।।
कुर्याद् द्वादशगण्डूषैरपामार्गविशोधनम् ।
मुखमाकर्णपर्यन्तं हस्तयोररत्निमात्रकम् ।। ३९ ।।
पादमाजानुपर्यन्तं मुखप्रक्षालनं स्मृतम् ।

स्नानविधानम्

अत्यन्तमलिने देहे [४]वारुणं स्नानमाचरेत् ।। ४० ।।

ईश्वर का उत्तर

प्रातःकाल शयन से उठ कर अम्बा पार्वती के साथ भगवान् शिव का ध्यान कर दिन भर के करणीय कार्यों पर विचार करते हुए अरुणोदय वेला में घर से निकल कर किसी प्रकार की बाधा से रहित एकान्त स्थान में जाकर आवश्यक दैनन्दिन कार्य, मल-मूत्र आदि का विसर्जन करे।।३६-३७।।

विधिपूर्वक अपने अंगों की शुद्धि कर दतुअन करे। दतुअन के न मिलने पर जामुन, नीब या आम्रपल्लव से दाँतों को साफ करे। बारह बार कुल्ले करने चाहिये। अपामार्ग (चिचिड़ा) से भी दाँतों को साफ किया जा सकता है। कान तक पूरे मुँह को और कोहनी तक हाथों को धोना चाहिये। साथ ही घुटनों तक पैरों को भी धोना चाहिये। यह सब मुख-प्रक्षालन के अन्तर्गत आता है।।३८-४०।।

यह देह अत्यन्त मलिन माना गया है। इसकी शुद्धि के लिये नदी में, देवखात

---

१. च्छेद् गृहा-क.। २. कुर्यान्मलविसर्जनम्-कटि.। ३. तथा-ख., ततः-ग. घ.। ४. वारिणा-ख.।

1. "प्रातःकृत्यमुक्तं शाङ्करसंहितान्तर्गतायां वीरमाहेश्वरप्रशंसायां द्व्यशीतितमाध्याये,शैवे विद्येश्वरसंहितायां त्रयोदशाध्याये, वायुसंहितायामुत्तरभागेऽष्टादशाध्याये, कौर्मे उत्तरभागेऽष्टादशाध्याये, दक्षस्मृतौ द्वितीयपञ्चमाध्याययोः, गारुडे पञ्चाधिकद्विशततमाध्याये, लघुव्याससंहितायां प्रथमाध्याये" इति ख. टिप्पणी (पृ. २२३)।

नद्यां वा देवखाते वा ह्रदे वाथ मठेऽपि वा ।
आर्द्रवस्त्रेण वा भस्मस्नानमीश्वरचिन्तनम् ।। ४१।।
पूर्ववस्त्रं परित्यज्य शुद्धवस्त्रं धरेत् पुनः[१] ।
अथ चेद् वारुणं कर्तुमशक्तः शुद्धवाससा ।। ४२।।
आर्द्रेण शोधयेद् देहमापादतलमस्तकम् ।
शिवचिन्तापरं स्नानं [२]यत्तत् स्वात्मीयमुच्यते ।। ४३।।

भस्मनिर्माणविधिः

शिवाग्निभस्म [३]संग्राह्यं पशूत्थं शुचि गन्धि च ।
कपिलायाः शकृत् शस्तं गृहीतं गगने पतत् ।। ४४।।
न क्लिन्नं नातिकठिनं न दुर्गन्धं न [४]चोषितम् ।
उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात् पतितं शिवे ।। ४५।।

(स्वाभाविक) ह्रद में अथवा मठ में निर्मित कूप से जल निकाल कर स्नान करे। गीले कपड़े से शरीर पोंछ कर अथवा भस्म लगाकर ईश्वर का चिन्तन करना चाहिये।।४०-४१।। पूर्व वस्त्र का परित्याग कर पुनः शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये। यदि जल-स्नान करने में कोई असमर्थ है, तो वह शुद्ध गीले वस्त्र से पैर से लेकर सिर तक के सारे अंग को शोधित करे, गीले वस्त्र से सारे शरीर को पोंछ ले। शिव का ध्यान करने से अपनी जो शुद्धि होती है, उसे [1]आध्यात्मिक स्नान कहते हैं।।४२-४३।।

भस्म-स्नान के लिये [2]शिवाग्नि से बनी भस्म ली जाती है। यह गाय के पवित्र गन्धयुक्त गोबर से, विशेष रूप से कपिला गौ के गोबर को उसके जमीन पर गिरने से पहले ही ग्रहण कर बनाई जाती है।।४४।। हे शिवे ! जमीन पर गिरे हुए गोबर को उसी अवस्था में ग्रहण किया जाता है, जब कि वह बहुत गीला या कठोर न हो, दुर्गन्ध से भरा या बासी न हो। इसको ग्रहण करते समय ऊपर के और नीचे के भी कुछ भाग को छोड़कर ग्रहण करना चाहिये।।४५।। उस गोमय का गोला बनाकर उस गोले

१. ततः-ख. ग. ङ.। २. यस्य-ख. ग. घ.। ३. संगृह्य-घ.। ४. शोषि-ख.।

1. शास्त्रों में षड्विध अथवा सप्तविध स्नान का निरूपण मिलता है। देखिये— कूर्मपुराण (२.१८.१०-१६) तथा विज्ञानभैरव, (पृ. १३४)।
2. सिद्धान्तशिखामणि (७.३) से तुलना कीजिये।

पिण्डीकृत्य शिवाग्न्यादौ तत्क्षिपेन्मूलमन्त्रतः ।
अपक्वमतिपक्वं च संत्यज्य भसितं सितम् ।। ४६ ।।
आदाय वाससाऽऽलोड्य भस्म देवि विनिक्षिपेत् ।
सुकृते सुदृढे शुद्धे क्षालिते प्रोक्षिते शुभे ।। ४७ ।।
[1]विन्यस्य[2] मूलमन्त्रेण पात्रे भस्म विनिक्षिपेत् ।
तैजसं दारवं वापि मृण्मयं मेनकात्मजे ।। ४८ ।।
अन्यद् वा शोभनं शुद्धं भस्मपात्रं प्रकल्पयेत् ।
क्षेमे देशे शुभे शुद्धे धनवद्भस्म निक्षिपेत् ।। ४९ ।।
[3]प्रस्थितो भस्म गृह्णीयात् स्वयं वानुचरोऽपि वा ।
न चायुक्तकरे दद्यान्नैवाशुचिकरे क्षिपेत् ।। ५० ।।
न च स्पृशेत नीचाङ्गैर्नोपेक्षेत न लङ्घयेत् ।
एवं शिवागमरतो भस्मसाधनमाचरेत् ।। ५१ ।।

को मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये शिवाग्नि में जलाना चाहिये। पूरी तरह से न पके हुए अथवा जरूरत से ज्यादा पके हुए गोले को हटाकर बाकी बचे गोलों से सफेद (स्वच्छ) भस्म तैयार करनी चाहिये।।४६।। हे देवि ! उस भस्म को लेकर, वस्त्र से छान कर भली भाँति बनाये गये, मजबूत, शुद्ध, धोकर भली-भाँति पोंछे गये शुभ पात्र में मूल मन्त्र के उच्चारण के साथ भरकर रखे।।४७-४८।। हे मेनका की पुत्री पार्वति ! यह पात्र धातु का, लकड़ी का अथवा मिट्टी का बना होना चाहिये। सुन्दर और शुद्ध अन्य किसी वस्तु का भी यह भस्म-पात्र हो सकता है। इस भस्म-पात्र में कल्याणदायक शुभ स्थल पर धन के समान इस भस्म को भरकर रखे।।४८-४९।। कहीं जाना हो तो इस भस्म को या तो स्वयं ग्रहण करे अथवा किसी योग्य अनुचर के हाथ इसे अपने साथ ले जाय। अयोग्य व्यक्ति के हाथ में अथवा अपवित्र हाथ में इसे कभी न रखे।।५०।। नाभि के नीचे के पैर आदि अंगों से इसका स्पर्श न करे, इसकी उपेक्षा न करे और न इस भस्म को लाँघे ही। शिवागम पर श्रद्धा रखने वाला इस तरह से भस्म तैयार करे।।५१।। भस्म लगाते समय उस पात्र में से भस्म को अपने

---

१. 'तैजसं......विन्यस्य' इति पङ्क्तिक्रमः ग. घ.। २. विन्यसेत्-घ.। ३. श्लोकयोः (५०-५१) विपर्यस्तः क्रमः-क.।

भस्मधारणविधिः

सकलीकृत्य तद्भस्म शिवपञ्चाक्षरं जपेत् ।
अग्निरित्यादिकैर्मन्त्रैः षड्भिराथर्वणोदितैः ॥५२॥
क्रमात् प्रमृज्य चाङ्गानि मूर्धादिचरणावधि ।
ततः पूर्वक्रमेणैव समुद्धूत्य च भस्मना ॥५३॥
सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्यात् प्रणवेन शिवेन वा ।
[1]ततस्त्रिपुण्ड्रं देवेशि [१]रचयेन्मूलमन्त्रतः ॥५४॥
शिवभावं समभ्येत्य शिवयोगमथाचरेत् ।
कृत्यमित्येव निष्कामो यश्चरेद् वीरशैवकः ॥५५॥
शिवार्पितात्मा सततं न तेन सदृशः क्वचित् ।

भस्ममहिमा

भस्मच्छन्नः स एवाहं महापातकवानपि[२] ॥५६॥

हाथ में लेकर शिव पंचाक्षर मन्त्र का और [2]'अग्निरिति भस्म' इत्यादि छः आथर्वण मन्त्रों का उच्चारण करते हुए क्रमशः मस्तक से लेकर चरण पर्यन्त भस्म का लेपन करे। इसके बाद मस्तक से चरण पर्यन्त क्रम से ही [3]भस्म-उद्धूलन विधि को सम्पन्न करे।।५२-५३।। हे देवेशि ! पूरे शरीर पर भस्म का उद्धूलन प्रणव अथवा शिवमन्त्र से करना चाहिये। इसके बाद मूल मन्त्र से भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये।।५४।। शिवभाव को प्राप्त कर तब शिवयोग का अभ्यास करना चाहिये। यह मेरा कर्तव्य है, इस प्रकार की निष्काम भावना से प्रेरित हो, जो वीरशैव शिवभक्त अपने को शिव को समर्पित कर इसका निरन्तर अनुष्ठान करता है, उसके समान यहाँ कोई नहीं है।।५५-५६।।

---

१. अर्च-घ.। २. किकोऽपि वा-ख. ग. घ. ङ.।

1. "भस्मत्रिपुण्ड्रधारणविधिः सम्यगुक्तो बृहज्जाबाल-कालाग्निरुद्र-भस्मजाबालोपनिषत्सु, शैवे च विद्येश्वरसंहितायां चतुर्विंशाध्याये" इति ख. टिप्पणी (पृ. २२४)।
2. "अग्निरिति भस्म। वायुरिति भस्म। जलमिति भस्म। स्थलमिति भस्म। व्योम इति भस्म। सर्वं वा इदं भस्म" (भस्मजाबालोपनिषद् १.३)।
3. भस्मधारण की तीन विधियाँ हैं— भस्मस्नान, भस्मोद्धूलन और त्रिपुण्ड्रधारण। भस्मस्नान में वाम हस्त पर भस्म लेकर उसे दाहिने हाथ से चुटकी के सहारे मस्तक से लेकर शरीर के विभिन्न अंगों पर डाला जाता है। उद्धूलन में शरीर के विभिन्न अंगों पर पड़े भस्म-कणों को वहीं मला जाता है। त्रिपुण्ड्र धारण की विधि तो सर्वत्र प्रसिद्ध है।

पापैर्विमुच्यते सद्यो मुच्यते च भवार्णवात् ।
रुद्राग्नेर्यत्परं वीर्यं तद्भस्म परिकीर्तितम् ।।५७।।
तस्मात् सर्वेषु कालेषु वीर्यवान् भस्मसंयुतः ।
भस्मसंन्दिग्धसर्वाङ्गो भस्मदीप्तत्रिपुण्ड्रकः ।।५८।।
भस्मशायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः ।
भूतप्रेतपिशाचाद्या रोगाश्चातीव दुःसहाः ।।५९।।
भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याद् विद्रवन्ति दिशो दश ।
[1]भसनाद्भसितं प्रोक्तं भस्म कल्मषभक्षणात् ।।६०।।
भूतिर्भूतिकरी यस्माद् रक्षा रक्षाकरी यतः ।
किमत्र बहुनोक्तेन भस्ममाहात्म्यकारणात् ।।६१।।
व्रती च भस्मना स्नाति सोऽहमेव न संशयः ।
परमास्त्रं च देवानां भस्मैतदहमेव हि ।।६२।।

भस्म में लिपटा हुआ वह शिवभक्त साक्षात् शिवस्वरूप ही है। महापातकी होते हुए भी वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है और तत्काल भवसागर से मुक्त हो जाता है।।५६-५७।। रुद्राग्नि का जो श्रेष्ठ वीर्य है, वही भस्म के नाम से जाना जाता है। इसलिये सभी कालों में भस्म से संयुक्त व्यक्ति वीर्यवान् हो जाता है।।५७-५८।। जिसके सारे अंग भस्म से सुशोभित हैं, भस्म का स्वच्छ त्रिपुण्ड्र जिसने धारण कर रखा है, जो सदा भस्म पर ही शयन करता है, ऐसा पुरुष भस्मनिष्ठ कहलाता है।।५८-५९।। भूत, प्रेत, पिशाच आदि तथा अत्यन्त दुर्निवार रोग भी ऐसे भस्मनिष्ठ पुरुष के पास से दसों दिशाओं में भाग खड़े होते हैं।।५९-६०।। यह व्यक्ति को तेजस्वी बनाती है, अतः इसे भसित कहते हैं, पाप का भक्षण कर लेने से भस्म, ऐश्वर्य देने के कारण भूति और रक्षा करने के कारण इसे रक्षा कहा जाता है।।६०-६१।। इस विषय में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। यह इस भस्म की ही महिमा है कि शैव व्रत का पालन करने वाला जो भी व्यक्ति भस्म से स्नान करता है, वह निःसन्देह साक्षात् शिव हो जाता है। यह भस्म देवताओं का श्रेष्ठ अस्त्र है, यह मेरा ही स्वरूप है।।६१-६२।।

---

1. सिद्धान्तशिखामणि (७.४-६) से तुलना कीजिये।

रुद्राक्षमालाधारणम्

रुद्राक्षमालाभरणो भाले भस्मत्रिपुण्ड्रकम् ।
मुखे मन्त्रो गले लिङ्गं वीरमाहेश्वरः शिवः ।। ६३ ।।
जटी मुण्डी शिखी वापि कीर्णकेशो दिगम्बरः ।
भाले भस्म गले लिङ्गं रुद्राक्षाभरणान्वितः ।। ६४ ।।
शिवपञ्चाक्षरीयुक्तः सोऽहमेव महेश्वरि ।
वशी काषायवसनो निर्लज्जश्च दिगम्बरः ।। ६५ ।।
वल्कली वा भवेद् दण्डी कुण्डी कौपीनपात्रवान् ।
यत्र यत्र मनो याति स तत्र विहरेत् सुखम् ।। ६६ ।।

पाणाविष्टलिङ्गपूजनम्

यत्र यत्र मनो रम्यमठे वा मण्डपेऽपि वा ।
वने वा सुसुखासीनः शुद्धवस्त्रसमावृतः ।। ६७ ।।
[1]पाणौ लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य पाणिमन्त्रेण मन्त्रितम् ।
लिङ्गं शुद्धजलैः स्नाप्य शिवपञ्चाक्षरं जपेत् ।। ६८ ।।

गले में रुद्राक्ष की माला को धारण करने वाला, ललाट पर त्रिपुण्ड्र लगाने वाला, मुख में शिव-मन्त्र और गले में इष्टलिंग को धारण करने वाला वीर माहेश्वर साक्षात् शिव ही है।।६३।। हे महेश्वरि ! जटा रखने वाला, मुण्डित-मस्तक अथवा शिखाधारी हो, बालों को फैलाकर दिगम्बर के रूप में सर्वत्र भ्रमण करता हो, ललाट पर भस्म और गले में इष्टलिंग धारण किये हो, रुद्राक्ष की माला को ही आभूषण मान कर उनको पहने हुए हो, ऐसा पंचाक्षरी मन्त्र का जप करने वाला वीर माहेश्वर साक्षात् शिव ही बन जाता है।।६४-६५।। अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाला, काषाय वस्त्र धारण करने वाला, निर्लज्ज, दिगम्बर, वल्कल वस्त्र धारण करने वाला, दंड-कमण्डलु-पात्र और कौपीन धारी वीरशैव जहाँ-जहाँ भी उसका मन दौड़ कर जाता हो, वहाँ-वहाँ सुखपूर्वक विहार करे।।६५-६६।।

जहाँ कहीं भी मनोरम मठ में, मण्डप में अथवा वन में समुचित सुखासन से बैठ कर, शुद्ध वस्त्र पहने हुए वह वीरशैव अपने पाणिपीठ पर इष्टलिंग को स्थापित कर उसे पाणिमन्त्र से अभिमन्त्रित कर शुद्ध जल से स्नान कराकर शिव पंचाक्षर मन्त्र का जप करे।।६७-६८।। अपने हाथ में ही उसको पद्म की भावना करनी चाहिये

1. "लैङ्गे उत्तरभागे एकविंशतितमाध्याये— "पाणौ लिङ्गं विनिक्षिप्य दीक्षाकाले गुरुः शिवम्। येन स्तुवति तं मन्त्रं पाणिमन्त्रं वदन्ति हि।।" इत्यभिहितम्" इति ख टिप्पणी (पृ. २२५)।

हस्ते पद्मं च सम्भाव्य तन्मध्ये पूजयेच्छिवम् ।
देवीं च लिङ्गनाले तु ध्यात्वा पुष्पाक्षतादिभिः ॥ ६९ ॥
पूजयेद् योगवान् सम्यक् षोडशैरुपचारकैः ।
पूर्वोक्तेनैव सम्पूज्य क्षीरतोया[१]शनैरपि ॥ ७० ॥
निवेद्य भक्तिसंयुक्तो[२] विरक्तो[३] वीरशैवकः[४] ।
त्रियम्बकेन मन्त्रेण धारयेद् भक्तिपूर्वकम् ॥ ७१ ॥

विरक्तस्य भिक्षाटनविधानम्

एवं पूजां च निर्वर्त्य भिक्षाटनमथाचरेत् ।
भिक्षाहारी निराहारी भिक्षान्नं न प्रतिग्रहः ॥ ७२ ॥
नित्यं भिक्षान्नभोजी च ह्युपवासफलं लभेत् ।
प्रत्यहं चन्द्रवारे वा कन्थादण्डसमन्वितः ॥ ७३ ॥
[५]घण्टो वा जयघण्टो वा दण्डघण्टादिसंयुतः ।
प्रेरयित्वा रवैर्भक्तं येन केनापि शब्दतः ॥ ७४ ॥

और उस हस्त-पद्म के बीच में शिव का पूजन करना चाहिये। इष्टलिंग की नाल (नाभि) में देवी का ध्यान कर योगाभ्यास में निपुण वीरशैव वहीं उनकी पुष्प, अक्षत आदि षोडश उपचारों से पूर्व प्रदर्शित पद्धति से पूजा कर दुग्ध, जल आदि का भक्तिपूर्वक नैवेद्य समर्पित कर मन को वैराग्य से परिपूर्ण बना लेना चाहिये। वीरशैव को चाहिये कि इस प्रकार से इष्टलिंग की पूजा कर लेने के उपरान्त उसे 'त्र्यम्बक'[1] मन्त्र से भक्तिपूर्वक पुनः धारण कर ले।।६९-७१।।

इस तरह से इष्टलिंग की पूजा कर लेने के उपरान्त वह भिक्षा माँगने के लिये निकले। भिक्षा का आहार करने वाला निराहारी (उपवासी) माना जाता है। भिक्षा का अन्न ग्रहण करने में प्रतिग्रह का दोष नहीं लगता।।७२।। प्रतिदिन भिक्षा में मिले अन्न का भोजन करने वाला उपवास के फल को पाता है। प्रतिदिन अथवा सोमवार के दिन कन्था और दण्ड को धारण कर घंटा, जयघंटा अथवा अपने दंड में बंधी घंटी को ही बजाता हुआ वह विरक्त वीरशैव भिक्षा देने के लिये जिन किन्ही भी शब्दों के द्वारा गृहस्थ को अपनी ओर आकृष्ट करे।।७३-७४।। गृहस्थ वीरशैव-भक्त विरक्त को अपने

---

१. तोयैः शनै-क.। २. क्ता-क. घ. ङ.। ३. क्त्या-क., क्ता-ङ.। ४. शैविनः-क. घ. ङ.। ५. श्लोकयोः (७४-७५) विपर्यस्तः क्रमः-ग. घ.।

1. "त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।।" (तै. सं. १.८.६.२)।

विरक्तमागतं ज्ञात्वा गृही चान्नजलादिभिः ।
नमस्कृत्वादराद् दद्याच्छिव एवागतः स्वयम् ॥ ७५ ॥
तस्यान्नं भक्तिसंयुक्तो दद्याच्छङ्कररूपिणः ।
एवं पूर्वाह्णकाले तु विचरेद् वीरशैवकः ॥ ७६ ॥

देहपातान्तं वीरशैव एवमाचरेत्

वीरशैवमतं देवि देहपातान्तमाचरेत् ।
कृत्यमित्येव निष्कामो यश्चरेद् वीरशैवकः ॥ ७७ ॥
ममार्पितात्मा सततं न तेन सदृशः क्वचित् ।
दिवा भिक्षाशनं चैव सदा लिङ्गार्चनं तथा ॥ ७८ ॥
वीरमाहेश्वराणां तु हीदमेव विशिष्यते ।
सायाह्ने लिङ्गपूजा तु[१] शिवपञ्चाक्षरीजपः ॥ ७९ ॥
शिवलीलाकथालापः स वै माहेश्वरोत्तमः[२] ।

वीरमाहेश्वराणां पञ्चयज्ञाः

[1]शिवार्थं देहसंशोषस्तपः कृच्छादि नो मतम् ॥ ८० ॥

यहाँ आया हुआ जान कर अन्न, जल आदि देकर उसे सन्तुष्ट करे, साक्षात् शिव ही मेरे घर पर आ गये हैं, यह मान कर आदरपूर्वक उसे प्रणाम करे और शिवस्वरूप उस विरक्त को भक्तिपूर्वक भिक्षा दे। विरक्त वीरशैव को पूर्वाह्ण में यही सब करना चाहिये।।७५-७६।।

हे देवि ! इस वीरशैव व्रत का पालन वह देहपात पर्यन्त करे। यह तो मुझे करते ही रहना है, इस कर्तव्य-बुद्धि से निष्काम भावना से जो मुझे सदा सब कुछ समर्पित कर देता है, उसके समान दूसरा कोई नहीं है।।७७-७८।। दिन में भिक्षा माँग कर भोजन करना, सदा इष्टलिंग की सेवा में तत्पर रहना, ये ही दो बातें विरक्त वीरशैवों के लिये विशेष रूप से शास्त्रों में निर्दिष्ट हैं।।७८-७९।। सायंकाल इष्टलिंग की पूजा करने वाला, शिव के पंचाक्षरी मन्त्र का जप करने वाला तथा शिव की लीलाओं की और कथाओं की ही परस्पर के वार्तालाप में चर्चा करने वाला उत्तम माहेश्वर कहलाता है।।७९-८०।।

---

१. च-ग. घ. ङ.। २. जनः-ग. घ.।

1. शिवपुराण वायवीयसंहिता (१.३२.३) तथा सिद्धान्तशिखामणि (९.२२-२४) से तुलनीय।

शिवार्चा कर्म विज्ञेयं बाह्यं यागादि नोच्यते ।
जपः पञ्चाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव वा ॥८१॥
रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न चान्याध्ययनादिकम् ।
ध्यानं शिवस्य रूपादिचिन्ता नात्मादिचिन्तनम् ॥८२॥

वीरमाहेश्वराणामष्टौ लक्षणानि

य एवं वर्तते योगी स वै माहेश्वरोत्तमः ।
अष्टधा लक्षणं देवि शिवधर्माधिकारिणः ॥८३॥
शिवभक्तेषु वात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम् ।
स्वयमभ्यर्चनं चैव तदर्थं चाङ्गचेष्टनम् ॥८४॥
तत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्राङ्गविक्रियाः ।
शिवानुस्मरणं नित्यं सर्वदा तदकैतवम् ॥८५॥

शिव के कार्य के लिये देह को कष्ट देना ही तप कहलाता है, कृच्छ्र आदि व्रतों का पालन करना नहीं। इष्टलिंग की पूजा ही वास्तव में कर्म है, यज्ञ–याग आदि बाह्य कर्मों का अनुष्ठान नहीं।।८०–८१।। पंचाक्षर मन्त्र का अभ्यास, प्रणव मन्त्र का अभ्यास, रुद्राध्याय आदि का अभ्यास ही वास्तविक जप है, वेद आदि अन्य ग्रन्थों का अध्ययन नहीं। शिव के स्वरूप आदि का चिन्तन करना ही वास्तविक ध्यान है, आत्मस्वरूप का चिन्तन नहीं।।८१–८२।।

जो शिवयोगी इस प्रकार का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ माहेश्वर कहलाता है। हे देवि ! शिवधर्म के इस तरह के योग्य अधिकारी के शास्त्रों में आठ लक्षण बताये गये हैं— शिव के भक्तों के प्रति वात्सल्य भाव प्रदर्शित करना, शिव की पूजा करने वालों को प्रोत्साहित करना, स्वयं पूजा करना, पूजा के लिये पत्र–पुष्प आदि संभार को एकत्र करने के लिये शारीरिक परिश्रम करना, शिव–संबन्धी कथाओं का श्रवण भक्तिभाव से करना, भक्ति के आवेग में स्वर, नेत्र और अन्य समस्त अंगों में कम्पन, अश्रुपात, रोमांच आदि के रूप में विकार उत्पन्न होना, सदा शिव का स्मरण करते रहना और कपट वृत्ति का सबके प्रति सदा के लिये त्याग।।८३–८५।।

एवंलक्षणो म्लेच्छोऽपि मम प्रियः

एतदष्टगुणं चिह्नं यस्मिन् म्लेच्छेऽपि दृश्यते ।
स एवातिप्रियो भक्तो मम योगी स एव हि ।।८६।।
इति ते कथितं देवि कार्यं कर्मानुवर्तिनाम् ।
शिवाश्रमयुतानां च लिंक भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।८७।।

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे शिवाद्वैतसिद्धान्ते वीरशैवब्राह्मण्य[१]-निरूपणं नाम सप्तदशः पटलः [२]समाप्तः ।।१७।।

ये आठ प्रकार के लक्षण यदि शिवभक्त म्लेच्छ में भी विद्यमान हैं, तो ऐसा भक्त मुझे सर्वाधिक प्रिय है, वही योगी मेरा सच्चा भक्त है।।८६।। हे देवि ! इस तरह से मैंने शिव-धर्म (वीरशैव धर्म) में उपदिष्ट विधि के अनुसार अपना जीवन यापन करते हुए शिवाश्रम के धर्मों का पालन करने वालों का स्वरूप तुम्हें बता दिया है। अब आगे पुनः तुम क्या सुनना चाहती हो।।८७।।

इस प्रकार शिवाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक पारमेश्वर तन्त्र का वीरशैव के ब्राह्मण्य धर्म का निरूपण करने वाला यह सत्रहवाँ पटल समाप्त हुआ।।१७।।

---

१. ब्राह्मण-ग. घ. ङ.। २. नास्ति-क. ख. ङ.।

अष्टादशः पटलः

निर्याणयागविधानम्

राजशेखराय देवराजदेण[1]धारिणे
तेजसे सुखाय सच्चिदे नयावृतात्मने ।
नेजते परात्पराय निर्मलाय चेतसा
वाजिने [2]सदों नमः शिवाय शङ्कराय ते ।।१।।

देव्युवाच

चन्द्रशेखर विश्वात्मन् सर्वदृक् स्वदृगीश्वर ।
उक्तवानसि मे सर्वं[3] वीरशैवमतक्रमम् ।।२।।
श्रुतं त्वधिगतं देव रहस्यं मतसम्भवम् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि यागं निर्याणसंज्ञितम् ।।३।।
नृषु लिङ्गिषु जीवत्सु कर्तव्यमुदितं त्वया ।
तेषां निर्याणसमये प्राणिनां क्रियते नु किम् ।।४।।

मस्तक पर जिनके चन्द्रमा सुशोभित हैं, हाथ पर मृग को धारण करने वाले, देवताओं के देवता, तेजस्वी, सत्, चित्, सुखस्वरूप, न्याय से समन्वित स्वरूप वाले, अकम्प्य स्वरूप, परात्पर, निर्मलस्वरूप, सबको अपने वश में रखने वाले हे शिव शंकर! आपको सदा नमस्कार।।१।।

देवी का प्रश्न

हे चन्द्रशेखर! विश्वस्वरूप, सर्वद्रष्टा, आत्मद्रष्टा ईश्वर! आपने मुझे वीरशैव मत के पूजाक्रम को पूरी तरह से बता दिया है।।२।। हे देव! उस वीरशैव मत के रहस्य को मैने सुना है और समझा भी है। अब मैं निर्याण संज्ञक याग, अर्थात् वीरशैव मत में निर्दिष्ट अन्त्येष्टि विधि को सुनना चाहती हूँ।।३।। इष्टलिंगधारी को जीवित अवस्था में जो कुछ करना है, यह आपने बता दिया है। उनकी मृत्यु के समय क्या करना चाहिये, अब आप यह मुझे बताइये।।४।। हे विश्वेश! इस स्थिति में स्वयं उस लिंगधारी को

---

१. एण-ग. घ. ङ.। २. सदा नमः-क.। ३. सर्वं मे-घ. ङ.।

तेन वान्येन विश्वेश भक्तशिष्यसुतादिना ।
निर्याते लिङ्गिनो देहे किं वा कार्यमतः परम् ।।५।।
एतन्मे श्रद्दधानायै श्रोतुमादरतो वद ।
यच्छ्रुत्वा लिङ्गिनः सर्वे भवद्ध्यानपरास्तथा ।।६।।

ईश्वर उवाच

निर्याणसंज्ञकयागनिरूपणम्

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यागं निर्याणसंज्ञकम् ।
लिङ्गिनां मम भक्तानां मत्पदप्राप्तिसाधनम् ।।७।।

प्राणसंशये सति कर्तव्यनिर्देशः

रोगेण पीड्यते देवि जनस्य प्राणसंशये ।
लक्षणैरात्मबुद्ध्या च निश्चित्य भिषजा[1] मृतिम् ।।८।।
विहाय लौकिकीं दृष्टिं देहपुत्रधनादिषु ।
भोगाशां च परित्यज्य ध्यायेन्मामेकमीश्वरम् ।।९।।
यदि देहबलं तस्य चोपवेष्टुं सुखासने ।
पूर्ववस्त्रादि सन्त्यज्य धारयेच्छुद्धमम्बरम् ।।१०।।

अथवा उसके भक्त शिष्य, पुत्र आदि को इष्टलिंगी के देह से प्राणों के निकलते समय और उसके बाद क्या करना चाहिये।।५।। आपके ऊपर मेरी पूरी श्रद्धा है, अतः आप आदरपूर्वक आपके उपदेश को सुनने में तत्पर मुझे यह सब बताइये। ऐसा करने से सभी इष्टलिंगधारी आपके ध्यान में निमग्न हो सकेंगे।।६।।

ईश्वर का उत्तर

हे देवि! तुम सावधानी से सुनो! निर्याण नामक याग की वह विधि मैं तुम्हें बता रहा हूं, जिस साधन को जानने से मेरे इष्टलिंगधारी भक्त शिवपद की प्राप्ति में समर्थ हो सकेंगे।।७।।

हे देवि! रोग से पीडित मनुष्य विभिन्न लक्षणों के द्वारा, स्वयं अपनी बुद्धि से और वैद्य से भी अपने प्राणों पर आते हुए संकट का जब अनुमान कर ले।।८।। तब देह, पुत्र, धन आदि में लौकिक दृष्टि को और भोग की आशा को भी छोड़कर केवल एकमात्र मुझ ईश्वर का ध्यान करे।।९।। यदि सुखासन पर बैठने लायक उसके देह में शक्ति है, तो वह पहले पहिने हुए वस्त्रों को उतार कर शुद्ध वस्त्र पहन ले।।१०।।

---

१. भिषंजो-क.।

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो धृतरुद्राक्षमालिकः ।
भक्त्या सम्पूजयेल्लिङ्गं पूर्ववत् प्रयतः शिवे ।।११।।
[1]मौनध्यानसमायुक्तो निविश्य स्वस्तिकासने ।
हस्तावुत्सङ्ग आधाय नासाग्रे न्यस्तवीक्षणः ।।१२।।
शृङ्गाटके भ्रुवोर्मध्ये द्विदलाज्ञाम्बुजोत्तमे ।
ध्यायन्मां संस्मरन्नाम मनसा वचसा दृढम् ।।१३।।
लिङ्गं निक्षिप्य वदने यदि नोच्छिष्टभावना ।
सज्जिकादि यथास्थाने धृत्वा लिङ्गं करेण वा ।।१४।।
यदि हस्तेन धृत्वा तु ध्यायेन्मामेकमीश्वरम् ।
चतुर्भुजमुदाराङ्गं शान्तं सर्वात्मकं शिवम् ।।१५।।
वराभयत्रिशूलेन पूतभास्वत्कराम्बुजम् ।
ध्यानाशक्तौ तु गिरिजे स्मरेच्छिवशिवेति माम् ।।१६।।
शयित्वापि स्मरेच्चित्ते त्वशक्तावुपवेशने ।
किमत्र बहुना देवि भक्त्या भक्त्या धिया धिया ।।१७।।

हे शिवे! वह भक्त अपने सारे शरीर पर भस्म लगा कर रुद्राक्ष की माला धारण कर ले और पवित्र मन से भक्तिपूर्वक पूर्ववत् इष्टलिंग की पूजा करे।।११।। वह भक्त स्वस्तिक आसन बाँध कर बैठे, अपने हाथों को अपनी जाँघों पर रखकर नासिका के अग्रभाग में अपनी दृष्टि को स्थिर कर मौन धारण करते हुए शिवध्यान में निमग्न हो जाय।।१२।। दोनों भौहों के बीच त्रिकोण-स्थान में स्थित दो दल वाले उत्तम आज्ञा चक्र में मन और वचन से मेरा ध्यान करता हुआ दृढतापूर्वक मेरे नाम का स्मरण करे।।१३।। यदि उच्छिष्ट भावना मन में न उठे, तो उस व्यक्ति को इष्टलिंग अपने मुंह में रख लेना चाहिये, अन्यथा सज्जिका आदि में अथवा अपने हाथ में उस इष्टलिंग को स्थापित करना चाहिये।।१४।। यदि हाथ में इष्टलिंग को स्थापित कर सकता है, तो उसे चतुर्भुज, सुन्दर शरीरवाले, शान्तस्वभाव सर्वात्मक शिव का वर, अभय मुद्रा और त्रिशूल को अपने पवित्र तेजोमय हाथों में धारण किये एकमात्र मुझ ईश्वर के स्वरूप का ध्यान करना चाहिये। हे गिरिजे! यदि वह ध्यान करने में असमर्थ है, तो उसे केवल मेरे शिव-शिव इस नाम का उच्चारण करना चाहिये।।१५-१६।। यदि वह बैठने में असमर्थ है, तो लेटे हुए ही उसे अपने मन में शिवनाम का स्मरण करना चाहिये।

---

1. भगवद्गीता (६.११-१४) से तुलना कीजिये।

देहनिर्याणसमये स्मरेन्मामेवमद्रिजे ।

प्राणे विनिर्गति शिष्यः पुत्रो वौर्ध्वदेहिकं कुर्यात्

ततो विनिर्गते लिङ्गशरीरे लिङ्गधारिणाम् ।। १८ ।।
भक्तः शिष्योऽपि पुत्रो वा कुर्यात्तस्यौर्ध्वदेहिकम् ।
स्नात्वा [१]भूरिजलैर्देवि सचेलकमतन्द्रितः ।। १९ ।।
स्वयं विधाय लिङ्गस्य पूजां पूर्ववदाचरेत् ।
विभूतिच्छन्नसर्वाङ्गो रुद्राक्षमणिधारकः ।। २० ।।
बहूदकेन शुद्धेन स्नापयेल्लिङ्गिनस्तनुम् ।
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण शतरुद्रानुवाकतः ।। २१ ।।
रौद्रैरन्यैर्महास्तोत्रैर्महान्तो लिङ्गिनः परे ।
चतुः पञ्च दशाष्टौ वा यथाबन्धुसमृद्धितः ।। २२ ।।
एकमादिसहस्रान्तैरभिषिञ्चेद् घटोदकैः ।
गुरोर्वृद्धस्य चाज्ञस्य भक्तस्य सुधियो मम ।। २३ ।।

हे देवि! इस विषय में अधिक क्या कहना है, वह व्यक्ति अपनी देह से प्राण के निकलते समय पूरी भक्तिभावना से बुद्धि को एकाग्र कर केवल मुझे ही स्मरण करे।।१७-१८।।

इस प्रकार इष्टलिंगधारी के शरीर से प्राणों के निकल जाने पर उसका भक्त शिष्य अथवा पुत्र औध्र्वदेहिक संस्कार करे। हे देवि! संस्कार करने वाला पहले पर्याप्त जल से सचैल स्नान कर निरालस्यभाव से स्वयं उसके इष्टलिंग की पूजा करके पूर्वोक्त पद्धति से शिव का ध्यान करे।।१८-१९।। अपने शरीर पर भस्म लगा कर और रुद्राक्ष मणि की माला धारण कर वह औध्र्वदेहिक कृत्य का सम्पादक उस लिंगैक्य (मृत) इष्टलिंगधारी के शरीर को पर्याप्त शुद्ध जल से स्नान करावे।।२०।। पंचाक्षर मन्त्र से, [1]शतरुद्र अनुवाक से अथवा अन्य महान् रुद्रसंबन्धी स्तोत्रों से अन्य विशिष्ट वीर शैवगण लिंगैक्य व्यक्ति के बन्धु-बान्धवों की समृद्धि के अनुसार चार, पाँच, दस, आठ घड़ों के जल से अथवा एक से लेकर सहस्र पर्यन्त घड़ों के जल से यथाशक्ति उसका अभिषेक करें।।२१-२२।। शिवभक्त गुरु के अथवा वृद्ध पुरुष के, भले ही वह अज्ञ हो या बुद्धिमान्, शुद्ध पादोदक मात्र से भी उस शिवैक्यदेह का अभिषेक किया जा सकता है।।२३।।

---

१. भूमि-घ. ङ.।

1. रुद्रैकादशिनी के नाम से प्रसिद्ध ११ अनुवाकों वाले रुद्राध्याय का यहाँ ग्रहण किया जाता है।

पादोदकेन शुद्धेन देहं समभिषेचयेत् ।
उद्धूर्त्य भस्मनोद्धूल्य चोपविश्य शुचिस्थले ।। २४ ।।
अलङ्कुर्वीत तं देहं रुद्राक्षैरथ शक्तितः ।
गन्धैः सुगन्धिसंयुक्तैरालिप्य तनुमादरात् ।। २५ ।।
पुष्पैः सुगन्धिमालाभिर्वस्त्रैश्चीनाम्बरादिभिः ।
समलङ्कृत्य तं देहं धूपाद्यैर्धूपयेद् बहु ।। २६ ।।
सम्पूजयेन्मृतं देहं लिङ्गिनं लिङ्गवत् प्रिये ।

लिङ्गिदेहवाहनार्थं विमानं कारयेत्

अथ तद्वाहनार्थाय विमानं कारयेद् दृढम् ।। २७ ।।
चतुर्द्वारसमायुक्तं त्रयमेकं तु वा शिवे ।
चतुःपादं चतुःस्तम्भमुन्नतं शिखरान्वितम् ।। २८ ।।
अलङ्कृतं सुवस्त्राद्यैर्यथाविभवविस्तरम् ।
मालिकाभिः सुगन्धीभिर्दर्पणैर्मणिचामरैः ।। २९ ।।
केतुभिश्च पताकाभिरलङ्कुर्याद् विमानकम् ।
तद्विमानं स्पृशन् कर्ता जपेत्[1] पञ्चाक्षरं शुभम् ।। ३० ।।

उस मृतदेह को भलीभांति पोंछकर, सारे शरीर पर भस्म छिड़क कर तथा त्रिपुंड्र लगा कर पवित्र स्थल पर उसको रखकर अपनी शक्ति के अनुसार रुद्राक्षों से उसे सजावे।।२४।। सुगन्ध से परिपूर्ण चन्दन का उस पर लेपकर उस मृत देह को आदरपूर्वक पुष्प, सुगन्धित पुष्पमाला, वस्त्र, रेशमी वस्त्र आदि से अलंकृत कर धूप आदि से धूपित करे और लिंगधारी उसकी पूजा इष्टलिंग के समान ही करे।।२५-२७।।

अब मृत देह को समाधि स्थल तक ले जाने के लिये विमान तैयार करे। हे शिवे! यह विमान चार द्वार वाला, तीन या एक द्वार वाला भी हो सकता है। यह चार पाये और चार स्तंभ वाला होना चाहिये और इसमें एक ऊँचा शिखर भी रहना चाहिये।।२७-२८।। यह विमान परिवार के वैभव के विस्तार के अनुसार शोभन वस्त्र आदि से, सुगन्धित मालाओं से, दर्पण से, मणियों से, चामर से, ध्वजा और पताकाओं से अलंकृत होना चाहिये।।२९।। उस मृत देह का संस्कार करने वाला विमान को छूकर शुभ पंचाक्षर मन्त्र का एक हजार बार, एक सौ आठ बार, सौ बार, अथवा ग्यारह

---

1. "पञ्चाक्षरमुक्तं ग्रन्थान्तरे— "धान्तं भान्तं च वान्तं च तृतीयस्वरभूषितम्। लान्तं पक्षस्वरोपेतं मान्तं पञ्चाक्षरं स्मृतम्।।" इति। सुप्रभेदे योगपादे तृतीयपटले—"नमः शिवाय पञ्चार्णमेतत् पञ्चाक्षरं स्मृतम्" इति। शारदातिलकेऽष्टादशपटले— "हृदयं वपरः साक्षी लान्तोऽनन्तान्वितो मरुत्। पञ्चाक्षरो मनुः प्रोक्तस्ताराद्योऽयं षडक्षरः।।" इति। हृदयं नमः, वपरः शकारः, साक्षी इकारः, लान्तो वकारः, अनन्त आकारः, मरुद्यकारः। ततो "नमः शिवाय" इति पञ्चाक्षरमन्त्रः सिद्धः" इति-ख. टिप्पणी (पृ. २२९)।

सहस्रमष्टोत्तरं वा शतमेकादशापि वा ।
मूलेनोङ्कारयुक्तेन विमाने स्थापयेच्छवम् ।। ३१।।

समाधिस्थले सोत्सवं विमानं नयेयुः

यथा समाधौ निविशेत् तथैव स्वस्तिकासने ।
करावुत्सङ्गयोः क्षिप्त्वा बध्नीयाद् रज्जुभिर्दृढम् ।। ३२।।
चत्वारो लिङ्गिनो वृद्धा [१]ज्ञानभक्तितपोवृताः[२] ।
वहेयुर्भुजशीर्षेषु विमानं शवसंयुतम् ।। ३३।।
मूलमन्त्रं जपन्तस्तु [३]नयेयुःखवटं प्रति ।
आन्दोलिकाद्यैर्विभवैः शिवपञ्चाक्षरं स्मरन् ।। ३४।।
मङ्गलार्थानि वाद्यानि वादयन्तस्त्वनेकशः ।
भेरीतूर्यमृदङ्गादि यथाविभवविस्तरम् ।। ३५।।
सङ्गीतस्तोत्रनृत्यानि जपन् पञ्चाक्षरादिकान् ।
वाचयेच्छतरुद्रीयमुत्सवं साधयेद् बहु ।। ३६।।

बार अपनी शक्ति के अनुसार जप करे और ॐकार से संयुक्त मूल मन्त्र का उच्चारण करता हुआ विमान में उस मृत देह को स्थापित करे।।३०-३१।।

जिस रूप में उस शव को समाधि में रखा जा सके, तदनुसार स्वस्तिकासन मुद्रा में उसे बैठाकर जंघाओं पर दोनों हाथों को रखकर उसे रस्सियों से मजबूती से बांध दे।।३२।। ज्ञान, भक्ति और तपस्या से पवित्र हुए चार वृद्ध लिंगी वीरशैव अपने भुजशीर्ष (कन्धों) पर शव के साथ इस विमान को उठावें।।३३।। वे मूल मन्त्र का जप करते हुए उस शवयुक्त विमान को समाधि-स्थल पर खोदे गये गर्त के पास ले आवे। आन्दोलिका आदि वैभव-सामग्री को साथ लेकर शिव पंचाक्षर मन्त्र का स्मरण करते हुए अन्य जन भी साथ में चलें।।३४।। अपने वैभव के अनुसार भेरी, तूर्य, मृदंग आदि मंगलसूचक वाद्यों को बजाने वालों के साथ अनेक बन्धु-बान्धव भी साथ में चलें।।३५।। संगीत, स्तोत्रपाठ, नृत्य आदि करते हुए, पंचाक्षर आदि मन्त्रों का जप करते हुए, शतरुद्रीय आदि का पाठ करते हुए, अन्य जन उत्सव के साथ उस विमान को समाधि-स्थल तक ले जावें।।३६।। इष्टलिंगधारी अनेक वीरशैवों के साथ, हाथी, घोड़ा, रथ आदि

१. "ज्ञान....संयुतम्" नास्ति-ग.। २. व्रतैः-घ. ङ.। ३. ह्यानीयुः-क. ग. घ. ङ.।

लिङ्गिभिर्बहुभिर्जुष्टं गजस्यन्दपनङ्क्तिभिः ।
ग्रामात् प्राचीमुदीचीं वा दिशं समुपनीय तत् ।। ३७ ।।

पुण्यदेशे गर्तनिर्माणम्

पुण्यदेशे नदीतीरे बहुवृक्षवनेऽपि वा ।
गिरावारामभूभागे विल्वमूले मठेऽपि वा ।। ३८ ।।
शिवालयोपकण्ठे वा जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ।
सुकरं लभ्यते यत्र चाश्रमे वा तपस्विनः ।। ३९ ।।
खातयित्वावटं भूमौ श्लक्ष्णं व्यायामविस्तृतम् ।
रहितं शर्कराग्रावकण्टकाशुचिबाधकैः ।। ४० ।।

गर्तप्रमाणादिनिर्देशः

मृतदेहप्रमाणेन गार्तागाधा विधीयते ।
नव वा सप्तपादं वा गतप्राणस्य देहिनः ।। ४१ ।।
तन्न्यूनमधिकं वा चेत् कर्तुरायुष्यसंक्षयः ।
गर्तस्यान्तः पूर्वभागे दक्षिणे चोत्तरेऽपि वा ।। ४२ ।।

की पंक्तियों के साथ उस विमान को ग्राम से पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर ले जाय।।३७।।

पवित्र स्थल पर, नदी के तट पर, अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित वन में, पर्वत के पास, उपवन भूमि में, विल्व वृक्ष के नीचे अथवा मठ में, शिवालय के समीप, पुरानी गोशाला, चौराहा अथवा किसी तपस्वी के आश्रम में, जहां भी सरलता से जमीन मिल जाय।।३८-३९।। वहां शव की समाधि के लिये पृथ्वी पर गड्ढा खोद कर उसें चिकना बनावे। इस गर्त की लम्बाई-चौड़ाई मृत व्यक्ति के देह के अनुसार रखी जाती है। यह भी ध्यान में रखा जाता है कि वह स्थान शर्करा (बालू), ग्राव (पत्थर), कंटक, अपवित्र आदि बाधक वस्तुओं से रहित हो।।४०।।

मृत देह के पाद के प्रमाण से ही उसके नौ अथवा सात पाद के बराबर गर्त की गहराई रखी जाती है।।४१।। इससे कम या अधिक गहराई रखने पर कर्ता की आयु क्षीण हो जाती है। उस गर्त के भीतर पूर्व, दक्षिण अथवा उत्तर दिशा की भित्ति में पांच पाद प्रमाण का एक छोटा ताखा बनावे। यह चौकोर होना चाहिये और इसका

[१]पञ्चपादप्रमाणेन सूक्ष्मान्तरवटं चरेत् ।
पञ्चपादप्रमाणेन विस्तारं चतुरस्रकम् ।। ४३।।
तन्मध्ये वेदिकां कृत्वा त्रिपादं चतुरस्रकम् ।
प्रथमस्यायतं [२]दीर्घं सोपानस्यैकपादकम् ।। ४४।।
कुर्याद् दीर्घं द्वितीयस्य द्विपादं चायतं तथा ।
तृतीयस्यायतं दीर्घं त्रिपाद[३]मुपकल्पयेत् ।। ४५।।
भित्तौ त्रिकोणसंयुक्तं दीपमालासमन्वितम् ।
नवघातं त्रिकोणं च व्यायामं च त्रिपादकम् ।। ४६।।

अवटे मृतदेहनिक्षेपः

[1]एवमेवावटं कृत्वा देहं तत्र विनिक्षिपेत् ।
सम्प्रोक्ष्य मूलमन्त्रेण मूलेनैवावटान्तरे ।। ४७।।
प्रवेशयेयुस्तं देहं गुरुज्येष्ठादयः परे ।
पुनः सम्पूजयेद् गर्ते धूपाद्यैरुपचारकैः ।। ४८।।

विस्तार भी पांच पाद प्रमाण का होना चाहिये।।४२-४३।। उस ताखा के नीचे बीच में तीन पाद की चौकोर वेदिका बनानी चाहिये। उस समाधि-गर्त में नीचे उतरने के लिये पहली सीढी एक पैर के माप की, दूसरी सीढी दो पैर के माप की और तीसरी सीढी तीन पैर के माप की, इस तरह तीन सीढियाँ बनानी चाहिये।।४४-४५।। उस गर्त की भित्ति में त्रिकोण आकार का ताखा बनाना चाहिये, जिस पर कि दीपमालिका रखी जाती है। इस त्रिकोण आकार के ताखा में नौ खाने बनाये जाते हैं और इस त्रिकोण ताखे की चौड़ाई तीन पाद की होती है।।४६।।

इस प्रकार अवट (गर्त) का निर्माण कर उसमें उस मृत देह को उतारे। मूल मन्त्र से उसको प्रोक्षित कर मूल मन्त्र से ही उस प्राणरहित देह को गुरु अथवा परिवार के माननीय पुरुष उस गर्त में स्थापित करें।।४७-४८।। हे परमेश्वरि! जैसे इष्टलिंग की पूजा की जाती है, उसी विधि से धूप आदि उपचारों से उस गर्त में मृत देह की पुनः पूजा करे।।४८-४९।। कुछ लोग इस समय मृतदेह के सिर पर नारियल फोड़ते हैं और अन्य

---

१. पङ्क्तिविपर्ययः-घ.। २. दीर्घस्योप-क.। ३. पादं परि-ख.।

1. "देहस्य पृथिव्यादौ निक्षेपादिकमुक्तं विशेषार्थप्रकाशिकायां पञ्चमाधिकरणे" इति-ग. टिप्पणी (पृ. २३०)।

यथा सम्पूजयेल्लिङ्गं तथैव परमेश्वरि।
केचिद् भिन्दन्ति[1] शिरसि नारिकेलफलं तथा ।।४९।।
केचिन्नेच्छन्ति तद्युक्तमुभयं मम सम्मतम्।

पत्नीसहगमनविधानम्

[2]सकलत्रो यदि भवेदनुगन्तुमियेष सा ।।५०।।
तामप्यावेशयेद् [3]भर्तुर्वामे वा[4] संमुखेऽपि वा।
यद्यन्या दक्षिणे चेष्टा बह्व्यश्चेत्ताः[5] पृथक् पृथक् ।।५१।।
एकस्मिन्नवटे सर्वा निखनेत् तादृशं वटम्।
यद्यासंस्ताश्च भोगार्था ह्यवटेषु पृथक् पृथक् ।।५२।।
निखनेद् गन्तुमिच्छेरन्निति शास्त्रविनिश्चयः।

गर्भिण्यादिसहगमनप्रतिषेधः

गर्भिणी यदि सा चेत्तु तथा पुत्रवती सती ।।५३।।
न म्रियेत तदा देवि मृता चेद् भ्रूणहा भवेत्।
उन्मत्ता पतिता भ्रष्टा रुग्णा भीता च जारिणी ।।५४।।

लोग ऐसा नहीं करते। ये दोनों ही पक्ष मुझे मान्य हैं।।४९-५०।।

यदि मृत पुरुष गृहस्थ है और उसकी पत्नी उसके साथ समाधि-लाभ करना चाहती है, तो उसे भी उसी गर्त की बांई ओर अथवा उसके सामने बैठावे।।५०।। यदि उसकी दूसरी पत्नी भी है, तो उसको मृतदेह की दक्षिण दिशा में भी बैठाया जा सकता है। यदि उसकी अनेक स्त्रियां हैं, तो उन सबको अलग-अलग एक ही गर्त में समाधि-लाभ करावे और इसके लिये उसी प्रकार का गर्त बनाना चाहिये कि सबका उसमें समावेश हो जाय।।५१।। यदि उसके भोग के लिये संगृहीत अनेक उपपत्नियां हैं और वे भी उसके साथ समाधि-लाभ करना चाहती हैं, तो उनके लिये अलग-अलग गर्त बनावे, यही शास्त्र का निर्णय है।।५२-५३।।

यदि उसकी पत्नी गर्भवती है, या उसकी गोद में छोटा बालक है, तो उस सती को पति के साथ मृत्यु का वरण नहीं करना चाहिये। यदि वह ऐसा करती है, तो उसे भ्रूण-हत्या का पाप लगता है।।५३-५४।। उन्मत्त (पागल), पतित, भ्रष्ट, रोगी, भयभीत, जारिणी, दूरदेश में स्थित, जिसे हाल ही में प्रसव हुआ हो (जच्चा), वेश्याकर्म में लिप्त,

---

१. बध्नन्ति-ख.। २. पङ्क्तिरेषा नास्ति-ग. घ.। ३. गर्ते-क. ङ.। ४. 'वा' नास्ति-क. ङ., वायुमुखे-घ.। ५. स्यात्-ख.।

दूरस्था सूतिका वेश्या पतिदुष्टा रजस्वला ।
बालपुत्रवती बाला बहुपुत्रवती जडा ॥५५॥
ईदृग्विधास्तरुण्यश्च न म्रियन्ते कदाचन ।
तासां वक्त्रेषु लिङ्गानि तत्तद्देहगतानि च ॥५६॥
रहितेषु च ताम्बूलं निक्षिप्य निखनेद् दृढम् ।

गर्तपूरणम्

सैन्धवेन समापूर्य लवणेनाशिखान्ततः ॥५७॥
संघटच्य पद्भ्यां सुदृढं शेषमापूरयेन्मृदा ।
भस्मना विल्वपत्रैर्वा मुखमाच्छाद्य यत्नतः ॥५८॥
यद्यल्पं पूरयेद् देवि लवणेनावटान्तरम्[१] ।
स देहः पूतिगन्धः स्यात् तेन वंशक्षयो भवेत् ॥५९॥
यदि क्लिद्येत क्रिमिभिर्जम्बुकादिभिराखुभिः ।
खन्यते गन्धलोभेन कर्तृगोत्रक्षयो भवेत् ॥६०॥

पति को छोड़ देने वाली, रजस्वला, बाल पुत्र वाली, अल्प वय वाली, अनेक पुत्रों वाली, जड़मति जैसे लक्षणों वाली पत्नियों को और तरुणियों को कभी पति के साथ सती नहीं होना चाहिये।।५४-५५।। पति के साथ सती होने वाली इन पत्नियों के मुख में उनके पहने हुए इष्टलिंग को रख देना चाहिये। यदि उन्होंने इष्टलिंग धारण नहीं कर रखा है, तो उनके मुख में ताम्बूल रखकर गर्त में उन्हें दृढता से गाड़ देना चाहिये।।५६-५७।।

पैर से लेकर सिर तक उस मृत देह को सैन्धव नमक से ढंक देना चाहिये। उसको दोनों पैरों से मजबूती से दबाकर गर्त के शेष भाग को मिट्टी से भर देना चाहिये। ऐसा करते समय उस मृत देह का मुख पहले भस्म से अथवा विल्वपत्र से ढंक दे।।५७-५८।। हे देवि! उस गर्त के भीतर सैन्धव लवण यदि पर्याप्त मात्रा में नहीं डाला जायगा, तो उस देह से दुर्गन्ध निकलने लगेगी और इससे उसके वंश का क्षय हो जायगा।।५९।। यदि उस देह में कीड़े लग जाते हैं, उस देह की गन्ध से आकृष्ट हो सियार, ऊदबिलाव जैसे प्राणी जमीन खोद कर उसे खा डालते हैं, तो इससे उस मृत देह का संस्कार करने वाले के वंश का नाश हो जाता है।।६०।। इसके लिये उस गर्त को पैरों से बार-बार

---

१. न्तरे-क.।

पादैः संघट्य संघट्य दृढं भूमिवदाचरेत् ।
न पूरयेच्छिलाद्यैस्तु हृद्यमृत्तिकयैव हि ॥ ६१॥
यदि न्यूनो भवेद् भूमेर्गर्तः पूर्तिप्रमाणतः ।
कर्तुर्भवेन्महारोगः सन्तानं नैव सम्भवेत् ॥ ६२॥

समाधिनिर्माणम्

भूम्या सम्मितमापूर्य कुर्यादुपरि वेदिकाम् ।
पौरुषेण प्रमाणेन तदर्धार्धमथापि वा ॥ ६३॥
गर्तद्विगुणमानेन परितः पृथिवीतले ।
चतुरस्रां वर्तुलां वा मेखलात्रितयान्विताम् ॥ ६४॥
श्लक्ष्णां कुर्याल्लेपनाद्यैरलङ्कुर्यात् तथोपरि[१] ।
तोरणं परितो बद्ध्वा यथा सच्छायशीतलम् ॥ ६५॥
काकादिविनिवृत्त्यर्थं पताकाध्वजकेतुभिः ।

मृण्मयप्रेतलिङ्गस्थापनम्

वेदेरुपरि कुर्वीत मध्ये लिङ्गं च मृण्मयम् ॥ ६६॥

मजबूती से दबाकर अगल-बगल की भूमि के समान समतल कर दे। शिला आदि से उस गर्त को न भर कर नरम मनोहर मिट्टी से ही उसे भरे।।६१।। यदि गर्त को भर देने के बाद वह आसपास की भूमि से नीचा रह जायगा, तो इससे कर्ता महान् रोगों से ग्रस्त हो जायगा और उसे कोई सन्तान नहीं होगी।।६२।।

इसलिये भूमि के बराबर भरकर उसे समतल कर दे और फिर उस पर समाधि बनावे। यह समाधि [1]पौरुष प्रमाण अथवा उससे आधे या चौथाई प्रमाण की भी हो सकती है।।६३।। यह समाधि गर्त के प्रमाण से दुगुनी, गर्त के चारों तरफ की भूमि पर बनाई जानी चाहिये। यह चौकोर अथवा गोल आकार की बनाई जा सकती है। यह समाधि तीन मेखलाओं से सुशोभित होनी चाहिये।।६४।। लेपन आदि के द्वारा इसको चिकना बना देना चाहिये। फिर इसे तोरण आदि से अलंकृत कर चारों तरफ बन्दनवार बांध कर यह ठंडा रहे, इसके लिये उस वेदी के ऊपर छत्री भी बना देनी चाहिये । कौआ आदि दुष्ट पक्षियों से उसकी रक्षा के लिये पताका, ध्वज, केतु उस वेदी के ऊपर बाँध देना चाहिये।।६५-६६।।

---

१. "तथोपरि....शीतलम्" इत्यस्य स्थाने— "सुधादिभिः। वितानपुष्पमालाद्यैरलङ्कुर्यात् तथोपरि" इति पाठः-ख.।

1. पौरुष प्रमाण का लक्षण अमरकोश में इस प्रकार दिया है— "ऊर्ध्वविस्तृतदोःपाणिनृमाने पौरुषं त्रिपु" (२.६.८७)।

तल्लिङ्गं प्रेतलिङ्गं स्यान्न पूजा न च वन्दनम् ।
लिङ्गं तात्कालिकं देवि दीक्षान्ते पुनरन्यतः ।। ६७।।
समाधेर्वामभागे तु लिङ्गं पाषाणसम्भवम् ।
संस्थाप्य पूजयेन्नित्यं वृषभं मम शैलजे ।। ६८।।

शिवालयनिर्माणम्

लिङ्गाभिषेकतीर्थं तु पाणिपीठात् समाधिगम् ।
एवं संस्थाप्य देवेशि तत्र कुर्याच्छिवालयम् ।। ६९।।

तत्र पूजनक्रमः

यथा लिङ्गं तथा कुर्यात् पाणिपीठं यथा तथा ।
यथा पूजा तथा पूजा नियमस्थो यथा तथा ।। ७०।।
धूपदीपोपहारादिनित्यकर्मवदेव तत् ।
प्राणान्मन्त्रेण संस्थाप्य लिङ्गे मूलेन मन्त्रतः ।। ७१।।
जपेत् पञ्चानुवाकांश्च द्विषट्कं मूलमन्त्रतः ।
शतरुद्रीयमावृत्त्य पयोभिः सम्भवेद् यदि ।। ७२।।

बीच में समाधि के ऊपर मृण्मय लिंग स्थापित करना चाहिये। हे देवि! यह मिट्टी का बना लिंग प्रेतलिंग कहलाता है। इसकी पूजा अथवा वन्दना नहीं की जाती। यह तात्कालिक लिंग कहलाता है। मृत व्यक्ति के सारे संस्कार हो जाने के उपरान्त इसके स्थान पर पुनः अन्य लिंग स्थापित किया जाता है।।६६-६७।। हे शैलजे! बाद में समाधि के वाम भाग में पाषाण निर्मित लिंग की और वृषभरूप धारी नन्दी की स्थापना कर उनकी नित्य पूजा करे।।६८।।

हे देवेशि! जिस इष्टलिंग का अभिषेक पाणिपीठ पर हुआ था, उसी को अब मैं इस समाधिस्थल पर स्थापित कर रहा हूँ, ऐसी भावना करे और उस लिंग के लिये शिवमन्दिर बनावे।।६९।।

पाणिपीठ पर इष्टलिंग को स्थापित कर जैसे उसकी पूजा की जाती है, उसी तरह से इस स्थापित लिंग की भी नित्य नियमपूर्वक पूजा करे।।७०।। धूप, दीप आदि उपहार इष्टलिंग की नित्य पूजा के समान ही यहां भी समर्पित किये जाते हैं। लिंग में मूल मन्त्र से प्राणप्रतिष्ठा की जाती है।।७१।। मूल मन्त्र से आवृत कर [1]पांच अनुवाकों का बारह बार पाठ करे। यदि संभव हो तो शतरुद्रियाध्याय (रुद्राध्याय) की आवृत्ति के साथ जलाभिषेक करे।।७२।। शुद्ध दुग्ध से अथवा जल से यथाशक्ति लिंग का

1. पांच अनुवाकों का अभिप्राय "सद्योजातं प्रपद्यामि" (तैत्ति. आर. १०.४३-४७) इत्यादि पांच अनुवाकों के पांच मन्त्रों से है।

शुद्धैः स्वच्छजलैर्वापि शक्त्या लिङ्गेऽभिषेचयेत् ।
दोषायैव महेशानि मुख्ये शक्तौ[1] गुणाश्रयः ॥ ७३॥
[2]तत्तच्छक्त्यनुसारेण विधिरेष विकल्पितः ।
गीतवादित्रनृत्यादि विभवे सति कारयेत् ॥ ७४॥
दीपान् प्रज्वालयेद् देवि मेखलात्रितयेऽपि च ।
चणकान्नारिकेलानि कदली[3]क्षुभिरेव च ॥ ७५॥
तिलांश्च क्षालितान् शुद्धान् मिश्रीकृत्य समर्पयेत् ।
पञ्चभक्षमपूपादि यथाविभवविस्तरम् ॥ ७६॥

वेदिकापूजनक्रमः

आनैवेद्यान्तमाकल्प्य पूजयेद् वेदिकां ततः ।
सद्योजातादिभिः[4] पञ्चमन्त्रैरीशानमादितः ॥ ७७॥
चतुर्दिक्षु चतुर्भिश्च उपर्यन्तेन पूजयेत् ।
दिक्पालानष्टदिक्ष्वष्टौ पुरतो नन्दिकेश्वरम् ॥ ७८॥
दुर्गां विनायकं वीरभद्रं पश्चिमपार्श्वयोः ।
हुण्डं तुहुण्डं मार्तण्डं प्रचण्डं चण्डमेव च[5] ॥ ७९॥

अभिषेक करे। हे महेशानि! मुख्य पक्ष को करने में समर्थ व्यक्ति गौण पक्ष का सहारा न ले, क्योंकि ऐसा करना दोषावह माना जाता है।।७३।। सामान्य व्यक्ति की शक्ति को देखकर यह पक्ष बताया गया है। वैभवसम्पन्न व्यक्ति इस अवसर पर गीत, वाद्य, नृत्य आदि का भी आयोजन करे।।७४।। हे देवि! यहां बनाई गई तीनों मेखलाओं पर दीपक जलावे, भीगे चने, नारियल, केला, इक्षुदण्ड आदि भी वहां रखे ।।७५।। शुद्ध और धोये गये तिलों को मिला कर अपूप आदि पांच प्रकार के भक्ष्य पदार्थों को बनाकर अपनी शक्ति के अनुसार समर्पित करे।।७६।।

इस प्रकार के नैवेद्य को समर्पित करने के उपरान्त सद्योजात आदि पांच मन्त्रों से वेदिका का पूजन करे। प्रथमतः ईशान मन्त्र से ऊर्ध्व दिशा में तथा तत्पुरुष आदि से पूर्व आदि दिशाओं में पूजा करे। आठ दिशाओं में आठ दिग्पालों की और लिंग के संमुख नन्दीश्वर की पूजा करे।।७७-७८।। पश्चिम दिशा और उसके दोनों पार्श्वों में दुर्गा, विनायक और वीरभद्र की पूजा करे। हुंड, तुहुंड, मार्तण्ड, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल,

---

१. शक्तो-ख. ग. घ.। २. ततः शक्त्य-ख.। ३. लान्यैक्षवानपि-ख. ग. घ. ङ.। ४. भिर्मन्त्रैरीशानमुख-ख.। ५. वा-ख.।

महाबलं बलं चैव प्रबलं रुद्रपार्श्वगान् ।
अष्टदिक्ष्वर्पयेदष्टौ मध्यमायां यथाक्रमम् ।।८०।।
नन्दिभृङ्गिरिटीन्[1] तुण्डि मोदामोदप्रमोदकान् ।
पूजयेदादिमे वृत्ते मूलमन्त्रेण सर्वतः ।।८१।।

पूजान्ते नैवेद्यादिसमर्पणम्

समाप्य पूजां लिङ्गस्य भूरिदानानि कारयेत् ।
नैवेद्यशेषं ताम्बूलं वस्त्रद्रव्यादिभिः शिवे ।।८२।।
विभज्य दद्यादेकत्र चागतान् भक्तलिङ्गिनः ।
विचारयेत् तदा देवि लिङ्ग्यलिङ्गिविभेदनम् ।।८३।।
ते सर्वे ईश्वराः सत्यं विभवे सति दीयताम् ।
विशेषेणार्चयेत् तत्र शिवभक्तं च लिङ्गिनम् ।।८४।।
दक्षिणावस्त्रपूजाद्यैर्भोजयेल्लिङ्गिनां शतम् ।
न स्नायान्न स्मरेत् स्पृष्टिं नाशौचं नाशुभं तु वा ।।८५।।
अमङ्गलं न कर्तव्यं यतो लिङ्गी शिवोऽस्म्यहम् ।
दशैकं वा यथाशक्ति विभवे भूरिभोजनम् ।।८६।।

बल और प्रमथ नामक रुद्रों के पार्षदों की बीच में पूजा करे और नन्दी, भृंगी, रिटी, तुंडी, मोद, आमोद और प्रमोद की पूजा आदिम वृत्त में क्रमशः मूल मन्त्र से करे।।७९-८१।।

हे शिवे! उस नवस्थापित लिंग की आवरण देवताओं के साथ इस प्रकार पूजा करके पर्याप्त मात्रा में दान करे। नैवेद्य का बचा हुआ पदार्थ, ताम्बूल, वस्त्र, द्रव्य आदि का विभाग कर वहां उपस्थित सभी भक्तों को बांट दे। इनमें लिंगी-अलिंगी आदि का विचार करना उचित नहीं है। उस समय उपस्थित सभी याचक सचमुच ईश्वर के स्वरूप हैं। अपने वैभव के अनुरूप इन्हें देना चाहिये।।८२-८३।। शिवभक्त इष्टलिंगधारी की यहाँ विशेष रूप से पूजा करनी चाहिये। दक्षिणा और वस्त्र देकर उनकी पूजा करनी चाहिये और सौ शिवयोगियों को भोजन कराना चाहिये।।८४।। अब वह स्नान न करे, स्पर्शदोष, आशौच, अशुभ या अमंगल की भावना न करे, क्योंकि इष्टलिंगधारी तो मेरा ही स्वरूप होता है।।८५।। अपनी शक्ति के अनुसार दस अथवा एक लिंगी-जंगम को भोजन करावे। सम्पन्न व्यक्ति को अधिक लिंगी-जंगमों को भोजन कराना चाहिये। उसे

---

१. थुण्डि-घ.।

गोदानानि प्रकुर्वीत भूहिरण्यादि शक्तितः ।
कन्यादानानि वा द्रव्यं दद्याद् योग्या[१]य चार्थिने ॥ ८७॥

लिङ्गमुद्राङ्कितवृषभविसर्जनम्

विसर्जयेच्च वृषभान् लिङ्गमुद्राङ्कितान् शुभान् ।
प्रत्यहं चार्चयेदेवं मासमेकं निरन्तरम् ॥ ८८॥
पक्षं च दशरात्रं वा त्रिरात्रं वानुपूजयेत् ।
न दीक्षानियमः कर्तुर्ब्रह्मचर्यादि सुन्दरि ॥ ८९॥
स्त्रीसङ्गमात्रमुत्सृज्य सर्वं पूर्ववदाचरेत् ।
अभ्यङ्गमैच्छिकं देवि ताम्बूलं सर्वसंमतम् ॥ ९०॥
लौकिकं गन्धपुष्पादि यथायोग्यं समाचरेत् ।

निर्याणयागकर्तव्यानि

यावती क्रियते दीक्षा यागे निर्याणसंज्ञिते ॥ ९१॥

गोदान, भूदान, हिरण्यदान आदि भी शक्ति के अनुसार करना चाहिये। उसे योग्य अर्थी को कन्यादान के साथ पुष्कल धन भी देना चाहिये।।८६-८७।।

इतना करने के बाद उसे लिंगमुद्रा से अंकित शुभ [1]वृषभों का विसर्जन करना चाहिये, अर्थात् वृषोत्सर्ग की पद्धति से बैल को साँढ़ बनाकर छोड़ना चाहिये और एक मास तक प्रतिदिन निरन्तर उस वृषभ की पूजा करनी चाहिये।।८८।। हे सुन्दरि! मास पर्यन्त पूजा करने में असमर्थ व्यक्ति एक पक्ष, दस दिन अथवा तीन दिन तक पूजा करे। यहां दीक्षा अथवा ब्रह्मचर्य व्रत के नियमों के पालन का कोई विधान नहीं है।।८९।। केवल स्त्रीसंग का मात्र उसे त्याग करना है। बाकी सब वह पूर्ववत् करता रहे। हे देवि! इस स्थिति में अभ्यंग (तेल मालिश) ऐच्छिक और ताम्बूल ग्रहण सर्वसंमत है। लौकिक गन्ध, पुष्पमाला आदि का ग्रहण वह अपनी इच्छा के अनुसार कर सकता है।।९०-९१।।

इस निर्याण संज्ञक याग में जब तक व्यक्ति दीक्षित होकर रहता है, तब तक यदि कोई अन्नार्थी घर पर आता है, तो उसे अवश्य तृप्त करे। हे ईश्वरि! जातिभेद

---

१. ग्यमथार्चयेत्-ख. ग. घ. ङ.।

1. पितरों के निमित्त वृष (बैल-सांड़) के उत्सर्ग की विधि धर्मशास्त्र के इतिहास (पृ. १२९१-९२) में देखिये।

तावत् सन्तर्पयेदन्नैरन्नार्थी यः समागतः ।
न जातिभेदं विमृशेदाचण्डालान्तमीश्वरि ।। ९२।।
अगोचरश्व[1]काकानां दद्यादन्नरसादिकम् ।
वृषभेभ्यो यथाशक्ति दद्यादन्नरसादिकम् ।। ९३।।
दीक्षान्ते भोजयेत् सम्यक् शतमष्टोत्तरं परम् ।
सर्वदा दश शक्तो वा दीक्षान्ते सर्वदा चरेत् ।। ९४।।
अथवा यद्यथाशक्तिश्चैकं वा प्रेतलिङ्गकम्[2] ।
द्रोणपुष्पैश्च दूर्वाभिर्विल्वापामार्गपाटलैः ।। ९५।।
करवीरोत्पलैः पद्मैर्यथासम्भवमर्चयेत् ।
प्रत्यब्दमागते सिद्धिदिवसे तु विशेषतः ।। ९६।।
पूजयेद् वेदिकां भक्त्या लिङ्गवल्लिङ्गवान् धिया ।
मासर्तुपक्षवारादौ यथाशक्ति समर्चयेत् ।। ९७।।
शक्तश्च प्रत्यहं देवि पूजनं तूत्तरोत्तरम् ।

आरामादिनिर्माणम्

स्वशक्त्या भूमिमाक्रम्य भित्त्या वा कण्टकादिभिः ।। ९८।।

पर यहां विचार नहीं किया जाता, भले ही वहाँ आया हुआ व्यक्ति चाण्डाल हो।।९१-९२।। अगोचर जीवों को, कुत्ते को और काक को उत्तम अन्न दे। इसी तरह से वृषभों को भी अपनी शक्ति के अनुसार अन्न-रस आदि दे।।९३।। दीक्षा के अन्त में समर्थ व्यक्ति १०८ श्रेष्ठ लिंगियों को भलीभांति भोजन करावे। किसी भी स्थिति में दस लिंगियों को तो अवश्य भोजन करावे। यदि इसमें भी वह असमर्थ है, तो एक को ही भोजन करावे।।९४।। समाधि पर स्थापित उस लिंग की द्रोणपुष्प, दूर्वा, विल्वपत्र, अपामार्ग, पाटल, करवीर (कनेर), उत्पल, कमल आदि में से जो कुछ मिल जाय, अपनी शक्ति के अनुसार उससे पूजा करनी चाहिये।।९५-९६।। प्रतिवर्ष सिद्धिदिवस (शिवैक्य तिथि) पर विशेष रूप से समाधि की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इस वेदिका में लिंग स्थापित है, अतः यह भी लिंग के समान ही है, ऐसी बुद्धि वहाँ रहनी चाहिये।।९६-९७।। हे देवि! प्रत्येक मास, प्रत्येक ऋतु, पक्ष और बार के दिन और यदि समर्थ है तो प्रतिदिन पूजन करना उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माना गया है।।९७-९८।।

---

१. चरश्च-ख.। २. ङ्गिने-घ.।

कृत्वारामं यथाशक्ति पूजयेत्[1] पुष्पवाटिभिः ।
द्रोणि[2]रुद्रजटीविल्वकरवीरांश्च[3] मारवम् ।। ९९।।
अन्यानि गन्धपुष्पाणि तत्र सम्पादयेच्छिवे ।
वेदिं च पूजयेन्नित्यमन्यलिङ्गार्थमाहरेत् ।। १००।।
स्वयं च क्षितिपालाय दद्यादिष्टं तथाखिलम् ।
यथाशक्त्यर्चयेद् वेदिं विशेषेण च पर्वसु ।। १०१।।
उत्सवं नृत्यगीतादि जागरादि स्वभक्तितः ।

निर्याणयागफलश्रुतिः

निर्याणयोगिनां सिद्धिं गतदेहं च लिङ्गिनम् ।। १०२।।
अनुगच्छेज्जनो यावत्तावत् कैलासवासदम् ।
ये पश्यन्ति विमानाग्रं लिङ्गिनिर्याणसाधनम् ।। १०३।।
साक्षात् कैलासशिखरं किन्तु लिङ्गी शिवोऽस्म्यहम् ।
[4]प्रदर्शयन्ति ये दीपान् धूपान् घण्टाध्वनीनपि ।। १०४।।

अपनी शक्ति के अनुसार जमीन को दीवाल बनाकर या कांटों का आवरण बनाकर बगीचा बना ले और उस पुष्पवाटिका में अपनी शक्ति के अनुसार पुष्प उगा कर उनसे लिंग की पूजा करे।।९८-९९।। हे शिवे! उस पुष्पवाटिका में द्रोणपुष्प, रुद्रजटी, विल्व, करवीर, मरुवा आदि सुगन्धयुक्त पुष्पों को उगावे।।१००।। इनसे प्रतिदिन समाधि की पूजा करे और लिंग की पूजा के लिये भी उनका संग्रह करे। स्वयं यदि इस पुष्पवाटिका की रक्षा नहीं कर सकता, तो उस जमीन की रखवाली करने वाले को सभी अभीष्ट वस्तु दे। उस समाधि की यथाशक्ति पूजा करे, पर्व के दिनों में विशेष पूजा करे और अपनी भक्ति के अनुसार उत्सव, नृत्य-गीत, जागरण आदि का आयोजन करे।।१०१-१०२।।

निर्याण-योगियों के सिद्धि-दिवस (शिवैक्य दिन) पर और इष्टलिंगधारी की अन्तिम यात्रा में जो व्यक्ति जितनी देर के लिये उनका अनुगमन करता है, वही उसको कैलास में निवास की योग्यता प्रदान करता है।।१०२-१०३।। इष्टलिंगधारी की अन्तिम यात्रा के साधन विमान के अग्रभाग को जो देखते हैं, वे साक्षात् कैलास के शिखर को ही देखते हैं, क्योंकि वह लिंगधारी मेरा ही स्वरूप है।।१०४।। इस विमान को जो दीपक

---

१. पूरये-ख.। २. द्रौणी-ख.। ३. रं च-ख. ग. घ.। ४. "प्रदर्श........वेदिं........प्राध्माय........ प्रत्युद्गम्य........देहेन........भूमिं" इत्ययं पङ्क्तीनां क्रमः-ग. घ. ङ.।

प्राध्माय जलजान् भक्त्या ते कैलासनिवासिनः ।। १०५ ।।
प्रत्युद्गम्य[१] नराः प्रेतं चाभिष्टूय प्रशंस्य च ।
देहेन शिवतादात्म्यमात्मना सह यान्ति ते ।। १०६ ।।
वेदिं प्रदक्षिणीकृत्य त्रीण्येकादश शक्तितः ।
भूमिं प्रदक्षिणीकृत्य यत्फलं तदवाप्नुयात् ।। १०७ ।।
भुक्त्वा तद्वेदिनैवेद्यं भक्ष्यादीक्षुफलादि यत् ।
भक्षयित्वा से देहान्ते जायते चन्द्रशेखरः ।। १०८ ।।
अत्र वक्ष्यामि ते देवि रहस्यं न प्रकाशय ।
नन्दिस्कन्दगजास्यादीन् नापि बोधय वल्लभे ।। १०९ ।।

कार्तिकमासविशेषविधिः

प्राप्ते तु कार्तिके मासे नक्ताशी नियतव्रतः ।
प्रत्यहं पूजयेद् वेदिं द्रोणविल्वैस्तिलाक्षतैः ।। ११० ।।
सहस्रनामभिर्मूलमन्त्रेण यदि वार्चयेत् ।
जपेद् द्विषट्सहस्रान्तं शैवं पञ्चाक्षरं मनुम् ।। १११ ।।

दिखाते हैं, धूप देते हैं, घंटा-ध्वनि अथवा शंख-ध्वनि करते हैं, वे इस भक्ति के कारण कैलास में निवास करते हैं।।१०५।। जो मनुष्य उस विमान की अगवानी कर प्रेत की स्तुति और प्रशंसा करते हैं, वे इसी देह से शिवतादात्म्य को प्राप्त कर अन्त में शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं।।१०६।। अपनी शक्ति के अनुसार तीन बार अथवा ग्यारह बार समाधि की प्रदक्षिणा करने वाला उतना ही फल प्राप्त करना है, जितना कि भूमि की प्रदक्षिणा करने से प्राप्त होता है।।१०७।। उस समाधि के नैवेद्य को, भक्ष्य-भोज्य, इक्षुफल (गन्ना) आदि को स्वीकार करने वाला देहपात के बाद साक्षात् चन्द्रशेखर बन जाता है।।१०८।। हे वल्लभे! यहां मैं अत्यन्त रहस्य की बात तुमको बता रहा हूँ, उसे तुम कभी प्रकाशित मत करना। नन्दी, स्कन्द, गणेश आदि को भी उसे न बताना।।१०९।।

कार्तिक मास के आने पर रात्रिभोजन आदि नियमों का पालन करता हुआ प्रतिदिन द्रोणपुष्प, विल्वदल, तिल और अक्षत से वेदि की पूजा करे।।११०।। शिवसहस्रनाम से अथवा मूल मन्त्र से उस वेदिका की पूजा करे, बारह हजार बार शैव पंचाक्षर मन्त्र का जप करे, तो वह साक्षात् पंचमुख, चारमुख अथवा एकमुख ईश्वर बन जाता है।।१११।।

---

१. त्याय-ख. ग. घ.।

पञ्चवक्त्रश्चतुर्वक्त्र एकवक्त्रः स एव हि ।
यदि [1]चेच्छेत कैलासमपि तेन तृणायते ।।११२।।
किमु स्वर्गादि पुत्रादि यदल्पं [2]भौमभौतिकम् ।
यद्यत् साधयितुं चेच्छेच्छुद्धक्षेत्रं हि वेदिका ।।११३।।

निर्याणयागोपसंहारः

सम्पादयेज्जलं यत्नाद् वापीकूपनिपानकम् ।
शक्त्या समर्पयेत् पान्थान् जलेनान्नेन विह्वलान् ।।११४।।
लिङ्गस्य सन्निधौ नित्यं रात्रौ पूजनकालतः ।
आज्येन ज्वालयेद्दीपान् अखण्डान् पादतैलतः ।।११५।।
जयघण्टा च घण्टा च शङ्खश्च शृङ्गकाहले ।
एतानि पञ्च वाद्यानि शस्तानि शिवपूजने ।।११६।।
दर्पणं दर्शयेन्नित्यं त्रिकालं भक्तिपूर्वकम् ।
सम्मार्जनोपलेपादि पञ्चाङ्गं श्रावयेत् तदा ।।११७।।

इस स्थिति में उसके लिये कैलास भी तृण के समान तुच्छ हो जाता है, स्वर्ग आदि की, पुत्र-पौत्र आदि सन्तति की तथा अन्य समस्त भौतिक पदार्थों की तो कथा ही क्या है। जो कुछ भी वह प्राप्त करना चाहता है, वह उसे प्राप्त हो जायगा, क्योंकि यह वेदिका अत्यन्त पवित्र स्थान है।।११२-११३।।

निर्याण याग के संपादक को चाहिये कि वह प्रयत्नपूर्वक वापी, कूप, निपान (पोखरा) आदि बनाकर जल इकट्ठा करे और प्याऊ बनाकर जल और अन्न के अभिलाषी यात्रियों की यथाशक्ति सहायता करे।।११४।। प्रतिदिन रात्रि में लिंग की सन्निधि में पूजन की वेला में घृत से अथवा उत्तम तेल से दीपक जलावे।।११५।। जयघंटा, घंटा, शंख, शृंग और काहल (नगाड़ा)— ये पांच वाद्य शिवपूजन में प्रशस्त माने गये हैं।।११६।। प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में भक्तिपूर्वक दर्पण दिखाना चाहिये, झाड़ू लगानी चाहिये और उस स्थान को लीपना चाहिये। साथ ही कवच, कीलक, हृदय, स्तोत्र और सहस्रनाम नामक पंचांगों का पाठ भी करना चाहिये।।११७।। हे ईश्वरि! इस तरह से भक्तिपूर्वक

---

१. चेच्छ्वेत-क. ख. ग. ङ.। २. तन्त्र-ख.।

एवं भक्त्याऽर्चयेल्लिङ्गवेदिं निर्याणयोगिनः ।
देहान्ते मम सायुज्यं याति कैवल्यमीश्वरि ।।११८।।
[1]एतन्निर्याण[2]यागस्य लक्षणं कथितं मया ।
कर्तव्यमखिलं देवि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।११९।।

*इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे वीरशैवमृतयागविधि-
र्नामाष्टादशः पटलः [3]समाप्तः ।।१८।।*

निर्याण योगी की समाधि को पूजने वाला देहपात के अनन्तर सायुज्य पदवी को, कैवल्य पद को प्राप्त करता है।।११८।। हे देवि! इस तरह से मैंने तुमको निर्याण याग के लक्षण को और उसके लिये करणीय समस्त विधियों को बता दिया है। अब आगे पुनः तुम क्या सुनना चाहती हो।।११९।।

इस प्रकार पारमेश्वर तन्त्र के अन्तर्गत वीरशैवों की अन्त्येष्टि विधि का निरूपण करने वाला यह अठारहवाँ पटल समाप्त हुआ।।१८।।

---

१. यत्तत्-क.। २. निर्वाण-घ. ङ.। ३. 'समाप्तः' नास्ति-क. ख. ङ.।

एकोनविंशः पटलः

सिद्धिदिवसादिकर्तव्यविधिनिरूपणम्

जय जय शिव शम्भो शान्तचन्द्रार्ध[१]मौले
करधृतमृगपोताभीतिशूलाखिलात्मन् ।
स्वयमपि सुखरूप[२] सच्चिदानन्दमूर्ते
भव मम हृदि नित्यं पाहि मां पार्वतीश ।।१।।

देव्युवाच[३]

नवैकादशपञ्चैकत्रिभागमय शङ्कर ।
सर्वानुगतविश्वेशाखण्डरूपाय ते नमः ।।२।।
उपदिष्टं महादेव साङ्गं सल्लक्षणान्वितम् ।
दीक्षाप्रभृतिनिर्याणयागान्तं योगिलिङ्गिनाम् ।।३।।
मतेऽवान्तरभेदांश्चाधिकारस्तत्र तत्र तु ।
आचारश्च विधिर्देव सर्वमुक्तं त्वयानघ ।।४।।

हे शिव! आपकी जय हो, जय हो! हे सबको सुख देने वाले, सौम्य चन्द्रकला को अपने मस्तक पर धारण करने वाले, अपने चार हाथों में मृगपोत, शूल, वर और अभय मुद्रा धारण किये हुए, स्वयं सुखस्वरूप, सच्चिदानन्दस्वरूप, हे पार्वतीश! आप मेरे हृदय में नित्य निवास कीजिये, मेरी रक्षा कीजिये।।१।।

देवी का प्रश्न

[1]नौ, ग्यारह, पांच, एक और तीन विभिन्न स्वरूप वाले हे शंकर! आप सबमें अनुगत हैं। हे विश्वेश्वर! आप अखण्ड स्वरूप वाले हैं, आपको मैं प्रणाम करती हूँ।।२।। हे महादेव! आपने मुझे योगी लिंगियों के, वीरशैवों के दीक्षा से लेकर निर्याण याग (अन्त्येष्टि) पर्यन्त सभी विधियों को सांगोपांग और लक्षणों के साथ बता दिया है।।३।। हे निष्पाप देव! शैव मत के अवान्तर भेदों को और उन उन मतों में जिनको अधिकार प्राप्त हैं, उनके आचारों और विधियों के विषय में भी आपने सब कुछ बता दिया है।।४।।

---

१. चन्द्रार्क-ख. घ. ङ.। २. रूपः ......मूर्तिर्भव-ग. घ. ङ.। ३. नास्ति-घ.।

1. श्रीमद्भागवत महापुराण (११.१२.१; ११.१९.१४) से तुलना कीजिये। इन तत्त्वों का विशेष विवरण "तन्त्रयात्रा" में प्रकाशित "कति तत्त्वानि" शीर्षक निबन्ध (पृ. ३-१३) में देखिये।

उक्तं निर्याणयागान्ते[1] भक्तशिष्यात्मजन्मनाम् ।
यदौर्ध्वदेहिकं कृत्यं सरहस्यं सविस्तरम् ।।५।।
एतावदेव नो किन्नु विशेषो यदि वात्र तु ।
गृहमेधिनृपादीनां योगिभक्तविरागिणाम् ।।६।।
सस्त्रीकास्त्रीकधर्माणां दरिद्रधनिनामपि ।
प्रत्यब्दमथ किं कार्यं पुण्यकालादिषु प्रभो ।।७।।
यथाशक्ति कृते धर्मे वेदिकायामथान्यथा ।
गतिर्मृतस्य का वा स्यात् कर्तृणामपि किं फलम् ।।८।।
व्यर्थं वा सफलं तद्धि धर्मं वेदितले कृतम् ।
एतदाख्याहि सर्वं मे विस्तरेण महेश्वर ।।९।।

ईश्वर उवाच

[2]साधु साधु कुलेशानि प्रश्नः सम्यक् कृतस्त्वया ।
सर्वस्य चापि शास्त्रस्य येन साफल्यमाप्यते ।।१०।।

भक्तों के, शिष्यों के अथवा पुत्रों के द्वारा किये जाने वाले निर्याण याग का, औध्र्वदेहिक कृत्य का पूरे रहस्य और विस्तार के साथ आपने वर्णन कर दिया है।।५।। अब इस विषय में इतना ही जानना है कि गृहस्थ, राजा, योगीजन, भक्तजन और सस्त्रीक एवं अस्त्रीक, दरिद्र और धनिक— इन सबके लिये कुछ विशेषताएं भी हैं क्या ? हे प्रभो! आप यह भी बताइये कि प्रतिवर्ष पुण्यतिथि पर और पुण्यकाल में क्या करना चाहिये।।६-७।। अपने लिंग्यैक्य हुए संबन्धी की समाधि पर अपनी शक्ति के अनुसार सभी धार्मिक कृत्य करने पर मृत व्यक्ति को तथा उसका संस्कार करने वालों को कौन सी गति, कौन सा फल प्राप्त होता है।।८।। वेदिका (समाधि) पर किया गया यह धर्म-कार्य निष्फल है या सफल? हे महेश्वर! यह आप मुझे विस्तार से बताइये।।९।।

ईश्वर का उत्तर

हे सकल कुलों की स्वामिनि पार्वति! साधु साधु! तुमने यह बहुत अच्छा प्रश्न किया है। इस प्रश्न का उत्तर सुनने से समस्त शास्त्रों में निपुणता प्राप्त हो जाती है।।१०।।

---

१. यागं तु-क.। २. श्लोकयोः (१०-११) क्रमविपर्ययः-घ.।

अत्र पश्य महादेवि प्रमाणं वाचयामि ते ।
सुखेनैव ह्यसन्देहं मतस्य मम विक्रमम् ।।११।।

गुरुशिष्यसम्प्रदायपरम्परा

गुरुस्तव मतः को वा गले येनावबध्यते ।
लिङ्गं पञ्चाक्षरी मन्त्रो यस्येष्ट उपदिश्यते ।।१२।।
स गुरुस्तत्र निर्णीतस्तस्य शिष्यस्य वै स च ।
एवं परतराः सर्वे सर्वेषां गुरवो मताः ।।१३।।
तस्य तस्य मते सर्वलिङ्गिनां शङ्करात्मनाम् ।
गुरुः सर्वोऽपि विश्वेशः सर्वव्यापी न संशयः ।।१४।।
एवं सति जगद्धात्रि कोऽपि लिङ्गेन इज्यते ।
तस्मादेकस्य सर्वोऽपि गुरुरेव महा(दा)त्मकः ।।१५।।
अत्राहो खलु ते नास्ति संशयोऽथ ह्युदीरिते ।
[१]शृण्वतः परमं सारं यत् त्वत्स्नेहेन कथ्यते ।।१६।।

हे महादेवि! सुनो! इस विषय में मैं तुम्हारे सामने शास्त्रीय प्रमाण प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसको जानने पर बहुत सरलता से इस वीरशैव मत की विशेषता मालूम हो जाती है।।११।।

तुम गुरु किसको मानती हो? जो शिष्य को दीक्षा के द्वारा इष्टलिंग प्रदान करता है और पंचाक्षरी मन्त्र का उपदेश करता है, वही गुरु कहलाता है। गुरु के द्वारा प्रदत्त इष्टलिंग और पंचाक्षरी मन्त्र को ग्रहण करने वाला ही शिष्य है, यही शास्त्रों का निर्णय है। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है और सभी लोग एक प्रकार से गुरु-कोटि में आ जाते हैं।।१२-१३।। ऊपर बताये सभी शैवमतों में सभी इष्टलिंगधारी वीरशैव शंकर स्वरूप हैं। इसी तरह से सभी गुरु सर्वव्यापी निःसन्देह विश्वेश्वर शिव के स्वरूप हैं।।१४।। हे जगत् की रक्षा करने वाली पार्वति! इस स्थिति में ऐसा कौन है? जो लिंग की पूजा न करता हो। इसलिये मैं अकेला शिव ही सबका गुरु हूँ।।१५।। इस परिस्थिति में अब यहां जो कहा जा रहा है, उसमें तुमको किसी भी प्रकार का संशय नहीं रहना चाहिये। यह सारभूत बात तुम्हारे स्नेह के कारण कह रहा हूँ। उसे तुम सावधानी से सुनो।।१६।। हे प्रिये! वेदिका (समाधि) और क्षेत्र के माहात्म्य को, मेरे मत के प्रभाव

---

१. शृणु त्वं-ख.।

वेदिकाक्षेत्रमाहात्म्यं प्रभावं मे मतस्य च ।
[१]निर्णयं परमार्थस्य दत्तचित्ता भव प्रिये ।।१७।।
साध्य एव महाधर्मः शक्त्याल्पोऽपि यथामति ।
मृतानां तेन धर्मेण गतिभेद इहोच्यते ।।१८।।

गतिभेदनिरूपणम्

गृहमेधी भवेल्लिङ्गी यदि सालोक्यमश्नुते ।
भक्तलिङ्गी तु सामीप्यं सारूप्यं त्यक्तसंसृतिः ।।१९।।
ध्यानलिङ्गी तु सायुज्यं कैवल्यं ज्ञानयोगिनः ।
तारतम्येन विश्वेशि मद्भक्तानामियं गतिः ।।२०।।
योगिनो ज्ञाननिष्ठस्य सिद्धैवेश्वरता स्वतः ।
भक्तिमात्रकृते धर्मे स्वस्य तादृक्पदप्रदम् ।।२१।।
गुरोः शिष्यस्य विहिता वेद्यां धर्मस्वनुष्ठितिः ।
स्वस्यानृण्यं भवेत्तेन चोभयोः सा गतिः समा ।।२२।।

को और परमार्थ तत्त्व के निर्णीत स्वरूप को मैं तुम्हें बता रहा हूँ, उसे तुम सावधान होकर सुनो।।१७।। शक्ति के अनुसार और अपनी बुद्धि के अनुसार भले ही थोड़ा हो, इस महान् धर्म का पालन करना चाहिये। इस धर्म के पालन से मृत व्यक्तियों को जो विभिन्न गतियां प्राप्त होती हैं, उन्हें बता रहा हूँ।।१८।।

इष्टलिंगधारी यदि गृहस्थ है, तो वह सालोक्य पदवी को प्राप्त करता है। इष्टलिंग में भक्ति रखने वाला भक्त सामीप्य पदवी को और विरक्त सारूप्य पद को प्राप्त करता है।।१९।। हे विश्वेशि! इष्टलिंगी सायुज्य पदवी को और ज्ञानयोगी कैवल्य पद को प्राप्त करता है। मेरे भक्तों को तारतम्य से ये ही सब गतियाँ मिलती हैं।।२०।। ज्ञानसम्पन्न योगी तो स्वतः ईश्वरस्वरूप बन जाता है। केवल भक्ति के आधार पर धर्म का अनुष्ठान करने वाले को उसकी पात्रता के अनुसार फल मिलता है।।२१।। शिष्य को चाहिये कि वह अपने गुरु की समाधि पर शास्त्रोक्त सभी विधियों का भलीभाँति अनुष्ठान करे। इससे शिष्य गुरु के ऋण से मुक्त हो जाता है और गुरु-शिष्य दोनों की सद्गति होती है।।२२।।

---

१. निर्याण-ख.।

वेद्यां मण्डपादिनिर्माणम्

गृहिणः पुत्रिणो वक्ष्ये कर्तव्यमपि तत्फलम् ।
निक्षिप्य वेदिकाक्षेत्रे मद्बुद्ध्या यदि चास्तिकः ।। २३।।
मण्डपं कारयेच्छक्त्या शिलादारुतृणादिभिः ।
यदि शोध्या भवेद् भूमिस्तत्रायं विहितो विधिः ।। २४।।
मृतो यदि सपत्नीकस्तं च सानुगता यदि ।
[१]तदस्थि मणिकर्ण्यादौ क्षेपणेच्छा कृता क्वचित् ।। २५।।
तदा संशोधयेद् भूमिमाजलान्तं सगर्तकाम् ।
समुद्धृत्यास्थि च तयोरेकस्यापि न संशयः ।। २६।।
कुर्यादेवं कुलस्त्रीणामन्यासां तु यथारुचि ।
विरक्तस्य च भक्तस्य देहमात्रं विसर्जयेत् ।। २७।।
योगिनो ज्ञाननिष्ठस्य यावद् गर्तं विसर्जयेत् ।
सर्वं लिङ्गमयं विद्धि देहवज्ज्ञानयोगिनः ।। २८।।
समुद्धरेद् यदि शिवे तद्गर्तमविवेकतः ।
लिङ्गमुत्पाटितं विद्धि स मृतो याति रौरवम् ।। २९।।

गृहस्थ के पुत्र के द्वारा सम्पादनीय कृत्यों का और उनके फल का अब मै वर्णन करूँगा। आस्तिक बुद्धि वाला पुत्र अपने पिता की समाधि बनाकर उस पर शिवस्वरूप अपने पिता की स्मृति में शक्ति के अनुसार शिला, दारु, तृण आदि का मण्डप बनवावे। यदि इसके लिये भूमिशोधन करना है, तो उसकी विधि आगे बताई जा रही है।।२३-२४।। मृत व्यक्ति यदि सपत्नीक है और उसकी पत्नी उसके साथ सती हो जाती है, इन दोनों माता-पिता की अस्थि को पुत्र यदि मणिकर्णिका आदि क्षेत्रों में डालना चाहता है, तो बिना किसी सन्देह के इन दोनों में से किसी एक की भी अस्थि को निकाल कर गर्त के साथ उस समाधिस्थल की भूमि को जल से शोधित करे।।२५-२६।। कुलस्त्रियों तथा अन्य स्त्रियों की अस्थि की भी अपनी रुचि के अनुसार ऐसी ही व्यवस्था करे। विरक्त भक्त के पूरे देह को बाहर नहीं निकालना चाहिये।।२७।। ज्ञानसम्पन्न योगी के गर्त का भी विसर्जन न करे, ज्ञानयोगी का सारा शरीर लिंगमय ही माना जाता है।।२८।। हे शिवे! यदि इस ज्ञानयोगी के गर्त का अविवेक पूर्वक उत्पाटन कोई करेगा, तो समझ लेना चाहिये कि उसने लिंग का ही उत्पाटन कर दिया है। ऐसा व्यक्ति मरने के बाद रौरव नरक में जाता है।।२९।।

१. यदस्ति-घ. ङ.।

इष्टापूर्तविधानम्

विशोध्य परितो भूमिं गुणावर्तनमाचरेत् ।
कारयेन्मण्डपमथ शिलादारुतृणादिभिः ।। ३० ।।
गर्भगेहं च शिखरं स्वर्णकुम्भादिसंयुतम् ।
प्राकारगोपुरयुतं यथाविभवविस्तरम् ।। ३१ ।।
परितः कारयेद् रम्याण्युद्यानानि महीरुहैः ।
वापीकूपतडागादिप्रपाद्याः पुष्पवाटिकाः ।। ३२ ।।
गोशालाऽऽरोग्यशालापि ह्यनाथशयनार्थकम् ।
[1]रोगिणां दुर्बलानां च वासार्थं पशुपक्षिणाम् ।। ३३ ।।
क्षेत्रापणपुरग्रामवृत्ति[2]र्वसतिकादिकान् ।
धर्मान् समाचरेत्तत्र स्वल्पमप्यक्षयं ध्रुवम् ।। ३४ ।।
गृहाणि विधिरूपेण कारयित्वा समं भुवि ।
रथोत्सवादि कुर्वीत दद्याद् वर्षासनादिकम् ।। ३५ ।।
सेवकानां भृतिं दत्त्वा सर्वयात्रोत्सवादिकान् ।
छत्रव्यजनदीपादि वाद्यघण्टादि दापयेत् ।। ३६ ।।

भूमि का चारों तरफ से विशोधन कराके बार-बार कूट कर उसे बराबर कर देना चाहिये। तब उस भूमि पर शिला, दारु, तृण आदि से मण्डप बनवाना चाहिये।।३०।। उस मण्डप के गर्भगृह और शिखर को स्वर्ण कलश आदि से सुशोभित कर अपने वैभव के अनुसार प्राकार, गोपुर आदि से सुसज्जित कराना चाहिये।।३१।। उसके चारों तरफ मनोरम उद्यान बनाना चाहिये, जो कि वृक्ष, वापी, कूप, तालाब, प्याऊ, पुष्पवाटिका से सुसज्जित हो।।३२।। गोशाला, आरोग्यशाला, अनाथों के शयन के लिये स्थान, रोगियों और दुर्बलों के तथा पशु-पक्षियों के निवास का स्थान भी बनवावे।।३३।। क्षेत्र, बाजार, पुर, ग्राम आदि में बसने वालों के लिये वृत्ति की व्यवस्था करना जैसे धार्मिक कृत्य भी वहां उसे करते रहना चाहिये। ऐसे कार्यों को थोड़ा-बहुत करने पर भी निश्चित ही अक्षय फल होता है।।३४।। समतल भूमि में विधिपूर्वक गृहों का निर्माण करा कर रथोत्सव आदि की तथा वर्षाशन आदि की व्यवस्था करे।।३५।। सेवकों के भरणपोषण की तथा सभी तरह की यात्राओं और उत्सवों की व्यवस्था करे तथां उन्हें, छत्र, व्यजन, दीप, वाद्य, घंटा आदि दे।।३६।। सभी प्रकार के भूतों की, प्राणियों की क्षुधा की निवृत्ति

---

१. रुग्णानां-घ. ङ.। २. वृत्ती व-क. ख.।

सत्रं विधाय भूतेभ्यः प्राणिभ्यः क्षुन्निवारणम् ।
यथाशक्ति रसैरन्नं दापयेद् दययाऽन्वहम् ।। ३७।।
दीपस्तम्भं ध्वजस्तम्भं सूर्यादिप्रमथाधिपान्[१] ।
परितः परिवारांश्च स्थापयेत् पूजयेच्छिवम् ।। ३८।।
अश्वत्थविल्वामलकतुलसीद्रोणवाटिकाः ।
शम्यपामार्गदूर्वादिकरवीरादिकान् बहून् ।। ३९।।
सुधूपदीपनैवेद्यपूजासेवादि कृत्स्नशः ।
सम्पादयेन्महादेवि लिङ्गपूजार्थमादरात् ।। ४०।।
[२]पूजादीनां प्रवाहार्थं क्षेत्रापणपुरादिकम् ।
दत्त्वा [३]संसाधयेद् देवि तदानन्त्याय कल्प्यते ।। ४१।।
अर्थिनः सन्ति ये भूमौ दीनान्धान् कृपणान् बहून् ।
तर्पयेदपि तान् सर्वान् कामिनः प्राणिमात्रकम् ।। ४२।।

अत्र जातिभेदो नास्ति

न तत्र जातिभेदोऽस्ति वेदिकाक्षेत्रमण्डले ।
न लिङ्गचलिङ्गिसम्भेदः सर्व एवाहमीश्वरि ।। ४३।।

के लिये अन्नसत्र चलावे और दयापूर्वक यथाशक्ति उनको प्रतिदिन अन्न-रस से तृप्त करे।।३७।। दीपस्तंभ, ध्वजस्तंभ के साथ सूर्य आदि ग्रहगणों की तथा प्रमथगणों की, अपने परिवार देवताओं की चारों तरफ स्थापना करे और भगवान् शिव का पूजन करे।।३८।। अश्वत्थ, विल्व, आमलक, तुलसी, द्रोण, शमी, अपामार्ग, दूर्वा, करवीर आदि ढेर सारे पवित्र पत्र-पुष्पों की वाटिका लगावे।।३९।। हे महादेवि! वहां शिवलिंग की पूजा के लिये आदरपूर्वक सुगन्धित धूप, दीप, नैवेद्य आदि पूजासामग्री की पूरी व्यवस्था करे।।४०।। हे देवि! पूजा, उत्सव आदि की व्यवस्था निरन्तर चलती रहे, इसके लिये क्षेत्र, दुकान, नगर आदि का दान करे। ऐसा करने वाला व्यक्ति अनन्त फल का भागी होता है।।४१।। इस पृथ्वी पर दीन, अनाथ, दरिद्र आदि के रूप में वहुत से याचक निवास करते हैं, उन सवको क्या, प्राणिमात्र को उनकी अभिप्रेत वस्तु प्रदान कर सन्तुष्ट करे।।४२।।

हे ईश्वरि! इस वेदिका (समाधि) के चारों तरफ बनाये गये इस मंडप, वाटिका आदि क्षेत्र में कोई जातिभेद मान्य नहीं है, लिंगी और अलिंगी का भेद भी मान्य नहीं है, क्योंकि यह सब कुछ मेरा ही तो स्वरूप है।।४३।। सभी प्रकार के अर्थियों को

---

१. दिकान्-ख.। २. धूपा-ख.। ३. संपाद-ख.।

तर्पयेदर्थिनः सर्वानन्नवस्त्रजलादिभिः ।
कृपणान् बलहीनादीन् लिङ्गिनस्तु विशेषतः ॥ ४४ ॥
वर्षासनादिकं दत्त्वा स्वास्थ्याद्याव[1]सथादिकान् ।
धेन्वादि शाश्वतं पूर्णं लिङ्गिनः स्थापयेद् बहून् ॥ ४५ ॥
प्रवाचयेदभिज्ञेन शास्त्रं मन्मतसूचकम् ।
अन्यांश्च बोधयेद् भक्त्याऽनन्यान् भक्तिविवृद्धये ॥ ४६ ॥
एकैकोऽत्र महादेवि धर्मः शक्त्यनुसारतः ।
अक्षय्यफलदः सर्ववंशानामुत्तरोत्तरम् ॥ ४७ ॥
शक्तौ [2]द्रव्यवतां धर्म एष उद्दिष्ट ईदृशः ।

अशक्तेन आचरणीया धर्माः

अशक्तो(क्तौ) भक्तिसद्भावे सद्यो धर्मस्तनुश्रमैः ॥ ४८ ॥
अन्येन स्थापितान् वृक्षान् लतादीन् पुष्पवाटिकाः ।
सेचयद् भक्तितस्तोयैः कर्तुः समफलं भवेत् ॥ ४९ ॥

यहां अन्न, वस्त्र, जल आदि से तृप्त करना चाहिये। दरिद्र, निर्बल और लिंगियों का स्वागत-सत्कार विशेष रूप से करना चाहिये।।४४।। वर्षाशन वृत्ति, अर्थात् पूरे वर्ष भर के लिये खान-पान आदि की व्यवस्था, उनके स्वास्थ्य की देखभाल की व्यवस्था और निवास की व्यवस्था के साथ सदा के लिये दूध देने वाली गायों की व्यवस्था कर इष्टलिंगधारी शैवों के निवास की स्थायी व्यवस्था करे।।४५।। वहां अभिज्ञ आचार्यों के द्वारा वीरशैव मत के प्रतिपादक शास्त्रों के प्रवचन की भी व्यवस्था करनी चाहिये। शिवभक्ति की वृद्धि के लिये अन्य सामान्य जनों को भी इन शास्त्रों का ज्ञान करावे।।४६।। हे महादेवि! ऊपर बताये गये इन धार्मिक अनुष्ठानों में से किसी एक का भी समुचित पालन करने वाला अक्षय फल को प्राप्त करता है और उत्तरोत्तर अपने पूरे वंश का उद्धार करता है। द्रव्य-व्यय की दृष्टि से समर्थ व्यक्तियों के लिये यह धर्म का उपदेश किया गया है।।४७-४८।।

असमर्थ व्यक्ति में यदि भक्ति है, तो वह शारीरिक श्रम कर धर्म का पालन करे। अन्य व्यक्तियों के द्वारा लगाये गये वृक्ष, लता, गुल्म आदि का, पुष्पवाटिका का जल से सिंचन करने वालों को भी कर्ता के समान ही फल मिलता है।।४८-४९।।

---

१. दाव-क. ख.। २. धर्म-ग. घ.।

सुजीर्णं वेदिकाक्षेत्रं पुनरुद्धार्य पोषयेत् ।
कर्तुर्द्विगुणमाप्नोति फलं देवि न संशयः ॥५०॥

नारी भर्तुः समाधिं पूजयेत्

यदि पुत्रवती नारी दैवात् स्यान्मृतभर्तृका ।
वेदिकामर्चयेद्भर्तुः शिवबुद्ध्या शिवाप्तये ॥५१॥

लिङ्गैक्य(सिद्धि)दिवसकर्तव्यानि

प्रत्यब्दं सिद्धिदिवसे कोटिसूर्यग्रहोपमे ।
विशेषेणार्प(र्च)येद् भक्तानन्नवासोधनादिकैः ॥५२॥
लिङ्गानि सज्जिकादीनि लिङ्गवस्त्रगुणादिकान् ।
दद्याल्लिङ्गिभ्य ईशानि यदि कैवल्यमिच्छति ॥५३॥
अशक्तेभ्योऽपि लिङ्गिभ्यः प्रदद्याद् वृषभान् दृढान् ।
भूत्वा शिवो वृषारूढश्चरेद्[1] देवि यथेच्छया ॥५४॥

पुण्यकालेषु धर्मं समाचरेत्

उपरागे रवेरिन्दोर्व्यतीपाते च वैधृतौ ।
[1]अर्धोदये च[2] संक्रान्तावयने च महोदये ॥५५॥

हे देवि! जीर्ण-शीर्ण वेदिका (समाधि) क्षेत्र की मरम्मत करा कर जो उसे पुष्ट कर देता है, उसे तो निःसन्देह कर्ता की अपेक्षा दुगुना पुण्य मिलता है।।५०।।

यदि कोई पुत्रवती नारी दुर्भाग्यवश पति से विहीन हो जाय, तो उसे शिवपद की प्राप्ति के लिये अपने पति की समाधि को शिव की बुद्धि से पूजना चाहिये।।५१।।

प्रति वर्ष आने वाला सिद्धिदिवस (लिंगैक्य तिथि) करोड़ों सूर्यग्रहणों के बराबर होता है। इस दिन उसे भक्तिपूर्वक शिवभक्तों को अन्न, वस्त्र, धन आदि देकर विशेष रूप से पूजना चाहिये।।५२।। हे ईशानि! कैवल्य चाहने वाला व्यक्ति इष्टलिंगधारी जंगमों को लिंग, सज्जिका, लिंगवस्त्र, शिवदोरक आदि का दान करे।।५३।। किसी कारण से अशक्त हुए इष्टलिंगधारी जंगमों को मजबूत वृषभों का दान इस अभिप्राय से देना चाहिये कि मैं साक्षात् शिवस्वरूप होकर वृषारूढ हो विचरण करूँ।।५४।।

सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, व्यतीपात, वैधृति योग, अर्धोदय काल, संक्रान्ति काल, अयनकाल, महोदय आदि अन्य भी विविध पुण्यदायक पर्वों के अवसरों पर यथाशक्ति

---

१. दहमिवेच्छया-क.। २. स-क. ङ.।

1. अर्धोदय, महोदय आदि के लक्षणों के लिये पृ. ५० की टिप्पणी देखिये।

पुण्यकालेषु चान्येषु धर्मं शक्त्या समाचरेत् ।
कुलकोटिसमायुक्तो मम लोके महीयते ।।५६।।
पुराणं वाचयेत् तत्र दत्त्वा जीवनहेतवे ।
दत्त्वा धनादिकं पूर्णं शिवचारित्रवाचकम् ।।५७।।
कार्तिके मासि सम्प्राप्ते प्रत्यहं सोमवासरे ।
शक्तितः पौर्णमास्यां वा ह्यर्चेद् विल्वादिभिः शिवम् ।।५८।।
यथात्मनि तथा[1] लिङ्गे मते मयि मदर्चने ।
विरक्तलिङ्गिनि ज्ञाननिष्ठे शास्त्रे मतिर्नृणाम् ।।५९।।
भक्त्या तादृशया देवि शक्त्या शाठ्यमदर्शयन् ।
वेदिकामण्डले धर्ममाचरेन्मद्धिया तथा ।।६०।।

भक्तिरेकैव मुख्यसाधनम्

सर्वत्र भक्तिरेकैव भक्तानां मुख्यसाधनम् ।
गुरौ मते च शास्त्रे च मत्कैवल्याप्तये शिवे ।।६१।।
दया च सर्वभूतेषु प्राणिषु द्वेषवर्जनम् ।
समत्वमीश्वरान् वीक्ष्य सर्वत्र समया धिया ।।६२।।

धर्म का आचरण करने वाला अपने करोड़ों वंशजों के साथ शिवलोक में संमान पाता है।।५५-५६।। पुराणवाचक की जीविका की व्यवस्था कर परिपूर्ण धन आदि देकर वहां शिव के चरित्र का वर्णन करने वाले पुराणों का वाचन करावे।।५७।। कार्तिक मास के आने पर प्रतिदिन, सोमवार के दिन या पूर्णमासी के दिन यथाशक्ति विल्वपत्र आदि से शिव की पूजा करे।।५८।। मनुष्य जैसे अपने ऊपर प्रीति (स्नेह) रखता है, उसी तरह इष्टलिंग के प्रति, शिवमत (वीरशैव) के प्रति, शिवपूजक के प्रति, विरक्त लिंगी इष्टलिंगधारी (निराभारी) के प्रति, ज्ञानी के और शास्त्र के प्रति भी प्रीति होनी चाहिये।।५९।। हे देवि! दृढ भक्ति के साथ अपनी शक्ति के अनुसार बिना कृपणता दिखाये समाधि-मण्डल को शिव का ही स्वरूप मानकर वहाँ धर्म का आचरण करे।।६०।।

हे देवि! शिव-कैवल्य की प्राप्ति के लिये गुरु के प्रति, शैवमत और शैवशास्त्र के प्रति एकमात्र भक्ति ही शिवभक्तों के उद्धार का मुख्य साधन है।।६१।। सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव रखना, उनके प्रति द्वेषबुद्धि का सर्वथा त्याग करना, समर्थ अथवा असमर्थ सभी व्यक्तियों के साथ समता-बुद्धि रखना, प्राणियों के प्रति द्रोहबुद्धि का त्याग

---

१. यथा-क. ख. ग.।

प्राणिद्रोहेषु वैमुख्यं वेदिकार्चनमादरः ।
[१]एषा भक्तिमतां भक्तिः पूजा सल्लक्षणा मम ।। ६३।।
भक्त्या सन्तारयेत् सर्वमात्मानं वशमात्मनः ।
भित्त्वा चराचरं विश्वं शिवो भूत्वा सुखी भवेत् ।। ६४।।
कृत्वाऽग्रहारं विप्राणां भक्तानां योगिनामपि ।
संस्थाप्य वेदिकाक्षेत्रे कुटुम्बं ग्राममादिशेत् ।। ६५।।
यद् ब्रह्मसाधितं धर्मलक्षणं कर्म सत्कृतम् ।
कर्ता तत्सर्वमाप्नोति देहान्ते च पदं मम ।। ६६।।

सुकृते दुष्कृते चैव चत्वारः समभागिनः

सुकृते दुष्कृते चैव चत्वारः समभागिनः ।
कर्ता कारयिता चैव प्रेरकश्चानुमोदकः ।। ६७।।
रुग्णान् दरिद्रिणोऽशक्तांच्छिवभक्तान् कुटुम्बिनः ।
स्थाप्ये(प्यै)कमपि लिङ्गस्य प्रतिष्ठाफलमश्नुते ।। ६८।।

करना, आदरपूर्वक वेदिका (समाधि) का पूजन करना— ये सब भक्ति-सम्पन्न शिवभक्तों की भक्ति के सूचक लक्षण हैं। यही मेरी सच्ची पूजा है।।६२-६३।। इस प्रकार की सद्भक्ति से शिवभक्त अपना और अपने अधीन या आसपास रहने वाने अन्य प्राणियों का भी उद्धार करे। ऐसा व्यक्ति सारे चराचर जगत् को भेद कर शिवस्वरूप होकर सुखपूर्वक निवास करता है।।६४।। ब्राह्मणों के लिये, भक्तों और योगियों के लिये अग्रहार (निवास और भोजन) की व्यवस्था कर तथा वेदिका (समाधि) के क्षेत्र में कुटुम्ब-सहित लिंगी ब्राह्मणों के निवास की व्यवस्था कर उनके निमित्त ग्राम आदि का दान करे।।६५।। धर्म और ब्रह्म की साधना में समर्थ, सत्कर्मों का अनुष्ठान करने में समर्थ व्यक्ति यहां सब कुछ प्राप्त कर लेता है और देहपात के बाद शिवपद को प्राप्त करता है।।६६।।

सत्कर्म हो या दुष्कर्म- इनका कर्ता, कराने वाला, प्रेरणा देने वाला और उनका अनुमोदन करने वाला- ये चारों समान रूप से उनके भागी होते हैं।।६७।। बीमार, दरिद्र और अशक्त शिवभक्त कुटुम्बियों में से किसी एक को भी सहारा देने वाला व्यक्ति शिवलिंग की प्रतिष्ठा के बराबर फल को प्राप्त करता है।।६८।। वेदिका (समाधि)

---

१. एषां-क.।

धर्मस्य वेदिकाक्षेत्रे तारतम्येन साधने ।
प्राणिमात्रं दयापात्रं लिङ्गी तत्र विशिष्यते ।। ६९।।
भस्मरुद्राक्षमात्रेण शिवनामस्मृतेरपि ।
लिङ्गार्चनेन मद्भक्तः[१]किं पुनर्लिङ्गधारणात् ।। ७०।।

शिवार्चकान् सन्तर्पयेत्

तस्मात् सन्तर्पयेद्देवि भक्त्या शक्त्या शिवार्चकान् ।
लिङ्गरुद्राक्षभस्माङ्कानेकं चापि [२]मदाप्तये ।। ७१।।
विरक्तानर्चयेदन्यान् वैदिकान् पूजनोचितान् ।
सकृदभ्यर्च्य लिङ्गस्य यावत् पूजामुपैति सः ।। ७२।।

समाधि(वेदिका)क्षेत्रपूजनम्

माघमासेऽर्चयेन्नित्यं त्रिकालं [३]सायमेव वा ।
स्वशक्त्या वेदिकाक्षेत्रं शिवरात्रौ विशेषतः ।। ७३।।
शिवरात्रौ महालिङ्गं वेदिकाक्षेत्रमध्यगम् ।
विल्वादिभिः समभ्यर्च्य मत्कैवल्यमुपैति सः ।। ७४।।

क्षेत्र में धर्म की साधना में जब हम तरतमभाव का विचार करें, तो सभी प्राणी दया के पात्र हैं, किन्तु इनमें इष्टलिंगधारी वीरशैव को वरीयता देनी चाहिये।।६९।। मेरा भक्त केवल भस्म और रुद्राक्ष के धारण से, शिवनाम के स्मरण से तथा इष्टलिंग की पूजा से ही मुक्त हो सकता है, फिर इष्टलिंग-धारण के विषय में तो कहना ही क्या है, अर्थात् इष्टलिंग धारण से तो मुक्ति अनायास ही मिल जायगी।।७०।।

हे देवि! इसलिये इष्टलिंग, भस्म और रुद्राक्ष को अपने शरीर पर धारण करने वाले किसी एक भी इष्टलिंग के उपासक शिवपद की प्राप्ति के लिये अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार पूजा करनी चाहिये।।७१।। पूजा के योग्य अन्य वैदिक विरक्त जनों की भी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करने से इष्टलिंग की एक बार पूजा करने का फल उसे प्राप्त होता है।।७२।।

माघ मास में प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में अथवा सायंकाल अपनी शक्ति के अनुसार समाधि (वेदिका) क्षेत्र की पूजा करनी चाहिये। यह पूजा शिवरात्रि के दिन विशेष रूप से की जानी चाहिये।।७३।। शिवरात्रि के दिन समाधि (वेदिका) क्षेत्र के मध्य में स्थापित महालिंग की विल्वपत्र आदि से पूजा करने वाला शिवपद को प्राप्त करता है।।७४।।

---

१. भक्तं-ख.। २. ममा-घ. ङ.। ३. नियमेन-ख.।

दानं च शिवभक्तानां लिङ्गिनां च विशेषतः ।
भक्त्या शक्त्या शिवे दत्त्वा स्वल्पमक्षयमश्नुते ॥ ७५॥
वैशाखमासे महति छायां तत्र सुशीतलाम् ।
सम्पाद्य वेदिकाक्षेत्रे शक्त्या धर्मं समाचरेत् ॥ ७६॥

समाधि(वेदिका)क्षेत्रे दानादिमहिमा

पानकं पादुकाच्छत्रव्यजनादीनुपानहौ ।
शीतलोदकदध्यन्नं गन्धपुष्पादि शक्तितः ॥ ७७॥
प्रदाय शिवभक्तेभ्यः शैवः कैवल्यमश्नुते ।
लिङ्गिभ्यो ज्ञानयोगिभ्यो यतिभ्यः शैवया धिया ॥ ७८॥
प्रसूतिरहितां धेनुं कर्षणादिषु योजिताम् ।
विसर्जयित्वा भारात् तामुपेयाच्छिवरूपताम् ॥ ७९॥
वृषभं लिङ्गमुद्राङ्कं भारवाहे च कर्षणे ।
दृष्ट्वा नियोजितं सम्यङ्मोचयेच्छक्तितः शिवे ॥ ८०॥

हे शिवे! अपनी भक्ति और शक्ति के अनुसार शिवभक्तों को, विशेष कर शिवयोगियों को थोड़ा सा भी दान देने वाला व्यक्ति अक्षय फल को प्राप्त करता है।।७५।। महान् पुण्यदायक वैशाख मास में वेदिका (समाधि) क्षेत्र को शीतल रखने वाली छाया से ढक कर वहाँ यथाशक्ति धर्म का पालन करे।।७६।।

मधुर पानक, पादुका, छत्र, व्यजन, उपानत् (जूता), शीतल जल, दधिमिश्रित अन्न, गन्ध-पुष्प आदि का शिवभक्तों को, इष्टलिंगधारियों को, ज्ञानयोगियों को और यतियों को शिवस्वरूप मानकर दान करने वाला शिवभक्त कैवल्य पद को प्राप्त करता है।।७७-७८।। बिना बछड़े की गाय को खेती-बारी के लिये हल में जोत दिया जाता है। उसको इस भार से छुटकारा दिलाने वाला साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है।।७९।। हे शिवे! लिंग-मुद्रा से अंकित वृषभ को बोझा ढोने और खेत जोतने के काम में लगाया हुआ देखकर जो उसको अपनी शक्ति के अनुसार छुड़ा देता है, अर्थात् वृषोत्सर्ग की विधि के अनुसार उसको सांढ के रूप में स्वच्छन्द विचरण करने को मुक्त करा देता

---

१. शिवकैवल्य-ख. ग. घ.।

तेन तद्देहपातान्ते कुलकोटिसमन्वितः ।
स्थित्वा लोके मम चिरमन्ते मत्केवलो भवेत् ।। ८१।।
ऋणदारिद्र्यरोगादिपीडितं लिङ्गधारिणम् ।
विमोचयेत् स्वशक्त्या यः पूज्यतेऽहमिव प्रिये ।। ८२।।
सकृत् प्रदक्षिणं कृत्वा नमस्कृत्वापि वा सकृत् ।
वेदिकाक्षेत्रलिङ्गस्य तेन दत्ताखिला च भूः ।। ८३।।
सम्पूज्य पितरौ पुत्रस्ताभ्यां मल्लोकमश्नुते ।
गुरौ शिष्यो नृणां भूयो भक्त्या मत्केवलो ध्रुवम् ।। ८४।।
अनाथानां तु संस्कारे लिङ्गिनां शिवरूपिणाम् ।
जित्वा मल्लोकमखिलं शिवः सञ्जायते स्वयम् ।। ८५।।

समाधिक्षेत्रे विदुषः संस्थापयेत्

परितो वेदिकाक्षेत्रे स्थाप्य षण्मतसम्मतान् ।
तत्तत्कृतमवाप्नोति धर्मं सर्वमपीश्वरि ।। ८६।।

है, वह देहपात के अनन्तर अपने करोड़ों वंशजों के साथ शिवलोक में निवास कर अन्त में शिवकैवल्य को प्राप्त करता है।।८०-८१।। हे प्रिये! ऋण, दारिद्र्य, रोग आदि से पीड़ित इष्टलिंगधारी को इनसे विमुक्त कर अपनी शक्ति के अनुसार जो इनकी पूजा करते हैं, वे साक्षात् शिव ही हैं।।८२।। वेदिका (समाधि) क्षेत्र की, लिंग की जो एक बार प्रदक्षिणा करता है अथवा एक बार प्रणाम करता है, वह समस्त पृथिवी के दान का फल पाता है।।८३।। जैसे माता-पिता की पूजा करके पुत्र उनके साथ शिवलोक को प्राप्त करता है। इसी तरह से गुरु की पूजा करने वाला शिष्य और भक्तिपूर्वक मनुष्यों की सेवा करने वाला व्यक्ति निश्चित ही शिवकैवल्य को प्राप्त करता है।।८४।। शिवस्वरूपधारी अनाथ इष्टलिंगधारियों का संस्कार करके व्यक्ति समस्त शिवलोक को जीत कर स्वयं शिव बन जाता है।।८५।।

हे ईश्वरि! समाधि क्षेत्र के चारों तरफ षण्मत (शिव, शक्ति, गणेश, स्कन्द, विष्णु और सूर्य नामक छः देवों के उपासक) संमत मूर्तियों की स्थापना कर तदनुरूप धार्मिक कृत्य करने वाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है।।६८।। विशेष रूप से उस समाधि

[१]विशेषतो द्विजांस्तत्र वेदनिष्ठांच्छिवप्रियान् ।
धृतरुद्राक्षभस्माङ्कान् तद्धर्मं सर्वमश्नुते ।। ८७।।
अन्ये च शिवभक्ता ये साधवो लिङ्गधारिणः ।
संस्थाप्य तान् शिवो भूत्वा सत्यं सर्वमयो भवेत् ।। ८८।।
येनोह्यते मृतो लिङ्गी विमानान्दोलिकादिना ।
तद्दत्त्वा लिङ्गिनेऽनल्पमल्पं वा शिव एव सः ।। ८९।।
पूजयेद् गुरुपूजादावादराद् वेदिकामयम् ।
लिङ्गं लिङ्गधिया साक्षाल्लिङ्गमेव भवत्यसौ ।। ९०।।
प्रतिसंवत्सरं वेदिं प्रदोषे भक्तितोऽर्चयेत् ।
यदैवाभ्यर्च्य मां देवि शिव एव भवेत्तदा ।। ९१।।
किमत्र बहुनोक्तेन शृणु तत्त्वमुमे मम ।
सर्वसारं प्रवक्ष्यामि कृतप्रश्नस्य चोत्तरम् ।। ९२।।

वेदिका(समाधि)पूजनमाहात्म्यम्

यथाशक्ति यथाभक्ति पूज्य वेदिं मदात्मिकाम् ।
मृतं च मन्मयं कृत्वा मन्मयो भवति स्वयम् ।। ९३।।

क्षेत्र में वेदनिष्ठ, शिवभक्त, रुद्राक्ष और भस्म से अंकित शरीर वाले ब्राह्मणों की पूजा करने वाला वैदिक धर्म में वर्णित सभी फलों को पा लेता है।।८७।। अन्य भी जो शिवभक्त लिंगधारी साधु जन हैं, उनका सत्कार करने वाला निश्चित ही शिवस्वरूप होकर सर्वमय बन जाता है।।८८।। जो वीरशैव विमान (पालकी) आदि में इष्टलिंगधारी मृत व्यक्ति को ढोता है, ऐसे व्यक्ति को जो थोड़ा या बहुत अपनी शक्ति के अनुसार देता है, वह साक्षात् शिव हो जाता है।।८९।। गुरुपूजा आदि के अवसरों पर जो व्यक्ति आदरपूर्वक समाधि के ऊपर के लिंग की गुरु और इष्टलिंग के रूप में पूजा करता है, वह साक्षात् लिंगमय हो जाता है।।९०।। हे देवि! जो व्यक्ति प्रदोष वेला में प्रत्येक वर्ष सिद्धि (लिंगैक्य) दिवस पर भक्तिपूर्वक समाधि की पूजा करता है, ऐसा करने वाला साक्षात् शिव ही हो जाता है।।९१।। हे उमे! बहुत कहने की कोई आवश्यकता नही है। यह समस्त शास्त्रों का सार तुम्हें बता रहा हूँ कि शिवतत्त्व का स्वरूप क्या है? इसी से तुम्हारे प्रश्नों का भी समाधान हो जायगा।।९२।।

अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार शिवस्वरूपिणी समाधि की पूजा कर और मृत व्यक्ति को भी शिवस्वरूप बना कर व्यक्ति स्वयं शिवस्वरूप हो जाता है।।९३।।

---

१. "विशेषतो....स्थाप्य....तत्तत्कृत....धर्म....परितो....वेदनिष्ठान्" इत्ययं पादक्रमः–ग. घ.।

अशक्तः स्वयमन्येषां प्रबोध्य धनिलिङ्गिनाम् ।
कारयेत् पूजनं वेदेः सर्वे शङ्कररूपिणः ।।९४।।

अन्तरायकर्तुरधःपातः

आकलय्यान्तरायं यस्तद्दोषेण विघातयेत् ।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतोऽन्धं विशते तमः ।।९५।।
शतजन्मसु च श्वा स्याद् विष्ठायां क्रिमिको भवेत् ।
[1]ततो ग्रामवराहः स्याद् दरिद्रो मानुषो भवेत् ।।९६।।

अशक्तानां समाधिशुश्रूषाक्रमः

अशक्तानां च बालानां विधवावृद्धयोषिताम् ।
सम्मार्जनोपलेपाद्यैर्वेदिशुश्रूषणं गतिः ।।९७।।
सेचयेद् ग्रीष्मकाले तु यथाशीतं भवेत् स्थलम् ।
जलेन वेदेः परितो यदि सालोक्यमिच्छति ।।९८।।

विधवावर्तनक्रमः

उपलिप्येत या वेदिं विधवा गोमयेन च ।
न वैधव्यमवाप्नोति जन्मकोटिशतेष्वपि ।।९९।।

यदि कोई स्वयं समाधि की पूजा करने में असमर्थ है, तो वह व्यक्ति अन्य धनी वीरशैवों को समझा कर उनसे समाधि की पूजा करावे। समाधि की पूजा करने वाले वे सब शिवस्वरूप हो जाते हैं।।९४।।

समाधि की पूजा में जो व्यक्ति समझ-बूझकर विघ्न उपस्थित कर ऐसा नहीं करने देता, वह अपने जीवन में ही चांडाल के समान हो जाता है और मरने के बाद घोर अन्धकार युक्त नरक में प्रवेश करता है।।९५।। सौ जन्मों तक वह श्वान योनि में रहकर, विष्ठा का कीड़ा बन कर रहता है, तब गांव का सूअर बन कर अन्त में दरिद्र मनुष्य बनता है।।९६।।

अशक्त व्यक्तियों की, बालकों की, विधवाओं की और वृद्ध स्त्रियों की सद्गति समाधि को साफ करने, लीपने आदि से होती है।।९७।। यदि कोई शिवभक्त सालोक्य पदवी को प्राप्त करना चाहता है, तो उसे गर्मी के दिनों में समाधि-स्थल जैसे शीतल हो सके, इस तरह से उसे चारों ओर जल से सींचना चाहिये।।९८।।

जो विधवा अपने शिवैक्य पति के समाधि स्थल को गोमय से लीपती है, वह बाद के करोड़ों जन्मों में कभी भी वैधव्य को प्राप्त नहीं होती।।९९।। अन्त में वह

---

१. पङ्क्तिरेषा नास्ति-ग.।

भूत्वा पुमानथ भवेच्छिवभक्तो न संशयः ।
न दरिद्रो न वै रोगी सर्वकल्याणभाग् भवेत् ।। १०० ।।
दरिद्रः पूजयेद् वेदिं भक्त्या संवत्सरावधि ।
आचन्द्रार्कं भवेल्लक्ष्मीश्चोत्तरोत्तरमुत्तमा ।। १०१ ।।
[1]स्त्रीणां च भर्तृशुश्रूषा नान्यो[1] धर्मो महेश्वरि ।
शिवार्चनं च सततं मृते भर्तरि भामिनि ।। १०२ ।।
या नारी भर्तृशुश्रूषां विहाय व्रततत्परा ।
सा नारी नरकं याति [2]हीत्याज्ञा च मया कृता ।। १०३ ।।
वीरशैवा[3]गमस्थाया भर्ता चैव परः शिवः ।
मृते भर्तरि सा साध्वी तस्याशु म्रियतेऽनुगा ।। १०४ ।।
यदि पुत्रवती सा चेन्न म्रियेत तदा सती ।
सा नारी लिङ्गपूजां च शिवचिन्तापरायणा ।। १०५ ।।
विरक्तानां लिङ्गवतामन्नदानपरायणा ।
भूशय्या नक्तभोजी च एकाहारा जितेन्द्रिया ।। १०६ ।।

पुरुष का रूप धारण कर निःसन्देह शिव की भक्ति में लीन हो जाती है। वह कभी दरिद्र और रोगी नहीं रहती, वह सर्वविध कल्याण का उपभोग करती है।।१००।। दरिद्र व्यक्ति इस समाधि की एक वर्ष पर्यन्त निरन्तर पूजा करता है, तो वह जब तक चन्द्र और सूर्य विद्यमान हैं, तब तक निरन्तर उत्तम लक्ष्मी से उत्तरोत्तर सम्पन्न होता जाता है।।१०१।। हे महेश्वरि! स्त्रियों के लिये अपने पति की सेवा से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है। हे भामिनि! पति की मृत्यु हो जाने पर उसे निरन्तर भगवान् शिव की उपासना में लग जाना चाहिये।।१०२।। जो नारी पति की सेवा को छोड़ कर शिवव्रत का पालन करने में तत्पर हो जाती है, वह नरक में जाती है। ऐसी स्पष्ट आज्ञा मैनें दी है।।१०३।। वीरशैव मत में दीक्षित नारी का पति शिवस्वरूप ही है। साध्वी स्त्री पति की मृत्यु होने पर उसके साथ ही सती हो जाती है।।१०४।। यदि वह साध्वी स्त्री पुत्रवती है, तब उसे अपने पति के साथ सहगमन नहीं करना चाहिये। वह सदाशिव का ध्यान करते हुए इष्टलिंग की उपासना करती रहे।।१०५।। वह साध्वी स्त्री विरक्त इष्टलिंगधारियों को सदा अन्नदान करती रहे। पृथ्वी पर सोवे और जितेन्द्रिय होकर रात्रि में एक बार भोजन करे।।१०६।।वह तीनों सन्ध्याओं में भस्म से स्नान करे, काषाय

---

१. धर्मो नान्यो- घ. ङ.। २. इत्या-घ. ङ.। ३. शैवगत-क. ख.।

1. "भर्तृसहिताया भर्तृविहीनायाश्च स्त्रिया धर्मः प्रोक्तः शैवे वायवीयसंहितायामुत्तरभागे एकादशाध्याये, श्लोकसंख्या ९१" इति-ख. टिप्पणी (पृ. २४१)।

त्रिकालं भस्मना स्नानं काषायाम्बरधारिणी ।
क्षमा दया सदा मौनं पुरुषालापवर्जनम् ॥ १०७ ॥
इन्दुवारे च विधिवदुपवासः शिवार्चनम् ।
शिवपञ्चाक्षरी[1] जाप्यं सत्कथाश्रवणं मुदा ॥ १०८ ॥
शिवभक्तेषु वात्सल्यं भूतिरुद्राक्षधारणम् ।
शिवतीर्थानुगमनं [2]शिवभक्तिपरा वसेत् ॥ १०९ ॥
पतिमन्यं न गन्तव्यं गता चेन्नरकं व्रजेत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तो[3] मया धर्मः सनातनः ॥ ११० ॥
शिवो ध्येयः सदा देवि जाप्यं चापि षडक्षरम् ।
इदमेव मया देवि गुह्यं पापप्रणाशनम् ॥
अन्त्येष्टेर्मोक्षदीपाख्यं वक्ष्यामि शृणु वल्लभे ॥ १११ ॥

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे [4]शिवाद्वैतसिद्धान्ते वीरशैवदीक्षा-प्रकरणे एकोनविंशः[5] पटलः समाप्तः[6] ॥ १९ ॥

वस्त्र धारण करे। क्षमा और दया भाव से परिपूर्ण हो मौन व्रत धारण करे तथा पुरुषों के साथ वार्तालाप न करे।।१०७।। सोमवार के दिन वह विधिपूर्वक उपवास रखे और शिव की पूजा करे। उसे सदा पंचाक्षरी मन्त्र का जप करना चाहिये और प्रसन्न मन से शिवकथाओं को सुनना चाहिये।।१०८।। शिवभक्तों के प्रति उसका वात्सल्य भाव रहना चाहिये। वह भस्म और रुद्राक्ष धारण करे, शिवतीर्थों की यात्रा करे और सदा शिवभक्ति में मगन होकर रहे।।१०९।। उसे अपना दूसरा पति नहीं करना चाहिये। यदि वह ऐसा करती है, तो उसका नरक में पतन होता है। इस तरह से संक्षेप में मैंने वीरशैव मत के अनुयायी पुरुषों और स्त्रियों के पालनीय सनातन धर्मों का वर्णन किया है।।११०।।

हे देवि! शिवभक्त को सदा शिव का ध्यान करना चाहिये और षडक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये। इतना ही मात्र परम गोपनीय, सभी पापों का नाश करने वाला धर्म मेरे द्वारा उपदिष्ट है। हे प्रिये! अब मैं तुम्हें मोक्षदीप नामक अन्त्येष्टि से संबद्ध विधि का उपदेश करूंगा।।१११।।

इस प्रकार शिवाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक पारमेश्वरतन्त्र का यह वीरशैव दीक्षा प्रकरण नामक उन्नीसवां पटल समाप्त हुआ।।१९।।

---

१. री जाप्या-क.। २. शिष्य-ग. घ.। ३. क्तं गुह्यं पापप्रणाशनम्-ग. घ.। ४. 'शिवा....रणे' नास्ति-ग. घ. ङ.। ५. विंशतिः-ग. घ. ङ.। ६. 'समाप्तः' नास्ति-क. ख. ङ.।

विंशः पटलः

दीक्षाभेदविधानम्

वेदवेदान्तसंवेद्य वेदान्तार्थप्रवर्तक ।
सच्चिन्मय सदानन्द शिव शम्भो नमोऽस्तु ते ।।१।।

देव्युवाच

नमः [१]कन्थानिषङ्गाय नमस्ते त्वष्टमूर्तये ।
हृदिस्थं संशयं छिन्धि शिष्याया मम ते प्रभो ।।२।।
शैवदीक्षाप्रकारो मे भवतैव[२] निरूपितः ।
तदवान्तरभेदाश्च विधानं लक्षणादिकम् ।।३।।
दीक्षाभेदाश्च सर्वेऽपि तारतम्यफलं त्वपि ।
श्रुतं त्वधिगतं पृष्टं मया देव त्वयाऽखिलम् ।।४।।
अनुशैवादिभेदानां षण्णां वीरान्तवर्त्मनाम् ।
एका चैवोदिता दीक्षा भेदस्तरतमत्वतः ।।५।।

वेद और वेदान्त से जानने योग्य, वेदान्त के अर्थ के प्रकाशक, सच्चिन्मय, सदा आनन्दमय हे शिव, शंभो! आपको प्रणाम।।१।।

देवी का प्रश्न

कन्था को अपने कन्धे पर तूणीर के समान धारण करने वाले अष्टमूर्ति शिव को मैं बार-बार प्रणाम करती हूँ। हे प्रभो! मैं आपकी शिष्या हूँ। मेरे मन में बैठे संशय को आप दूर कीजिये।।२।। शैव दीक्षा के विविध प्रकारों को आपने मुझे बताया है और उसके अवान्तर भेदों के विधानों और लक्षणों को भी सुनाया है।।३।। हे देव! दीक्षा के विभिन्न भेदों को और उनके तरतमभाव से प्राप्त होने वाले फलों को भी आपने बताया है। इस तरह से मेरे द्वारा पूंछे गये सभी प्रश्नों का आपने समाधान किया है और मैंने उनको भलीभाँति समझ लिया है।।४।। अनुशैव आदि वीरशैव पर्यन्त छः प्रकार की शैव दीक्षा की विधि एक समान है या इनमें तरतमभाव से कुछ भेद है?।।५।।

---

१. कन्धि-क. ख.। २. ता च-क.।

सम्भवेद् यदि चैवं वा विशेषं तत्र मे वद ।
समानायां तु दीक्षायां लिङ्गनाशे तनुं त्यजेत् ।। ६ ।।
विधिरेकस्य कथितः कथं वैषम्यमीश्वर ।
तस्यापि पूर्वमुदितः पन्थाः स्यान्निर्विशेषतः ।। ७ ।।
कृपां कुरु मयि स्वामिन् भक्तोद्धरणदीक्षित ।
भक्तायै चानुरक्तायै [1]प्रपन्नायै निरूपय ।। ८ ।।

ईश्वर उवाच

साधु पृष्टं त्वया देवि लोकोद्धरणहेतवे ।
श्रवणे कुशलाऽसि[2] त्वं दीक्षाभेदविधेरहो ।। ९ ।।
कर्तुं शैवमतोद्धारं प्रश्नोऽयमचलात्मजे ।
भ्रश्येयुरखिला लोकास्त्वया यदि न पृच्छ्यते ।। १० ।।
ज्ञात्वैतन्मतभेदं तु शैवदीक्षाव्रते यदि ।
प्रविशेन्मुच्यते लिङ्गी न चेदन्धंतमः स्फुटम् ।। ११ ।।

यदि उनमें भेद है, तो उनकी विशेषता को आप मुझे बताइये। यदि सबकी एक समान दीक्षा है, तो इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर अपने शरीर का त्याग कर देना चाहिये, यह विधि वीरशैव के ही लिये क्यों बताई गई है? हे ईश्वर! इस वैषम्य का कारण आप मुझे बताइये।।६-७।। यदि सब मत समान हैं, तो उन सब मतों के लिये यह बात कही जानी चाहिये थी। हे स्वामिन्! आप तो भक्तों का उद्धार करने का व्रत लिये हुए हैं। मेरे ऊपर आप कृपा करें। मैं आपकी शरण में आई हूँ, आपमें अनुरक्त और आपकी भक्त हूँ। मुझे ये सारी बातें आप समझाइये।।७-८।।

ईश्वर का समाधान

हे देवि! सामान्य जन के भी उद्धार के लिये यह तुमने अच्छा प्रश्न किया है। यह अच्छी बात है कि तुम दीक्षा-भेद की विधियों को सुनने में कुशल हो, अर्थात् सारी बातों को सावधानी से सुनती हो।।९।। हे हिमालयपुत्रि! शैव मत के उद्धार के लिये यह तुमने अच्छा प्रश्न किया है। यदि तुम यह न पूछती तो बिना जानकारी के सामान्य जन पथभ्रष्ट हो जाते।।१०।। शैव दीक्षा की विभिन्न विधियों को जानकर यदि कोई इष्टलिंगधारी इन मतों में प्रवेश करता है, तो वह मुक्त हो जाता है, अन्यथा वह अन्धकार में भटकता रह जायगा।।११।। इन मतों में परस्पर अनेक जानने योग्य

---

१. प्रस-ख.। २. पि-ख.।

महानस्ति विशेषोऽत्र संवेद्यः शृणु वक्ष्यते ।
गोपनीयं प्रयत्नेन यथा निधिरकिञ्चनैः ।।१२।।

अनधिकारिणे दीक्षाविधानं नोपदेश्यम्

वदेदनधिकाराय न कार्याकाङ्क्षिणे शिवे ।
नापरीक्ष्यापि षड्वर्षं न दत्तार्थाभिमानिने ।।१३।।
ज्ञानं विरक्तिं वैदुष्यमाचारं शान्तचित्तताम् ।
नैस्पृह्यमपरीक्ष्याशु शिष्यं [1]नानुगृहेद् गुरुः ।।१४।।
दीक्षाभेदविधानं तन्नोपदेश्यं विशारदैः ।

दीक्षाधिकारिलक्षणम्

वदेत् पूर्णाधिकाराय शान्ताय गुरुमानिने ।।१५।।
आस्तिकाय विशुद्धाय मद्भक्ताय मुमुक्षवे ।
जितेन्द्रियाय मृदवे सर्वत्रेश्वरभाविने ।।१६।।

अनुशैवादिभेदानां षण्णामेककलशा दीक्षा

या चोक्ता प्रथमं दीक्षा सैवैककलशान्विता ।
अनुशैवादिभेदानां षण्णामेका विधीयते ।।१७।।

विशेषताएं हैं, उन्हें मैं बता रहा हूँ। तुम सावधानी से सुनो। निर्धन व्यक्ति जैसे प्राप्त निधि की रक्षा करता है, वैसे ही इस विषय को भी प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये।।१२।।

हे शिवे! अनधिकारी व्यक्ति को, अपना मतलब निकालने वाले स्वार्थी को, दान देकर स्वयं अपने ही उसका प्रचार करने वाले को और छः वर्ष पर्यन्त परीक्षा किये बिना किसी भी व्यक्ति को यह विषय नहीं बताना चाहिये।।१३।। गुरु को चाहिये कि वह शिष्य के ज्ञान, विरक्ति, वैदुष्य, आचार, शान्तस्वभाव और निस्पृहता की परीक्षा कर उस पर अनुग्रह करे।।१४।। विद्वान् गुरु को चाहिये कि वह विभिन्न दीक्षाओं के विधान को जिस किसी को न बतावे।

पूर्ण अधिकार सम्पन्न, शान्तस्वभाव और गुरु का आदर करने वाले शिष्य को ही यह सब बताना चाहिये।।१५।। आस्तिक, विशुद्ध मन वाले, मुमुक्षु, जितेन्द्रिय, मृदुस्वभाव वाले और सर्वत्र ईश्वर की भावना करने वाले शिवभक्त को ही यह बतावे।।१६।।

पहले जिस दीक्षा का विधान किया है, एक कलश से सम्पन्न होने वाली दीक्षा अनुशैव आदि छः शैवों के लिये समान है।।१७।। हे पार्वति! वीरशैव मत के

---

१. चानु-क.।

त्रिविधस्याथ[1] भेदस्य दीक्षाभेदो विधीयते ।
वीरशैवमतस्यास्यं क्रमेण शृणु पार्वति ।।१८।।

वीरशैवमतप्रवेशाधिकारिलक्षणम्

निर्वर्त्य षड्विधं भेदमादितः क्रमशस्ततः ।
प्रकृष्टपुण्योपचयाद् यदि कैवल्यमिच्छति ।।१९।।
प्रविशेद् वीरशैवाख्ये मते मम महत्तरे ।
ज्ञात्वा गुरुमुखात् सम्यगधिकारं च लक्षणम् ।।२०।।
शास्त्रदृष्टिं[2] गुरोर्वाक्यं तृतीयं चात्मनिश्चयम् ।
लब्ध्वात्र स्थानसमतां मनीषी मनसा भवेत् ।।२१।।
सन्त्यज्य पशुवित्तेषु[3] देहप्राणादिषु स्पृहाम् ।
निर्विण्णो बन्धनाद्भीतो यदामुष्मिकमैहिकम् ।।२२।।
नित्यानित्यविवेकज्ञः षट्शमादिगुणान्वितः ।
मोक्षायत्तः परं बुद्ध्वा शिवं मामखिलं प्रभुम् ।।२३।।

तीनों भेदों के लिये शास्त्रों में दीक्षाविधि में भेद बताया गया है। उसे तुम क्रमशः सुनो।।१८।।

आदिशैव से क्रमशः षड्विध शैवों की दीक्षाविधि को सम्पन्न कर यदि कोई अपने प्रकृष्ट पुण्यों के फलीभूत होने के कारण कैवल्य पदवी को प्राप्त करना चाहता है, तो वह मेरे महनीय वीरशैव मत में गुरुमुख से उसके अधिकार और लक्षण का ज्ञान प्राप्त कर प्रवेश का प्रयत्न करे।।१९-२०।। [1]शास्त्रों में जो कुछ देखा गया है, गुरुवचन से उसने जो कुछ जाना है और बाद में उसने जो अपने विचार स्थिर किये हैं, इन तीनों उपायों से ज्ञान प्राप्त कर विद्वान् मनुष्य अपने मन में समतादृष्टि को स्थापित कर सकता है।।२१।। पशु, धन आदि में, देह, प्राण आदि में ममता को छोड़कर वैराग्यसम्पन्न, इस लोक और परलोक के बन्धनों से भयभीत, नित्य आत्मा और अनित्य शरीर में विवेक करने वाला, शम, दम आदि छः गुणों से सम्पन्न, मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा वाला सकल लोक के स्वामी मुझ शिव को परम तत्त्व के रूप में जानकर, सभी प्राणियों

---

१. स्यास्य-ख.। २. दृष्टं-क. ख.। ३. वित्तादि-ख.।

1. पृ. २६२ की टिप्पणी देखिये। गुरु, शास्त्र आदि की चर्चा आगे (पृ. ३४१, ३४४, ३५६, ३८७) भी है।

सर्वभूतदयोपेतः सर्वप्राणिष्वहिंसकः ।
कर्मणा मनसा वाचा सर्वमात्मवदीक्षयेत् ।। २४ ।।
त्यजेद् यत्नेन नेहेत पापं चापि यदृच्छया ।
नेच्छेतेन्द्रियसन्तृप्तिं न भवेत् सुखलम्पटः ।। २५ ।।
सहेत दुःखं दुर्धर्षं शीतवातोष्णसम्भवम् ।
सहेत मानावमानौ धिया देहात्मवादिनाम् ।। २६ ।।
नात्मस्वभावं[1] कुत्रापि परस्मै सम्प्रकाशयेत् ।
नानादोषगणान् क्वापि निन्देदपि न[2] संशयेत् ।। २७ ।।
देहेऽप्यनन्तकृच्छ्रेऽपि न तत्परिहरं स्मरेत् ।
अपि हस्तागतं[3] भोगं सर्वातिशयितं त्यजेत् ।। २८ ।।
विविक्तदेशमाश्रित्य सर्वभूतात्मभूतहृत् ।
ध्यायेन्मामनिशं यत्नादन्तर्बहिरनन्तरम्[4] ।। २९ ।।
[5]मितभाषी मिताहारो मितचित्तो मितक्रियः ।
भावयेदखिलं देवि मामेव परमेश्वरि[6] ।। ३० ।।

पर दया रखने वाला, किसी भी प्राणी को पीडा न पहुंचाने वाला शिवभक्त मन, वचन, कर्म से सारे जगत् को अपने ही समान समझे।।२२-२४।। अपने सारे दुर्गुणों को प्रयत्नपूर्वक छोड़ दे, अपने मन में भी कभी पापबुद्धि का संचार न होने दे, अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने की कभी इच्छा न करे और न कभी सुखोपभोग की लालसा ही रखे।।२५।। शीत, वात, उष्णता आदि से उत्पन्न दुर्धर्ष दुःखों को सहन करे। देह को ही आत्मा मानने वाले नास्तिकों के द्वारा किये गये मान और अपमान को धैर्यपूर्वक सहन करे।।२६।। दूसरों के सामने अपने स्वभाव को कभी प्रकाशित न करे। दूसरों के दोषों को कभी प्रकाशित न करे, उनकी निन्दा न करे और न किसी को संशय में ही डाले।।२७।। शरीर पर भयंकर कष्ट के आ पड़ने पर भी कभी उसके परिहार की चिन्ता न करे।। सांसारिक भोगों की प्राप्ति होने पर भी उस पर कभी दृढ आसक्ति न रखे।।२८।। सभी प्राणियों में मेरी ही आत्मा निवास करती है, ऐसी दृष्टि रखने वाला शिवयोगी एकान्त स्थान में रहता हुआ बाहर-भीतर सब जगह निरन्तर शिव का ही ध्यान करे।।२९।। हे देवि! हे परमेश्वरि! अपनी वाणी, आहार, चित्त और विविध क्रियाकलाप पर नियन्त्रण रखता हुआ वह शिवयोगी समस्त जगत् को शिवस्वरूप ही देखे।।३०।। शिश्न और

---

१. नानात्मभावं-क.। २. च-ग. घ. ङ.। ३. ते..... गे..... तां-क.। ४. निरन्तरम्-घ.। ५. नास्त्येष श्लोकः-ग. घ.। ६. रम्-ख. ङ.।

सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृषां[1] क्वचित् ।
स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यजेद् दूरत आत्मवान् ।। ३१ ।।
जीवेत नीरसान्नेन भैक्ष्येणैव यदृच्छया ।
इच्छेद् वै चैहिकीं प्रीतिं न च स्वप्नेऽपि कृच्छ्रगः ।। ३२ ।।
संग्रहं नैव कुर्वीत देहपोषणहेतवे ।
वृत्त्या जीवेत वा दैवाधीनया दृढनिश्चयः ।। ३३ ।।
इत्यादिसद्गुणोपेत उक्तलक्षणलक्षितः ।
सम्प्राप्तनिश्चयो धैर्याद् गुरुशास्त्रार्थनिश्चयैः ।। ३४ ।।
प्रवेष्टुमिच्छेत [2]ततो वीरशैवमतव्रते ।
[3]तस्य भेदविशेषोऽस्ति दीक्षाकर्मणि पार्वति ।। ३५ ।।
सामान्यवीरतुर्याख्यं त्रिविधं तन्मतं विदुः ।

सामान्यवीरयोस्त्रिकलशा दीक्षा

तत्राद्ययोर्द्वयोर्दीक्षा कलशत्रितयान्विता ।। ३६ ।।

उदर की तृप्ति में ही सदा लगे हुए दुर्जनों का कभी संग न करे। स्त्रियों का और स्त्री-संगियों का साथ भी आत्मनिष्ठ व्यक्ति दूर से ही छोड़ दे।।३१।। बिना प्रयत्न के प्राप्त भिक्षा के स्वादरहित अन्न को खाकर ही जीवित रहे। भयंकर कष्ट की स्थिति उत्पन्न होने पर भी स्वप्न में भी किसी प्रकार के ऐहिक सुख की अभिलाषा न करे।।३२।। अपने शरीर के भरण-पोषण के लिये कभी भी संग्रह न करे। यह दृढनिश्चयी योगी भाग्यवश प्राप्त वृत्ति से ही अपना जीवनयापन करे।।३३।। इस तरह के सदगुणों से सम्पन्न और पूर्वोपदिष्ट वीरशैव के लक्षणों से युक्त व्यक्ति गुरु, शास्त्र और अपनी प्रतिभा से अभीष्ट अर्थो का निश्चय धैर्यपूर्वक दृढता के साथ कर लेने के उपरान्त ही वीरशैव मत में उपदिष्ट व्रत का सदा-सदा के लिये पालन करने के लिये इस मत में जो प्रवेश लेना चाहता है, हे पार्वति! उसके लिये दीक्षा के कुछ विशेष नियम हैं।।३४-३५।।

इस वीरशैव मत के सामान्य वीरशैव, विशेष वीरशैव तथा निराभारी (तुर्य) वीरशैव नामक तीन भेद हैं। इनमें से प्रथम दो की दीक्षा तीन कलशों से सम्पन्न होती है।।३६।।

---

१. नृणां-क.। २. सदा-क.। ३. तत्र-घ.।

पञ्चब्रह्मानुवाकश्च मनुः पञ्चाक्षरो ध्रुवम् ।
इतरौ मध्यकुम्भस्य दक्षिणोत्तरयोर्न्यसेत् ।। ३७ ।।
शतरुद्रीयसूक्तेन [१]निधनेत्यनुवाकतः ।
पञ्चानुवाकपञ्चार्णप्रणवैरभिषेचयेत् ।। ३८ ।।
सज्जिकागुणवस्त्रादिनाशेऽन्यत् पुनराचरेत् ।
[२]लिङ्गनाशे पुनर्लिङ्गमन्यत् सर्वं यथा पुरा ।। ३९ ।।

तुर्यवीरशैवस्य पञ्चकलशा दीक्षा

यदि तुर्याभिधे शैवे मते लिङ्गिन आदरात् ।
कुर्यात् तस्य गुरुः पञ्चकलशं दैक्षिकं विधिम् ।। ४० ।।
शतरुद्रीयपञ्चार्णानुवाकः प्रणवो मनुः ।
पूजानुवाकस्तोत्रादिः सर्वत्रैष विधिः स्मृतः ।। ४१ ।।
पूजायां शतरुद्रीयैरनुवाकैर्निषेचनम् ।
सह तारेण मूलेन पट्टबन्धं तु लिङ्गिनः ।। ४२ ।।

इनके लिये पंचब्रह्म अनुवाक और पंचाक्षर मन्त्र का ही निश्चित रूप से विधान है। प्रथम कलश बीच में और उसके उत्तर और दक्षिण में अन्य दो कलश की स्थापना की जाती है।।३७।। शतरुद्रीय सूक्त (रुद्राध्याय) से, [1]'निधन' अनुवाक से, पंचब्रह्म अनुवाकों से, पंचाक्षर मन्त्र से अथवा प्रणव से अभिषेक करना चाहिये।।३८।। सज्जिका, गुण, वस्त्र आदि के नष्ट हो जाने पर नई सज्जिका, गुण अथवा वस्त्र का ग्रहण कर लेना चाहिये और इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर भी नया इष्टलिंग धारण किया जा सकता है। अन्य सारी विधियों का अनुष्ठान पहले बताई गई पद्धति से करे।।३९।।

यदि कोई इष्टलिंगधारी वीरशैव मत की दीक्षा लेना चाहता है, तो उसे गुरु आदरपूर्वक-पांच कलशों की दीक्षा दे।।४०।। शतरुद्रीय, पंचाक्षर मन्त्र, पंचानुवाक, प्रणव मन्त्र आदि से तथा पूजानुवाक, स्तोत्र आदि से यह दीक्षाविधि सम्पन्न की जाती है। सर्वत्र इसी विधि का अनुसरण करना चाहिये।।४१।। शिवपूजा के समय शतरुद्रीय एकादश अनुवाकों से अभिषेक करना चाहिये। प्रणव सहित मूल पंचाक्षरी मन्त्र के उच्चारण के साथ उसको उष्णीष-धारण (पट्टबन्ध) कराना चाहिये।।४२।। सप्रणव मूल

---

१. विधिने-ख. ङ.। २. पङ्क्तिद्वयं नास्ति-ग. घ.।

1. "निधनपतये नमः। निधनपतान्तिकाय नमः" इत्यादि अनुवाक महानारायणोपनिषत् (१४.१) में देखिये।

सहतारेण मूलेन होमकर्म समापयेत्।
दीक्षाभिषेकं निर्वर्त्य पट्टबन्धादनन्तरम् ।। ४३ ।।
जपेदष्टोत्तरशतं मूलमन्त्रं सतारकम्।
गुरुपूजां च तेनैव यदि नित्यार्चनं त्वपि ।। ४४ ।।

तुर्यवीरशैवो विधिनिषेधातीतः

नैमित्तिकं न[1] वै कार्यं न कर्मादिकतापि वा।
न प्रायश्चित्तमौन्नत्यं तुर्यशैवस्य लिङ्गिनः ।। ४५ ।।
[2]नैव[3] हर्षविषादाभ्यामालस्यं च विकारता।
नार्थे नष्टे तु शोचेत न लाभे हर्षमाव्रजेत् ।। ४६ ।।
विविक्तं देशमाश्रित्य व्यक्तभोगपरिग्रहः।
त्यक्ताशो निर्भयः शान्तो मौनवान् विजितेन्द्रियः ।। ४७ ।।
स्मरणध्यानसम्पन्नश्चाभ्यसेन्नित्यमासनम् ।
साधयेत् संग्रहं चैतच्छक्त्या चोच्छ्वासधारणम् ।। ४८ ।।

पंचाक्षरी मन्त्र से ही हवन कर्म समाप्त करना चाहिये। पट्टबन्ध के अनन्तर दीक्षा और अभिषेक की सारी विधि को पूरा करने के बाद सप्रणव मूल पंचाक्षरी मन्त्र का १०८ बार जप करे। सप्रणव मूल पंचाक्षरी मन्त्र से ही गुरु की भी पूजा करे और तब नित्यार्चन की विधि का अनुष्ठान करे।।४३-४४।।

वह तुर्य वीरशैव नित्य के समान नैमित्तिक कृत्यों का भी यथा अवसर अनुष्ठान करे, किन्तु काम्य कर्म का अनुष्ठान कभी न करे, क्योंकि वह नित्य और नैमित्तिक कर्मों को भी कर्तव्य बुद्धि से ही करता है, फल की अभिलाषा से नहीं। तुर्य वीरशैव लिंगी को इन कर्मों से न तो कोई प्रायश्चित्त ही करना पड़ता है और न इनसे उसकी कोई अभिवृद्धि ही होती है।।४५।। वह तुर्य वीरशैव हर्ष और विषाद से आलस्य तथा अन्य मानसिक विकारों से दूर रहता है। अर्थ के नष्ट होने पर न तो वह दुःखी होता है और न किसी वस्तु की प्राप्ति पर वह हर्ष से ही आविष्ट होता है।।४६।। वह तुर्य वीरशैव एकान्त स्थान में निवास करता हुआ, सभी प्रकार के भोग और परिग्रह का त्याग कर सारी अभिलाषाओं को छोड़कर निर्भय, शान्त, मौन व्रत धारण कर सारी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर भगवत्स्मरण और ध्यान में लीन होकर नित्य आसन का अभ्यास करे। आसन के सिद्ध हो जाने पर तब यथाशक्ति श्वासनिरोध (प्राणायाम) का अभ्यास करे।।४७-४८।। यदि उसकी इच्छा हो तो रात-दिन में अनायास उत्पन्न होने

---

१. च-क. ग. घ.। २. श्लोकोऽयं नास्ति-ग. घ.। ३. वै-ख.।

यदीच्छा पूजयेल्लिङ्गं [१]जडताहरणाय तु।
भक्त्या शास्त्रं गुरोः प्राप्तमर्थे पूर्णं विचारयेत् ।।४९।।
संस्तुवीत गुरुं नित्यं त्रिकालं मां महेश्वरम्।
सर्वमात्मतया[२] पश्येदुच्चमध्यमनीचकम् ।।५०।।
मयीक्षिताखिलं देवि मदात्मनि विभावयेत्।
मदात्मजगतां भेदेऽप्यभेदेन विनिश्चयेत् ।।५१।।

तुर्यवीरशैवचर्या

नान्तर्ग्रामं विशेल्लिङ्गी तुर्यशैवमतः[३] समः।
वन एव वसेन्नित्यं न स्त्रीणां मुखमीक्षयेत् ।।५२।।
नात्मानं दर्शयेत् स्त्रीणां न भावं च प्रकल्पयेत्।
[1]नोद्विजेत जनाल्लिङ्गी जनं चोद्वेजयेन्न तु ।।५३।।
हर्षामर्षभयोद्वेगविमुक्तः समदृक् शुचिः।
तुर्यवीरमतं प्राप्य स भवेदहमेव हि ।।५४।।

वाले दोषों की शान्ति के लिये वह इष्टलिंग की पूजा करे। शास्त्र के अभ्यास से और गुरु की सेवा से प्राप्त ज्ञान के विषय में भक्तिपूर्वक पर्याप्त विचार करे।।४९।। अपने गुरु की नित्य सेवा करे और मुझ महेश्वर का तीनों संध्याओं में ध्यान करे। अपने से उच्च, मध्यम और नीच स्थिति वाले सभी जीवों को अपने ही समान माने।।५०।। हे देवि! मुझ में ही सारे जगत् को देखे, मेरे में ही उन सबकी भावना करे। मुझमें, जीवात्मा में और जगत् में भेद के दिखाई देने पर भी सदा अभेद की ही भावना करे।।५१।।

निराभारी वीरशैव मत में प्रविष्ट सर्वत्र समान दृष्टि वाला लिंगी कभी ग्राम में प्रवेश न करे, वह वन में ही सदा निवास करे और स्त्रियों का मुख कभी न देखे।।५२।। वह स्वयं भी स्त्रियों के सामने न जाय और न अपना कोई भाव ही उनके सामने प्रकट करे। वह निराभारी वीरशैव किसी भी मनुष्य से उद्विग्न न हो और न किसी अन्य व्यक्ति को ही उद्विग्न करे।।५३।। हर्ष, रोष, भय, उद्वेग आदि विकारों से दूर रहता हुआ यह समदृष्टि पवित्र भाव से तुर्य वीरशैव मत को स्वीकार करने वाला शिवयोगी साक्षात् शिव ही हो जाता है।।५४।।

---

१. जामिता-क., चामिता-घ. ङ.। २. मयं-ख.। ३. मतोत्तमः-ख. ग. ङ.।

1. भगवद्गीता (१२.१५) से तुलना कीजिये।

तुर्यवीरशैवो लिङ्गनाशे तनुं त्यजेत्

एतादृशाधिकारस्य तुर्यवीरस्य लिङ्गिनः ।
प्रमादाल्लिङ्गनाशे तु सह तेन तनुं त्यजेत् ।।५५।।
नित्यं सत्यं[१] भवेत् कर्म निद्रासनविसर्जनम् ।
मामेव चिन्तयेन्नूनं जडान्धबधिरोपमः ।।५६।।

अष्टाङ्गमैथुनवर्जनम्

[1]स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च ।।५७।।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ।।५८।।
अन्वीक्षितात्मनो [२]बन्धं मोक्षं मदनुचिन्तया ।
बद्ध(न्ध) इन्द्रियविक्षेपो मोक्ष एषां प्रसंयमः ।।५९।।
न कुर्यात् प्राणिनो दुःखं स्वयं दुःखी न चान्यतः ।
नोत्तिष्ठेत न वन्देत न स्तुवीतापि चोत्तमम् ।।६०।।

इस तरह के उच्च अधिकार से सम्पन्न यह निराभारी वीरशैव प्रमादवश इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर तत्काल प्राणत्याग कर दे।।५५।।यह सही है कि निद्रा, भोजन, मल-मूत्र त्याग आदि शारीरिक कर्म नित्य होते रहेंगे, किन्तु जडबुद्धि, अन्धे और बहिरे व्यक्ति के समान इन सबकी उपेक्षा कर वह तुर्य वीरशैव निश्चित रूप से सदा मेरा ही चिन्तन करता रहे।।५६।।

स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रियानिर्वृति— ये आठ मैथुन के अंग होते हैं, ऐसा मनीषियों का विचार है। इसके विपरीत आठ लक्षणों वाला ब्रह्मचर्य व्रत कहलाता है, अर्थात् मैथुन के आठ अंगों का परित्याग ही सही ब्रह्मचर्य है। निराभारी वीरशैव को इस ब्रह्मचर्य व्रत का परिपालन करना चाहिये।।५७-५८।। शिव का स्मरण करते हुए ऐसे साधक को मोक्ष का अपने बन्धु के रूप में वरण करना चाहिये। यहां इन्द्रियों का विक्षेप (स्वच्छन्दता) ही बन्धन है और इनका निरोध ही मोक्ष कहलाता है।।५९।। वह निराभारी वीरशैव किसी भी प्राणी को दुःख न पहुंचावे और न किसी दूसरे से स्वयं अपने ही दुःखी हो। किसी श्रेष्ठ पुरुष के आने पर भी उसे उत्थान न दे और उसकी वन्दना तथा स्तुति भी न करे।।६०।। तुर्य (निराभारी) वीरशैव

---

१. सर्वं-ख.। २. बन्धुं-क., बन्धु-ग. घ.।

1. दक्षस्मृति (७.३१-३२) में भी ब्रह्मचर्य का यह लक्षण इसी रूप में मिलता है।

न दद्यान्न च गृह्णीयात् तुर्यशैवव्रतोत्तमः ।
मध्ये दिक्षु च संस्थाप्य कलशानां च पञ्चकम् ।। ६१ ।।
[१]आविष्टिऋत्विजस्तोकानुवाकशतरुद्रियैः ।
मूलेन क्रमशोऽनेन मध्यमादिप्रदक्षिणम् ।। ६२ ।।

होमकर्मविधानम्

पूजयित्वा यथापूर्वं विशेषो होमकर्मणि ।
शिवाग्निजननं कुण्डमेखलादेवतार्चनम् ।। ६३ ।।
[1]ऋत्विजः पञ्च कुर्वीत मूलेनैव सतारतः ।
न गुरुर्दैक्षिकं कर्म क्वचिदप्याचरेद् धिया[२] ।। ६४ ।।
कारयेदुपदेष्टृत्वाद् ऋत्विग्भिरपि पञ्चभिः ।
गुर्वाचार्यावुभौ कुम्भावात्मवामीति[३] पञ्चकम् ।। ६५ ।।

नामक सर्वश्रेष्ठ व्रत को स्वीकार करने वाला न किसी को कुछ दे और न किसी से कुछ ग्रहण ही करे। वह एक कलश मध्य में और अन्य चार कलशों को चार दिशाओं में रख दीक्षा ले।।६१।। [2]आविष्टि, ऋत्विजः और स्तोक नामक अनुवाकों, शतरुद्रीय और मूल पंचाक्षरी मन्त्र— इनसे क्रमशः मध्यम कलश से प्रारंभ कर प्रदक्षिणा क्रम से पांच कलशों की पूर्ववत् पूजा करनी चाहिये।।६२।।

होम कर्म में यहां कुछ विशेषता है। शिवाग्नि को उत्पन्न कर कुण्ड, मेखला और देवताओं की पूजा की जाती है।।६३।। यहां पांच ऋत्विजों का वरण कर उनकी सप्रणव मूल मन्त्र से पूजा करे। गुरु यहां दीक्षा की विधि का स्वयं अनुष्ठान न करे, किन्तु अपने ज्ञान का उपयोग कर पांचों ऋत्विजों को सारी विधि बताते हुए उनसे सारा कार्य करावे। गुरु और आचार्य के दो कुम्भों की स्थापना कर [3]'आत्मवामी' संज्ञक पांच मन्त्रों से उनकी पूजा करे।।६४-६५।। मध्य कलश की दक्षिण मार्ग से प्रदक्षिणा

---

१. अविच्छि-घ.। २. अत्र ६६ संख्याकः श्लोकः स्थापितः-ग. घ.। ३. वा इति-ग. घ.।

1. "ऋत्विक्शब्दः— "अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान् मखान्। यः करोति वृतो यस्य स तस्यार्त्विगिहोच्यते।।" (२.१४३) इति मनूक्तेः स्वानुष्ठेयवैदिकादिकर्मकरे। आचार्यपदार्थस्तूक्तोऽन्यत्र- "आम्नायतत्त्वविज्ञानाच्चराचरसमानतः। यमादियोगसिद्धत्वादाचार्य इति कथ्यते।।" (इति)। मनुस्मृतौ— "उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते।।" (२.१४०)। सिद्धान्तशिखामणौ— "आचिनोति च शास्त्रार्थानाचारे स्थापयत्यलम्। स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन चोच्यते।।" (१५.९) इति- ख. टिप्पणी (पृ. २४६)।

2. आविष्टि, ऋत्विजः, स्तोक— इन अनुवाकों का परिचय तैत्तिरीय ब्राह्मण (२.८.७.१; २.४.७.१; ३.६.७.११) से क्रमशः प्राप्त कीजिये।

3. 'आत्मन् वान्' इत्यादि पांच मन्त्रों का परिचय तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.७.५.१) से प्राप्त कीजिये।

मध्यं दक्षिणमार्गेण प्रादक्षिण्येन पूजयेत् ।
आचार्यः स्वात्मनः कुम्भं गुरोस्तस्य नियोजयेत् ।। ६६ ।।
उपकुम्भे ततः शिष्यं लिङ्गिनं त्वभिषेचयेत् ।
न स्वीकुर्याद् गुरुः शिष्याद्दक्षिणार्थं वसु क्वचित् ।।
अस्ति चेद् भूतिविश्राण्यस्त्यक्तसङ्गः सुखी भवेत् ।। ६७ ।।
यदि प्रमादाद् विषये तुर्यलिङ्गी विशिष्यते ।
आरूढपतितं मूढं धिक् तं मानुषगर्दभम् ।। ६८ ।।

दीक्षामवाप्य तुर्यवीरशैवः सुखं विचरेत

एवं व्रतधरस्तुर्यशैवलिङ्गी महत्तरः ।
दीक्षाविशेषमारभ्य विचरेत् सर्वतः सुखी ।। ६९ ।।
न तस्य कर्तृता कर्म करणीयं च तत्फलम् ।
तद्भोगस्त्वनुषङ्गो वा किञ्चिदस्ति मदात्मनः ।। ७० ।।
विचरेत यथाकामं कामिनीकामकण्टकैः[१] ।
दुर्गे विवेकवैराग्यपादरक्षान्वितः पथि ।। ७१ ।।

के क्रम से पूजा करे। आचार्य अपने कलश को ही गुरु को समर्पित कर दे।।६६।। इसके बाद उपकुम्भ से इष्टलिंगधारी शिष्य का अभिषेक करे। गुरु शिष्य से दक्षिणा के रूप में धन स्वीकार न करे। यदि उसके पास पर्याप्त धन है, तो आसक्ति का त्याग कर सुखी रहे।।६७।। तुर्य वीरशैव यदि प्रमादवश विषयों में आसक्त हो जाता है, तो वह आरूढपतित कहलाता है। मनुष्य के रूप में गर्दभ जैसा आचरण करने वाला ऐसा मूढ व्यक्ति धिक्कार का पात्र हो जाता है।।६८।।

इस प्रकार शैव व्रत का पालन करने वाला तुर्य वीरशैव महात्मा कहलाता है। वह इस विशेष दीक्षा को प्राप्त कर सर्वत्र सदा सुखपूर्वक विचरण करे।।६९।। उसमें न कर्तृता रहती है, न करणीय कर्म रहता है और न उसमें फल की अभिलाषा ही रहती है। शिवस्वरूप उस तुर्य वीरशैव के मन में भोग की अभिलाषा या उससे किसी प्रकार का लेशमात्र भी लगाव नहीं रहता।।७०।। दुर्गम मार्ग में कण्टक आदि से अपने पैरों की रक्षा के लिये जैसे जूते पहने जाते हैं, वैसे ही इस दुर्गम निराभारी वीरशैव व्रत (मार्ग) पर चलते समय कामिनी और कामरूपी कण्टकों से अपनी रक्षा के लिये विवेक और वैराग्य का सहारा ले।।७१।। शिवानुग्रह रूपी वज्रसदृश कवच

१. कः-ख.।

मदनुग्रहसद्वज्रतनुत्रपरिरक्षितः ।
प्रबुद्धश्चेदचिरादेव [१]मतस्मृत्या मतं त्यजेत् ।। ७२ ।।
यदि बुद्ध्या समारूढः पतेद्विषय आतुरः ।
तद्वशादान्ध्यमासाद्य दुःखाद्दुःखं समुत्तरेत् ।। ७३ ।।
अणिमाद्यखिला भोगा तव लीलाविजृम्भिताः ।
षड्भिर्हता विकृतिभिरतो मामेव संश्रयेत् ।। ७४ ।।
राजसेन विकारेण भिन्ना ह्यमृतवद् विषाः ।
[२]मायासम्पाद्यमानस्य कालक्षेपणहेतवः ।। ७५ ।।
त्यक्त्वा विलोक्य विरमेदिहामुत्र चिकीर्षितात् ।
ध्वस्तसंकल्पविज्ञानः सर्व आत्मानमीक्षयेत् ।। ७६ ।।
निर्विघ्नेन वरारोहे मम लोकं यदीच्छति ।
सुखेन कर्तुमलसो भवेन्मदनुचिन्तने ।। ७७ ।।

को पहन कर यह तुर्य वीरशैव शीघ्र ही इस मत के माहात्म्य से मुक्त हो जाता है। वह अन्य मतों को छोड़ देता है।।७२।। बुद्धिपूर्वक इस मत में प्रवेश के बाद भी यदि कोई विषयों के वशीभूत हो जाता है, तो वह इसके कारण अन्धकार में डूब जाता है। तब वह बहुत कठिनाई से ही दुःखसागर से बाहर निकल सकता है।।७३।। अणिमा आदि सभी सिद्धियां भगवती की लीला का ही विस्तार हैं। ये सभी सिद्धियां काम, क्रोध आदि [1]छः प्रकार की विकृतियों से परिपूर्ण हैं, अतः इनसे मुक्ति पाने के लिये शिव की ही शरण ले।।७४।। ये सभी सांसारिक सिद्धियां प्रकृति के राजस नामक विकार से उसी तरह मिली हुई हैं, जैसे कि अमृत विष से मिला हुआ हो। माया से मोहित प्राणियों के समय व्यतीत करने के ये मात्र साधन हैं।।७५।। ऐसा समझ कर इन सिद्धियों का परित्याग कर दे, ऐहिक और पारलौकिक भोगों से विरक्त हो जाय। समस्त सांसारिक संकल्पों और विज्ञानों का परित्याग कर समस्त जगत् को आत्ममय (शिवमय) देखे।।७६।। हे वरारोहे! यदि कोई व्यक्ति बिना विघ्न के सुखपूर्वक शिवलोक को प्राप्त करना चाहता है, तो वह बिना आलस्य के प्रतिदिन शिवस्मरण में लग जाय।।७७।।

---

१. मतं स्मृत्वा-ख.। २. मया-घ. ङ.।

1. काम, क्रोध आदि छः विकारों की चर्चा पहले (६.७१) आ चुकी है।

मनोवाक्कायकृत्येषु जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
मदनुस्मरणं मुक्त्वा नयेत् कालमपि क्षणम् ॥ ७८ ॥
[१]समाहितो दूरगतश्रमः सुखी
निरस्तसर्वैषण आत्मनिश्चयः ।
उदीरितं मार्गमिमं समाश्रयेद्
[1]नान्योऽस्य पन्था अयनाय विद्यते ॥ ७९ ॥

देव्युवाच

स्वसृष्टच्यवनसंहारहारदेहावभासिने ।
सांख्याभासाय सांख्याय भासयेश नमोऽस्तु ते ॥ ८० ॥
विधानमुदितं सर्वं तुर्यशैवस्य लिङ्गिनः ।
इतरेषां च विश्वेश विशेषस्तत्र पृच्छ्यते ॥ ८१ ॥

मतेषु तारतम्यविषयकः प्रश्नः

भवन्मते [२]प्रतिष्ठस्याऽनादिशैवक्रमेण वै ।
तुर्यशैवप्रतिष्ठस्य नान्यथा मुक्तिराप्यते ॥ ८२ ॥

मन, वचन और शरीर से सम्पन्न होने वाले सभी कार्यों में, जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति दशाओं में शिवस्मरण के सिवाय अन्य किसी कार्य में एक क्षण भी समय नष्ट न करे।।७८।। समाहित चित्त, परिश्रम से कभी न घबराने वाला, सभी एषणाओं से मुक्त, दृढ निश्चय वाला, आनन्दविभोर व्यक्ति यहां बताये गये मार्ग का ही अनुसरण करे। इसकी मुक्ति के लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है।।७९।।

देवी का प्रश्न

स्वयं ही जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार की प्रक्रिया को निरन्तर चलाते हुए उसी को हार के रूप में अपने देह पर धारण करने वाले सांख्य दर्शन की पद्धति से भासित होने वाले, ज्ञानस्वरूप, प्रकाशस्वरूप हे भगवन्! मैं आपको प्रणाम करती हूँ।।८०।।हे विश्वेश! इष्टलिंगधारी तुर्य वीरशैव की सारी चर्या का विधान आपने सुनाया। इनकी अपेक्षा अन्य मतों की विशेषता को मैं जानना चाहती हूँ।।८१।।

अनादिशैव मत के क्रम से वीरशैव मत में प्रविष्ट व्यक्ति जब तक तुर्य वीरशैव मत का आश्रय नहीं लेता, तब तक उसे मुक्ति नहीं मिल सकती।।८२।। हे प्रभो! उक्त

---

१. उत्तरार्धः पूर्वार्धत्वेन स्थापितः-ग. घ.। २. प्रविष्टस्य-ख. ङ.।
1. "नान्यः पन्था विद्यते अयनाय" (श्वेता.३.८) मन्त्र से तुलनीय।

यद्युक्तक्रमतो वापि गच्छतस्तन्मते प्रभो ।
मुक्तिर्वा पतनं बन्ध उत्तरोत्तरवर्त्मना[१] ॥८३॥
भेदकल्यनमासाद्य तारतम्येन शङ्कर[२] ।
दीक्षासामान्यमादिश्य त्वदभिप्राय उच्यताम् ॥८४॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि प्रश्नः साधु कृतस्त्वया ।
शक्ताशक्तानुसारेण तारतम्येन पार्वति ॥८५॥

अनादिशैवः क्रमेण व्युत्क्रमेण वा तुर्यपदमधिगच्छति

तत्प्राप्तस्यापि चैकत्वे मतभेद उदाहृतः ।
क्रमो विवक्षितो नैव धीरस्य मम चेतसः ॥८६॥
शक्तिश्चेद् व्युत्क्रमेणापि शक्यते गन्तुमीश्वरि ।
मनोधैर्यं विरक्तिश्च ज्ञानं भक्तिश्च पूजनम् ॥८७॥

पद्धति से आपके विभिन्न मतों का उत्तरोत्तर आश्रय लेकर क्रमशः आगे बढते हुए व्यक्ति के लिये मुक्ति, नरकपतन या अन्य सांसारिक बन्धनों की क्या व्यवस्था है।।८३।। हे शंकर! इनमें परस्पर भेद की कल्पना कर फल के तारतम्य की व्यवस्था कैसे हो सकती है? जब कि सामान्य रूप से दीक्षा सबको एक सी दी जाती है। इसका अभिप्राय आप मुझे समझाइये।।८४।।

ईश्वर का उत्तर

हे देवि! तुमने अच्छा प्रश्न किया है। इसका समाधान मैं करूगाँ, तुम उसे सुनो! हे पार्वति! व्यक्ति की शक्ति के अनुसार ही फल में यह तारतम्य आता है।।८५।।

प्राप्य वस्तु (शिवपद) की एकता के होने पर भी उसके साधनों की भिन्नता के कारण मतभेद हो जाते हैं, किन्तु स्थिरचित्त धैर्यसम्पन्न व्यक्ति के लिये यह क्रम आवश्यक नहीं है।।८६।। हे ईश्वरि! शक्तिसम्पन्न व्यक्ति बिना क्रम के भी आगे बढ़ सकता है। मन की स्थिरता, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति, शिवपूजन में निष्ठा, श्रद्धा, सत्याचरण, प्रियभाषण—

---

१. नाम्-ग. घ.। २. चेश्वर-ख. ग. घ. ङ.।

श्रद्धा सत्यं प्रियोक्त्यादि सर्वेषां सममेव हि ।
मनसो धैर्यमात्रेण दीक्षाभेदः कुतो भवेत् ।।८८।।

अनादिशैवादिमतानां परस्परं वैशिष्ट्यम्

तुर्यस्य लिङ्गनाशे तु देहत्यागो विशेषतः ।
अनादिशैवनिष्ठस्य स्वपुण्योपचयाद् यदि ।।८९।।
श्रद्धादानदयाभक्तिदार्ढ्यैस्तत्रैव मुच्यते ।
आद्यादिमतभेदास्तु तत्राप्यर्थाय कल्पिताः ।।९०।।
शक्तोऽप्युत्क्रमतश्चापि ह्यशक्तः क्रमतो व्रजेत् ।
अन्यथाप्युत्क्रमाद् गत्वा पतेल्लिङ्गी महाभये[१] ।।९१।।
तदाश्रयेद् गुरुं नित्यं मत्कैवल्यं यदीच्छति ।
ज्ञानकर्मानुसारेण विधिरेष उदाहृतः ।।९२।।

ये सब गुण समान रूप से सभी में विद्यमान रहते हैं। केवल मन की स्थिरता के आधार पर दीक्षा में भेद संभव नहीं हो सकता।।८७-८८।।

तुर्य वीरशैव के लिये विशेष नियम यह है कि इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर उसे देहत्याग कर देना चाहिये। अनादिशैव मत में निष्ठा वाला व्यक्ति यदि अपने पुण्य में वृद्धि के कारण श्रद्धा, दान, दया और दृढ भक्ति से सम्पन्न हो जाय, तो वह इसी जन्म में मुक्त हो जाता है। इसी तरह से आदिशैव आदि मतभेद भी अपने-अपने अभीष्ट प्रयोजनों की सिद्धि में सहायक होते हैं।।८९-९०।। समर्थ व्यक्ति बिना क्रम के भी आगे बढ़ सकता है, किन्तु असमर्थ व्यक्ति क्रम से ही आगे बढ़े। सामर्थ्य के अभाव में यदि वह लिंगी बिना क्रम के ही आगे बढ़ता है, तो अवश्य ही इस महान् भयजनक संसार-सागर में डूबता-उतराता रहता है।।९१।। यदि कोई शिवकैवल्य को प्राप्त करना चाहता है, तो वह सबसे पहले गुरु की शरण में जाय और [1]ज्ञान एवं कर्म के समुच्चय के सिद्धान्त का सहारा ले। इसकी यही एकमात्र विधि है।।९२।। इष्टलिंग, सज्जिका आदि के नष्ट हो जाने पर दीक्षापूर्वक उनका पुनः

१. भवे-कटि.।

1. इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत आगम को भी ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद अभिप्रेत है।

लिङ्गसज्जादिनाशे तु दीक्षा तत्तत्पुनः कृतिः ।
लिङ्गार्चनं जपस्तोत्रं गुरुपादोपसेवनम् ।। ९३ ।।
स्मरणं मत्कृतिध्यानं प्रायश्चित्तमुदाहृतम् ।
तुर्यस्य लिङ्गनाशे तु देहत्यागो हि तत्क्षणम् ।। ९४ ।।
मत्कैवल्यमवाप्नोति नान्यथार्थाभिलाषिणः ।
त्वत्पृष्टमीरितं सर्वं भवता(त्या) परमेश्वरि ॥
दीक्षाभेदादिकं स्पष्टं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।। ९५ ।।

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे [1]शिवाद्वैतसिद्धान्ते वीरशैव-दीक्षाप्रकरणे विंशः पटलः ।।

निर्माण करना चाहिये। लिंग की पूजा, मूल मन्त्र का जप, स्तोत्रपाठ और गुरु की सेवा यह सब उसके लिये आवश्यक कर्तव्य है।।९३।। भगवत्स्मरण और मेरी लीलाओं का ध्यान यही सामान्य शैव के लिये प्रायश्चित्त के रूप में पर्याप्त है, किन्तु तुर्य वीरशैव के लिये इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर प्रायश्चित्त के रूप में तत्काल देहत्याग ही विहित है। ऐसा करने पर अन्य किसी वस्तु की अभिलाषा न रखने वाला अवश्य ही शिवकैवल्य को प्राप्त करता है।।९४।। हे परमेश्वरि ! तुम्हारे द्वारा पूछी गई सारे बातें, दीक्षाभेद आदि के लक्षण मैंने स्पष्ट रूप से तुम्हें बता दिये हैं। अब आगे पुनः तुम क्या सुनना चाहती हो।।९५।।

इस प्रकार शिवाद्वैन सिद्धान्त के प्रतिपादक पारमेश्वर तन्त्र के वीरशैव दीक्षा नामक प्र· ण का यह बीसवाँ पटल समाप्त हुआ।।२०।।

---

१. 'शिवा....रणे' नास्ति-ख. ग. घ. ङ.।

एकविंशः पटलः

ज्ञानयोगस्वरूपनिरूपणम्

पञ्चवक्त्राय पञ्चाय पञ्चकृत्वस्तनूभृते ।
प्रपञ्चसाक्षिणे तुभ्यमीश्वराय नमो नमः ।।१।।

देव्युवाच

तिरस्कृताणिमाद्याय ह्यष्टैश्वर्यप्रदायिने ।
त्रिपुटीभोगतुष्टाय पुष्टानां पतये नमः ।।२।।
जगद्वन्द्य जगन्नाथ जय सर्वोत्तमोत्तम ।
जगदात्मन् जगन्मूल जाह्नवीजटिल प्रभो ।।३।।
दयां कुरु महादेव शिष्यायां मयि शङ्कर ।
वात्सल्यं दर्शय स्वामिन् त्वदनुग्रहपात्रतः ।।४।।
त्वया निरूपितं सर्वं वीरशैवमतं महत् ।
महदन्वाद्यनादीनि श्रुतान्यधिगतानि मे ।।५।।

पांच मुख वाले, पांच ब्रह्मों (मन्त्रों) का शरीर धारण करने वाले अपने से पांच स्वरूपों से सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह नामक पांच कृत्यों को सम्पन्न करने वाले, इस जगत् रूपी प्रपंच के साक्षी आप ईश्वर को मैं बार-बार प्रणाम करती हूँ।।१।।

देवी का प्रश्न

अणिमा आदि ऐश्वर्यों को अपने से दूर रखने वाले तथा अपने भक्तों को आठों ऐश्वर्यों को देने वाले, भोग्य, भोग और भोक्ता, प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय जैसी त्रिपुटियों के भोग से सन्तुष्ट, आध्यात्मिक गुणों से पुष्ट व्यक्तियों के स्वामी को प्रणाम करती हूँ।।२।। हे सारे जगत् के वन्दनीय, जगत् के स्वामी, सभी सर्वोत्तम वस्तुओं में सर्वोत्तम आपकी जय हो। हे प्रभो! आप इस जगत् की आत्मा और इसके मूल कारण हैं। गंगा आपकी जटा में विराजमान है।।३।। हे महादेव! मुझ शिष्या पर आप दया करें। हे स्वामिन्! हे शंकर! आपके अनुग्रह की योग्यता मुझे मिल सके, ऐसा स्नेह आप मेरे ऊपर प्रकट कीजिये।।४।। आपने मुझे महान् वीरशैव मत का स्वरूप बताया है। महाशैव, अनुशैव, अनादिशैव आदि भेदों को भी मैंने सुना तथा जाना है।।५।।

कर्माधिकारिणां तानि सूचितानि स्फुटं महत् ।

ज्ञानयोगस्वरूपविषयकः प्रश्नः

इदानीं श्रोतुमिच्छामि स्वरूपं ज्ञानयोगयोः ।। ६ ।।
निरूपय सविस्तारं सर्वलोकोपकारकम् ।
वेत्ता तव स्वरूपस्य त्वदन्यो नास्ति कश्चन ।। ७ ।।
त्वं ब्रह्म परमं साक्षादाद्यन्तमनवाप्य च ।
त्वन्मायाजालनिहिताः[1] परे कृष्णादयोऽखिलाः ।। ८ ।।

ईश्वर उवाच

साधु साधु कुलेशानि समुद्धर्तुमिहेच्छसि ।
भक्तान् मत्करुणापात्रानपत्यानीव निश्चितम् ।। ९ ।।
इदानीं तव वक्ष्यामि सयोगं ज्ञानमुत्तमम् ।
स्वयोनिरिव कल्याणि गोपनीयं कुलस्त्रिया ।। १० ।।
नैव जानन्ति मद्रूपं हरिब्रह्ममहर्षयः ।
गजाननोऽपि स्कन्दोऽपि विना मद्वाक्यमुत्तमम् ।। ११ ।।

उन उन कर्मों का और उनके अधिकारियों का स्वरूप भी स्पष्ट रूप से मुझे आपने बताया है। अब मैं ज्ञान और योग के स्वरूप को सुनना चाहती हूँ।।६।। इस लोकोपकारक विषय को आप मुझे विस्तार से बताइये। आपके स्वरूप का ज्ञाता आपके सिवाय दूसरा कोई नहीं है।।७।। आप ही साक्षात् परब्रह्म हैं, आदि और अन्त से रहित हैं, किन्तु आपकी माया के जाल में फंसे हुए कृष्ण जैसे महामानव भी आपके इस स्वरूप को जान नहीं पाते।।८।।

ईश्वर का उत्तर

हे कुलेशानि! मैं तुम्हें साधुवाद देता हूँ कि तुम निश्चित ही मेरी कृपा के योग्य भक्तों का पुत्रवत् उद्धार करना चाहती हो।।९।। हे कल्याणि! अब मैं तुमको योग के साथ ज्ञान का उपदेश करूँगा। श्रेष्ठ कुल की स्त्री जैसे सतीत्व की रक्षा करती है, वैसे ही इस उपदेश को भी गुप्त रखना चाहिये।।१०।। मेरे द्वारा उपदिष्ट शिवागमों को जाने बिना मेरे इस ब्रह्मस्वरूप को विष्णु, ब्रह्मा, महर्षिगण, गणेश और स्कन्द भी नहीं जान पाते।।११।। तुमको भी चाहिये कि आस्तिक, सज्जन, गुरुभक्त, शान्त स्वभाव

---

१. निहताः-क. ङ.।

भवत्या च प्रवक्तव्यमास्तिकायैव साधवे ।
गुरुभक्ताय शान्ताय सर्वप्राणिदयालवे ।।१२।।
[१]नास्तिकाय न दुष्टाय नाभक्तायोग्रचेतसे ।
नाशास्त्रगुरुसत्याय न वदेत् कार्यवादिने ।।१३।।

वटपत्रशायिना कृष्णेन पुराऽयमेव प्रश्नः कृतः

एवमेव पुरा देवि प्रलये [२]दिनसंक्षये ।
वटपत्रशयी कृष्णो वेधसा मामपृच्छत ।।१४।।
उपास्य बहुधा [३]भक्त्या [४]शक्तितो हृदि मां परम् ।
स्तुत्वा सम्पूज्य मज्ज्ञानं योगरूपं सविस्तरम् ।।१५।।
उपदिष्टं मया तस्मै ज्ञानं योगं स्वरूपतः ।
तदेतदेव वक्ष्यामि शृणु दत्तमनाः शिवे ।।१६।।

ज्ञानलक्षणम्

[1]नवैकादशपञ्चत्रीन् भावान् भूतेषु येन मे ।
ज्ञानेनानुगतान् पश्येत् तज्ज्ञानं मद्विवेकतः ।।१७।।

वाले और सभी प्राणियों पर दया करने वाले को ही इसे बताओ।।१२।। नास्तिक, दुष्ट, भक्तिभाव से रहित, उग्र स्वभाव वाले, शास्त्र और गुरु के प्रति सही भावना न रखने वाले स्वार्थी व्यक्ति को इसका उपदेश नहीं करना चाहिये।।१३।।

हे देवि! पहले प्रलयकाल के उपस्थित होने पर वटपत्र पर शयन कर रहे श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा के साथ आकर मुझसे प्रश्न किया था।।१४।। भक्तिपूर्वक नाना प्रकार से मेरी पूजा कर और शक्ति के अनुसार मन में मुझ परब्रह्म का ध्यान कर उन्होंने शिवज्ञान और योग के स्वरूप को जानने की इच्छा मेरे सामने प्रकट की थी।।१५।। हे शिवे! उनको मैंने योग और ज्ञान के स्वरूप का उपदेश किया था। उसी को पुनः मैं तुमसे कहूंगा, तुम सावधान होकर सुनो।।१६।।

प्रकृति, पुरुष, महान्, अहंकार और तन्मात्रा नामक नौ, एकादश इन्द्रियात्मक ग्यारह, पंच महाभूत और सत्त्व, रजं, तम नामक तीन गुण- कुल २८ तत्त्वों को सभी भावों में अनुगत देखना ही ज्ञान का स्वरूप है। इस ज्ञान की प्राप्ति मेरे द्वारा प्रदत्त विवेक से होती है।।१७।। शास्त्र के अभ्यास से, गुरु के उपदेश से और अपनी निश्चयात्मिका

---

१. 'नास्तिकाय...नाशास्त्र' नास्ति-ग. घ.। २. सति संभवे-क.। ३. शक्त्या-ख. ग. घ.। ४. शयितो-ख. ग. घ.।

1. श्रीमद्भागवत महापुराण (११.१२.१; ११.१९.१४) से तुलना कीजिये। इन तत्त्वों का विशेष विवरण "तन्त्रयात्रा" में प्रकाशित "कति तत्त्वानि" शीर्षक निवन्ध (पृ. ३-१३) में देखिये।

शास्त्राद्गुरुमुखात् सम्यङ्निश्चिता मतिरात्मनः ।
अहं सर्वोत्तम इति केवलः शिव एव हि ।।१८।।

शिवस्वरूपवर्णनम्

आदिमध्यान्तरहितादित्यवर्णं तमः परम् ।
सर्वसन्निधिसंस्थानं सर्वसाक्षिणमीश्वरम् ।।१९।।
पालकं च नियन्तारं कारणं कारणात्मनाम् ।
अनादिमादिमन्यस्यानन्तमन्तं जनुष्मताम् ।।२०।।
अरूपं सर्वरूपाढ्यमप्रमेयमणोरणुम् ।
महतोऽपि महान्तं मामशब्दं शब्दकारणम् ।।२१।।
अमूलमेकमव्यक्तं व्यक्ताधारं वियत्परम् ।
सर्वान्तर्यामिणं देवं[1] सच्चिद्घनमयं विभुम् ।।२२।।

बुद्धि के सहारे केवल शिव की ही सर्वोत्तमता को जानने वाला स्वयं साक्षात् शिव हो जाता है।।१८।।

यह परम शिव का स्वरूप आदि, मध्य और अन्त से रहित है, आदित्य (सूर्य) के समान उज्ज्वल वर्ण का है, अज्ञान रूपी अन्धकार से बहुत दूर है, उन उन संस्कारों (आकारों) में यह सभी प्राणियों के समीप स्थित है। सभी जीवों का साक्षी और प्रभु यही है।।१९।। यही सबका पालक और नियामक है, सभी कारणों का भी यह कारण है, सभी प्राणियों की स्थिति से पहले और उनके संहार के बाद भी यही एक ईश्वर भगवान् परम शिव विराजमान है।।२०।। यह अरूप होते हुए भी सभी रूपों से सुशोभित है, इसको मापा नहीं जा सकता, यह अणु से भी अणुतर और महान् से भी महत्तर है। यह परम शिव शब्द का विषय न होकर भी सभी शब्दों का कारण है।।२१।। इसका कोई मूल नहीं है, यह अकेला है, अव्यक्त है और सारे व्यक्त जगत् का आधार है। वियत् (आकाश=शून्य) से परे, सर्वान्तर्यामी, प्रकाशमान, सच्चित् स्वरूप और सर्वत्र व्यापक है।।२२।। यह परम शिव प्रकाशमय, विज्ञानमय और सत्ता स्वरूप है।

---

१. देवि-ख.।

ज्योतिर्विज्ञानसन्मात्रमादिमध्यान्तवर्जितम्[१] ।
[1]षडूर्मिरहितं शम्भुं षड्विकारविवर्जितम् ।। २३ ।।
षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नं न[२] निरस्ताणिमादिकम् ।
प्रमाणातीतमचलं हेतुदृष्टान्तवर्जितम् ।। २४ ।।
स्वप्रकाशं स्वदृग्दृश्यं सर्वाधिष्ठानमद्भुतम् ।
केवलं गगनाकारं दुःखातीतं निरामयम् ।। २५ ।।
तत्त्वमस्यादिलक्ष्यार्थमेकं नित्यमनाकुलम् ।
अमलं भावनातीतं गुणत्रयविवर्जितम् ।। २६ ।।
अवस्थात्रितयातीतमसङ्गं सर्वसङ्गिनम् ।
भोज्यं च भोजकं भोक्तृ सर्वदेहाभिमानिनम् ।। २७ ।।
न दृश्यमातिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
[३]मनीषिणो ये मनसाभिक्लृप्त-
मेनं विदुस्ते ह्यमृता भवन्ति ।। २८ ।।

आदि, मध्य और अन्त से रहित है। यह शम्भु [1]षडूर्मि और षड्विकार से भी वर्जित है।।२३।। यह परम शिव सर्वज्ञता आदि छः गुणों के ऐश्वर्य से सम्पन्न है, अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों को ये गुण परिभूत कर देते हैं। यह प्रमाणों से अतीत, अचल, हेतु और दृष्टान्त से रहित है।।२४।। यह स्वयंप्रकाश है, इसकी दृष्टि ही दृश्य का निर्माण करती है, यह सारे जगत् का अद्भुत अधिष्ठान है। यह अकेला है, गगनाकार है, दुःख से अतीत और सभी प्रकार के आमयों (रोगों) से रहित है।।२५।। "तत्त्वमसि" इत्यादि महावाक्यों से यह लक्षित होता है, एक, नित्य, निराकुल, अमल (स्वच्छ), भावनातीत और तीनों गुणों से रहित परम तत्त्व यही है।।२६।। यह जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति नामक तीन अवस्थाओं से दूर है। स्वयं असंग रहते हुए भी सबसे संयुक्त है। सभी देहों का अभिमानी होने से यह भोक्ता, भोज्य और भोजक स्वरूप भी है।।२७।। इसका स्वरूप कभी दृश्य का आकार ग्रहण नहीं करता, इसको कोई कभी अपनी आंखों से नहीं देख सकता। जो मनीषी मन में इसके स्वरूप की कल्पना कर इसे जानना चाहते हैं, वे अमृत पदवी को प्राप्त करते हैं।।२८।। हाथ और पैर के अभाव में भी यह वेगसम्पन्न

---

१. वर्तिनम्-क. ख.। २. नन्दिन्यस्ता-क., अनिरस्ता (परिभूता)-कटि.। ३. हृदा मनीषा-घ. ङ.।
1. "ऊर्मिशब्दो बुभुक्षादिषु षट्सु यथा— "बुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य, मनसः स्मृतौ। शोकमोहौ, शरीरस्य जरामृत्यू षडूर्मयः।।" इति-ख. टिप्पणी (पृ. २५०)। यहाँ (६.६८, ७१) भी देखिये।

अपाणिपादं जविनमदृश्यं सर्वदर्शनम् ।
अश्रोत्रमखिलश्रोत्रं सर्वदा ह्यसमं समम् ।। २९ ।।
भोक्तास्म्यक्षरं शुद्धं निर्विकल्पं निरञ्जनम् ।
[1]निर्लेपं परमानन्दं हर्षामर्षविवर्जितम् ।। ३० ।।
नित्यबद्धं नित्यमुक्तं निरुपद्रवमव्ययम् ।
बीजं निर्बीजमनघं पूर्णव्याप्तिमखण्डकम् ।। ३१ ।।
ज्ञात्वैवमादिभिर्देवि लक्षणैर्मामधीश्वरम् ।
निश्चितं मनसः स्थैर्यं ज्ञानं ज्ञानविदो विदुः ।। ३२ ।।
सोऽहं स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो
महानुभूतिः सकलानुभूतिः ।
एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे
येनेरिता[2] वा मनवश्चरन्ति ।। ३३ ।।
सर्वाशयसमावर्ती सर्वभूतान्यहं शिवे ।
सर्वेश्वरोऽहं सर्वज्ञः सर्वव्यापी सनातनः ।। ३४ ।।

है, स्वयं अदृश्य होते हुए भी सबको देखता है, श्रोत्रेन्द्रिय के अभाव में भी यह सब कुछ सुनता है। इसके समान कोई नहीं है, तब भी यह सबमें समान भाव से स्थित है।।२९।। भोक्ता होते हुए भी यह अक्षर, शुद्ध, निर्विकल्प, निरंजन निर्लिप्त, परमानन्द स्वरूप एवं हर्ष और विषाद से रहित है।।३०।। यह नित्यबद्ध और नित्यमुक्त दोनों एक साथ है। सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित, अव्यय, सबका मूल कारण एवं स्वयं अन्य किसी मूल कारण से रहित, निष्पाप, सर्वत्र पूर्णरूप से व्याप्त, अखण्ड स्वरूप है।।३१।। हे देवि! ऊपर के श्लोकों में बताये गये परम शिव के लक्षणों के आधार पर सबके स्वामी मुझ शिव को जान लेने पर मन की जो स्थिरता प्राप्त होती है, उसी को ज्ञानी जन 'ज्ञान' के रूप में जानते हैं।।३२।। वह स्वयंजोति, अज, अप्रमेय, महान् अनुभूति सम्पन्न, समस्त मानवों की अनुभूति में विराजमान, एक, अद्वितीय, वाणी का अगोचर परम तत्त्व मैं स्वयं ही हूँ। समस्त मानव इसी की प्रेरणा से संचालित हैं।।३३।। हे शिवे! मैं सभी के अन्तःकरण में विराजमान हूँ। सभी प्राणियों के और उनके स्वामी के रूप में भी मैं ही स्थित हूँ। मैं ही सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सनातन परब्रह्म हूँ।।३४।।

---

१. पङ्क्तिरेषा नास्ति-ग. घ.। २. पिता-घ. ङ.।

शिव एव सर्वम्

शिवोऽहमीश्वरो रुद्रः सदाशिवहरी[१] विधिः ।
कालो जीवाभिधोऽव्यक्तं गुणा बुद्धिरहङ्कृतिः ।। ३५ ।।
मनश्चित्तं महाव्योम वायुरग्निजलानि भूः ।
गन्धः शब्दो रसः स्पर्शो रूपमित्यहमेव हि ।। ३६ ।।
सवनत्रितयं चाहं कालाश्च प्रातरादिकाः ।
हविर्यज्ञः क्रतुरहं देवाः [२]शक्रादयोऽप्यहम् ।। ३७ ।।
राक्षसा यक्षरक्षांसि मनुष्याः पशवः खगाः ।
क्रिमिकीटपतङ्गाद्या अहमेव वरानने ।। ३८ ।।
सूर्यादयो ग्रहा भानि कृत्तिकादीन्यहं शिवे ।
कालभेदाश्च [1]तुटच्चाद्या मेषाद्या राशयोऽप्यहम् ।। ३९ ।।
ज्योत्स्ना प्रकाशस्तिमिरमुत्पत्तिश्च लयः स्थितिः ।
लोकाश्च स्थावरं देवि जङ्गमं चाहमेव हि ।। ४० ।।
श्रुतयश्च पुराणानि स्मृतयो धर्मसंहिताः ।
आश्रमा जातयः सर्वा अहमेव परः शिवः ।। ४१ ।।

मैं ही स्वयं शिव हूँ। ईश्वर, रुद्र, सदाशिव, हरि, विधि, काल, जीव, अव्यक्त, गुण, बुद्धि, अहंकार, मन, चित्त, महाव्योम, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, गन्ध, स्पर्श, शब्द, रस, रूप— ये सब मेरे ही नाम और रूप हैं।।३५-३६।। प्रातः, मध्याह्न और सायाह्न नामक तीन सवन मैं ही हूँ। प्रातः आदि काल, हवि, यज्ञ और क्रतु भी मैं ही हूँ। शुक्र (इन्द्र) आदि देवताओं के रूप में भी मैं ही स्थित हूँ।।३७।। हे वरानने! यक्ष, राक्षस, पिशाच, मनुष्य, पशु, पक्षी, क्रिमि, कीट, पतंग आदि भी मेरे ही स्वरूप हैं।।३८।। हे शिवे! सूर्य आदि नौ ग्रह, कृत्तिका आदि २७ नक्षत्र, तुटि इत्यादि कालभेद और मेष आदि १२ राशियां भी मैं ही हूँ।।३९।। हे देवि! चांदनी, उजाला, अन्धेरा, उत्पत्ति, स्थिति, लय, समस्त लोक, स्थावर-जंगमात्मक जगत्— यह सब भी मैं ही हूँ।।४०।। श्रुति, स्मृति, पुराण, धर्मसंहिता (आगम), आश्रम और सभी प्रकार की जातियां— ये सब भी मैं ही हूँ। मैं ही परम शिव हूँ।।४१।। हे ईश्वरि! धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, उत्तम वस्तु का सम्पर्क

१. हरिर्वि-ग. घ. ङ.। २. शक्त्या-क.।

1. प्राण के सवा दो अंगुल तक चलने में जितना समय लगता है, उसे तुटि कहते हैं। द्रष्टव्य-तन्त्रसार (अभिनवगुप्त-कृत), पृ. ४८।

धर्माधर्मौ सुखं दुःखं सद्योगस्तत्फलं त्वहम् ।
भूतं भवद्भविष्यच्च सर्वमप्यहमीश्वरि ।। ४२ ।।
संसारी चापि संसारोऽप्यहं संसरणं शिवे ।
भोक्तारं प्रेरकं भोज्यं मां विज्ञाय विमुच्यते ।। ४३ ।।

ज्ञानयोगाभ्यां संसिद्धिः

[1]विद्धि ज्ञानं मद्विवेको योगो मत्प्राप्तिरीश्वरि ।
ताभ्यामुभाभ्यां संसिद्धिः सोऽहमेव शिवः शिवे ।। ४४ ।।

देव्युवाच

निरीश्वर निरातङ्क निराहार निरन्तर ।
नमस्तुभ्यं पशुपते संशयं छिन्धि मे शिव ।। ४५ ।।

परंब्रह्म कथं जीवस्वरूपं धत्ते

अनन्तमव्ययं शुद्धं सच्चिज्ज्योतिः सुखप्रदम् ।
पूर्णमेवाप्तकामस्त्वं परंब्रह्म परात्परम्[2] ।। ४६ ।।

और उसका फल भी मैं ही हूँ। भूत, भविष्यत् और वर्तमान यह सब भी मैं ही हूँ।।४२।। हे शिवे! संसारी जीव, संसार और संसरण, अर्थात् उसकी निरन्तर गति भी मैं ही हूँ। भोक्ता, प्रेरक और भोज्य के रूप में भी मैं ही स्थित हूँ, ऐसा जानकर प्राणी विमुक्त हो जाता है।।४३।।

हे ईश्वरि! मेरे अनुग्रह से प्राप्त विवेक को ही तुम ज्ञान समझो और ज्ञान के द्वारा मेरी प्राप्ति ही योग है। इन दोनों के अभ्यास से जिसको सिद्धि प्राप्त हो गई है, हे शिवे! वह मैं शिव ही हूँ।।४४।।

देवी का प्रश्न

हे निरीश्वर (जिसका दूसरा कोई ईश्वर नहीं है), आतंक से रहित, आहार से रहित, निरन्तर गतिशील पशुपते! मैं आपको प्रणाम करती हूँ। हे शिव! आप मेरे संशय को दूर कीजिये।।४५।।

परात्पर परब्रह्म तो अनन्त, अव्यय, शुद्ध, सत्, चित् ज्योतिः स्वरूप और सबको सुख देने वाले हैं। परिपूर्ण स्वरूप होने से उसको तो सारी कामनाएं स्वयं प्राप्त हैं।।४६।।

---

१. विधि-क. ख. ग.। २. परायणम्-घ.।

भोक्ता विकारी निर्बन्धः शरीरी सुखदुःखभुक् ।
जायते म्रियते जीवः कथं जीवस्त्वमीश्वर ।। ४७ ।।
लोकाल्लोकं प्रयात्येष अर्थवांश्च दरिद्रवत् ।
नैव संगच्छते देव मनसो मम शङ्कर ।। ४८ ।।

ईश्वर उवाच

अहमेव वरारोहे निर्विकल्पादिलक्षणः ।
भवत्या मम शक्त्यैवं विक्रीडामि यथासुखम् ।। ४९ ।।

शिवशक्त्यात्मकं जगत्

शिवोऽहं त्वमुमे शक्तिस्त्वमेवाहमहं त्वमु ।
स्त्र्यात्मा त्वं वै पुमात्माहं शिवशक्त्यात्मकं जगत् ।। ५० ।।
त्वयि दर्पणभूतायां बुद्धो(द्धौ) जीवोऽहमीश्वरः ।
असङ्गः प्रतिबिम्बोऽस्मि न भोक्ता केवलः शिवः ।। ५१ ।।

इसके विपरीत जीव, भोक्ता, विकारी, नाना प्रकार के बन्धनों में बंधा हुआ, शरीरधारी है, अतएव वह सुख–दुःख को निरन्तर भोगता रहता है। वह जन्म और मृत्यु के चक्कर में पड़ा रहता है। हे ईश्वर! आप इस प्रकार के विपरीत स्वभाव वाले जीव कैसे बन सकते हो।।४७।। हे शंकर! यह जीव अपने कर्मों के कारण एक लोक से दूसरे लोक में भ्रमण करता रहता है। यह कभी धनवान्, तो कभी दरिद्री हो जाता है। ऐसा जीव और शिव एक ही है, यह बात मेरे मन में बैठती नहीं है।।४८।।

ईश्वर का समाधान

हे वरारोहे! निर्विकल्प, निर्विकार आदि लक्षणों से सम्पन्न मैं शिव, मेरी ही शक्ति के रूप में विद्यमान आपकी सहायता से इस संसार में नाना रूपों में विचरण करता हूँ।।४९।।

हे उमे! मैं स्वयं शिव हूँ और तुम शक्ति हो। तुम मुझ से और मैं तुमसे भिन्न नहीं हैं। समस्त स्त्री स्वरूप आपका और पुरुष स्वरूप मेरा प्रतिनिधित्व करते हैं। इस तरह से यह सारा जगत् शिव और शक्ति का विस्तार है।।५०।। हे पार्वति! तुम बुद्धिस्थानीय होकर दर्पण का स्वरूप धारण करती हो और उस दर्पण में मैं जीव के रूप में प्रतिबिम्बित हो उठता हूँ। यद्यपि मैं असंग, भोगरहित, केवल शिव ही हूँ।।५१।।

शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ।
अहङ्कारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्च नात्मनः ।।५२।।

जीवात्मलक्षणम्

जीवोऽव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरपावृतः ।
अग्निवद् धातुवद् देवि न भोक्ता जीव ईश्वरः ।।५३।।
सुखत्वमपि दुःखत्वं कार्श्यस्थौल्याद्यनेकधा ।
भावा अहंमतेर्धर्मा जीवाध्यासादभूत् तनुः ।।५४।।
यथा स्वप्नगता धर्मा आरोप्यन्ते स्व आत्मनि ।
अज्ञेन देहतादात्म्यात् तयैवास्य शरीरिणः ।।५५।।
[1]न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं [१]भूतो भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।५६।।

अहंकार रूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित जीव के ही शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, स्पृहा तथा जन्म और मृत्यु आदि धर्म होते हैं। ये सब आत्मा के धर्म नहीं हैं।।५२।।

हे देवि! जीवात्मा तो अव्यय, शुद्ध, स्वयंज्योति, परिशुद्ध गुणसंपन्न और आवरण से रहित है। वह अग्नि के और सुवर्ण आदि धातुओं के समान परिशुद्धं है। जीव भोक्ता नहीं है, वह तो ईश्वर है।।५३।। सुखी होना, दुःखी रहना, दुबलापन, मोटापा— इस तरह के अनेक भाव जीव में इसी अहंकार के कारण आरोपित हो जाते हैं। इस तरह के अध्यास के कारण ही वह शरीरधारी बन जाता है।।५४।। जैसे स्वप्नावस्था में जीव स्वप्न के धर्मों को अपने में आरोपित कर लेता है, उसी तरह से यह अज्ञानी जीव जाग्रत् अवस्था में भी शरीर के धर्मों को आत्मा में आरोपित कर लेता है।।५५।। वस्तुतः यह न तो जन्म लेता है और न कभी मरता ही है। यह कभी पहले न हुआ है और भविष्य में भी कभी नहीं होगा, ऐसी भी बात नहीं है। यह तो कभी पैदा नहीं होता, नित्य है, शाश्वत है, पुरातन काल से निरन्तर चला आ रहा है। यह शरीर के नष्ट होजाने पर भी कभी नष्ट नहीं होता।।५६।।

---

१. भूत्वा-ग. घ. ङ.।

1. भगवद्गीता (२.२०) से तुलना कीजिये।

मायामोहितो जीव आत्मानमन्यथा पश्यति

निर्लेपोऽहं यथा देवि निःसंगश्चाप्यकामनः ।
तथैव जीवो मद्बिम्बो न बिम्बप्रतिबिम्बयोः ।।५७।।
भेदः प्रसिद्ध एवासौ दृश्यते गिरिनन्दिनि ।
मन्मायामोहितो जीवः पश्यत्यात्मानमन्यथा ।।५८।।
नृत्यतो गायतः पश्यन् यदैवान्यत् करोति तान् ।
एवं बुद्धिगुणान् पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ।।५९।।
कल्पितेयं व्यवहृतिः पुरुषस्यार्थसिद्धये ।
आत्मतत्त्वे प्रतिज्ञाते नैको भोक्ताऽपि[1] लभ्यते ।।६०।।
तिष्ठत्युपैति संजाता बहुधा बुद्धिरेव मे ।
शक्तिर्भवद्विभूतिः स पुमान् भोक्तेव दृश्यते ।।६१।।
शुद्धो हि स्फटिको देवि जपाकुसुमसन्निधेः[2] ।
रक्तस्फटिकवद् भाति तद्वदौपाधिकी भृतिः ।।६२।।

हे देवि! जैसे मैं निर्लेप, निःसंग और सभी कामनाओं (इच्छाओं) से रहित हूँ, उसी तरह से मेरा प्रतिबिम्ब जीव भी निर्लेप, निःसंग और निष्काम है। हे गिरिनन्दिनि! बिम्ब और प्रतिबिम्ब का भेद कहीं भी प्रसिद्ध नहीं है और न कहीं ऐसा देखा जाता है। मेरी माया से मोहित जीव स्वयं ही अपने को अन्यथा मान बैठता है।।५७-५८।। जैसे दूसरों को नाचते-गाते देखकर अन्य व्यक्ति नाचने-गाने लगते हैं, इसी तरह से यह जीव स्वतः किसी इच्छा के न रहते हुए भी बुद्धि के गुणों का अनुसरण कर स्वयं उन्हीं में लिप्त हो जाता है।।५९।। भोग नामक पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये ये सारे सांसारिक व्यवहार कल्पित हैं। आत्मतत्त्व का सही ज्ञान होजाने पर कोई एक भी भोक्ता यहां उपलब्ध नहीं होता।।६०।। तुम्हारी (पार्वती की) यह ऐश्वर्य शक्ति ही बुद्धि के रूप में नाना स्वरूप धारण कर नाना रूपों में विद्यमान रहती है। इसीके संपर्क से वह पुरुष भोक्ता के रूप में प्रतीत होने लगता है।।६१।। हे देवि! स्फटिक स्वभावतः शुद्ध है, किन्तु वह रक्त वर्ण के जपा पुष्प के पास रख देने पर लाल वर्ण का प्रतीत होने लगता है, उसी तरह से जीव का यह सारा भोग भी औपाधिक है, सुखदुःखात्मक बुद्धि की संनिधि के कारण वह भी ऐसा ही प्रतीत होने लगता है।।६२।। रज्जु में सर्प का

१. भोक्ता हि-क.। २. धेः-घ. ङ.।

गुणोरगभ्रमाद् भीतो [1]गुणं ज्ञात्वा भयं त्यजेत् ।
मामन्तर्व्यापिनं ज्ञात्वा जीवो मुच्येत बन्धनात् ।। ६३ ।।
अनावृतस्यापारस्य परिच्छेदः कुतो भवेत् ।
भूमाविव गृहेऽल्पत्वं बुद्ध्या कल्पितमीश्वरि ।। ६४ ।।
अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् ।
स्वतो न सम्भवेदन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ।। ६५ ।।

पुरुषेश्वरयोरण्वपि वैलक्षण्यं नास्ति

पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि ।
तदन्यकल्पना ज्ञानमज्ञानं प्रकृतेर्गुणः ।। ६६ ।।

देव्युवाच

अनावृतस्यानन्तस्यानन्तरस्य चिदात्मनः ।
लोकाल्लोकगतिर्देव तवान्तर्यामिणः कथम् ।। ६७ ।।

भ्रम होने पर मनुष्य भयभीत हो जाता है, किन्तु उसका यह भ्रम रज्जु का ज्ञान हो जाने पर दूर हो जाता है, उसी तरह से मुझ अन्तर्यामी को जानकर जीव बन्धन से मुक्त हो जाता है।।६३।। हे ईश्वरि! जो किसी भी आवरण से ढंका नहीं है और जिसके परिणाम की कोई इयत्ता नहीं है, उसको कैसे नापा जा सकता है? पृथ्वी पर घर बना कर जैसे उसे छोटा बना देते हैं, उसी तरह से जीव की यह परिच्छिन्नता बुद्धि के द्वारा कल्पित है।।६४।। अनादि काल से चली आ रही अविद्या (अज्ञान) के कारण पुरुष अपने स्वरूप को स्वतः जान नहीं पाता। इसलिये कोई तत्त्वज्ञ गुरु ही उसको अपने स्वरूप का ज्ञान करा सकता है।।६५।।

वस्तुतः जीवात्मा (पुरुष) की और परमात्मा (ईश्वर) की परस्पर थोड़ी सी भी विलक्षणता (भिन्नता) नहीं है। इनमें परस्पर भेद की कल्पना का ज्ञान वस्तुतः अज्ञान है, जो कि प्रकृति का गुण है।।६६।।

देवी का प्रश्न

हे देवि! निरावरण स्वरूप, अनन्त आकार वाले, सभी प्रकार के अन्तर (भेद) से रहित, चिदात्म स्वरूप, सभी के अन्तर्यामी भगवान् शिव की यह एक लोक से दूसरे लोक में गति कैसे संभव हो सकती है।।६७।।

---

१. गुणज्ञानाद् भयं-क.।

कथमखण्ड आत्मा लोकाल्लोकान्तरं गच्छति

अविद्यावशतः स्याच्चेदखण्डस्य तदात्मनः ।
तस्याश्चापि कथं देव पूर्वदेशस्य व्युत्क्रमः ।। ६८ ।।
एतन्मे संशयं शम्भो छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य [1]भेत्ता मे नोपपद्यते ।। ६९ ।।
दयालो जगदाधार ह्यात्माधिष्ठानमीश्वर ।
मत्प्राणवल्लभ स्वामिन् निरूपय महेश्वर ।। ७० ।।

ईश्वर उवाच

अनावृतोऽस्म्यनन्तोऽस्मि परिपूर्णोऽस्म्यसंशयम् ।
तादृश्येव हि मच्छक्तिः समस्तापि शृणु प्रिये ।। ७१ ।।

अखण्डाविद्याशक्तेरयं विलासः

न पूर्वदेशसन्त्यागोऽस्त्यविद्याया अपि क्वचित् ।
त्वद्विभूतेरखण्डाया विलासस्तादृगुन्नतः ।। ७२ ।।

हे देव ! यदि हम यह मानें कि अज्ञान के कारण ऐसा होता है, तो यह चिदात्मा तो अखंड स्वरूप है, तब उसके पूर्वस्वरूप का यह विपर्यय कैसे संभव हो सकता है।।६८।। हे शंभो ! मेरे इस संशय को आप पूरी तरह से दूर करने की कृपा करेंगे, क्योंकि आपके सिवाय कोई दूसरा मेरे इस संशय को दूर करने में असमर्थ है।।६९।। हे दयालो ! इस जगत् के आधार सभी आत्माओं के अधिष्ठाता ईश्वर ! आप मेरे प्राणवल्लभ हैं। हे स्वामिन्, हे महेश्वर ! आप मुझे ये सारी बातें समझाइये।।७०।।

ईश्वर का समाधान

हे प्रिये ! मैं निरावरण, अपरिमित और परिपूर्ण हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसी तरह से मेरी शक्ति भी ऐसी ही है। तो भी इस समस्त जगत् की सत्ता कैसे होती है, यह तुम सुनो।।७१।।

इस अविद्या, अर्थात् तुम्हारी माया को कहीं भी पूर्व देश का त्याग नहीं करना पड़ता। यह तो तुम्हारी अखण्ड विभूति का ही अनोखा विलास है।।७२।। शिवस्वरूप

---

१. छेत्ता-कटि।

मद्बिम्बस्यास्य जीवस्य दर्शनस्य चमत्कृतिः ।
तत्र तत्र गताऽविद्या तत्तत्कार्यं सृजत्यलम्[१] ।। ७३ ।।
महाम्बुधेरिवाम्भांसि तरङ्गायन्त एकधा ।
उत्पद्यन्ते व्रजन्त्यन्यदेशं यान्ति लयं त्वपि ।। ७४ ।।
तत्र तत्र गतो देवि ममात्मा प्रतिबिम्बितः ।
जीवत्वमेत्य मच्छास्त्रात् प्रकृतिं चानुगच्छति ।। ७५ ।।

देव्युवाच

यन्नेत्रत्रितयं शम्भो रविचन्द्रकृशानवः ।
नमस्तस्मै महेशाय गुरवे परमेष्ठिने ।। ७६ ।।

अध्यासः कथं प्रवर्तते

[२]अत्रैव तनु विश्वात्मन् संशयग्रन्थिभेदनम् ।
अध्यासः कथमीशान तव सत्यचिदात्मनः ।। ७७ ।।

बिम्ब के प्रतिबिम्ब भूत जीवात्मा की दृष्टि का ही यह चमत्कार है कि यह अविद्या से उत्पन्न दृष्टि जहाँ-जहाँ भी जाती है, वहीं नाना प्रकार के कार्यों की सृष्टि में समर्थ हो जाती है।।७३।। महान् समुद्र का जल एक तरंग के रूप में ऊपर उठता है, पैदा होता है, अन्य देश में आगे बढ़ता है और अन्त में वहीं लीन भी हो जाता है।।७४।। हे देवि ! इसी तरह से उस-उस रूप में प्रतिबिम्बित हुई यह मेरी आत्मा जीवभाव को प्राप्त कर लेती है और शिवशास्त्र के अभ्यास से पुनः शिवभाव को प्राप्त करती है।।७५।।

पार्वती का प्रश्न

हे शंभो ! रवि, चन्द्र और अग्नि— ये ही आपके तीन नेत्र हैं। हे महेश्वर, गुरु और परमेष्ठी स्वरूप आपको मैं प्रणाम करती हूँ।।७६।।

हे विश्वात्मन् ! मेरी इस संशय की गांठ को आप खोलिये, मुझे आप यह बात विस्तार से समझाइये कि सत्यस्वरूप और ज्ञानस्वरूप भगवान् शिव को भी हे ईशान ! यह अध्यास कैसे जकड़ लेता है।।७७।।

---

१. सृजेत् फलम्-क.। २. अत्रोपदिश-ख. ग. घ. ङ.।

ईश्वर उवाच

बिम्बप्रतिबिम्बन्यायेनाध्यासः प्रवर्तते

आभासरूपिणो भोक्तुर्न मे साक्षाच्चिदात्मनः ।
परिच्छिन्नत्वमायातमायातस्य विकारिता ॥७८॥
अस्ति दिङ्मुखवैषम्यं न बिम्बप्रतिबिम्बयोः ।
अप्येकरूपतां प्राप्य क्व [१]भेदो बिम्बयोः शिवे ॥७९॥
जीवो मदंशो ज्ञानात्मा साक्ष्यज्ञानीव दृश्यते ।
मदिच्छयास्य जगतस्त्वहमेवाखिलं शिवे ॥८०॥

देव्युवाच

तारकब्रह्मणे तुभ्यमाषाढाय महस्पते ।
नमः पञ्चाक्षरेशाय[२] गुरवेऽस्तु कपर्दिने ॥८१॥

शिव का समाधान

यह अध्यासात्मक विकार प्रतिबिम्ब के रूप में भासित हो रहे भोक्ता जीव को ही पीड़ित करता है। साक्षात् चित्स्वरूप शिव में यह परिच्छिन्नता रूपी अज्ञान नहीं आ सकता। विकार तो परिच्छिन्न वस्तु में ही आ सकता है।।७८।। हे शिवे ! बिम्ब और प्रतिबिम्ब में कोई भेद न होते हुए भी उनमें दिशाओं का भेद स्पष्ट होता है, अर्थात् दर्पण स्थित प्रतिबिम्ब में पराङ्मुखत्व, दूरत्व, मलिनत्व और दर्पण-स्थितत्व आदि धर्म आरोपित हो जाते हैं और प्रतिबिम्ब के आधार दर्पण, खड्ग आदि के अनुसार बिम्ब के विविध आकार भासित होते हैं, किन्तु बिम्ब में तो कभी कोई भेद नहीं रहता।।७९।। यह जीव मेरा ही अंश है। यह ज्ञानस्वरूप और साक्षी होते हुए भी अज्ञानी का जैसा प्रतीत होता है। मेरी इच्छा के अनुसार ही इस जगत् की भी सृष्टि होती है। इस तरह से जीव और जगत् स्वरूप यह समस्त विश्व शिव का ही स्वरूप है।।८०।।

देवी का प्रश्न

हे सबके तारक ब्रह्मन्, पालाश दण्डधारिन्, रवि-चन्द्र आदि समस्त तेजों के स्वामिन् ! मैं आपको प्रमाण करती हूँ। पंचाक्षर मन्त्र के अधिपति, जटाजूटधारी गुरु स्वरूप आपको मैं प्रणाम करती हूँ।।८१।। हे विश्वेश ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये !

---

१. त्वभेदो-क.। २. रीशाय-कटि. ग. घ. ङ.।

सुमुखो भव विश्वेश निर्भेदो मे विषह्यताम् ।
निरूपयात्र विश्वात्मन् संशयच्छेदनं वचः ।।८२।।

निस्तरङ्गसुखाम्भोधेः कथं दुःखित्वम्

निस्तरङ्गसुखाम्भोधेरनन्तस्य चिदात्मनः ।
निमित्ततो वेच्छया वा दुःखित्वमणुता कथम् ।।८३।।
प्राबल्यं यदि मायाया ईश्वरत्वं कुतस्तव ।
न च स्वाधीनजाड्यचेच्छा निरीहस्य जगत्पते ।।८४।।

ईश्वर उवाच

ममाभिन्नाया शक्तेस्तव नटनाव्यापारोऽयम्

तस्य मे तदहं भद्रे निरीहत्वादिलक्षणः ।
मम शक्तिर्विभूतिस्ते[१] नटत्येवमनेकधा ।।८५।।
न स्वातन्त्र्यमधीनाया व्यवहारार्थमीश्वरि ।
नाधीनता नियन्तुस्ते विनटन्त्या यथेच्छया ।।८६।।

मेरे अपराध को आप सहन कीजिये। हे विश्वात्मन् ! मेरे संशय को दूर करने के लिये आप तथ्य का निरूपण कीजिये।।८२।।

निस्तरंग सुखरूपी समुद्र में सदा विचरण करने वाले, अनन्त स्वरूप वाले चिदात्मा में किसी निमित्त अथवा अपनी ही इच्छा से अणुता और दुःख की प्रसक्ति कैसे हो सकती है।।८३।। हे जगत्पते ! यदि इसमें माया की प्रबलता को कारण मानें, तब आपकी ईश्वरता कहाँ रह जायगी? स्वतन्त्र और निरीह (इच्छारहित) भगवान् शिव में जड़ता कभी आ ही नहीं सकती।।८४।।

शिव का समाधान

हे भद्रे ! यह बात तो सही है कि मैं निरीहता आदि गुणों से सम्पन्न हूँ, तो भी पार्वती के रूप में अभिव्यक्त मेरी शक्ति की ही, जो कि मुझसे कभी भिन्न नहीं रहती, यह महिमा है कि मैं जीव और जगत् का रूप धारण कर नाटक करता रहता हूँ।।८५।। हे ईश्वरि ! यह शक्ति मेरे अधीन रहती है, अतः यह कुछ भी करने में स्वतन्त्र नहीं है। जब यह मेरे अधीन होकर नाना प्रकार के रूप धारण कर यथेच्छ विचरण करती है, तो उसके नियामक शिव कभी भी उसके अधीन नहीं माने जा सकते।।८६।।

---

१. तिः सा-कटि.।

सुखदुःखाधिका[1] वा तु नटनान्तरचारिणी ।
तिसृणां मम शक्तीनां नामरूपक्रियात्मनाम् ।।८७।।
यद्विज्ञाते स्वके तत्त्वे भज्यते सा न संशयः ।
यावन्न जानात्यात्मानमात्मना तं मदात्मकम् ।।८८।।
विद्येत[2] वृत्तिवैचित्र्यमनन्ताया अहम्मतेः ।
मतः साक्षिप्रमो वायुनामाद्यानन्तरूपिणी ।।८९।।

मच्छरीरमिदं जगत्

तिष्ठन्ती[3] या मम तनौ मच्छरीरमिदं जगत् ।
जगदित्यहमित्यन्य इति भेदो न कश्चन ।।९०।।
उत्पत्त्यादिस्वरूपेण मदन्यस्यावलोकनम् ।
तिष्ठति स्थितये ज्ञत्वं व्यवहारः स देहिनः ।।९१।।
न दुःखं न सुखं प्रीतिरनिशं प्रीतिकारिणी[4] ।
तदीयरुचिलाभाय दुःखवन्नटनं धियः ।।९२।।

जब यह शक्ति नाना प्रकार के नाटक करती रहती है, तब इसमें सुख-दुःख आदि की जो अनुभूति होती है, उसमें नाम, रूप और क्रिया नामक मेरी तीन शक्तियों का व्यापार ही प्रमुख कारण है।।८७।। शक्ति की इस नटन क्रिया को जब कोई जान लेता है, तो उसका सारा व्यापार समाप्त हो जाता है। जब तक जीवात्मा अपनी आत्मा को शिवात्मक स्वरूप में नहीं जानता, तब तक उसमें बुद्धिगत वृत्तियों की विचित्रता रहती ही है, क्योंकि अहंकार के नाना रूप उसको इस ओर प्रेरित करते रहते हैं। नाम, रूप, क्रियात्मक नाना स्वरूपों को धारण करने वाली इस शक्ति की उपमा हम वायु से दे सकते हैं।।८८-८९।।

यह शक्ति मेरे शरीर में ही स्थित है और मेरा यह शरीर ही जगत् का रूप धारण कर लेता है। जगत् में और मुझ में किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं है।।९०।। उत्पत्ति आदि व्यवहारों के कर्ता के रूप में मुझ शिव से भिन्न किसी को देखता और हमारी रक्षा के लिये ईश्वर सदा विद्यमान है, ऐसा समझना देहधारी के व्यवहार का संचालन करते हैं।।९१।। सदा सब पर अनुग्रह करने में तत्पर शिव के रहते सांसारिक दुःख-सुख आदि की कोई वास्तविक स्थिति नहीं रहती, वह तो सदा आनन्द में निमग्न रहता है, किन्तु व्यावहारिक जगत् में जीव की रुचि के अनुसार बुद्धि सुख-दुःख आदि के झमेले में पड़ी रहती है।।९२।।

---

१. दिका-कटि. ग.। २. विद्यात् तद्-ख.। ३. तीदं-ख. ग. घ.। ४. रिणि-क. ग.।

सुखदुःखादिकं धियो नटनाव्यापारः

[१]यथैव देहिनामिष्टो हेमन्तर्तौ हुताशनः ।
ग्रीष्मे [२]च शीतलाच्छाया एवं हि सुखदुःखयोः ।। ९३ ।।
दृष्टस्वप्नस्य निद्रालोररिभीत्या पलायनम् ।
प्रबुद्धस्य न वै तस्य तथेयं संसृतिस्त्वतः[३] ।। ९४ ।।

त्वमेकापि नामरूपक्रियात्मना नटसि

एकाप्यनन्तभेदेन नामरूपक्रियात्मना ।
नटसि त्वं कुलेशानि विचित्रास्तव वैभवाः ।। ९५ ।।
शृण्वितः परमं गुह्यं वक्ष्यामि तव पार्वति ।
[४]शक्ताया अनसूयाया[५] दत्तचित्ता भव प्रिये ।। ९६ ।।

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे (ज्ञानयोगस्वरूपनिरूपणं नाम) एकविंशतिः[६] पटलः ।।२१ ।।

जैसे देहधारी को शीत ऋतु में अग्नि और ग्रीष्म ऋतु में शीतल छाया अभिप्रेत है, सुख-दुःख की भी स्थिति ऐसी ही है। अभिप्राय यह है कि हेमन्त काल में अग्नि सुखदायक रहती है, वही ग्रीष्म ऋतु में दुःख का कारण बन जाती है। इसी तरह से ग्रीष्म ऋतु में शीतल छाया सुखदायक रहती है, किन्तु हेमन्त ऋतु में वही दुःखदायी बन जाती है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि एक ही वस्तु हमारे लिये जब अनुकूल वेदनीय है, तब वह सुख का कारण तथा प्रतिकूल वेदन होने पर दुःख का कारण बन जाती है।।९३।। सोया हुआ व्यक्ति स्वप्न देख कर शत्रु के भय से जैसे उठ कर भागने लगता है, किन्तु जाग जाने पर यह सब कुछ उसे मिथ्या प्रतीत होता है, उसी तरह सें इस संसार की भी स्थिति समझनी चाहिये।।९४।।

हे कुलेशानि! वस्तुतः तुम एक ही हो, किन्तु नाम, रूप और क्रिया के भेद से तुम नाना रूप धारण कर नाटक करती रहती हो, क्योंकि तुम्हारी महिमा विचित्र है, उसका कोई पार नहीं पा सकता।।९५।। हे पार्वति! अब तुम सावधानी से सुनो, तुम्हें मैं परम गोपनीय विषय का उपदेश करूँगा। हे प्रिये! तुम इस विषय को समझने में समर्थ हो, तुम्हारी किसी के प्रति असूया (डाह) नहीं है, अतः तुम सावधानी पूर्वक मन लगा कर इसे सुनो।।९६।।

इस प्रकार पारमेश्वर तन्त्र का ज्ञान और योग के स्वरूप का निरूपण करने वाला यह इक्कीसवां पटल समाप्त हुआ।।२१।।

१. श्लोकयोः (९३-९४) विपर्यस्तः क्रमः-ग.। २. ग्रीष्मेषु-ख. ग. घ.। ३. तिः प्रिये-कटि, तिश्चितः-ङ.। ४. भक्ताया अन-ग. घ. ङ.। ५. यायां-क. ख. ग.। ६. तितमः-ख.।

द्वाविंशः पटलः

भक्तिमाहात्म्यप्रतिपादनम्

ईश्वर उवाच

सांख्ययोगापेक्षया भक्तेर्गरीयस्त्वम्

न साधयति मां योगः सांख्य[1]धर्मस्त्वनुष्ठितः ।
स्वाध्यायोऽपि तपस्तीर्थं[2] क्षेत्राणि नियमादयः ।।१।।
व्रतानि यज्ञाश्छन्दांसि जातयश्चाश्रमा अपि ।
विना भक्त्या सुदृढया मय्येव निरपेक्षया ।।२।।
सदाचाररतं धीरं सदयं धर्मतत्परम् ।
मनस्विनं वा विद्वांसमपि नो रक्षयेत् प्रिये ।।३।।
ज्ञानं ध्यानं च शुश्रूषा यत्नः सर्वोऽपि साधितः ।
यदि मद्भक्तिरहितं न पुनात्यपि वा क्वचित् ।।४।।
अनाचारोऽपि साचारो वृत्तिः शुद्धापि वा न वा ।
सुजनो दुर्जनो वापि मद्भक्त्या पदमुत्तरेत् ।।५।।

ईश्वर का समाधान (पूर्व से अनुवृत्त)

योग, सांख्य, भलीभांति विधिपूर्वक अनुष्ठित धर्म, स्वाध्याय, तप, तीर्थाटन, क्षेत्रनिवास और नियम आदि के पालन से कोई मेरा साक्षात्कार नहीं कर सकता।।१।। इसी तरह से व्रत, यज्ञ, वेद, जाति, आश्रम आदि भी मेरे प्रति निरपेक्ष और सुदृढ भक्ति के अभाव में मेरा साक्षात्कार नहीं करा सकते।।२।। हे प्रिये! इस सुदृढ भक्ति के अभाव में सदाचार का पालन करने वाले धैर्य और दया से सम्पन्न, धर्मपरायण, मनस्वी अथवा विद्वान् व्यक्ति की भी कोई रक्षा नहीं कर सकता।।३।। ज्ञान, ध्यान, शुश्रूषा तथा अन्य सर्वविध प्रयत्नों के करने पर भी यदि मनुष्य शिवभक्ति से रहित है, तो उसको कोई पवित्र नहीं कर सकता, अर्थात् वह शिवसाक्षात्कार नहीं कर सकता।।४।। अनाचारी हो या आचारवान्, उसकी वृत्ति शुद्ध हो या अशुद्ध, वह दुर्जन हो या सज्जन यदि वह शिवभक्ति में लीन है, तो इस संसार-पदवी से वह अवश्य उत्तीर्ण हो जाता है, शिवसाक्षात्कार कर सकता है।।५।।

---

१. ख्यं धर्म-क.। २. स्तीर्थे-ग. घ.।

निरपेक्षो भक्तः सर्वोत्तमः

भक्तः सर्वोत्तमो देवि निरपेक्षो ह्यकिञ्चनः ।
अप्युत्कटेभ्यः कर्मभ्यो महदादिभ्य एव च ।। ६ ।।
यथा नदीषु मन्दाकिन्यमरेषु शचीपतिः ।
भवती गिरिजा स्त्रीषु पुरुषेष्वहमीश्वरः ।। ७ ।।
सर्वासां मद्विभूतीनां भक्त एव तथा वरः ।
न बिभेमि कुतश्चापि यथा भक्तादहं प्रिये ।। ८ ।।

भक्तिमहिमा

अतिप्राणिविहिंस्त्रं वा ह्यतिपातककारिणम् ।
अतिनिन्दितकर्माणं मम भक्तिः पुनाति हिं ।। ९ ।।
भक्त्या देव्यनपायिन्या निरघे मय्यमायया ।
प्रीतिमय्या भवाम्भोधिं को वा नावा न सन्तरेत् ।। १० ।।
भक्तिर्माता पिता वित्तं बन्धुरापदि[1] सोदरः ।
गुरुर्मित्रं सुहृद् भोगो[2] मोक्षश्च पुरुषार्थराट् ।। ११ ।।

हे देवि! सभी प्रकार की उत्कट तपस्या, यज्ञ-याग आदि कर्मों की और महत् आदि सांख्य दर्शन प्रतिपादित तत्त्वों के ज्ञान की आराधना करने वाले की अपेक्षा सभी प्रकार की इच्छाओं से रहित, अकिंचन भक्त सर्वश्रेष्ठ माना गया है।।६।। जैसे कि नदियों में गंगा, देवताओं में इन्द्र, स्त्रियों में आप गिरिजा (पार्वती) और पुरुषों में मैं ईश्वर श्रेष्ठ हूँ।।७।। हे प्रिये! मेरी सभी प्रकार की विभूतियों में भक्त ही सर्वश्रेष्ठ है। उस भक्त से मैं जितना डरता हूँ, उतना अन्य किसी से नहीं।।८।।

अनेक प्राणियों की नृशंस हत्या करने वाले, अतिशय पापों को करने वाले और अत्यन्त निन्दनीय कर्मों में निरत व्यक्ति को भी मेरी भक्ति पवित्र बना देती है।।९।। हे निर्दोष स्वभाव वाली देवि! निश्छल भाव से सेवित, मुझ से कभी दूर न होने वाली, प्रीति से भरी हुई भक्ति रूपी नाव से ऐसा कौन प्राणी है, जो कि इस संसार-सागर को उत्तीर्ण न कर ले, अर्थात् भक्तिमार्ग के सहारे सभी लोग मुक्त हो सकते हैं।।१०।।

यह निश्छल भक्ति मनुष्य की माता, पिता, धन, बन्धु, आदरणीय व्यक्ति, सहोदर भ्राता, गुरु, मित्र, सुहृद् और भोग ही नहीं, साक्षात् मोक्षरूपी परम पुरुषार्थ भी है।।११।।

---

१. राप्तो हि-क.। २. द्वारा-क.।

पत्रं पुष्पं फलं वन्यं ग्राम्यं वा दुर्बलोचितम् ।
समर्पितं समानीय भक्तेन मम तत्प्रियम् ।।१२।।
सुगन्धि वाप्यगन्धं वा तुलसीकुसुमादिकम् ।
समर्पितं भवेत् तृप्त्यै भक्तानां[१] काङ्क्षितेन मे ।।१३।।

भक्तः सर्वाधिकः प्रियः

मत्तस्त्वत्तोऽपि कैलासान्नन्दीशाच्च गजाननात् ।
स्कन्दादिकात् ततश्चापि भक्त एव प्रियो मम ।।१४।।
अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य[1] समचेतसः ।
सर्वभूतात्मभूतस्य निरपेक्षं मदात्मनः ।।१५।।
निस्तरङ्गमहानन्दपारगाः शैवसत्तमाः ।
नांशांशमपि जानन्ति कामितस्य मम प्रिये ।।१६।।

वन में अथवा गांव में दुर्बलों को भी उपलब्ध हो जाने वाले पत्र-पुष्प आदि को जो भक्त भक्तिपूर्वक मुझे समर्पित करता है, वही मुझे अतिशय प्रिय है।।१२।।सुगन्धि से युक्त हो या बिना सुगन्धि के, जो कुछ भी भक्त को सुविधा से तुलसीदल, पुष्प आदि मिल जाय, उसे समर्पित करने से मैं तृप्त हो जाता हूँ, क्योंकि भक्तों की आकांक्षा से ही मैं जुड़ा हूँ।।१३।।

मुझसे, तुमसे, कैलास से, नन्दीश से, गणेश से और स्कन्द आदि से भी बढ़ कर मेरा भक्त मुझे प्रिय है।।१४।। क्योंकि मेरा वह भक्त अकिंचन है, इन्द्रियों को अपने वश में रखता है, शान्त स्वभाव का है और सर्वत्र समान दृष्टि रखता है। वह सभी प्राणियों में अपनी ही आत्मा को देखता है, किसी से कुछ नहीं चाहता। वह तो साक्षात् शिवस्वरूप ही हो जाता है।।!५।। हे प्रिये! निस्तरंग (शान्त) महान् आनन्द रूपी सागर में निमग्न ऐसे श्रेष्ठ शिवभक्त मेरे अनुग्रह के लवलेश की भी कामना नहीं करते।।१६।।

---

१. भक्तेनाका-ख. ग. घ.।

1. "पाद्मे प्रथमे सृष्टिखण्डे एकोनविंशाध्याये— अपमाने न कुप्येत संमाने न प्रहृष्यति। समदुःखसुखो धीरः स शान्त इति कथ्यते।। इति"-ख. टिप्पणी (पृ. २५६)।

भक्त्या समर्पितमक्षय्यं भवति

सुगन्धि शीतलं स्वच्छं [१]वस्त्रपूतं पयो बहु ।
चुलुकं वा यथाशक्ति तदक्षय्यं मदर्पितम् ।।१७।।
करवीरैर्विल्वपत्रैर्दूर्वाभिस्तुलसीदलैः ।
द्रोणैर्मामर्चयेन्नित्यं पञ्चभिः कुसुमैः शिवे ।।१८।।
अशक्तस्तु यथाशक्ति स्तोत्रपूजाजपादिकम् ।
स्मरणं कीर्तनं ध्यानं नर्तनं चाप्यमायया ।।१९।।
कर्मणा मनसा वाचा सर्वाशक्तस्य सुन्दरि ।
नामानुस्मरणं चैव लभ्यं तच्च ममाप्तये ।।२०।।
तत्राप्यशक्तो यो नित्यं यदश्नाति पिबत्यपि ।
मम तीर्थप्रसादात्मा मद्युक्तो मामुपैष्यति ।।२१।।

सद्भक्तिः परमो लाभः

अनुष्ठाना[२]समर्थस्य शक्तस्य तनुदण्डने ।
सद्भक्तिः परमो लाभो दरिद्रस्य निधिर्यथा ।।२२।।

यदि कोई भक्त मुझे सुगन्धित, शीतल, स्वच्छ, वस्त्र से छाने गये जल की अपनी शक्ति के अनुसार अधिक अथवा एक अंजलि भी दे देता है, तो इसका उसे अक्षय फल मिलता है।।१७।। हे शिवे! करवीर पुष्प, विल्वपत्र, दूर्वा, तुलसीदल और द्रोणपुष्प— इन पांचों पुष्पों से मेरी नित्य पूजा करे।।१८।। यदि कोई इनको समर्पण करने में असमर्थ है, तो वह यथाशक्ति स्तोत्रपाठ, पूजा, जप, स्मरण, कीर्तन, ध्यान, नृत्य आदि से भी स्वच्छ मन से मेरी उपासना करे।।१९।। हे सुन्दरि! यदि कोई व्यक्ति कुछ भी करने में असमर्थ है, तो वह मन, वचन, कर्म से केवल मेरे नाम का स्मरण करे। इससे भी उसे शिवपद प्राप्त हो सकता है।।२०।। यदि कोई व्यक्ति इसमें भी असमर्थ है, तो वह प्रति दिन जो कुछ खाता-पीता है, उसको मेरा प्रसाद मानकर ग्रहण करे। इससे भी वह शिवभाव में प्रविष्ट हो शिवलोक (कैलास) में मेरे पास आ जाता है।।२१।।

जो ईश्वर की आराधना करने में समर्थ है, शरीर को दण्ड देने में, अर्थात् शरीर और इन्द्रियों पर नियन्त्रण स्थापित करने में समर्थ है, उसके लिये शिव की सच्ची भक्ति ही श्रेष्ठलाभ है, जैसे कि दरिद्र व्यक्ति के लिये निधि की प्राप्ति।।२२।। मेरी यह भक्ति

---

१. 'वस्त्रपूतं' न दृश्यते-क.। २. ष्ठानस-क. ख.।

औषधं भवरोगस्य पापदावानलाम्बुदः ।
[१]मद्भक्तिर्दुःखभोक्तॄणां[२] भवसन्तप्तचेतसाम् ।। २३ ।।
कृतानि यानि धीपूर्वमत्युग्राणि च कोटिशः ।
मद्भक्तिवडवाग्नौ तु तृणायन्ते न संशयः ।। २४ ।।
मोहान्धतमसे घोरे दुःखवैभवकानने ।
संविधानसमाविष्टः सन्मार्गो भक्तिरेव मे ।। २५ ।।
आलस्येनापि कार्येण परिहासेन[३] मायया ।
मद्भक्तः सन्तरेद् दुःखं व्याजेनाप्यखिलात्मना ।। २६ ।।
सुखेच्छुरभ्यसेद् भक्तिं रोगीवौषधमादरात् ।
ममानपेक्षामव्यग्रः पाथेयमिव मार्गगः ।। २७ ।।
भक्तो भक्त्या भजेन्मां वै निःसङ्गमतिमाश्रितः ।
विज्ञायाखिलवर्णानां योषाचारमिव प्रियम् ।। २८ ।।

संसार रूपी व्याधि (रोग) की श्रेष्ठ दवा है, पाप रूपी दावानल के लिये वर्षा के समान है। संसार के ताप से दुःखी जीवों को दुःख-भोग से पूरी तरह से मुक्त कर देती है।।२३।। मनुष्य के द्वारा बुद्धिपूर्वक किये गये अत्यन्त उग्र करोड़ों पाप भी निःसन्देह शिवभक्ति रूप वडवाग्नि में तृणवत् भस्म हो जाते हैं।।२४।। मोहरूपी भयंकर अन्धकार में डूबे, दुःखों के भयंकर जंगल में भटकते हुए प्राणी के लिये एकमात्र सद्भक्ति ही शास्त्रानुमोदित सही मार्ग है।।२५।। आलस्यवश, किसी कार्य के बहाने, परिहासवश अथवा कपट व्यवहार से भी यदि कोई शिवभक्त पूरी तरह से अथवा अधूरे मन से भी भक्ति करता है, तो वह दुःखसागर से उत्तीर्ण हो जाता है।।२६।। सुख की इच्छा वाला व्यक्ति उसी प्रकार भक्ति का सहारा ले, जैसे कि रोगी आदरपूर्वक औषध ग्रहण करता है। पदयात्रा करने वाला जैसे अपने साथ सावधानीपूर्वक मार्ग के लिये भोजन ले लेता है, उसी तरह से भक्त भी निरपेक्ष भाव से बिना घबराये भक्ति का सहारा ले।।२७।। वर्षों के अनुभव से मनुष्य जान लेता है कि स्त्री का संसर्ग अतिप्रिय होता है। स्त्री के प्रति इस अनुराग के समान भक्त मनुष्य सभी प्रकार की आसक्ति को छोड़ कर भक्तिपूर्वक मेरा भजन करे।।२८।। स्त्री, पुरुष, नपुंसक अथवा अन्य कोई भी समर्थ व्यक्ति केवल

---

१. पङ्क्तिद्वयं न दृश्यते-ग. घ.। २. भाजानां-ख. ङ.। ३. स्येन-कटि. ग. घ.।

स्त्रीपुमानपुमानीशा भक्तिमेवाश्रयन्तु मे।
[1]नरके वाधिकारोऽस्ति ऋते मद्भक्तिमुत्तमाम् ।। २९।।
बहुनात्र किमुक्तेन वक्तव्यं ग्रन्थकोटिभिः।
वक्ष्ये शृण्वेकवाक्येन मद्भक्तिः परमा गतिः ।। ३०।।

देव्युवाच

[2]धीर्न ते नटना लोके चतुरं ते प्रवर्तनम्।
धीमयं धीगतिं देव[3] धीमहीशानमीश्वरम् ।। ३१।।
देवदेवोत्तम स्वामिन् दीप्यद्द्वादशकोटये।
शशिकोटिसुशीताय त्वत्तेजःखनये नमः ।। ३२।।
वदात्र परमेशान भक्तिलक्षणमीश्वर।
यया ज्ञातभवद्रूपः परामेष्यति निर्वृतिम् ।। ३३।।

मेरी भक्ति का ही सहारा ले। बिना मेरी उत्तम भक्ति के कोई भी व्यक्ति वैराग्य का अधिकारी नहीं बन सकता।।२९।। अब यहां अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। जो बात करोड़ों ग्रन्थों में कहीं गई है, उसे तुम एक छोटे से वाक्य में सुनो कि शिवभक्ति मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।।३०।।

देवी का प्रश्न

हे शिव! तुम्हारी बुद्धि का यह नाटक अद्भुत है, आपने इस जगत् की सृष्टि बड़ी चतुराई से की है। अपने इस बुद्धिमय, बुद्धि को गति देने वाले, सर्वसमर्थ ईश्वर स्वरूप का मैं ध्यान करती हूँ।।३१।। हे इन्द्र आदि देवों में सर्वोत्तम देव, मेरे स्वामी! आपका प्रकाश बारह करोड़ सूर्यों से भी बढ़ कर है और करोड़ों चन्द्रमाओं से भी अधिक शीतल है। आपके इस तेजोमय स्वरूप को मैं प्रणाम करती हूँ।।३२।। हें सबके स्वामी ईश्वर! आप मुझे भक्ति का लक्षण बताइये, जिसकी सहायता से मानव शिवस्वरूप होकर परम शान्ति को प्राप्त कर सकता है।।३३।।

---

१. न रक्तो- क.। २. धियस्ते-कटि.। ३. वन्दे-कटि.।

ईश्वर उवाच

भक्तिलक्षणनिरूपणम्

कर्मणा मनसा वाचा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
मदनुस्मरणं [1]ध्यानं स्तुतिः पूजा रतिः सदा ।। ३४ ।।
मल्लिङ्गधारणं भक्तपूजनं लिङ्गपूजनम्[१] ।
अहिंसा सर्वभूतेषु दया मदनुवीक्षणम् ।। ३५ ।।
मल्लिङ्गलिङ्गचिह्नानां दर्शने मयि भक्तितः ।
अमायया‌ऽनपेक्षातः [2]साष्टाङ्गमभिवादनम् ।। ३६ ।।
गतिं प्रदक्षिणं सर्वां मम सर्वत्र सर्वदा ।
भावयेच्छयनं सुभ्रु प्रणामं मयि सर्वशः ।। ३७ ।।
उच्चारणं चाक्षराणां मन्नामस्मरणं त्विति ।
भुक्तपीतादिकं सर्वं मत्प्रसादधियाश्नुते ।। ३८ ।।

ईश्वर का समाधान

मन, वचन और कर्म से जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि सभी अवस्थाओं में सदा शिव का स्मरण, ध्यान, स्तुति और पूजा करना और उनके प्रति अनुराग प्रकट करना।।३४।। इष्टलिंग धारण करना, भक्त और इष्टलिंग का पूजन करना, सभी प्राणियों की हिंसा न करना, उन पर दयाभाव प्रकट करना और उन सबमें शिव का दर्शन करना।।३५।। इष्टलिंग, शिवलिंग तथा शिवलिंग से अंकित वस्तुओं के देखने पर जैसे शिव का ही दर्शन हुआ हो, इस तरह से निष्कपट भाव से और बिना किसी अपेक्षा के साष्टांग अभिवादन करना।।३६।। हे सुभ्रु! मेरी इन सारी विभूतियों को देखकर सदा, सब जगह प्रदक्षिणा करना और शयन के समय सर्वत्र मेरी भावना कर मुझे प्रणाम करना।।३७।। शिवनाम से अंकित अक्षरों का उच्चारण और शिवनाम का स्मरण सदा करते रहना तथा खाने-पीने की प्रत्येक वस्तु को मेरे प्रसाद के रूप में ही ग्रहण करना।।३८।। अपनी सारी इन्द्रियों की वृत्तियों को शिव की सेवा में लगा देना और

---

१. धारणम्-घ.।

1. "शैवे वायवीयसंहितोत्तरभागे एकोनत्रिंशाध्याये—"ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातुः शिवचिन्ता मुहुर्मुहुः। अव्याक्षिप्तेन मनसा ध्यानं नाम तदुच्यते।।"-ख. टि. (पृ. २५७)।

2. "आगमे—दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा। मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः।।" इति। अन्यत्र— "पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा। वचसा मनसा चैव प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः।।" इति। पञ्चाङ्गप्रणामो यथा— "बाहुभ्यां चैव जानुभ्यां शिरसा वचसा दृशा। पञ्चाङ्गोऽयं प्रणामः स्यात् पूजासु प्रवराविमौ।। जानुभ्यां चैव बाहुभ्यां शिरसा वचसा धिया। पञ्चाङ्गकः प्रणामः स्यात् पूजासु प्रवराविमौ।।"- ख. टिप्पणी (पृ. २५७)।

सर्वामैन्द्रियकीं वृत्तिं मत्सेवायै नियोजयेत् ।
सम्प्राप्तमखिलं भोगं मदर्थमिति चार्पयेत् ।। ३९ ।।
कृच्छ्रेऽपि मनसि क्लेशं न सम्प्राप्तमनुस्मरेत् ।
अतिमानुषसम्पत्तावप्युपसर्पेत न क्वचित् ।। ४० ।।
पुत्रदारधनादीनां सङ्गमः पान्थसङ्गमः ।
अनुदेहं नियन्त्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ।। ४१ ।।
नेहामुत्र फलं किञ्चिदिच्छेद् भक्तो मम प्रिये ।
अपि कैवल्यमीशानि मया दत्तमपि क्वचित् ।। ४२ ।।
कियती सार्वभौमादिसम्पत्तिश्चाणिमादिका ।
तृणीकृताणिमाद्यष्टसिद्धेर्वै भक्तिरंहसा[1] ।। ४३ ।।
दृष्टं श्रुतमनुध्यातं यद् बुद्ध्या वा कुलेश्वरि ।
सर्वं मदात्मना[2] पश्येद् [3]योषाचारमिव प्रियम् ।। ४४ ।।

जो कुछ भी भोग उसे प्राप्त है, उसे शिवार्पित कर देना।।३९।। भयंकर कष्ट की स्थिति में भी अपने मन में घबराहट न लाना और साधारणतया मनुष्य को न प्राप्त होने वाली संपत्ति के मिल जाने पर भी अहंकार से मतवाला न होना।।४०।। पुत्र, पत्नी, धन आदि का साथ मार्ग में मिले सहयात्री के समान क्षणिक है और प्रत्येक देह में इनकी नियमित प्राप्त होती है, यह सब उसी तरह का है, जैसे कि निद्रा के साथ स्वप्न जुड़ा हुआ है, ऐसी भावना करना— ये सब मेरे भक्त के विशिष्ट लक्षण हैं।।४१।। हे प्रिये! ऐसा मेरा भक्त ऐहिक अथवा पारलौकिक किसी भी फल की आकांक्षा नहीं रखता। हे ईशानि ! अन्य विषयों की बात तो बहुत दूर है, मेरा सच्चा भक्त तो मेरे द्वारा दिये जा रहे कैवल्य पद को भी स्वीकार नहीं करता।।४२।। मेरे ऐसे विशिष्ट भक्त के लिये सार्वभौम आदि विशिष्ट राज्यों की सम्पत्तियों का और अणिमा आदि सिद्धियों का क्या महत्त्व है, क्योंकि वह तो शिवभक्ति के आवेग में इन आठों सिद्धियों को भी तृण के समान तुच्छ मानता है।।४३।। हे कुलेश्वरि! भक्त जो कुछ देखता है, सुनता है और अपनी बुद्धि के अनुसार विचारता है, वह सब कुछ शिवमय ही है, सुखमय ही है, स्त्रियों के हावभाव की तरह प्रिय ही है, ऐसा विचार करे, अर्थात् सर्वत्र मेरे स्वरूप का ही अनुसन्धान करे।।४४।। हे शिवे! दरिद्र को धन मिल जाने पर अथवा

---

१. सिद्धौ भक्तिर्मतीशि सा-क. ख.। २. सात्-क.। ३. यथा-क. ख.।

दरिद्रस्य [1]धनप्राप्तौ यथा स्यात् तन्मतिः शिवे।
कामुकस्य यथा काम उभे [2]तत्प्रीतिलक्षणे।।४५।।
कार्या पदार्थसम्प्रीतिर्भक्तेर्मोहमयी मतिः।
मय्यकामेन सा शुद्धा भक्तिर्वै सात्त्विकी मतिः।।४६।।
भक्तिदन्तिनमारुह्य भवश्वभ्यः कदाचन।
न बिभेति क्वचिद्धीमान् भक्तिमान् मयि निस्पृहः।।४७।।
जात्यन्धस्य यथा दृष्टिर्दरिद्रस्य यथा निधिः।
मूकस्य वचनं रोगपीडितस्य[3] यथौषधम्।।४८।।
प्राणस्य जीवनजलमधीरस्य स्वतन्त्रता।
तथा दुःखतितीर्षोर्मे भक्तिलाभः परः शिवे।।४९।।
व्यवहारस्त्रिरूपोऽपि मयि भक्तिमतः सुखम्।
अभक्तस्य परं दुःखमेष सर्वत्र निश्चयः।।५०।।

कामुक की कामना की तृप्ति हो जाने पर जैसे उसे अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है, ये दोनों ही उदाहरण प्रीति के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि भक्त की ईश्वर के प्रति ऐसी ही प्रीति होनी चाहिये।।४५।। यदि कोई भक्त किसी पदार्थ की प्राप्ति की कामना से मेरी भक्ति करता है, तो यह उसकी बुद्धि के मोह को प्रकट करती है, बिना किसी कामना के शुद्ध भाव से की गई भक्ति ही सात्त्विक भक्ति कहलाती है।।४६।। भक्ति रूपी हाथी पर चढ़ कर निस्पृह, सात्त्विक बुद्धि संपन्न मेरा भक्त संसार रूपी श्वान (कुत्ता) से कभी नही डरता।।४७।। हे शिवे! जन्म से अन्धे को दृष्टि मिल जाने के समान, दरिद्र व्यक्ति को खजाना, गूंगे को बोलने की शक्ति, रोग से पीडित व्यक्ति को उचित औषध, मरते हुए व्यक्ति को जीवनदान और भयभीत अधीर व्यक्ति को स्वतन्त्रता मिल जाने के समान सांसारिक दुःखों से छुटकारा चाहने वाले व्यक्ति के लिये शिवभक्ति ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है।।४८-४९।। पारमार्थिक, व्यावहारिक और प्रातिभासिक— यह तीनों प्रकार का व्यवहार शिवभक्ति से सम्पन्न व्यक्ति के लिये सुखकर है। इसके विपरीत अभक्त व्यक्ति के लिये यह सब दुःखदायक हो जाता है। यह बात सर्वत्र निश्चयपूर्वक लागू होती है।।५०।।

---

१. निधि-ग. घ. ङ.। २. सा प्रीति.....णा-ग. घ. ङ.। ३. स्यौपधं यथा-ख. ग. घ.।

देव्युवाच

इदं सत्तनवे तुभ्यं महदाधाररूपिणे ।
नमोऽस्तु[१] जयरूपाय शम्भवे चेतनात्मने ।।५१।।

भक्तिः कथमुत्पद्यते

सन्तरेदापदं भक्त्या निरूपितमिति प्रभो ।
कथमुत्पद्यते सास्य यामाश्रित्य[२] भवत्प्रियः ।।५२।।

ईश्वर उवाच

अपेक्ष्य कामिनीं कामी कुर्यात् कामपदां[३] कृतिम् ।
[४]ता एवान्तवतीर्भुक्त्वा तदन्ते दुःखभाग् भवेत् ।।५३।।

भक्तिलाभाय गुरुशुश्रूषणमपेक्षितम्

पुरा कृतेन पुण्येन निर्विण्णः सुखसङ्गमे ।
गुरुं समाश्रयेद् भक्त्या दुःखोत्तरणहेतवे ।।५४।।
प्राणार्थमानवसुभिरादरार्थमनुक्रमैः ।
उपासयित्वा सन्तोष्य जानीयान्मामशेषतः ।।५५।।

देवी का प्रश्न

मंगलमूर्ति, महत् आदि तत्त्वों के आधारभूत, सबको विजय दिलाने वाले, चेतन स्वरूप भगवान् शिव को मैं प्रणाम निवेदित करती हूं।।५१।।

हे प्रभो! भक्ति की सहायता से मनुष्य सभी आपत्तियों से पार पा जाता है, यह तो आपने बताया। अब आप यह बताइये कि वह भक्ति मनुष्य में किस प्रकार उत्पन्न होती है, जिससे कि वह भक्त आपकी प्रीति का पात्र हो जाता है।।५२।।

शिव का समाधान

कामी पुरुष अपनी अभीष्ट कामिनी को पाकर उसके साथ नाना प्रकार की काम-चेष्टाएं करता है, किन्तु अन्ततः निरन्तर उपभोग के कारण दुर्बल व्याधिग्रस्त होकर नाना प्रकार के दुःखों को भोगता है।।५३।।

पुरातन जन्मों में किये गये पुण्य-फल का उपचय होने पर वह इस तरह के सांसारिक भोगों से विरक्त हो जाता है। उसे चाहिये कि वह इस तरह के दुःखों से छुटकारा पाने के लिये भक्तिपूर्वक गुरु की शरण में जाय।।५४।। अपने प्राण, धन, संमान, सम्पत्ति को भी गुरु को समर्पित कर धीरे-धीरे निरन्तर गुरु की अनुमति के अनुसार उसको अपनी सेवा से सन्तुष्ट कर शिवस्वरूप की पूरी जानकारी प्राप्त करे।।५५।।

---

१. स्त्वभय-कटि। २. श्रित्याभ-क. ख.। ३. दाकृ-ख. ग. घ.। ४. पङ्क्तिरेषा नास्ति-ग. घ.।

प्रसाद्य सेवया भक्तो[1] गुरुं शुश्रूषया प्रिये ।
त्यक्त्वैषणामसम्यग्ज्ञः श्रयेद्भक्तिं परां मयि[2] ।।५६।।
अशक्तः कामनात्यागे न [3]ग्रहीतुमपीच्छति ।
मध्यस्थः श्रीगुरुमुखाज्ज्ञात्वा मामेव संश्रयेत् ।।५७।।
भक्त्या तु दृढया मां च ज्ञात्वा सम्यक् समः शिवे ।
शिवोऽहमिति सम्भाव्य शिव एव भवेद् ध्रुवम् ।।५८।।
तद्यावज्ज्ञायते भक्तिर्जानीयान्मामशेषतः ।
गुरुं परिचरेत् तावन्नीचवृत्त्यापि दासवत् ।।५९।।
तदुक्तः परमो मन्त्रः क्रिया तच्चोदिता परा ।
करणत्रयभावेन विश्वसेद् गुरुमीश्वरम्[4] ।।६०।।

भक्त्यभ्यासाज्ज्ञानयोगयोः समुत्पत्तिः

भक्त्यभ्यासात् समुत्पन्नं ज्ञानं च सुदृढं भवेत् ।
ज्ञानेन योगमाप्नोति ताभ्यां सिद्धो विमुच्यते ।।६१।।

हे प्रिये! वह शिवभक्त गुरु को अपनी सेवा-शुश्रूषा से संतुष्ट करे। जब तक उसे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो जाती, तब तक वह सभी प्रकार की एषणाओं (पुत्र, वित्त, प्रसिद्धि की इच्छा) का त्याग कर केवल श्रेष्ठ शिवभक्ति का ही सहारा ले।।५६।। जो शिवभक्त अपनी इच्छाओं को छोड़ने में असमर्थ है और उनको अपनाना भी नहीं चाहता, ऐसा मध्यस्थ व्यक्ति भी श्रीगुरु के मुख से उपदेश ग्रहण कर शिव का ही आश्रय ग्रहण करे।।५७।। हे शिवे ! दृढ भक्ति से मुझे भलीभांति जानकर सर्वत्र समान दृष्टि वाला जो शिवभक्त मैं ही शिव हूँ, ऐसी कल्पना करता है, वह अन्ततः अवश्य ही शिव हो जाता है।।५८।। इसलिये भक्ति का और शिव का स्वरूप जब तक पूरी तरह से समझ में नहीं आता, तब तक दास के समान क्षुद्र वृत्ति से भी गुरु की सेवा-शुश्रूषा करता रहे।।५९।। गुरु जो कुछ कहता है, वही श्रेष्ठ मन्त्र है। वह जो करने को प्रेरित करता है, वही श्रेष्ठ क्रिया है। अतः श्रेष्ठ गुरु की शिवभक्त अपने तीनों करणों (मन, वचन, शरीर) से सेवा करे।।६०।।

भक्ति के सम्यक् अभ्यास से उत्पन्न ज्ञान सुदृढ़ होता है और इस ज्ञान से योग की प्राप्ति होती है। ज्ञान और योग की सहायता से शिवभक्त सिद्धि को प्राप्त कर अन्ततः मुक्त हो जाता है।।६१।। भक्तिरहित व्यक्ति में सम्यक् ज्ञान की उत्पत्ति हो नहीं सकती,

---

१. भक्त्या-ग. घ.। २. परामपि-ग. घ.। ३. स्पृही-घ. ङ.। ४. मुत्तमम्-क.।

अभक्तस्योदिता संविद् दुर्लभानर्थकारिणी ।
तुषापघातिन इव विशेषस्तस्य वै क्रमः ।। ६२ ।।
त्यक्त्वा भक्तिमयीं नावमुत्तर्तुममरापगाम् ।
पारादिवेषन्[1] बाहुभ्यामतरिभ्यां महाल्पधीः ।। ६३ ।।
विशेषमत्र वक्ष्यामि शृणु देवि समाहिता ।
कर्मभक्तिचिदात्मानस्त्वधिकारास्त्रयः स्फुटाः[2] ।। ६४ ।।
आलम्बः कामिनः कर्म ज्ञानं निष्कामिनः[3] परम् ।
विरक्तस्य त्वशक्तस्य भक्तियोगः शिवे मयि ।। ६५ ।।
नेहोतोत्तरसम्भोगमादिप्राप्तेन सज्जते ।
भुञ्जन् प्रारब्धतः [4]प्राप्तान् मयि भक्तो भवेद्ध्रुवम् ।। ६६ ।।
[5]सुसुखं ज्ञानमुत्पन्नं भक्तस्य सुदृढं भवेत् ।
निरस्ताज्ञानतिमिरस्तेन मुक्तो न संशयः ।। ६७ ।।

वह तो अनर्थ पैदा करने वाली बुद्धि का ही शिकार हो जाता है। उसका सारा उपक्रम वैसे ही व्यर्थ जाता है, जैसे तुषों को कूटने वाले को कुछ नहीं मिल पाता।।६२।। भक्ति रूपी नाव का सहारा लिये बिना जो व्यक्ति सुरनदी को अपनी भुजाओं के सहारे पार करना चाहता है, उससे बढ़ कर महान् मन्दबुद्धि कोई मिलेगा नहीं।।६३।। हे देवि! तुम सावधान होकर सुनो। यहां मैं एक विशेष बात तुमको बताना चाहता हूँ। कर्म, भक्ति और चिदात्मा (ज्ञान)— ये तीन अधिकार शास्त्रों में स्पष्ट किये गये हैं, अर्थात् इन तीनों उपायों की सहायता से शिवभक्त को मुक्ति का अधिकार मिलता है।।६४।। हे शिवे! सकाम व्यक्ति को कर्म का और निष्काम व्यक्ति को ज्ञान का सहारा लेना उचित है। विरक्त और अशक्त व्यक्ति को मेरी भक्ति का सहारा लेना चाहिये।।६५।। प्राक्तन जन्मों में किये गये कर्मों के फलस्वरूप उत्तर जन्म में प्राप्त भोगों में जब व्यक्ति अनुरक्त नहीं होता, केवल प्रारब्धवश प्राप्त भोगों को अनिच्छापूर्वक भोगता रहता है, तो उसमें शिवभक्ति अवश्य जाग उठती है।।६६।। ऐसे भक्त के मन में ज्ञान की उत्पत्ति अनायास हो जाती है और अभ्यास से उसकी भक्ति दृढ होती जाती है। इस तरह से ज्ञान की उत्पत्ति से उसका अज्ञान रूपी अन्धकार दूर हो जाता है और निःसन्देह वह मुक्त हो जाता है।।६७।। ज्ञानी व्यक्ति को विधि और निषेध रूप कोई कर्म करने की

---

१. वेच्छन्-ख.। २. स्मृताः-क.। ३. निष्ठावतः-क.। ४. प्राप्तं मयि-ख.। ५. ससुखं-घ.।

न किञ्चिज्ज्ञानिनः कर्म निषेधो विधिरेव वा ।
विधिर्यो ज्ञाननिष्ठोऽभूत् स च निस्सङ्गितात्मनः ॥६८॥
भक्तस्य तु यथाशक्ति निषिद्धं यत्नतस्त्यजेत् ।
कुर्याद् विधेयं प्राबल्ये भक्तिमेवाश्रयेत् सुखी ॥६९॥
अन्यथा करणे कार्यं प्रायश्चित्तं तु कामिनः ।
ज्ञानी ज्ञानेन सद्भक्त्या भक्तश्च मयि शुद्धये ॥७०॥
न कर्माधीनता बन्धो भक्तस्य ज्ञानिनो मम ।
न विरक्तिर्न चासक्तिः प्रायः श्रेयो भवेत् प्रिये ॥७१॥
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसमानुषाः ।
मद्भक्त्यैव तरन्त्युग्रं स्त्रीशूद्रपशुपक्षिणः ॥७२॥
न मृत्युर्न जरारोगभयक्लेशाश्च[1] हि क्वचित् ।
भयं पीतामृतस्यैव भक्तस्य [2]सुखमेधते ॥७३॥

आवश्यकता नहीं रहती। ज्ञाननिष्ठा ही उसके लिये सबसे बड़ी विधि है। उसी से वह अपनी निःसंगिता (वैराग्य) को प्राप्त कर लेता है।।६८।। शिवभक्त को तो प्रयत्नपूर्वक यथाशक्ति निषिद्ध कर्मों का परित्याग और विधेय कर्मों का पालन करना चाहिये। ऐसे समझदार व्यक्ति को प्रधानतः भक्ति का ही आश्रय लेना चाहिये।।६९।। सकाम व्यक्ति विधि और निषेध का सम्यक् पालन न करने पर प्रायश्चित्त करे। ज्ञानी अपने ज्ञान के सहारे और भक्त मेरी भक्ति के सहारे अपने आप शुद्ध हो जाता है।।७०।। हे प्रिये! मेरा भक्त और ज्ञानी पुरुष कर्मों के अधीन नहीं रहते, अत एव वे बन्धन से मुक्त रहते हैं। वे वैराग्य और आसक्ति, दोनों से दूर रहते हैं। इसी लिये उनका जीवन कल्याणमय रहता है।।७१।। देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मनुष्य, स्त्री, शूद्र, पशु, पक्षी— ये सब मेरी भक्ति के सहारे ही उग्र कष्टों से छुटकारा पा जाते हैं।।७२।। शिवभक्त को जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, भय, क्लेश आदि का थोड़ा सा भी डर नहीं रहता। वह तो भक्ति रूपी अमृत का पान किये रहता है। उसके सुख में निरन्तर वृद्धि होती रहती है।।७३।। हे गिरिजे!

---

१. आधिः क्लेशोऽपि न-ख. ग. घ.। २. मुद्-ख.।

[1]तपस्विभ्योऽधिको ज्ञानी ज्ञानिभ्यश्च मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चापि गिरिजे [१]तन्मद्भक्तः सुखी भवेत् ।। ७४ ।।

अभक्ता दुर्गतिं लभन्ते

दुर्वासनानुबन्धेन विषयत्यागकातराः ।
मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पूर्वकर्मतः ।। ७५ ।।
राजसा घोरसंकल्पाः कामुका ह्यहिमन्यवः ।
मोहधूमान्धचक्षुष्काः [२]स्वर्लोकं न विदन्ति ते ।। ७६ ।।
नैव ते मां विजानन्ति हृदिस्थं य [३]इमं यतः[४] ।
अक्षशस्त्रा ह्यसुतृप्ता यथा नीहारचक्षुषः ।। ७७ ।।
अहिता आतुरा वाचा परं पुष्पितयाखिलाः ।
बध्यन्ते सङ्कटे घोरे मांसलुब्धा इवाण्डजाः ।। ७८ ।।

तपस्वियों की अपेक्षा ज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ माना जाता है और ज्ञानियों एवं कर्मकाण्डियों की भी अपेक्षा मेरा भक्त श्रेष्ठ माना जाता है। यह इसलिये कि शिवभक्त सदा सुख में निमग्न रहता है।।७४।।

अपने पूर्व जन्म के कर्मों के कारण कुछ पुरुष अपनी दुर्वासनाओं में बंधे होने के कारण विषयों का त्याग करने में असमर्थ रहते हैं, क्योंकि उनकी बुद्धि शिव की माया से मोहित रहती है।।७५।। ये सब राजस प्रकृति के, भयंकर संकल्प वाले, कामुक और सर्प के समान क्रोध से सदा भरे रहते हैं। मोह रूपी धुंए से इनकी आंखें भरी रहने से ये अपना स्वार्थ-परमार्थ कुछ नहीं देख पाते।।७६।। अपने हृदय में स्थित अन्तर्यामी शिव को वे पहचान नहीं पाते, क्योंकि वे अपनी आंखों पर ही भरोसा करते हैं, अपने प्राणों को तृप्त करने में ही लगे रहते हैं। इनकी स्थिति वैसी ही रहती है, जैसी कि कोहरे से ढकी आंखों वाले किसी वस्तु को देख नही पाते।।७७।। ऐसे व्यक्ति दूसरों का अहित करते रहते हैं, सदा परेशान रहते हैं और लम्बी-चौड़ी बातों से ही अपना व्यवहार चलाते हैं। इस तरह के पुरुष सदा घोर संकट में उसी तरह से पड़े रहते हैं, जैसे कि मांस के लोभी पक्षी जाल में फंस जाते हैं।।७८।। हे प्रिये! कर्म के

---

१. तन्मे भक्तः-ग. घ.। २. स्वं-ख.। ३. इदं-घ. ङ.। ४. यथा-ग. घ.।
1. भगवद्गीता (६.४६) से तुलना कीजिये।

न रुचिः कर्म[1]बन्धानां ज्ञानभक्त्योर्मम प्रिये ।
[2]चर्माम्भस्तृप्तकुक्षीनां शुनामिव घृतं शुभम् ।। ७९।।
अनुपास्य गुरुं भक्त्या त्वनभ्यस्यागमं त्वपि ।
अभक्ताज्ञानिनः श्रेयः कुत ईयुः परं मम ।। ८०।।
भक्तिः सुसाधनं साध्यं ज्ञानं योगाद्विमुक्तये ।
तत्सिद्धस्य वृथा कर्म नीरोगिण इवौषधम् ।। ८१।।

देव्युवाच

न कर्म साधनं मुक्तेरभक्तिर्ज्ञानमप्युत ।
एवं यदि मते भेदास्तव शम्भो कथं वद ।। ८२।।

अभक्तलिङ्गधारणान्मुक्तिर्भवति वा?

प्राबल्येन विभोर्भक्तिः साध्यते मुक्तिरीश्वर ।
लिङ्गधारणतः किं स्यादभक्तस्योक्तभक्तितः ।। ८३।।

बन्धन में पड़े इस तरह के पुरुषों की शिवज्ञान और शिवभक्ति में वैसे ही कोई रुचि नहीं रहती, जैसे कि चमड़े को और हड्डियों को चबाने वाले श्वानों की स्वादिष्ट घृत में कोई रुचि नहीं रहती।।७९।। भक्तिपूर्वक गुरु की सेवा-शुश्रूषा किये बिना और शैवागम शास्त्रों का अभ्यास किये बिना भक्तिरहित अज्ञानी पुरुष मेरे कल्याणमय परम पद को कैसे प्राप्त कर सकते हैं।।८०।। ज्ञान को प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ साधन भक्ति है। ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर योग की सहायता से व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त करता है। मुक्ति के सिद्ध हो जाने पर कर्म उसी तरह से व्यर्थ हो जाता है, जिस तरह से कि रोगमुक्त व्यक्ति के लिये औषध की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।।८१।।

पार्वती का प्रश्न

हे शंभो! यदि कर्म मुक्ति का साधन नहीं है और बिना भक्ति का ज्ञान भी व्यर्थ ही है, तब शैवों के ये विभिन्न मत किस आधार पर प्रवृत्त हुए, यह आप मुझे बताइये।।८२।।

हे ईश्वर! यदि ईश्वर की प्रबल भक्ति से ही मुक्ति मिल सकती है, तो उस इष्टलिंगधारी की क्या स्थिति होगी, जिसकी कि उसमें भक्ति नहीं है।।८३।। हे विभो!

---

१. बद्धा-कटि. ख.। २. चर्माम्भाः-क., चर्मास्थि-कटि.।

इदं निरूपय विभो करुणाकर शङ्कर ।
मम बन्धो दयासिन्धो गन्धेभाजिनभूषण ।।८४।।

ईश्वर उवाच

सत्यमुक्तं त्वया देवि शृण्वत्र परमं वचः ।
मतभेदेषु [१]चोक्तेषु विशेषं लिङ्गधारणम् ।।८५।।

लिङ्गधारणतः संसृतिसागरं तरति

कर्मादिकारिणः कामं कामिनः कमलानने ।
कर्मबन्धविमोक्षाय कल्पितो मार्ग ईदृशः ।।८६।।
लिङ्गधारणसन्नावी तरेत् संसृतिसागरम् ।
तत्केन जीयते देवि गहना कर्मणो गतिः ।।८७।।

मतभेदाः सोपानमार्गाः

न त्यक्तुं शक्यते यावदेकदैव तनूभृता ।
तत्सोपानप्रसिद्ध्यर्थं मतभेदा निरूपिताः ।।८८।।

सब पर करुणा करने वाले, मदमस्त हाथी के चर्म का वस्त्र के रूप में आभूषण धारण करने वाले, दया के सागर, मेरे बन्धु शंकर! इस विषय को आप मुझे समझा कर बताइये।।८४।।

शिव का समाधान

हे देवि! तुमने जो कुछ कहा है, वह ठीक ही है। इस विषय में जो महत्त्व की बात है, उसे तुम सुनो! इन सब मतभेदों के रहते हुए भी इन सभी की विशेषता यह है कि सर्वत्र इष्टलिंग धारण समान है।।८५।।

हे कमलनयनि! यज्ञ आदि कर्मों का आश्रय लेने वाले भले ही किसी इच्छा से इनका अनुष्ठान करें, उनको कर्मबन्धन से मुक्ति दिलाने के लिये इष्टलिंग धारण ही मुख्य उपाय है।।८६।। हे देवि! इष्टलिंग धारण करना एक मजबूत नाव पर चढ़ने के समान है। इसकी सहायता से वह संसार-सागर के पार पहुँच सकता है। अन्यथा कर्मों की गति तो अतिविचित्र है। उनका पार कौन पा सकता है।।८७।।

साधारण शरीरधारी एक साथ इन कर्मों का परित्याग नहीं कर सकता। वह सोपान-परम्परा से एक-एक कर इनको छोड़े, इसी के लिये यहां अनेक मतभेद वर्णित हैं।।८८।। बिना विघ्न के फल की प्राप्ति हो और मिले हुए लाभ की स्थिरता

---

१. शक्तौ च-ग. घ.।

निर्विघ्नेन फलप्राप्त्यै लाभदार्ढ्यादिसिद्धये ।
निर्विघ्नाय विशोकाय कर्तव्यं लिङ्गधारणम् ।।८९।।
पूजार्चनादिको भेदश्चोदयायैव शाङ्करि ।
भक्तेर्ज्ञानस्य दार्ढ्याय केवलं त्वाप्तये स्फुटम् ।।९०।।
परिज्ञानं गुरोः शास्त्रात् स्वरूपस्य ममापि च ।
पुरुषार्थः परो देवि बन्धनायाखिलं परम् ।।९१।।
आब्रह्मकीटपर्यन्तं भूतजातं मयीक्षयेत् ।
ममात्मनि द्वित्रितयमेकं चाखण्डमव्ययम् ।।९२।।

परं गुह्यं ज्ञानं तदङ्गानि च

एतज्ज्ञानं परं गुह्यमन्यदज्ञानमेव तत् ।
एतदङ्गानि सर्वाणि गुरुशास्त्रमुखानि[१] हि ।।९३।।

भी रहे, इसके लिये तथा निर्विघ्न कार्य सिद्ध हो और किसी प्रकार के दुःख की प्राप्ति न हो, इसके लिये इष्टलिंग धारण करने का विधान है।।८९।। हे शांकरि! पूंजन, अर्चन आदि का जो भेद प्रदर्शित है, वह तो मनुष्य के कल्याण के लिये ही है। यह सब भक्ति और ज्ञान की दृढता के लिये और कैवल्य पद की प्राप्ति के लिये है।।९०।। हे देवि! गुरुमुख से और शास्त्र के अध्ययन से स्वात्मस्वरूप और ईश्वरस्वरूप का ज्ञान ही श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। बाकी सब तो केवल बन्धन के ही कारण हैं।।९१।। ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त समस्त प्राणियों को शिवस्वरूप में ही विलीन देखना चाहिये। मेरे इस शिवस्वरूप में ही दो तीन और एक अखंड, अव्यय तत्त्व की स्थिति को समझना चाहिये।।९२।।

इस अखंड अव्यय तत्त्व का ज्ञान ही श्रेष्ठ गुह्य ज्ञान है। इससे भिन्न सब कुछ अज्ञान की कोटि में आता है। गुरु और शास्त्र आदि सब कुछ इसी ज्ञान के अंग हैं।।९३।।

---

१. स्त्रादिकानि-ख. ग. घ.।

विविक्तदेशः [1]सन्तोषस्तृप्तिराचार्यसेवनम् ।
अनीहाचारमौनानि स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।। ९४ ।।
अहिंसास्तेयसत्यानि दयात्मसमताखिले ।
तितिक्षा चाप्रमादश्च ब्रह्मचर्यव्रतं[१] प्रियम्[२] ।। ९५ ।।
असन्नीताखिलापेक्षा ह्रीरहंमतिवर्जनम् ।
[३]जातिक्रमविभेदाश्च सुखत्यागोऽन्यसंमतम् ।। ९६ ।।

जैसे कि एकान्त में निवास करना, संतोष, तृप्ति, आचार्य की सेवा, सभी प्रकार की इच्छाओं का त्याग, आचार और मौन व्रत का पालन, शास्त्राध्ययन, तप और नम्रता।।९४।। अहिंसा, अस्तेय, सत्य, दया, सबको अपने समान समझना, तितिक्षा (दुःख सहन करने की शक्ति), अप्रमाद (आलस्य का अभाव), ब्रह्मचर्य, सत्य और प्रियभाषण।।९५।। समस्त असत् (क्षणभंगुर) पदार्थों की इच्छा का त्याग, लज्जा, अहंकार का परित्याग, नाना प्रकार की जातियों के भेद को न मानना, सुख का त्याग और दूसरे के मत का संमान।।९६।।

---

१. मृतं-क. ख.। २. प्रिये-ग. घ.। ३. जातिक्रमविभिन्नेच्छा-कटि., जात्या-घ. ङ.।

1. 'कौर्मे उत्तरभागे एकादशाध्याये— "यदृच्छालाभतो नित्यमलं पुंसो भवेद् यथा। या धीस्तामृषयः प्राहुः सन्तोषं सुखलक्षणम्।।" इति। याज्ञवल्क्यस्मृतौ— "स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति। उपनीय वदेद् वेदानाचार्यः स उदाहृतः।।" इति। लैङ्गे पूर्वे दशमाध्याये— "स्वयमाचरते यस्मादाचारे स्थापयत्यपि। आचिनोति हि शास्त्रार्थानाचार्यस्तेन चोच्यते।।" इति। मौनं शब्दप्रयोगराहित्यम्। कर्मविशेषे मौनाचरणं यथा— "उच्चारे मैथुने चैव प्रस्तावे दन्तधावने। स्नाने भोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत्।।" इति। अत्रिस्मृतावपि— "पुरीषे मैथुने होमे प्रस्तावे दन्तधावने। स्नानभोजनजप्येषु सदा मौनं समाचरेत्।।" इति। कौर्मे— "वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजपं बुधाः। सत्त्वशुद्धिकरं पुंसां स्वाध्यायं सम्प्रचक्षते।।" इति। सूतसंहितायाम्— "वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः। शरीरशोषणं यत्तत् तप इत्युच्यते बुधैः।।" इति। सिद्धान्तशिखामणौ— "शिवार्थे देहसंशोषस्तपः कृच्छ्रादि नो मतम्" (९.२२) इति। सूतसंहितायाम्— "पुत्रे मित्रे कलत्रे च रिपौ स्वात्मनि सन्मतम्। एकरूपं मुने यत्तदार्जवं प्रोच्यते बुधैः।।" इति। कौर्मे— "मनसा कर्मणा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा। अक्लेशवृत्तिर्या प्रोक्ता त्वहिंसा परमर्षिभिः।। परद्रव्यापहरणं चौर्याद्वाथ बलेन वा। स्तेयं तस्यानाचरणमस्तेयं धर्मसाधनम्।। सत्येन सर्वमाप्नोति सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्। यथार्थकथनाचारः सत्यं प्रोक्तं द्विजातिभिः।।" इति। अत्रिस्मृतौ— "परस्मिन् बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा। आत्मवद् वर्तितव्यं हि दयैषा परिकीर्तिता।।" इति। तितिक्षाक्षमायां मात्स्ये पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमाध्याये— "आकृष्टोऽभिहतो वापि नाक्रोशेन्न च हन्ति वा। अदुष्टो वाङ्मनःकायैस्तितिक्षुः सा क्षमा स्मृता।।" इति। कौर्मे— "कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा। सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते।।" इति। ब्रह्मचर्ये त्वष्टाङ्गमैथुनप्रतिषेध उक्तोऽस्मिन्नेव तन्त्रेऽष्टमपटले। ह्रीर्लज्जा, सूतसंहितायाम्— "वेदलौकिकमार्गेषु कुत्सितं कर्म यद्भवेत्। तस्मिन् भवति या लज्जा ह्रीस्तु सैव प्रकीर्तिता।।" इति-ख. टिप्पणी (पृ. २६१-२६२)।

यदृच्छालाभविजयस्त्वनपेक्षापि हस्तगे ।
स्मृतिरीश्वर[1]चिन्ता च तुष्टिः परहितक्रिया ।। ९७ ।।
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
सुखदुःखात्मसमता परेषां च द्विषामपि ।। ९८ ।।
साक्ष्यवस्थात्रये चापि परोपकृतिचेतनम् ।
[2]आत्महितार्थनिर्बन्धः प्रतीकारानपेक्षिता ।। ९९ ।।
गुरुशास्त्रेशसद्भक्तिरादरो भक्तभक्तिषु ।
ध्यानं ममाभिधानानामनुस्मरणमन्वहम् ।। १०० ।।
तेजस्वितापि वाग्मित्वमप्रागल्भ्यप्रदर्शनम् ।
असङ्ग आत्मचिन्तानां शिश्नोदरतृषां[3] क्वचित् ।। १०१ ।।
अहेरिव गुणाद् भीतिः सङ्गमान्मरणादिव ।
कुणपादिव योषिद्भ्यो धैर्यं पुत्रिषु तेष्वपि ।। १०२ ।।
साङ्गस्यैवात्र सम्पूर्तिर्निरङ्गस्याङ्गिता कुतः ।
सह प्लवगते भीमे प्रवाहे भववारिधेः ।। १०३ ।।

अनायास जो कुछ मिल जाय, उससे सन्तुष्ट रहना, हाथ में आई वस्तु का भी लोभ न दिखाना, ईश्वर का स्मरण और चिन्तन करना, सन्तोष और दूसरे के हित के लिये प्रयास करना।।९७।। किसी पर भी आसक्ति न दिखाना, पुत्र, पत्नी, गृह आदि पर अत्यधिक लगाव न रखना, सुख-दुःख आदि की स्थितियों में समान भाव रखना और इसी तरह से शत्रु और मित्र के प्रति भी समान दृष्टि रखना।।९८।। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति नामक तीनों साक्षी दशाओं में सदा परोपकार की भावना रखना, अपने हित के लिये बहुत आग्रह न रखना और बदला लेने की भावना न रखना।।९९।। गुरु, शास्त्र और ईश्वर के प्रति भक्ति प्रदर्शित करना, भक्तों के प्रति और भक्तिभाव के प्रति आदर रखना, शिव-ध्यान और शिवनाम का प्रतिदिन स्मरण करना।।१००।। अपनी तेजस्विता, वाणी के चातुर्य और उत्साह का अधिक प्रदर्शन न करना, आहार-मैथुन आदि में ही सदा लगे रहने वाले पुरुषों की संगति न करना।।१०१।। दुर्गुणों से सांप की तरह भयभीत रहना, दुर्जनों के संसर्ग से मृत्यु के समान डरना, स्त्रियों से मुर्दे के समान दूर रहना और गृहस्थों के प्रति धीरता दिखाना, ये सब गुण इष्टलिंगधारी के लिये आवश्यक हैं। सांग वस्तु की ही संपूर्ति संभव है, निरंग वस्तु की अंगिता कैसे संभव हो सकती है।।१०२-१०३।। हे विश्वेशि! संसार-सागर के इस भयंकर प्रवाह

१. श्वरि मच्चिन्ता-कटि.। २. आत्मा-क. ख.। ३. नृणां-क.।

शिवे मनःस्थैर्यमेव परमो योगः

सर्वथा शृणु विश्वेशि परमार्थविनिर्णयम्।
सर्वयत्नेन मनसा[1] स्थिरीकुर्यान्मनो मयि ।।१०४।।
एष वै परमो योगो मनसः सङ्ग्रहः शिवे।
दम्यस्यैवार्ततो यत्नादुपलब्ध्या मनोज्ञया ।।१०५।।

जगन्मिथ्येति बुद्ध्वा शिवो भवति

एतन्निरूपितं देवि गुणत्रयविकारकम्।
जगन्मिथ्यामयं बुद्ध्वा मामाश्रित्य भवेदहम्[2] ।।१०६।।

इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे [3]श्रीवीरशैवदीक्षाप्रकरणे शिवाद्वैत-सिद्धान्ते द्वाविंशतितमः पटलः समाप्तः[4] ।।२२।।

में पड़े हुए व्यक्ति के लिये इन सब गुणों के पालन के अतिरिक्त जो बात परमार्थ रूप में सोचने की है, उसे तुम सुनो।।१०३-१०४।।

हे शिवे! सभी प्रकार के प्रयत्नों से अपने मन को निर्मल कर शिवभाव में स्थिर कर दे। यह मन का संग्रह (नियन्त्रण) ही श्रेष्ठ योग है। खेती के काम में लगे हुए बैल को नियन्त्रण में रखकर जैसे अन्न के रूप में मनोहारी लाभ मिलता है, उसी तरह से मन्त्र पर नियन्त्रण कर शिवभाव की प्राप्ति की जा सकती है।।१०४-१०५।।

हे देवि! इस तरह से यहां स्पष्ट रूप से बताया गया है कि सत्त्व, रज और तम नामक त्रिगुणात्मक यह जगत् मिथ्या है, ऐसा बुद्धि से विचार कर मेरा ही आश्रय ग्रहण करे। ऐसा व्यक्ति शिवस्वरूप हो जाता है।।१०६।।

इस प्रकार पारमेश्वर तन्त्र के वीरशैव दीक्षा प्रकरण के अन्तर्गत शिवाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादक यह बाईसवाँ पटल समाप्त हुआ।।२२।।

---

१. विमलं-कटि. ख.। २. भवेत् सुखी-कटि. ख.। ३. 'श्रीवीर......सिद्धान्ते' नास्ति-ख. ग. घ.। ४. 'समाप्तः' नास्ति-क. ख.।

त्रयोविंशः पटलः

देव्युवाच

त्रिलोचनाखिलाधार श्रीकण्ठ परमेश्वर ।
त्रिनाभि त्रिगुणालोक त्रितत्त्वपरिवर्तक ॥१॥
गुरुः प्रियोऽसि भर्ता मे दत्तदेहा त्वयाऽस्म्यहम् ।
वदात्र विस्तरादीश पृष्टं मत्प्रश्नगर्भितम् ॥२॥

निर्लेपस्य जगदाधारता कथमिति प्रश्नः

निर्लेपानङ्गसूक्ष्मस्य जगदाधारता विभो ।
स्थूलस्याप्यविकारस्य कार्यकारणता कथम् ॥३॥
सङ्गादसङ्गिनः सङ्गिजीवदृश्यविकारिणः ।
समापद्येत तादात्म्यमनित्यत्वादिलक्षणम् ॥४॥
सङ्गिनोऽसङ्गिनः स्थातुमुपपद्येत् स्थितिः कथम् ।
परिपूर्णाप्तकामस्य वचसापि प्रयोजिता ॥५॥

देवी का प्रश्न

हे त्रिलोचन, समस्त जगत् के आधार, स्थूल, सूक्ष्म और पर स्वरूप, तीन नाभि वाले, सत्त्व, रज और तम नामक तीन गुणों को प्रकाशित करने वाले, पति, पशु, पाश नामक तीन तत्त्वों का स्वरूप धारण करने वाले श्रीकण्ठ परमेश्वर।।१।। हे ईश! आप मेरे गुरु और प्रिय भर्ता हैं। आपने ही मुझे यह शरीर दिया है। मैंने यहां प्रश्न के रूप में जो कुछ उपस्थित किया है, उसे आप विस्तार से समझाइये।।२।।

हे विभो! आप तो निर्लेप हैं, आपका कोई शरीर नहीं है और अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप वाले हैं, तब आप इस जगत् के आधार कैसे हो सकते हैं। आपका स्थूल स्वरूप भी तो विकार से रहित है, तो उसमें कार्यकारण भाव कैसे आ सकता है।।३।। यह जीव और जगत् तो आसक्ति से भरा, दृश्य स्वरूप और विकारी है। इसके सम्पर्क में आकर तो असंगी भगवान् में भी इसके साथ तादात्म्य होने पर अनित्यता आदि दोष आ जावेंगे।।४।। संसार में आसक्त जीव के साथ परिपूर्ण आप्तकाम और असंगी परमात्मा की स्थिति कैसे संभव हो सकती है? उसे हम वाणी से किस प्रकार प्रकट कर सकते हैं।।५।।

ईश्वर उवाच

सम्यगापृच्छि भगवत्यतिगुह्यमिदं त्वया ।
यदि ज्ञेयं त्यजेत् सङ्गमात्मन्यात्मनात्मना ॥६॥
अनन्तोऽहमनाधार आधारो जगतामहम् ।
असङ्गश्चापि निर्लेपस्तथा त्वं शृणु पार्वति ॥७॥

आकाशवायुदृष्टान्तेन तदुपपादनम्

अस्पृशन्नेव भूतानि धारयाम्यखिलान्यपि ।
गन्धवाहमिवाकाश एवमाधारता मम ॥८॥
वस्तुतः सर्वबीजस्य पूर्णस्याप्यविकारिणः ।
वदतो विधिमात्रेण प्रयोज्यत्वं कुतो मम ॥९॥
गिराविव तृणादीनि जायन्ते यान्ति वै लयम् ।
मेघागतिरिवार्कस्य तत्सम्बन्धं कुतो गिरेः ॥१०॥

ईश्वर का समाधान

हे भगवति! इस अत्यन्त गोपनीय प्रश्न को तुमने सही रूप में उपस्थित किया है। यदि किसी जिज्ञासु को तत्त्व का सही ज्ञान प्राप्त करंना है, तो उसे अपने से अपनी आत्मा के प्रति आसक्ति को छोड़ना होगा।।६।। हे पार्वति! असंग और निर्लेप होते हुए भी मैं अनन्त स्वरूप हूँ, अतः निराधार होते हुए भी इस सारे जगत् का आधार कैसे बन जाता हूँ, इसे तुम सुनो।।७।।

मैं बिना किसी को स्पर्श किये समस्त भूतों (प्राणियों) को वैसे ही धारण करता हूँ, जैसे कि आकाश पवन को धारण किये हुए है। इसी तरह मैं सबका आधारभूत भी हूँ।।८।। परिपूर्ण रूप और अविकारी होते हुए भी वस्तुतः सभी की उत्पत्ति का मूल कारण मैं ही हूँ। ऐसी स्थिति में वेदवाक्यों के आधार पर मेरे में प्रयोज्यता कैसे आ सकती है।।९।। पर्वत पर तृण आदि उत्पन्न होते हैं और विलीन हो जाते हैं। यह कार्य बादलों से पानी बरसने और गर्मियों में सूर्य की किरणों के कारण होता है। इस तरह से वास्तव में देखा जाय तो पर्वत से इन दोनों ही क्रियाओं का कोई संबन्ध नहीं है।।१०।। अधिष्ठातृता, कर्तृता, कारणता आदि मेरी ये सारी स्थितियां मेरी ही

अधिष्ठातृत्वकर्तृत्वकारणत्वादिकान्यपि ।
कल्पितानि महाशक्त्या भवत्यैव मदीयया ।।११।।

देव्युवाच

कार्यसद्भावे शिवस्याद्वयता कथमुपपद्यते?

अनाधार सदाधार धातरीश्वर वल्लभ ।
निरन्तर निरातङ्क परिपूर्णाद्वय प्रभो ।।१२।।
नित्यसत्यसुखज्योतिःकेवलस्य चिदात्मनः ।
सद्भावेऽन्यस्य कार्यस्याद्वितीयत्वं कुतस्तव ।।१३।।
उक्तानि लक्षणान्येतान्यखिलानि स्युरीश्वर ।
तथापि त्वयि विश्वेश छिन्ध्येतत् संशयं मम ।।१४।।

ईश्वर उवाच

मृत्तिकेत्येव सत्यमिति उपनिषद्वचनेन तत्समाधानम्

घटाद्या मृत्समुपन्ना मृदेव व्यवहारतः ।
नामरूपक्रियावत्त्वं कनकात् कुण्डलादिवत् ।।१५।।

महाशक्ति के द्वारा कल्पित हैं और मेरी यह महाशक्ति स्वयं तुम ही हो। अभिप्राय यह है कि मुझ में जगत् की कार्य-कारणता और उसकी संचालन की शक्ति ये सारी बातें महामाया के द्वारा कल्पित हैं, अतः उसके कारण मुझमें कोई विकार नहीं आ सकता।।११।।

देवी का प्रश्न

हे प्रभो! आप निराधार होते हुए भी सबके आधार हैं, सबका पालन करने वाले हैं। हे ईश्वर! आप मेरे वल्लभ हैं। आप आदि और अन्त से रहित निरन्तर स्थिति वाले, सभी प्रकार के आतंक से मुक्त, परिपूर्ण अद्वय स्वरूप हैं।।१२।। आप तो केवल नित्य, सत्य, सुख और ज्योतिस्वरूप और चिदात्मस्वरूप हैं। ऐसी स्थिति में आपसे भिन्न यदि किसी की स्थिति है, तो उस दशा में आपकी अद्वितीयता कैसे संभव हो सकती है।।१३।। हे विश्वेश! यहां बताये गये ये सभी लक्षण आपमें हैं, तो भी आप अद्वितीय हैं, यह कैसे संभव है, कृपया मेरे इस संशय को आप दूर कीजिये।।१४।।

ईश्वर का उत्तर

घट आदि मिट्टी के सारे बर्तन मिट्टी से ही बनते हैं, व्यावहारिक दृष्टि से ये सब मिट्टी के ही स्वरूप होते हुए विभिन्न नाम और रूप धारण कर विभिन्न जलाहरण

कार्यस्य कारणात्मत्वं लोकसिद्धमपि श्रुतिः ।
मृत्तिकेत्येव सत्यं चेत्याह बीजाङ्कुरं स्फुटम् ।।१६।।
व्यवहर्ता व्यवहृतिर्व्यवहार्यमिदं त्रयम् ।
एक एवासमिह यत् सुवर्णत्वं हि काञ्चनम् ।।१७।।
यावन्नात्मपरिज्ञानं शिश्नोदरकुवादिनाम् ।
तावद् भेदवदाभासो ज्ञाते मयि कुतो भिदा ।।१८।।
रज्जौ सर्पत्वमारोप्य स्वभ्रान्त्या कुमना अहिः ।
बिभेति किं वा तस्येयं करोति न करोति वा ।।१९।।
संस्थिते मय्यधिष्ठाने निस्तरङ्गसुखाम्बुधौ ।
संजायन्ते विलीयन्ते नामरूपात्मबुद्बुदाः ।।२०।।

आदि क्रियाओं के निष्पादक हैं, जैसे कि सुवर्ण से कुण्डल, कटक आदि बनते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जैसे सुवर्ण से बने हुए कटक, कुण्डल आदि सुवर्ण से भिन्न नहीं हैं, उसी तरह से मिट्टी से बने हुए घट, उदंचन, शराव आदि भी मिट्टी से भिन्न नहीं हैं।।१५।। कार्य (घट) आदि की कारणात्मकता (मृत्तिका) लोक व्यवहार से ही सिद्ध है। उसीको श्रुति "मृत्तिकेत्येव सत्यम्" इस तरह के वचनों से स्पष्ट करती है। इनका यह कार्यकारणभाव बीज और अंकुर के समान स्पष्ट है।।१६।। व्यवहर्ता पुरुष, व्यवहार (क्रिया) और व्यवहार्य वस्तु— ये तीनों वास्तव में एक साथ ही हैं। सुवर्ण से नाना प्रकार के आभूषण बन जाते हैं, तो भी उनमें सुवर्ण की उज्ज्वलता सर्वत्र विद्यमान रहती ही है।।१७।। पेट भरने में और भोगविलास में लगे हुए भ्रान्त बुद्धि वाले व्यक्तियों को जब तक आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं होता, तब तक उनकी भेदबुद्धि भी कभी दूर नहीं हो पाती। एक बार शिवस्वरूप का ज्ञान हो जाने के बाद तो भेदबुद्धि कैसे ठहर सकती है।।१८।। रस्सी में सर्प का आरोप कर, अर्थात् अपनी भ्रमात्मक बुद्धि के कारण रस्सी को सांप समझ कर व्यक्ति डर जाता है। यहां सांप उसका कुछ नहीं बिगाड़ता, किन्तु भ्रम में पड़ा हुआ अज्ञानी व्यक्ति अपनी भ्रान्ति के कारण क्या कुछ नहीं कर डालता? इसका अभिप्राय यह है कि भ्रान्त व्यक्ति भय के मारे कभी-कभी अपनी मृत्यु का भी कारण बन जाता है।।१९।। भगवान् शिव ही सारे जगत् के अधिष्ठान के रूप में स्थित हैं। ये ही निस्तरंग सुखरूपी समुद्र है। समुद्र में जैसे लहरियां, बुलबुले आदि उत्पन्न होते हैं और फिर उसी में विलीन हो जाते हैं, उसी तरह से नामरूपात्मक यह सारा जगत् उसी आनन्दस्वरूप से पैदा होता है और फिर उसी में विलीन हो जाता है।।२०।।

देव्युवाच

प्रकृतेः परतन्त्राया यद्वा स्वातन्त्र्यवर्त्मनः ।
जात्याधृतिरियं नेष्टा भवतोऽस्ति प्रयोजनम् ।। २१।।

[1]इति श्रीपारमेश्वरतन्त्रे त्रयोविंशतिपटलः समाप्तः।।२३।।

देवी का अन्तिम वाक्य

परतन्त्र प्रकृति का अथवा अपना स्वतन्त्र मार्ग बनाने वाली शक्ति का यह सामर्थ्य नहीं है कि जाति, जन्म आदि पर आधृत इस जगत् की सृष्टि अपने से ही कर ले। इसके लिये तो आपकी (भगवान् शिव) भी आवश्यकता रहती है।।२१।।

इस प्रकार पारमेश्वर तन्त्र का यह तेईसवाँ पटल समाप्त हुआ।।२३।।

---

१. ङ. पुस्तके पुष्पिकावाक्यं नास्ति।

परिशिष्टानि

श्लोकार्धानुक्रमणी

सहायकग्रन्थसूची

पाठान्तराणि

श्लोकार्धानुक्रमणी

□

सहायक ग्रन्थ-सूची

अथर्वशिर उपनिषद्— उपनिषत्संग्रह, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, सन् १९७०

अध्यर्धशतकस्तोत्रम्— मातृचेटविरचितम्, बौद्धस्तोत्रसंग्रह (पृ. २१-३३) सम्पादक- श्रीजनार्दन शास्त्री पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, सन् १९९४

अमनस्कयोगशास्त्रम्— कलकत्ता, १८८६, बम्बई १९०१

अमरकोशः सुधाव्याख्यासहितः— निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९२९

अमृतानुभव (मराठी)— सन्त ज्ञानेश्वर, डॉ. प्रभाकर सदाशिव पण्डित, आमलनेर कृत हिन्दी अनुवाद, हिन्दी कुटीर बुलानाला, वाराणसी।

अष्टप्रकरणम्— (तत्त्वप्रकाश-तत्त्वसंग्रह-तत्त्वत्रयनिर्णय-रत्नत्रय- भोगकारिका-नादकारिका, मोक्षकारिका-परमोक्षनिरासकारिकाख्यप्रकरणाष्टात्मकम्), सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९८८

अष्टावरण विज्ञान (हिन्दी)— डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य, श्री गुरु अमरेश्वर प्रकाशन अमरेश्वर मठ, गुलेदगुड्ड, कर्णाटक, सन् १९८५

आगम और तन्त्रशास्त्र (हिन्दी)— प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८४

आगम और तन्त्रशास्त्र का इतिहास (हिन्दी)— उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ द्वारा प्रकाशनीय।

ईश्वरगीता कूर्मपुराणान्तर्गता— मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९६२

ऋग्वेदः (मूलमात्रम्)— सातवलेकर संस्करण, स्वाध्याय मंडल, पारड़ी।

ऋग्वेदः (खिलभागः)— पूर्ववत्।

कर्मकाण्डक्रमावली (सोमशम्भुपद्धतिः)— कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९४७

कात्यायनपद्धति विमर्श (हिन्दी)— डॉ. मनोहरलाल द्विवेदी, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, सन् १९८८

कारणागमः— पण्डित काशीनाथ शास्त्री, श्री पंचाचार्य इलेक्ट्रिक प्रेस, मैसूर, सन् १९४०, १९५६ (कन्नड लिपि)।

कूर्मपुराणम्—— मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९६२

कूर्मपुराण : धर्म और दर्शन (हिन्दी)—— डॉ. करुणा एस. त्रिवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९९४

गौतमस्मृतिः—— स्मृतिसन्दर्भ, चतुर्थ भाग, मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९५३

चन्द्रज्ञानागमः—— शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९४

जयाख्यसंहिता—— गायकवाड़ ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ोदा, सन् १९६७

तत्त्वप्रकाशः—— अष्टप्रकरण द्रष्टव्य।

तन्त्रयात्रा (संस्कृत)—— प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी, रत्ना पब्लिकेशंस, वाराणसी, सन् १९८३

तन्त्रसंग्रहः (वातुलशुद्धाख्य-सूक्ष्म-देवीकालोत्तर-पारमेश्वरतन्त्रात्मकः)—— शंकरप्पा अच्चप्पा, टोपिगि, मैसूर, सन् १९१४

तन्त्रसारः—— अभिनवगुप्तविरचितः, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली श्रीनगर, सन् १९१८

तन्त्राभिधानम् (बीजकोशः)—— तान्त्रिक टेक्स्ट सिरीज, कलकत्ता, सन् १९३७

तन्त्रालोकः, विवेकव्याख्यासहितः—— (१२ भागात्मकः), कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९१८-३८

तैत्तिरीयब्राह्मणम्—— आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् १९२६

तैत्तिरीयसंहिता—— सातवलेकर संस्करण, स्वाध्याय मंडल, पारड़ी।

तैत्तिरीयारण्यकम्—— आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् १९२७

दक्षस्मृतिः—— स्मृतिसन्दर्भ, प्रथम भाग, मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९५२

धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी अनुवाद)—— हिन्दी समिति, लखनऊ, तृतीय भाग, द्वितीय संस्करण, सन् १९७५

नारदीयमहापुराणम्—— नाग पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८४

निगमागम संस्कृति (हिन्दी)—— वीरशैव अनुसन्धान संस्थान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९२

निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्— शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९५

नित्याषोडशिकार्णवः (ऋजुविमर्शिनी- अर्थरत्नावलीटीकाद्वयसहितः)— सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, सन् १९८४

नेत्रतन्त्रम् (उद्योतव्याख्यासहितम्)— परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८५

न्यायदर्शनम् (भाष्य-व्याख्या-सहितम्)— गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई, सन् १९२२

पातञ्जलयोगसूत्रं सभाष्यम्— आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् १९३२

पारमेश्वरागमः (कन्नड़ लिपि)— तन्त्रसंग्रह द्रष्टव्य।

पारमेश्वरागमः (मराठी अनुवाद सहित)— वेदमूर्ति श्रीमल्लिकार्जुन शास्त्री, सोलापुर, (दो भाग), सन् १९०४-१९०५

पाशुपतसूत्रं पञ्चार्थभाष्यसहितम्— त्रिवेन्द्रम् संस्कृत ग्रन्थमाला, त्रिवेन्द्रम्, सन् १९४०

बृहदारण्यकोपनिषद्— उपनिषत्संग्रह, मोतीलाल बनारसीदास, सन् १९७०

भगवद्गीता— गीताप्रेस, गोरखपुर।

भस्मजाबालोपनिषद्— उपनिषत्संग्रह, मो. ब. वाराणसी, सन् १९७०

भागवतमहापुराणम्— गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०१०

मकुटागमः— पण्डित काशीनाथ शास्त्री, श्री पंचाचार्य इलेक्ट्रिक प्रेस मैसूर, सन् १९४०, १९५६ (कन्नड़ लिपि)।

मनुस्मृतिः (भाषानुवादसहिता)— निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९२९

महानारायणोपनिषद्— केदारनाथ शिवतत्त्व ग्रन्थमाला, काशी सन् १९२९

महाभारतम्— गीता प्रेस, गोरखपुर।

महिम्नस्तोत्रं मधुसूदनीव्याख्यासहितम्— निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३०

मुण्डकोपनिषद्— उपनिषत्संग्रह, मो. ब. वाराणसी, सन् १९७०

मृगेन्द्रागमः (चर्यापादः)— फ्रेंच इंस्टीट्यूट, पांडिचेरी, सन् १९६२

मृगेन्द्रागमः (योगपादः)— कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९३०

योगिनीहृदयं दीपिकाव्याख्याभाषानुवादसहितम्— सम्पा. प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी, प्रका. मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९८८

रिचुअल एण्ड स्पेक्युलेशन इन अर्ली तान्त्रिज्म— स्टेट युनिवर्सिटी आफ न्यूयार्क, अमेरिका, सन् १९९२

लिङ्गधारणचन्द्रिका— शैवभारती भवन, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९८८

लिङ्गधारणचन्द्रिका (अंग्रेजी उपोद्घात सहित)— डॉ. एम. आर. सकारे, बेलगांव, कर्णाटक, सन् १९४२

लक्ष्मीतन्त्रम्— अडयार लाइब्रेरी, अडयार, मद्रास, सन् १९५९

लुप्तागमसंग्रहः (द्वितीय भाग)— सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९८३

वचन परिभाषा कोश (कन्नड़)— कन्नड़ मत्तु संस्कृति निदेशालय, बंगलोर, सन् १९९३

वामनपुराणम्— नाग पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८३

वायवीयसंहिता शिवपुराणान्तर्गता— पण्डित पुस्तकालय, काशी संवत् २०२०

वायुपुराणम्— मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९५९

विज्ञानभैरवः (भाषानुवादसहितः)— सम्पा. प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी, प्रका. मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९८४

वीरशैवदीक्षाविधिः— वेदमूर्ति मल्लिकार्जुन शास्त्री, सोलापुर, सन् १९०६

वीरशैवलिङ्गिब्राह्मणदशकर्मपद्धतिः— वेदमूर्ति मल्लिकार्जुन शास्त्री, सोलापुर, सन् १९०६

वीरशैवाचारप्रदीपिका— वेदमूर्ति मल्लिकार्जुन शास्त्री, पूना, सन् १९०५

वेदान्तसूत्रं श्रीकण्ठभाष्यशिवार्कमणिदीपिकाव्याख्यासहितम् (चतुःसूत्री-भागः)— जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९८६

शक्तिसंगमतन्त्रम् (छिन्नमस्ताख्यश्चतुर्थः खण्डः)— गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ोदा, सन् १९७८

शारदातिलकम् (भागद्वयात्मकम्)— आगमानुसन्धान समिति, कलकत्ता, सन् १९३३

शिवपुराणम्— पण्डित पुस्तकालय, काशी, संवत् २०२०

शिवमानसपूजास्तोत्रम्— शङ्कराचार्यविरचितम्, श्रीहरिस्मरणम्, मीठालाल हिम्मतराम ओझा, वाराणसी, संवत् २०२८

शिवागमसंग्रहः (चन्द्रज्ञान-कारण-मकुट-सूक्ष्मागमात्मकः)— पण्डित काशीनाथ शास्त्री, श्री पंचाचार्य इलेक्ट्रिक प्रेस, मैसूर सन् १९४२

शिवागम सौरभ (कन्नड़)— सम्पा. आस्थानविद्वान् एम.जी. नंजुंडाराध्य, प्रमोद मुद्रणालय, वसवेश्वर रोड, मैसूर, सन् १९८६

शिवार्चनचन्द्रिका— आप्पयदीक्षितविरचिता।

शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिनसंहिता— उव्वटमहीधरभाष्यसहिता, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९८७

श्वेताश्वतरोपनिषद्— उपनिषत्संग्रह, मो. ब. वाराणसी, सन् १९७०

सर्वदर्शनसंग्रहः— सायण-माधवविरचितः, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् १९२८

सिद्धान्तशिखामणिः (सव्याख्यः)— शैवभारती भवन, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९३

सूक्ष्मागमः (मराठी अनुवाद सहित)— वेदमूर्ति मल्लिकार्जुन शास्त्री, सोलापुर, सन् १९०१

सूक्ष्मागमः (कन्नड लिपि)— पं. काशीनाथ शास्त्री, पंचाचार्य इलेक्ट्रिक प्रेस, मैसूर, सन् १९५६

सूक्ष्मागमः (भाषा अनुवाद सहित)— शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९४

सोमशम्भुपद्धतिः (कर्मकाण्डक्रमावली)— कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली श्रीनगर, सन् १९४७

स्वच्छन्दतन्त्रम् (उद्योतव्याख्यासहितम्)— परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८५

❑

पाठान्तराणि

सम्पूर्ण ग्रन्थ का मुद्रण हो जाने के बाद जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी के ज्ञान-मन्दिर ग्रन्थालय में पारमेश्वरागम का एक हस्तलेख और उपलब्ध हुआ। यहां पटल की समाप्ति अथवा प्रारंभ में कन्नड़ लिपि भी प्रयुक्त है। यह हस्तलेख अधूरा है और माइक्रोफिल्म से इसका छायाचित्र तैयार कराया गया है। उसी के आधार पर यहां इसके पाठभेद संकलित किये गये हैं।

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	मुद्रितः पाठः	अत्रत्यः पाठः
१	९	दिव्य	सूर्य
३	५	भेदं	भेदान्
३	१५	पदं	परं
५	३	तत्तत्	तत्र
७	७	खर	खरम्
७	११	तु	च
१०	४		पङ्क्तिरियं नास्ति
११	९	एवा	एका
१२	८	यास्तत्र तत्र	या यत्र यत्र
१२	११	भेद	भेदः
१३	५	शैवस्थ	शैवः स
१६	२	हि वीरमन्त्रे तु	त्वमत्रादन्यत्र
१६	६	यदीदमिति	यदेतमिति
१७	१३	मन्मतस्थस्य	मन्मतस्य च
१८	६	महा	मम
१९	१२	समाप्तः	नास्ति कुत्रापि
२४	५		टिप्पणीस्थः पाठः
२४	८		टिप्पणीस्थः पाठः
२४	१०	प्रदातु	सदा तु
२४	१३		टिप्पणीस्थः पाठः
२६	४	दनापदि	द् विपद्यपि
२७	१०	एका द्वार	एकद्वार
२७	१०		टिप्पणीस्थः क्रमः
२८	१३	दिच्छं	दिच्छा
३०	२	च	द्वौ
३०	७	लिङ्गं	लिङ्ग

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	मुद्रितः पाठः	अत्रत्यः पाठः
३०	९	सु	स
३१	५	अनर्था	अनाथा
३२	१४	च्च शिवं स्मरेत्	च्छङ्करं स्मरन्
३३	७	नान्यां गोष्ठीं	नान्यगोष्ठि
३६	१४	तत्तदा	तत्तथा
३७	१२	देवि	चाथ
३७	१३	धारणलक्षणम्	भेदं विशेषतः
४३	१३	ध्यायेत	ध्यायीत
४४	६		टिप्पणीस्थः पाठः
४६	६	लीमुखैः	लैः शुभैः
५०	६		टिप्पणीस्थः पाठः
५१	७	शक्ताः	शक्याः
५२	२		टिप्पणीस्थः पाठः
५५	२	सोऽहं देवि	सोऽहमेव
५७	८		टिप्पणीस्थः पाठः
५८	९	रन्विते	रन्वितैः
५९	६	वामाङ्का	वामाङ्गा
५९	१३	कोटरे	जठरे
६२	१४	शाय	शार्थं
६४	९	चतुर्ष्वपि	विदिक्ष्वपि
६६	१४	सहानुव्यग्र	सह त्रिरन्वग्
६७	१०	स्थालीं	स्थाल्यां
६८	६	क्षुषी	क्षुषि
६८	१३	प्रत्यहं	प्रत्येकं
६९	१४	होम	दीक्षाहोम
७२	४-५		पादत्रय(२-४)पाठस्त्रुटितः
७४	८		टिप्पणीस्थः पाठः
७९	२	शक्ति	शक्त्या
७९	३		टिप्पणीस्थः पाठः
७९	१३	शक्त्या	भक्त्या
८०	११	ह्यर्चे	त्वर्चे
८०	१३	मात्रं	मात्र
८१	१०	प्रयत्नेन	विशेषेण
८२	४-५		पङ्क्तिद्वयं नास्ति

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	मुद्रितः पाठः	अत्रत्यः पाठः
८२	१३	र्थ्यब्जेन	र्थ्यन्नेन
८४	९		टिप्पणीस्थः पाठः
८४	१२	हि सः	नसौ
८५	११-१३		पङ्क्तित्रयं नास्ति
८६	१३	तदर्चने वा	तद्वन्दने च
८९	९	द्राणां	द्रेण
८९	१०	स्त्रियां	स्त्रिया
९१	१३	णस्तु स्या	णे तस्मा
९४	३	विद्धि	देवि
९५	३	यन्महे	यन्माहे
९७	८	तानपि	तानि हि
९७	१२	निर्मला	निश्चया
९८	१३	मपि	मभि
९९	१३	या	यो
१०२	१३	लिङ्ग	लिङ्गि
१०३-१०४		८८-८९ श्लोकयोर्विपर्यस्तः पाठः	
१०४	४		पङ्क्तिरियं नास्ति
१०५	४-५		श्लोकोऽयं नास्ति
१०६	१२	माप्नोति	दाप्नोति
१०८	४	म्भोधौ	म्भोधि
१०९	८	सन्तुष्टे	सन्तुष्टो
१११	४	न्नः स	न्नो यो
११५	२	दन्नं	दिष्टं
११५	११	च	वा
१२३	२-५		श्लोकयोर्विपर्ययः
१२३	१२	न धीमा	अधीमा
१२४	४	गुणा	गणा
१२६	५	नमस्ते शूल	नमस्त्रिशूल
१२६	१३	प्रवृत्त्यागच्छतां	प्रवृत्तं तत्कथं
१३०	११-१४		श्लोकयोर्विपर्ययः
१३२	३	नमो दिव्याय	दिव्यलिङ्गाय
१३२	१०	ज्वाल	ज्वल
१३५	११	रूपं तु	रूपेण
१३७	११	शैवमती	शैवमतं

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	मुद्रितः पाठः	अत्रत्यः पाठः
१४०	६	श्चाधिको योगी	श्चापि योगिभ्यः
१४२	४	भुक्ति	भुक्त
१४३	६–८		टिप्पणीस्थाः पाठाः
१४४	७	स्यात्र	स्यापि
१४५	५	क्च्चि	कश्चि
१४७	९	किमु	नु किम्
१४८	१०	श्वा वै	श्वानश्चा
१५०	३	यत्	यः
१५०	७	तु	ते
१५२	७	अस्नातो	अस्नात्वा
१५३	३	सारांश	सारांशं
१५५	११	नापि	नास्य
१५६	११	कुमार्गेण	कुपथेन
१५७	१३	एतज्ज्ञात्वा	तदज्ञात्वा
१५८	५	मये	मयं
१५९	१२	वन्द्यैक	वन्द्यक
१६०	६–७		पङ्क्त्योर्विपर्ययः
१६०	१०		टिप्पणीस्थः पाठः
१६२	१३	स्थश्च नि	स्थश्चेन्नि
१६३	९	च	तत्
१६४	५	पाठ	पाद
१६५	२	स्वात्मा भावं	स्वात्मभावं
१६५	४	कारिण	कारी यं
१६५	८	तारक्षवं	तरक्षुवं
१६७	५	पत्रं	पत्र
१६७	११	शिवम्	शिवे
१७०	१४	मभ्यासो	मनसो
१७२	२–३		श्लोकोऽयं नास्ति
१७२	१२	विमु	वियु
१७३	५	योगिनः	लिङ्गिनः
१७३	१०	दधिक	दधिकं
१७४	१०	प्राप्ते	प्राप्तौ
१७६	९	विधिनाऽपि विना	विधिनाऽविधिना

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	मुद्रितः पाठः	अत्रत्यः पाठः
१७६	१२	दैवं.....परम्	देवः........परः
१७८	४	शिवं	शिव
१८०	५	प्रदायकः	प्रसाधकः
१८१	१४	मन्त्रो नमः	मन्त्रोन्नमः
१८३	४	तेनाधीतं	ततोऽधीतं
१८४	६	भूता समासतः	भूतः समागतः
१८६	११	वापि दृक्त्रयम्	वाक्पदत्रयम्
१८८	५	मन्त्रेषु	मन्त्रस्य
१९१	४	सर्वांस्तद्	सर्वं तद्
१९४	८	चो	वो
१९५	५	गर्भं....गर्भं	गर्भो.....गर्भो
१९६	१०	जप्यं	जाप्यं
१९६	१३	जप्याद्	जप्त्वा
१९८	११-१३		टिप्पणीस्थौ पाठौ
१९९	१५	दग्धं	दग्ध
१९९	१५	व्ययेत्	नयेत्
२००	४	योगं ततो	योगरतो
२००	१३	अथ नी	अथावि
२०१	२	क्रिया एव	क्रियाष्वेव
२०२	४-५		श्लोकोऽयं नास्ति
२०२	१३-१४		२४-२५ श्लो. विपर्ययः
२०४	१३	श्रय	श्रम
२०५	४	ये	ते
२०७	१०	श्रेयसे	श्रेयसि
२११	१०	नरः	नराः
२१२-२१४			अष्टमपत्राभावः
२१४	१४		टिप्पणीस्थः पाठः
२१५	११	मम	समं
२१६	८-१०		पङ्क्तित्रयं नास्ति
२१८	१०	कम्बलो	कम्बलं
२२०	१५-१६		अत्रत्याः श्लोका न दृश्यन्ते
२२१	७	पाणि	पाणिं
२२२	१०	वितं	विता

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	मुद्रितः पाठः	अत्रत्यः पाठः
२२३	६	परम्	करम्
२२५	८	स्तथा	स्तदा
२२७	४	शास्त्रमथा	शास्त्रं समा
२३२	११	परेश्वरे	महेश्वरे
२३३	४	ज्ञेयं	देवि
२३३	१२	पीठाच्च लिङ्गाच्च	पीठं च लिङ्गं च
२३४	९	त्यक्त्वा	त्यक्तं
२३५	७	मर्यी	मयं
२३५	१५	रात्र	रात्रि
२३८	१०-११		नास्ति श्लोकोऽयम्
२३८	१५	ताम्रं	लोहं
२४१	१२	समर्चने	ममार्चने
२४३	४	क्षत	क्षुत
२४३	११	त्तेऽपि	त्ते च
२४३	१३	वेदाङ्ग	वेदान्त
२४५	७	संकल्प	साकल्य
२४६	१३	तौ गुर्विति	गुरोरिति
२४७	६	बन्ध....गुरु	बन्धादिगुरु
२४८	१०	ममापेक्ष्य	मया वेद्य
२४८	१०	त्वन्मते	मे मतिः
२४९	३	की(किं) रे	किं मे
२५०	११	रहस्याच्चा	सरहस्या
२५१	७	ज्ञेया	ज्ञाय
२५१	८	दुःखं	दुःखै
२५२	२	गुरुरित्य	गुरुसेवा
२५२	२	नितः	निनः
२५२	६	स सद्	सम्यग्
२५३	४	फलं वि	फलवि
२५३	९	उदारता	उदाहृता
२५३	१६	शैवस्य	शैवस्था
२५५	२	भिक्षार्थं	भैक्ष्यार्थं
२५६	८	ग्रामं सर्वं	अत्रैव मातृकाऽवसिता

जंगमवाडी मठ में उपलब्ध ग्रन्थ

(१) लिङ्गधारणचन्द्रिका (हिन्दी भावानुवाद सहित)
(२) सिद्धान्तशिखामणिः, तत्त्वप्रदीपिकाख्यसंस्कृतव्याख्यासहितः, मराठी भावानुवादसहितश्च। सं० ज० डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी, विशेष आवृत्ति
(३) श्रीकण्ठभाष्यम् (चतुःसूत्री) अप्पयदीक्षितकृत शिवार्कमणिदीपिका संस्कृत-टीकासहितम्
(४) वीरशैव अष्टावरण विज्ञान (मराठी और हिंदी) डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी
(५) जन्म हा अखेरचा (मराठी) (भाग १-१३) ज० डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी
(६) सिद्धान्तशिखामणि-समीक्षा (संस्कृत-शोधप्रबन्ध) डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी
(७) संक्षिप्त शिवपूजाविधिः (मराठी)
(८) महानारायणोपनिषद् (वीरशैवभाष्य)
(९) शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धांत (मराठी)
(१०) सिद्धान्तशिखामणिः (मूलमात्र)
(११) निगमागम संस्कृति (हिन्दी) पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
(१२) वीरशैव पंचपीठ परंपरा (मराठी) अनुवादक डॉ० चन्द्रशेखर कपाळे
(१३) ईशावास्योपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)
(१४) केनोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)
(१५) मुण्डकोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)
(१६) सिद्धान्तशिखोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)
(१७) सूक्ष्मागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
(१८) चन्द्रज्ञानागमः, (हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
(१९) मकुटागमः, हिन्दी भावानुवादतहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
(२०) कारणागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय
(२१) पारमेश्वरागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
(२२) निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम् (संस्कृत) पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
(२३) चन्द्रज्ञानागम (अंग्रेजी) अनुवादक डॉ० रमा घोष